ओ३म्

पाणिनीय अष्टाध्यायी-प्रवचनम्

(अष्टाध्यायी का सरल संस्कृतभाष्य एवं 'आर्यभाषा' नामक हिन्दी टीका)

तृतीयो भागः

(चतुर्थाध्यायात्मकः)

सुदर्शनदेव आचार्यः

ओ३म्

तस्मै पाणिनये नमः

पाणिनीय अष्टाध्यायी-प्रवचनम्

(अष्टाध्यायी का सरल संस्कृतभाष्य एवं 'आर्यभाषा' नामक हिन्दी टीका)
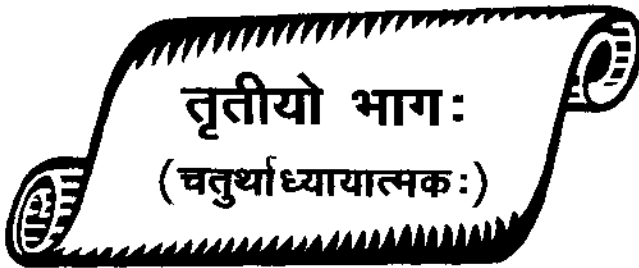
प्रवचनकारः

डॉ० सुदर्शनदेव आचार्यः

एम.ए., पी-एच.डी. (एच.ई.एस.)

संस्कृत सेवा संस्थान

७७६/३४, हरिसिंह कालोनी,

रोहतक-१२४००१ (हरयाणा)

प्रकाशक :-
ब्रह्मर्षि स्वामी विरजानन्द आर्ष धर्मार्थ न्यास
गुरुकुल झज्जर,
जिला झज्जर (हरयाणा)
दूरभाष : ०१२५१-५२०४४
५३३३२

मूल्य : १०० रुपये

प्रथम वार : २०००

श्रावणी उपाकर्म २०५५
(८ अगस्त १९९८)

मुद्रक :
वेदव्रत शास्त्री
आचार्य प्रिंटिंग प्रेस,
गोहानामार्ग, रोहतक-१२४००१
दूरभाष : ०१२६२-४६८७४, ५६८३३

।। ओ३म् ।।

पाणिनीय-अष्टाध्यायी-प्रवचनम्

अनुभूमिका

पाणिनीय-अष्टाध्यायी-प्रवचनम् का यह तृतीय भाग पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किया जा रहा है। इसमें अष्टाध्यायी के चतुर्थ अध्याय की व्याख्या है। चतुर्थ और पंचम अध्याय में गोत्र, जनपद, पर्वत, वन, नदी, मान (मांप-तोल) और मुद्राओं का विशेष वर्णन मिलता है। अतः पाठकों के हितार्थ उनका यहां संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जाता है।

(१) गोत्र

परिभाषा :- गोत्र अष्टाध्यायी का एक महत्त्वपूर्ण शब्द है। पाणिनि मुनि के अनुसार गोत्र की यह परिभाषा है- **'अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्'** (४।१।१६२) अर्थात्- **पौत्रप्रभृति यदपत्यं तद्गोत्रसंज्ञकं भवति।** अभिप्राय यह है कि एक पुरखा के पोते-पड़ौते आदि जितनी सन्तानें होंगी वे 'गोत्र' कही जायेंगी। गोत्र-प्रवर्तक मूल-पुरुष को वृद्ध, स्थविर और वंश्य भी कहा गया है। जैसे यदि मूल-पुरुष का नाम गर्ग है तो उसका पुत्र-गार्गि, पौत्र-गार्ग्य और प्रपौत्र-गार्ग्यायण कहलाता था।

(१) मूलपुरुष (गोत्रकार)-गर्ग।

(२) गर्ग का अनन्तरापत्य (पुत्र)-गार्गि। गर्ग+इञ् (अत इञ् ४।१।९५)।

(३) गर्ग का गोत्रापत्य (पौत्र)-गार्ग्यायण। गर्ग+यञ् (गर्गादिभ्यो यञ् ४।१।१०५)।

(४) गर्ग का युवापत्य (प्रपौत्र)-गार्ग्यायण। गार्ग्य+फक् (यञिञोश्च ४।१।१०१)।

यह गोत्रों की परम्परा प्राचीन ऋषियों से चली आ रही है। ऐसा माना जाता है कि सृष्टि के प्रारम्भ में मूलपुरुष ब्रह्मा के चार पुत्र हुये- (१) भृगु (२) अङ्गिरा (३) मरीचि (४) अत्रि। ये चारों गोत्रकार थे। तत्पश्चात् भृगु के कुल में जमदग्नि, अंगिरा के कुल में गौतम और भरद्वाज, मरीचि के कुल में कश्यप, वसिष्ठ और अगस्त्य तथा अत्रि के कुल में विश्वामित्र उत्पन्न हुये। इस प्रकार-जमदग्नि, गौतम, भरद्वाज, कश्यप, वसिष्ठ, अगस्त्य और विश्वामित्र ये सात ऋषि गोत्रकार (वंश-प्रवर्तक) हुये हैं। इन आठ ऋषियों को मूल गोत्रकार माना जाता है। इन ऋषियों के प्रत्येक कुल में भी ऐसे महान् पुरुष हुये जिनके विशेष यश के कारण उनके नाम से वंश का नाम प्रसिद्ध हो गया। उन ऋषियों के नाम से जो प्राचीन गोत्र चले आते थे पाणिनि मुनि ने शब्द रूप एवं प्रत्यय-विधान की दृष्टि से उनका वर्गीकरण करके उन्हें लगभग २० गणों में सूचीबद्ध कर दिया।

ऋषि-गोत्रों के अतिरिक्त जिन परिवारों के नाम (बौंक) समाज में प्रसिद्ध होगये थे उन्हें पाणिनि मुनि ने गोत्रावयव कहा है (४।१।७९)। काशिका में गोत्रावयव का अर्थ कुलाख्या किया है जैसे-पुणिक, भुणिक, मुखर आदि।

गर्ग-कुल में कौनसा व्यक्ति गार्ग्य और कौनसा गार्ग्यायण है, इसका समाज में विशेष महत्त्व था। प्रत्येक गृहपति अपने घर का समाज में प्रतिनिधि माना जाता था। वह अपने परिवार की ओर से जाति-बिरादरी की पंचायत में प्रतिनिधि बनकर बैठता था। परिवार के सबसे वृद्ध एवं ज्येष्ठ व्यक्ति के सिर पर पगड़ी बांधी जाती थी। उसे परिवार का मूर्धाभिषिक्त पुरुष कहते थे। यदि गर्ग के चार पुत्र हैं तो उसका ज्येष्ठ पुत्र ही 'गोत्र' पदवी प्राप्त करता था। ज्येष्ठ भ्राता यदि गार्ग्य पदवी धारण कर लेता तो उसके जीवनकाल में उसके सब छोटे भाई 'गार्ग्यायण' कहलाते थे **भ्रातरि च ज्यायसि** (४।१।६४)। इस प्रकार ज्येष्ठ भ्राता 'गोत्र' कहलाता था और उसकी अपेक्षा उसके छोटे भाई अथवा उसके खुद के पुत्र-पौत्र आदि 'युवा' कहलाते थे। गार्ग्य के रहते हुये वे सब 'गार्ग्यायण' ही कहे जाते थे।

गार्ग्य नामक ज्येष्ठ भाई का यदि कोई बड़ा-बूढ़ा चाचा आदि परिवार में जीवित हो तो उसके जीवनकाल में वह 'गार्ग्य' भी विकल्प से 'गार्ग्यायण' कहलाता था। यह अपने संयुक्त परिवार के सपिण्ड बड़े-बूढ़े पुरुष के प्रति सम्मानपूर्ण व्यवहार था **वाऽन्यस्मिन् सपिण्डे स्थविरतरे जीवति** (४।१।१६५)।

यदि कोई 'गार्ग्य' इतना वृद्ध हो जाये कि वह परिवार के काम-काज से छुट्टी ले लेवे अथवा अपनी समझ से ही अपने ज्येष्ठ पुत्र को अपने स्थान में प्रतिष्ठित कर देवे तो उस वृद्ध 'गार्ग्य' की युवा 'गार्ग्यायण' जैसी स्थिति मानी जाती थी **वृद्धस्य च पूजायाम्** (४।१।१६६)। '**तत्र भवान् गार्ग्यायणः**' आप महानुभाव तो अब गार्ग्यायण हैं। इसका अभिप्राय यह है कि उनके शिर पर परिवार के कार्य का कोई भार नहीं है अपितु परिवार के कार्यभार इसके ज्येष्ठ पुत्र पर है अतः इसकी अवस्था युवा गार्ग्यायण के समान है।

यदि कोई युवा गार्ग्यायण अपने गार्ग्य पिता के जीवन-काल में ही परिवार पर अधिकार कर बैठता था और गार्ग्य जैसा दावा करने लगता था उसे समाज में अच्छा नहीं समझा जाता था। उसे '**गार्ग्यो जाल्मः**' कहा जाता था अर्थात् निगोड़ा कैसा उतावला है कि यह 'गार्ग्य' बन बैठा **यूनश्च कुत्सायाम्** (४।१।१६७)।

(२) जनपद

सूत्र काल में 'जनपद' यह भारतीय भूगोल का महत्त्वपूर्ण शब्द था। उस समय सारा देश जनपदों में बंटा हुआ था। काशिकाकार ने गांवों के समुदाय को जनपद कहा है- **ग्रामसमुदायो जनपदः** (४।२।१)। यहां ग्राम शब्द से नगर का भी ग्रहण किया जाता है।

पाणिनीय- अष्टाध्यायी में जिन जनपदों के नाम आये हैं उनका संक्षिप्त विवरण अधोलिखित है :-

(१) **कम्बोज** :- पाणिनि मुनि के समय यह एकराज जनपद था। यहां का राजा और क्षत्रिय-कुमार दोनों ही कम्बोज कहाते थे। गन्धार, कपिश, बाल्हीक और कम्बोज इन चार महाजनपदों का एक चौगड्डा था। हिन्दुकुश पर्वत के उत्तर-पूर्व में कम्बोज, उत्तर-पश्चिम में बाल्हीक, दक्षिण-पूर्व में गन्धार और दक्षिण-पश्चिम में कपिश जनपद था। वर्तमान पामीर और बदख्शां का सम्मिलित प्राचीन नाम कम्बोज था।

(२) **प्रस्कण्व** :- अष्टाध्यायी (६।१।१५३) में प्रस्कण्व एक ऋषि का नाम है। इसी सूत्र का प्रत्युदाहरण प्रकण्व है जो कि एक देश का नाम था (काशिका-**प्रकण्वो** देश:)। ऐसा ज्ञात होता है कि फरगना का ही प्राचीन नाम प्रकण्व था। प्रकण्व देश मध्य-एशिया के भूगोल का एक अंग था।

(३) **गन्धार** :- पाणिनि मुनि ने अष्टाध्यायी (४।१।६९) में इस जनपद का पुराना नाम 'गन्धारि' दिया है। वहां के राजा और उनके पुत्र दोनों ही गान्धार कहाते थे। गन्धार महाजनपद काश्कर (कुनड़) नदी से तक्षशिला तक फैला हुआ था। पश्चिम गन्धार की राजधानी पुष्कलावती थी जहां कि स्वात और कुभा (काबुल) नदी के संगम पर वर्तमान चार सद्दा विद्यमान है।

(४) **सिन्धु** :- सिन्धु नद के पूर्व में सिन्ध सागर दुआब का पुराना नाम सिन्धु था। सिन्धु जनपद में उत्पन्न मनुष्य सिन्धुक कहाते थे (४।३।३२)।

(५) **सौवीर** :- वर्तमानकाल में सिन्धु प्रान्त या सिन्ध नद के निचले काठे का नाम सौवीर जनपद था (४।१।१४८)। इसकी राजधानी रोरुव (संस्कृत नाम-रौरुक) थी। इसका वर्तमान नाम रोड़ी है। यहां पुराने नगर के भग्नावशेष विद्यमान हैं। रोड़ी के उस पार सिन्धु के दाहिने तट का प्रसिद्ध स्थान सक्खर है, जिसका पुराना नाम शार्कर था। सक्खर शब्द शार्कर का ही अपभ्रंश है। अष्टाध्यायी में '**शर्कराया वा**' (४।३।८३) में इसका उल्लेख मिलता है। शर्करा शब्द का अर्थ रोड़ी (कांकर) है।

(६) **ब्राह्मणक** :- पाणिनीय-अष्टाध्यायी (५।२।७१) में यह एक देश का नाम है। पतंजलि मुनि के अनुसार यह एक जनपद था **ब्राह्मणको नाम जनपद**: (महाभाष्य ४।२।१०४)। इसकी पहचान वर्तमान ब्राह्मणावाद (सिन्ध प्रान्त के मीरपुर खास से लगभग २५ मील उत्तर में) से की जा सकती है। यहां प्राचीन काल के विस्तृत ध्वंसावशेष हैं।

(७) **पारस्कर** :- पतंजलि मुनि ने पारस्कर को एक देश का नाम कहा है '**पारस्करो देश**:' (महा० ६।१।१५७)। यह सिन्ध का पूर्वी जिला थर-पारकर जान पड़ता

है। 'थर' रेगिस्तानवाची 'थल' का सिन्धी रूप है। कच्छ के इरिण (रन्न) प्रदेश के उत्तर का समस्त भू-भाग पारकर देश था।

(८) **कच्छ** :- सिन्ध के ठीक दक्षिण में कच्छ जनपद था। पाणिनि मुनि ने कच्छ के मनुष्यों को काच्छक कहा है और वहां के लोगों के हास्य आदि विशेषताओं का भी संकेत किया है (४।२।१३४)।

(९) **केकय** :- यह जनपद वर्तमान में झेलम, शाहपुर और गुजरात प्रदेश का पुराना नाम था (७।३।२)। वहां इस समय खिउड़ा की नमक की पहाड़ी है। केकय एक राजाधीन जनपद था। वहां के निवासी क्षत्रिय कैकेय कहाते थे।

(१०) **मद्र** :- यह जनपद प्राचीन वाहीक (पंजाब) देश का उत्तरी भाग था। इसकी राजधानी शाकल (वर्तमान-स्यालकोट) थी जो कि आपगा (वर्तमान-अयक) नदी पर अवस्थित है। यह छोटी नदी जम्बू की पहाड़ियों से निकलकर स्यालकोट के पास से होती हुई वर्षा ऋतु में चन्द्रभागा (चनाब) नदी में मिल जाती है।

(११) **उशीनर** :- पाणिनि मुनि के अनुसार उशीनर वाहीक (पंजाब) देश का ही एक जनपद था। महाभारत में शिबि को उशीनर जनपद का राजा कहा है (वनपर्व १।९४।२)। शिबि की राजधानी शिबिपुर थी जिसकी पहचान वर्तमान शोरकोट (झंग जिले की एक तहसील) से की गई है। ऐसा ज्ञात होता है कि रावी और चनाब नदी के बीच का भू-भाग जो कि मद्र जनपद के दक्षिण में था, उशीनर प्रदेश कहलाता था। वह दो भागों में बंटा हुआ था। आजकल के झंग मघियानावाला उत्तरी भाग उशीनर जनपद था और दक्षिण में शोरकोट के चारों ओर के क्षेत्र का नाम शिबि जनपद था।

(१२) **अम्बष्ठ** :- पाणिनि मुनि ने अष्टाध्यायी (८।२।७) में अम्बष्ठ और आम्बष्ठ इन दो नामों की सिद्धि की है। यह जनपद राजाधीन था और इसके निवासी आम्बष्ठ्य कहाते थे। महाभारत के अनुसार अम्बष्ठ लोग युद्ध में कौरवों की ओर से लड़े थे जो कि अत्यन्त वीरपुरुष थे। ये चन्द्रभागा (चनाब) नदी के निचले भाग में बसे हुये थे।

(१३) **त्रिगर्त** :- रावी, व्यास और सतलुज इन तीन नदी-घाटियों के बीच का प्रदेश त्रिगर्त कहलाता था। इसी का एक पुराना नाम जालन्धरायण भी था। अब भी त्रिगर्त (कांगड़ा) का प्रदेश जालन्धर कहलाता है। रावी और व्यास के संकरे नाके में होकर त्रिगर्त का रास्ता था जो कि आज भी है।

(१४) **कलकूट** :- महाभारत सभापर्व के अनुसार कालकूट और पाणिनि मुनि का कलकूट (४।१।१७३) कुलिन्द प्रदेश में था (महा० २६।३)। कालकूट जनपद ठीक टोंस (तमसा) नदी और यमुना के प्रदेश (देहरादून-कालसी) में पड़ता है। यह यमुना की ऊपर की धारा का यामुन प्रदेश था। यहां अंजन की उत्पत्ति के कारण इस यामुन पर्वत का नाम कालकूट या कालापहाड़ होना स्वाभाविक है।

(१५) **भारद्वाज** :- अष्टाध्यायी-सूत्र (४।२।१४५) की व्याख्या में काशिका ने 'भारद्वाज' शब्द को देशवाची माना है, गोत्रवाची नहीं। पारजीटर ने भारद्वाज देश की पहचान गढ़वाल प्रदेश से की है (मार्कण्डेयपुराण का अंग्रेजी अनुवाद पृ० ३२०)।

(१६) **रङ्कु** :- पाणिनि मुनि के अनुसार रङ्कु देश का मनुष्य राङ्कवक और वहां की अन्य वस्तुयें राङ्कव या राङ्कवायण कहाती थी (४।२।१००)। सम्भवतः यह अलकनन्दा और पिंडर के पूर्व का प्रदेश था जहां मल्ला-जुहार और मल्ला-दानापुर की भाषा रङ्का कहाती है।

(१७) **कुरु** :- कुरुराष्ट्र, कुरुक्षेत्र और कुरुजांगल ये तीन इलाके एक-दूसरे से सटे हुये थे (४।१।१७२)। थानेश्वर, हस्तिनापुर, हिसार अथवा सरस्वती, यमुना, गंगा के बीच का प्रदेश तीन भागों में बंटा हुआ था। गंगा-यमुना के बीच में मेरठ कमिश्नरी का इलाका कुरुराष्ट्र था। इसकी राजधानी हस्तिनापुर थी। पाणिनि मुनि ने इसे हास्तिनपुर लिखा है (२।२।१०२)। कुरुक्षेत्र लोक-प्रसिद्ध है। रोहतक-हिसार-सिरसा का इलाका कुरुजांगल कहलाता था।

(१८) **साल्व** :- अलवर से उत्तरी-बीकानेर तक फैला हुआ प्रदेश साल्व कहलाता था। पाणिनि मुनि ने अष्टाध्यायी में साल्व (४।२।१३५) साल्वेय (४।१।१६९) और साल्वावयव (४।१।१७३) इन तीन जनपदों का उल्लेख किया है। सल्वेय और साल्वावयव ये दोनों साल्व जनपद के ही भाग थे। साल्व एक प्राचीन जाति का नाम है।

(क) **साल्वायव** :- इस विषय में काशिका में यह प्राचीन श्लोक उद्धृत है :-

उदुम्बरास्तिलखला मद्रकारा युगन्धराः।
भूलिङ्गाः शरदण्डाश्च साल्वावयवसंज्ञिताः॥

इस श्लोक के अनुसार साल्वावयव राजतन्त्र के अन्तर्गत ये छः रजवाड़े थे :- (१) उदुम्बर (२) तिलखल (३) मद्रकार (४) युगन्धर (५) भूलिंग (६) शरदण्ड। इनका संक्षिप्त परिचय अधोलिखित है :-

(१) **उदुम्बर** :- उदुम्बरों के पुराने सिक्के कांगड़ा (त्रिगर्त) देश में व्यास और रावी नदियों के बीच में पाये गये हैं। पठानकोट में भी उदुम्बर मुद्रायें पर्याप्त संख्या में मिली हैं। इस पुरातत्त्व प्रमाण से ज्ञात होता है कि व्यास के उत्तर और रावी के दक्षिण की संकरी घाटी में होकर त्रिगर्त के प्रवेश द्वार (गुरुदासपुर) में उदुम्बरों का राज्य था। पतंजलि मुनि ने उदुम्बरावती नदी का उल्लेख किया है (महाभाष्य ४।२।७१)। वह इसी प्रदेश की कोई छोटी नदी थी जिसके तट पर उदुम्बरों की राजधानी रही होगी।

(२) **तिलखल** :- व्यास नदी के दक्षिण के प्रदेश (जिला होशियारपुर) में, जो आज भी तिलों की खेती का प्रधान क्षेत्र है, तिलखल राज्य का स्थान प्रतीत होता है। तिलखल शब्द का अर्थ तिलों से भरे हुये खलिहानों का देश है।

(३) **मद्रकार** :- पाणिनीय-अष्टाध्यायी में मद्र और भद्र दोनों पर्यायवाची शब्द हैं (२।३।७३, ५।४।६७)। अतः मद्रकार का ही दूसरा नाम भद्रकार ज्ञात होता है। सम्भव है घग्घर नदी के तट पर बीकानेर के उत्तर-पूर्वी कोने में स्थित भद्र नामक स्थान मद्रकारों की प्राचीन राजधानी रही है।

(४) **युगन्धर** :- यमुना के तट पर चर्खा कातती हुई साल्वी स्त्रियों के कथनानुसार उनका राजा यौगन्धरि था :-

यौगन्धरिरेव नो राजा
इति साल्वीरवादिषुः।
विवृत्तचक्रा आसीना
तीरेण युमने तव।।

इस पद्य-प्रमाण से ज्ञात होता है कि युगन्धर कहीं यमुना का तटवर्ती प्रदेश था। यह सम्भवतः अम्बाला जिले में सरस्वती से यमुना-तट तक फैला हुआ था। युगन्धर का अपभ्रंश वर्तमान जगाधरी है।

(५) **भूलिंग** :- तोलेमी ने लिखा है कि अरावली के पश्चिम-उत्तर में बो-लिंगाई जाती रहती थी। इनकी पहचान भू-लिंगों से हो सकती है।

(६) **शरदण्ड** :- रामायण के अनुसार केकय जाते समय शरदण्डा नदी पार करनी पड़ती थी (अयोध्या० ६८।१६)। उसी शरदण्डा नदी के तट पर विराजमान होने से साल्वों के एक अवयव का नाम शरदण्ड पड़ा होगा। सम्भव है कि शरावती का ही दूसरा पर्याय नाम शरदण्डा हो। शरदण्डा और शरावती का अर्थ शरकण्डों वाली नदी है। शरावती कुरुक्षेत्र की वह नदी थी जिसे दृषद्वती भी कहा है। आजकल इसका नाम चितांग है।

(१९) **प्रत्यग्रथ** :- मध्यकाल के कोशों के अनुसार पंचाल (बरेली) का ही दूसरा नाम प्रत्यग्रथ था। जिसकी राजधानी अहिच्छत्रा थी (वैजयन्ती पृ० २१४)। प्रत्यग्रथ में बहनेवाली नदी रथस्था (रामगंगा) थी। प्रत्यग्रथ और रथस्था का अभिप्राय समान है।

(२०) **अजाद** :- इस जनपद का अष्टाध्यायी (४।१।१७१) में उल्लेख है। इस जनपद के नामकरण से ज्ञात होता है कि यह प्रदेश बकरियों के लिये प्रसिद्ध रहा होगा (अजा+दः=अजादः)। इटावा का प्रदेश आज तक बकरियों की नसल के लिये प्रसिद्ध है। अतः सम्भव है कि यही प्राचीन अजाद जनपद हो।

(२१) **काशि** :- पाणिनि मुनि ने अष्टाध्यायी (४।१।११६) में स्थान-नामों में काशि का उल्लेख किया है। जनपद का नाम काशि था और उसकी राजधानी वाराणसी थी।

(२२) **वृजि** :- बिहार प्रान्त में गंगा के उत्तर का प्रदेश वृजि कहाता था (४।२।१३१)। यहां विदेह लिच्छवियों का राज्य था।

(२३) **मगध** :- काशि जनपद के पूर्व में गंगा के दक्षिण का प्रदेश मगध जनपद था और यहां राजतन्त्र शासन था।

(२४) **कलिंग** :- पूर्वी समुद्र-तट पर कलिंग देश था जहां इस समय महानदी बहती है। पाणिनि मुनि के समय यह जनपद राज्य था (४।१।१७०)। सोलह महाजनपदों की सूची में इसका नाम नहीं है।

(२५) **सूरमस** :- यह नाम केवल अष्टाध्यायी (४।१।१७०) में मिलता है। ज्ञात होता है कि असम प्रान्त में प्रसिद्ध सूरमा नदी की घाटी और पर्वत-उपत्यका का नाम सूरमस था।

(२६) **अवन्ति** :- यह महाभारत कालीन एक प्रसिद्ध जनपद था (४।१।१७६)। इसकी राजधानी उज्जयिनी थी।

(२७) **कुन्ति** :- यमुना और चन्द्रभागा (चम्बल) के तट पर कुन्ति राष्ट्र (वर्तमान ग्वालियर) राज्य था (४।१।१७६)। यह अब भी कोंतवार कहलाता है।

(२८) **अश्मक** :- अश्मक जनपद की राजधानी अन्य ग्रन्थों के अनुसार प्रतिष्ठान थी (४।१।१७३)। जो कि आज गोदावरी नदी के किनारे पैष्ठा नाम से प्रसिद्ध है। पैष्ठा शब्द प्रतिष्ठान का ही अपभ्रंश है।

(२९) **भौरिकि** :- पाणिनि मुनि ने अष्टाध्यायी (४।२।५४) में भौरिकि लोगों के देश का भौरिकिभक्त नाम से उल्लेख किया है। वैजयन्ती कोश (पृ० ३७) के अनुसार बंगाल का समतल (दक्षिणी बंगाल) प्रदेश भौरिक कहलाता था।

(३०) **बर्बर** :- इस जनपद का अष्टाध्यायी (४।३।९३) में उल्लेख है। यह सिन्धु-सागर के संगम के समीप बर्बरिक समुद्र-पत्तन था।

(३१) **कश्मीर** :- यह एक लोकप्रसिद्ध जनपद है। अष्टाध्यायी (४।३।९३) सिन्धु-आदिगण में इसका उल्लेख मिलता है।

(३२) **उरस** :- इसका अष्टाध्यायी (४।३।९३) के सिन्धु-आदिगण में उल्लेख है। इसका वर्तमान नाम हजारा है। यह सिन्धु कृष्णगंगा और झेलम के बीच का प्रदेश था। यह पश्चिमी गन्धार और अभिसार (वर्तमान पुंछ राजौरी) के मध्य में है।

(३३) **दरद्** :- इसका अष्टाध्यायी (४।३।९३) के सिन्धु आदिगण में उल्लेख है। यह उत्तर-पश्चिम कश्मीर का गिलगित-हुंजा प्रदेश था।

(३४) **गब्दिका** :- इसका अष्टाध्यायी (४।३।९३) के सिन्धु आदिगण में उल्लेख है। यह धौलाधार से ऊपर चम्बा राज्य में गद्दियों के गद्देरन प्रदेश का प्राचीन नाम ज्ञात होता है।

(३५) **किष्किन्धा** :- इसका अष्टाध्यायी (४।३।९३) के सिन्धु आदिगण में उल्लेख है। यह गोरखपुर के पास विद्यमान खुंखुदों का प्राचीन नाम है। खुंखुदों शब्द किष्किन्धा का अपभ्रंश है।

(३६) **पटच्चर** :- इसका अष्टाध्यायी (४।२।११०) के सिन्धु आदिगण में पाठ है। यह सम्भवतः सरस्वती नदी के दक्षिण प्रदेश (वर्तमान-पाटौदी) था। यहां लुटेरे आभीरगणों की बस्ती थी। संस्कृतभाषा में पाटच्चर शब्द लुटेरा अर्थ का वाचक है। पाटौदी शब्द पटच्चर का अपभ्रंश है।

(३) पर्वत

पाणिनीय-अष्टाध्यायी में पर्वतीय प्रदेशों से सम्बन्धित कुछ विशेष शब्द मिलते हैं जैसे-हिमानी=बर्फ का भारी ढेर (४।१।४९)। हिमश्रथ=बर्फ का पिघलना (६।४।२९)। उपत्यका=पर्वत के नीचे की भूमि, नदी की द्रोणी,दून, घाटी (५।२।३४)। अधित्यका=पर्वत के ऊपर की ऊंची भूमि, पठार (५।२।३४)। इनके अतिरिक्त अष्टाध्यायी में चर्चित प्रमुख पर्वतों का परिचय निम्नलिखित है :-

(१) **हिमालय** :- इस पर्वत से सम्बन्धित दो महत्त्वपूर्ण नाम अन्तर्गिरि और उपगिरि थे। आचार्य सेनक के मत में इनका नाम अन्तर्गिर और उपगिर भी चालू था (५।४।११२)। हिमालय की पश्चिम से पूर्व की ओर फैली हुई तीन पर्वत-शृंखलायें हैं। हरद्वार से देहरादून की चढ़ाई और छोटे टीले इन्हीं के अंग हैं। देहरादून से केवल सात मील पर स्थित राजपुर से एकदम चढाई आरम्भ हो जाती है। हिमालय की इस बीच की शृंखला में मंसूरी, नैनीताल, शिमला, धर्मशाला और श्रीनगर आदि की चोटियां हैं। इनका प्राचीन नाम बहिर्गिरि था। इससे ऊपर उठकर हिमालय की तीसरी शृंखला है जिसमें १८-२० हजार से लेकर ३० हजार फुट तक की गगनचुम्बी चोटियां हैं। कांचनजंघा, गौरीशंकर, धवलगिरि, नंदादेवी और नंगा पर्वत आदि के उत्तुंग गिरिशृंग इस शृंखला में हैं। इसी का प्राचीन नाम अन्तर्गिरि था।

(२) **त्रिककुत्** :- यह भी हिमालय की किसी चोटी का ही नाम था। डा० कीथ ने इसकी पहचान 'त्रिकोट' से की है (वैदिक इन्डैक्स पृ० ३२९)। जो पंजाब और काश्मीर के बीच की चोटी थी।

सुलेमान के समानान्तर शीनगर की पर्वत-शृंखला है जो कि झोबर (वैदिक नाम-यह्वती) नदी के पूर्व में है और दोनों के पीछे टोका और काकड़ की शृंखलायें हैं। पर्वतों की यही तिहरी दीवार ठीक ही त्रिककुत् कहाती थी (जयचन्द्र विद्यालंकार भारतभूमि पृ० १२९)। यहीं से त्रैककुद अंजन प्राप्त होता था। इसका नाम अंजन-गिरि भी था (६।३।११७)।

(३) विदूर :- यह पर्वत वैदूर्य-मणि का उत्पत्ति स्थान था (४।३।८४)। पतंजलि के मत में वैदूर्य मणि की खाने वालवाय पर्वत में थी। वहां से लाकर विदूर के बेगड़ी (रत्नतराश, संस्कृत नाम-वैकटिक) उसे घाट-पहलों पर काटते और बींधते थे। इससे उसका नाम वैदूर्य मणि पड़ गया। संभव है कि दक्षिण का बीदर, विदूर हो।

(४) वन

पाणिनीय अष्टाध्यायी (८।४।४) में निम्नलिखित प्रमुख वनों का उल्लेख मिलता है :-

(१) पुरगावण :- गणरत्नमहोदधि (पृ० ७६) के अनुसार 'पुरगा' पाटलिपुत्र की एक यक्षिणी (जातिविशेष) थी। इससे अनुमान किया जाता है कि 'पुरगावण' पाटलिपुत्र के समीप था जो कि उक्त यक्षिणी के नाम से प्रसिद्ध हुआ होगा।

(२) मिश्रकावण :- यह नैमिषारण्य के पास मिसरिख वन ज्ञात होता है जो कि अब नीमखार मिसरिख (सीतापुर से १३ मील दक्षिण) कहलाता है।

(३) सिध्रकावण :- यह सिधका नामक लकड़ियों का वन था। सामविधान ब्राह्मण (३।६।९) में सैन्ध्रकमयी समिधाओं को घी में डुबाकर सहस्र आहुतियों से हवन करने का विधान है।

(४) अग्रेवण :- यह सम्भवतः प्राचीन अग्र जनपद जिसकी राजधानी अग्रोदक (वर्तमान नाम-अगरोहा) थी, उसमें अवस्थित वन का नाम था।

(५) कोटरावण :- यह लखीमपुर का कोई जंगल ज्ञात होता है, जहां अब कोटरा नामक रियासत है। यहां अधिकतर साखू और शीशम के वृक्ष हैं।

(६) शारिकावण :- यह वर्तमान (बिहार) का नाम ज्ञात पड़ता है।

पाणिनीय अष्टाध्यायी (८।४।५) के अनुसार शरवण, इक्षुवण, प्लक्षवण, आम्रवण, कार्ष्यवण, खदिरवण और पीयूक्षावण प्रसिद्ध थे।

(५) नदी

पाणिनीय अष्टाध्यायी में निम्नलिखित भारतीय नदियों का भी उल्लेख मिलता है :-

(१) सुवास्तु :- यह वैदिक काल की नदी है जिसे आजकल स्वात कहा जाता है (४।२।७७)। इसकी पश्चिमी शाखा गौरी नदी (पंचकोरा) है। इन दोनों के बीच में उर्दि (उड्डियान) था जो कि गन्धार देश का एक भाग माना जाता था। यहीं स्वात की घाटी में प्राचीन काल से आज तक एक विशेष प्रकार के कम्बल बुने जाते आये हैं। पाणिनि ने जिनका पाण्डुकम्बल नाम से उल्लेख किया है (४।२।११)।

(क) मशकावती :- स्वात नदी का ही निचला भाग मशकावती नदी कहलाता था जिसके तट पर मशकावती नगरी विराजमान थी। महाभाष्य में मशकावती नदी का उल्लेख है (४।२।७१)।

(ख) पुष्कलावती :- यह भी व्याकरण-शास्त्र में एक नदी का नाम प्रसिद्ध है। काशिका में भी पुष्कलावती का नाम प्राचीन नदी-सूची में में आया है (४।२।८५, ६।१।२१९, ३।३।११९)। स्वात नदी के निचले भाग का नाम पुष्कलावती था।

वस्तुतः- सुवास्तु, गौरीनदी, कुभा और सिन्धु नदी के बीच का प्रदेश ही अष्टाध्यायी के प्रवक्ता पाणिनि मुनि की जन्मभूमि का पश्चिम भाग था।

(२) सिन्धु :- प्राचीन सिन्धु नद आज की सिन्ध नदी है। सिन्धु के नाम से उसके पूर्वी तट की तरफ पंजाब में फैला हुआ प्राचीन सिन्धु जनपद (सिन्धु सागर दुआब) था। इस समय जो सिन्ध प्रान्त है उसका पुराना नाम 'सौवीर' था। सिन्ध नदी कैलास के पश्चिमी तटान्त से निकलकर कश्मीर को दो भागों में बांटती हुई गिलगिट-चिलास (प्राचीन दरद् देश) में घुसकर दक्षिण वाहिनी होती हुई दरद् के चरणों से पहली बार मैदान में उतरती है। अतः प्राचीन भारतवासी सिन्धु नदी को दारदी सिन्धु नदी कहते थे। अपने अन्तिम भाग में सिन्धु नदी सौवीर देश (४।१।१४८) में प्रवेश करती है और फिर समुद्र में मिल जाती है। यह प्रदेश सिन्धुकूल और सिन्धुवक्त्र कहलाता था।

(३) विपाश :- वर्तमान व्यास नदी।

(४) चन्द्रभाग :- वर्तमान चनाब नदी।

(५) इरावती :- वर्तमान रावी नदी।

(६) देविका :- महाभाष्य में देविका के किनारे उगनेवाले चावल '**देविकाकूलाः शालयः**' कहे गये हैं (७।३।१)। यह मद्र देश में बहनेवाली एक प्रसिद्ध नदी थी। यह रावी नदी की सहायक नदी थी। इसकी पहचान देग नदी के साथ की जाती है जो कि जम्मू की पहाड़ियों से निकलकर स्यालकोट, शेखुपुरा जिलों में होती हुई रावी नदी में मिल जाती है।

(७) अजिरवती :- गंगा की कांठे की नदियों में अजिरवती नदी का नाम आया है (६।३।११९)। यही अजिरवती वर्तमान राप्ती नदी है। जिसके तट पर प्राचीन श्रावस्ती नगरी थी।

(८) सरयू :- सरयू नामक प्रसिद्ध नदी तो कोसल जनपद में है (६।४।१७४)। पश्चिमी अफगानिस्तान की हरिरूद नदी जिसके तट पर हेरात बसा है, प्राचीन ईरानी भाषा में हरयू कहलाती थी, जो संस्कृत सरयू का ही रूप है।

(९) चर्मण्वती :- विन्ध्याचल की नदियों में चर्मण्वती नदी का नाम आया है (८।२।१२)। इसका वर्तमान नाम चम्बल है।

(१०) **शरावती** :- कुरुक्षेत्र की घग्घर नदी के साथ इसकी पहचान की गई है। यह भारत के प्राच्य और उदीच्य देशों के बीच की सीमा-नदी थी।

(११) **रुमण्वत्** :- काशिका के अनुसार लवण के स्थान में रुमण् आदेश होने से यह शब्द बना है का०-**'लवणशब्दस्य रुमण्भावो निपात्यते'** (८।२।१२)। अतः इस नदी का रूमा (लूणी नदी) नाम जान पड़ता है जो कि सांभर झील से निकलती है।

(१२) **रथस्या** :- यह रथस्या वा रथस्था नदी पंचाल (बरेली) प्रदेश की रामगंगा (रथवाहिनी) नदी थी जो कि ऊपरले भाग में अब भी राहुत कहाती है। 'राहुत' रथस्था का ही अपभ्रंश है।

(१३) **उदुम्बरावती** :- व्यास और रावी नदी के बीच में त्रिगर्त (कांगड़ा) को जहां से रास्ता गया है वहां गुरुदासपुर, पठानकोट और नूरपुर इलाके में औदुम्बरों के देश की ही किसी नदी का नाम उदुम्बरावती था।

(१४) **इक्षुमती** :- इसकी पहचान गंगा की सहायक नदी फर्रुखाबाद जिले की ईखन नदी से की जाती है।

(१५) **द्रुमती** :- यह सम्भवतः काश्मीर की द्रास नदी है।

(६) मान (मांप-तोल)

पाणिनीय अष्टाध्यायी में जिन मानों का उल्लेख किया गया है वे उन्मान, परिमाण और प्रमाण भेद से तीन प्रकार के हैं। जैसा कि लिखा है :-

ऊर्ध्वमानं किलोन्मानं परिमाणं तु सर्वतः।
आयामास्तु प्रमाणं स्यात् संख्या बाह्या तु सर्वतः।।

अर्थ :- ऊर्ध्वमान अर्थात् बाट को उन्मान, सर्वतोमान (सिक्का) को परिमाण और आयाम लम्बाई का मान=फुटा प्रमाण कहाता है। यहां पाठकों के हितार्थ इन मानों का संक्षिप्त परिचय लिखा जाता है।

(१) उन्मान (बांट)

(१)	तुला (तराजू)	यह उन्मान का करण है। तुला सम्मित (तोला हुआ) तुल्य कहाता है।
(२)	गुंजा	१ रत्ती (रक्तिका)।
(३)	काकणी	१ $\frac{१}{४}$ रत्ती।
(४)	निष्पाव	३ रत्ती।
(५)	माषक	५ रत्ती।

(६)	बिस्त	८० रत्ती (सोना तोलने का बाट)।
(७)	अञ्जलि (कुडव)	१६ तोला।
(८)	प्रसृति	०२ पल।
(९)	कुलिज	०१ प्रस्थ (पाणिनिकालीन भारतवर्ष) कुलि=हाथ से उत्पन्न अञ्जलि मान।
(१०)	आढक	४ प्रस्थक।
(११)	पाय्य	५ से लेकर १० सेर तक का अन्न आदि का माप (पात्र)।

(२) उन्मान-तालिका (चरक)

४ कर्ष	१ पल।
२ पल	१ प्रसृति (८ तोला)।
२ प्रसृति	१ अञ्जलि (कुडव) {१६ तोला}।
४ कुडव	१ प्रस्थ (६४ तोला)।
४ प्रस्थक	१ आढक।
४ आढक	१ द्रोण (१०२४ तोला) {१२ $\frac{४}{५}$ सेर}।

(३) उन्मान-तालिका (अर्थशास्त्र)

१ कुडव	१२ $\frac{१}{२}$ तोला (ढाई छटांक)।
४ कुडव	१ प्रस्थ ५० तोला (ढाई पाव)।
४ प्रस्थ	१ अढक ५० पल (२०० तोला) {ढाई सेर}।
४ आढक	१ द्रोण=२०० पल (८०० तोला) {१० सेर}।
१६ द्रोण	१ खारी=१६० सेर (४ मण)।
२० द्रोण	१ कुम्भ
१० कुम्भ	१ वह/वाह (५० मण)।

☆ ☆ ☆

कंस	८ प्रस्थ=२ आढक ६ $\frac{२}{५}$ सेर (चरक)।
मन्थ	द्रोण का पर्याय (सम्भवतः)।
शूर्प	२ द्रोण (चरक)।

खारी	१६ द्रोण (१६० सेर)।
गोणी	०१ खारी।
भार	ढाई मण।
महाभार	२५ मण (एक गाड़ी का बोझा)।
आचित	२५ मण (शाकट-भार)।

(४) प्रमाण (आयाम)

०८ यव	१ अंगुल ($\frac{3}{4}$ इंच)।
१२ अंगुल	१ वितस्ति या दिष्टि (९ इंच)।
०२ वितस्ति	१ अरत्नि (डेढ़ फुट)।
४२ अंगुल	१ किष्कु (२ फुट साढ़े सात इंच)।
८४ अंगुल	१ खात पौरुष (पांच फुट चार इंच) खाई का प्रमाण।
१९२ अंगुल	१ दण्ड या काण्ड (१२ फुट)।
१० दण्ड	१ रज्जु (४० गज)।
२१६ अंगुल	१ हस्ती (१३ फुट ६ इंच)।

(५) परिमाण (सुवर्ण मुद्रा)

निष्क	१६ माशे का सिक्का।
सुवर्ण	एक कर्ष १० गुंजा (रत्ती)।
कार्षापण	८० रत्ती।

(६) परिमाण (रजत मुद्रा)

(१)	शतमान	१०० रत्ती का सिक्का। शतपथ (५।५।५।१६) के अनुसार एक सुवर्ण मुद्रा।
(२)	शाण	साढ़े बारह रत्ती का सिक्का 'अष्टौ शाणाः शतमानं वहन्ति' (महाभारत आरण्यक पर्व १३४।१४) ८ शाण=१ शतमान
(३)	कार्षापण	३२ रत्ती चांदी का सिक्का मनुस्मृति ८।१।३५-३६ के अनुसार धरण एवं राजत पुराण।
(४)	कार्षापण	१ कर्ष (८० रत्ती) का ताम्बे का सिक्का।

(७) कार्षापण की खरीज

१.	कार्षापण एवं पण	३२ रत्ती चांदी का सिक्का।
२.	अर्धपण	१६ रत्ती चांदी का सिक्का।

३.	पाद	०८ रत्ती चांदी का सिक्का।
४.	त्रिमाष	०६ रत्ती चांदी का सिक्का।
५.	द्विमाष	०४ रत्ती चांदी का सिक्का।
६.	माष	०२ रत्ती चांदी का सिक्का।
७.	अर्धमाष	०१ रत्ती चांदी का सिक्का।
८.	काकणी (कात्यायन वार्तिक सूत्र ५।१।३३)।	१/२ रत्ती चांदी का सिक्का।
९.	अर्धकाकणी	१/४ रत्ती चांदी का सिक्का।

विशेष :- माष चांदी और ताम्बे का सिक्का था। चांदी का रौप्य माष २ रत्ती का और ताम्बे का माष ५ रत्ती का होता था।

१०.	विंशतिक	२० माष का कार्षापण (विशेष)।
		१६ माष का कार्षापण (सामान्य)।
११.	रूप्य	नान्दी बैल आदि के रूपों से आहत (युक्त) कार्षापण।

(८) रजत की आहत मुद्रायें

१.	शतमान	१०० रत्ती का चांदी का सिक्का।
२.	अर्धशतमान	५० रत्ती का चांदी का सिक्का।
३.	पाद शतमान	२५.०० रत्ती का चांदी का सिक्का।
४.	पादार्धशतमान	१२.०६ रत्ती का चांदी का सिक्का।

(९) मुद्रा की क्रयशक्ति

पाणिनि-काल में एक कार्षापण (३२ रत्ती चांदी का सिक्का) से पांच गोणी अर्थात् १२ मण ३२ सेर अन्न खरीदा जा सकता था। इस गणना से उस काल में प्रचलित छोटे सिक्कों की क्रय-शक्ति का अनुमान इस प्रकार किया जा सकता है-

	सिक्का	**तोल**	**अन्न-क्रय**
१.	कार्षापण	३२ रत्ती चांदी (सिक्का)	१२ मण ३२ सेर।
२.	माष	०२ रत्ती चांदी (सिक्का)	३२ सेर २० तोला।
३.	अर्धमाष	०१ रत्ती चांदी (सिक्का)	१६ सेर १० तोला।
४.	काकणी	१/२ रत्ती चांदी (सिक्का)	८ सेर ५ तोला।
५.	अर्धकाकणी	१/४ रत्ती चांदी (सिक्का)	४ सेर ढाई तोला।

विशेष :- यह उपरिलिखित विवरण डा० वासुदेवशरण अग्रवाल कृत 'पाणिनि कालीन भारतवर्ष' के आधार पर लिखा है और पाणिनि कालीन भूगोल के चित्र उसी ग्रन्थ से संकलित किये हैं तदर्थ हम उनके अत्यन्त आभारी हैं।

कार्षापण-मुद्राकरण-चित्रम्
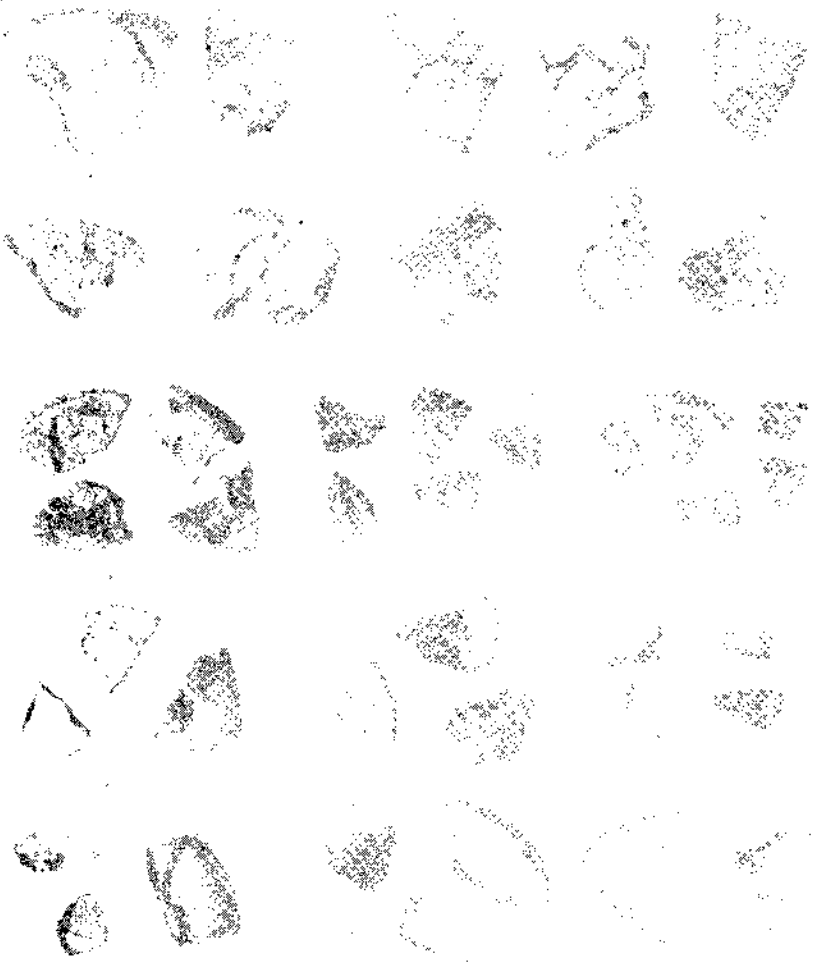
१-१५ कार्षापण मुद्राओं के सांचे नौरंगाबाद (बामला) से प्राप्त। १६ मुद्रास्थान तक धातु पहुंचने का मार्ग। १७, १८ कार्षापण सांचे का पृष्ठ भाग।

कार्षापण-मुद्राकरण-चित्रम्
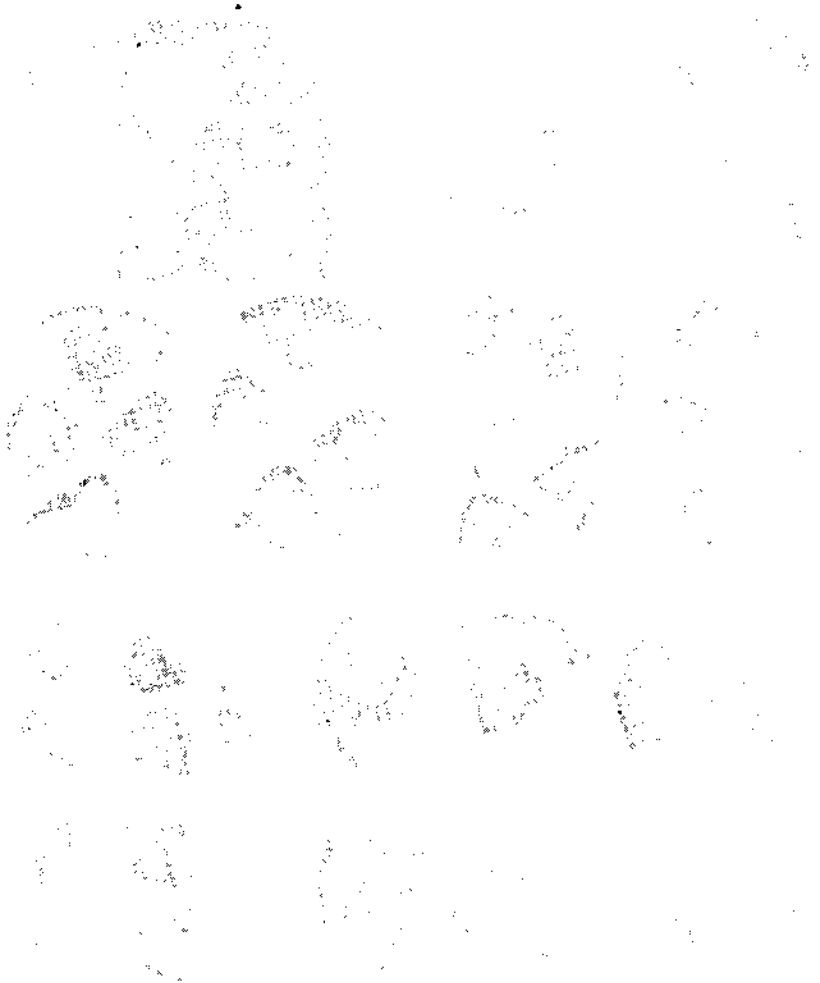
१९-२२, २६ नौरंगाबाद से प्राप्त एक ओर से प्रयुज्यमान कार्षापण सांचे। २७-२८ कार्षापण सांचे का छाप। २३-२५ नौरंगाबाद से प्राप्त दोनों ओर से प्रयुज्यमान कार्षापण सांचे। ३० सिंहोल से प्राप्त कार्षापण ? सांचा।

कार्षापण-मुद्रा-चित्रम्
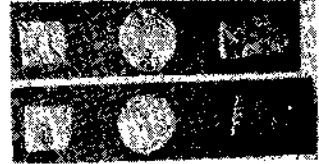
१-३ कार्षापण-मुद्रा (सिक्के)।

कार्षापण नामक सिक्का पाणिनिकाल का एक प्रधान सिक्का है। गुरुवर स्वामी ओमानन्द सरस्वती ने हरयाणा प्रान्त के पुराने ऊजड़-खेड़ों नौरङ्गाबाद (बामला) (भिवानी) आदि स्थानों की खुदाई से ये कार्षापण के सांचे तथा कार्षापण सिक्के बहुत संख्या में अत्यन्त पुरुषार्थ से प्राप्त किये हैं जो कि स्वामी ओमानन्द पुरातत्त्व-संग्रहालय गुरुकुल झज्जर (हरयाणा) में सुरक्षित हैं। श्रद्धेय स्वामी जी ने हरयाणा के लक्षण-स्थान (टकसाल) नामक एक पुस्तक भी लिखा है। ये कार्षापण सम्बन्धी चित्र छात्रों के ज्ञानार्थ उसी पुस्तक से संकलित किये गये हैं जो छात्र इस विषय में अधिक जानना चाहते हैं वे गुरुवर के उक्त पुस्तक को पढ़कर जान सकते हैं।

—सुदर्शनदेव आचार्य

पाणिनिकालीन
भूगोल

पाणिनिकालीन
भूगोल

पाणिनिकालीन भूगोल

तृतीयभागस्य प्रतिपादितविषयाणां सूचीपत्रम्

चतुर्थाध्यायस्य तृतीयः पादः

उत्तरशेषार्थप्रत्ययप्रकरणम्

इति तृतीयभागस्य प्रतिपादितविषयाणां सूचीपत्रम्।।

चतुर्थाध्यायस्य प्रथमः पादः

ङ्याप्प्रातिपदिकाधिकारः

ङ्याप्प्रातिपदिकात्।१।

प०वि०-ङी-आप्-प्रातिपदिकात् ५।१।

स०-ङीश्च आप् च प्रातिपदिकं च एतेषां समाहारः-ङ्याप्-प्रातिपदिकम्, तस्मात्-ङ्याप्प्रातिपदिकात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अर्थः-यदित ऊर्ध्वं वक्ष्यामो ङ्यन्ताद् आबन्तात् प्रातिपदिकाच्च तद् वेदितव्यमित्यधिकारोऽयम्, आ पञ्चमाध्यायपरिसमाप्तेः।

आर्यभाषाः *अर्थ-इससे आगे जो कहेंगे वह प्रत्यय-विधि (ङ्याप्प्रातिपदिकात्) ङी-अन्त, आबन्त और प्रातिपदिक से जाननी चाहिए। इस सूत्र का पञ्चम अध्याय की समाप्ति तक अधिकार है।*

विशेष-*ङी से ङीप्, ङीष्, ङीन् प्रत्ययों का ग्रहण है। आप् से टाप्, डाप्, चाप् प्रत्ययों का ग्रहण है। प्रातिपदिक से जो* ***'अर्थवद्धातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्'*** *(१।२।४५) तथा* ***'कृत्तद्धितसमासश्च'*** *(१।२।४६) से संज्ञा की गई है, उसका ग्रहण किया जाता है।*

सु-आदिप्रत्ययाः-

(१) स्वौजसमौट्छष्टाभ्यांभिस्ङेभ्यांभ्यस्ङसिभ्यां-भ्यस्ङसोसाम्ङ्योस्सुप्।२।

प०वि०-सु-औ-जस्-अम्-औट्-शस्-टा-भ्याम्-भिस्-ङे-भ्याम्-भ्यस्-ङसि- भ्याम्-भ्यस्-ङस्-ओस्-आम्-ङि-ओस्-सुप् १।१।

स०-सुश्च औश्च जस् च अम् च औट् च शस् च टाश्च भ्याम् च भिस् च ङेश्च भ्याम् च भ्यस् च ङसिश्च भ्याम् च भ्यस् च ङस् च ओस् च आम् च ङिश्च ओस् च सुप् च एतेषां समाहारः-सु०सुप् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-ङ्याप्प्रातिपदिकादित्यनुवर्तते।

अन्वयः-ङ्याप्प्रातिपदिकात् स्वौजस्०सुप्।

अर्थः-ङी-अन्ताद् आबन्तात् प्रातिपदिकाच्च सु-आदय एकविंशतिः प्रत्यया भवन्ति। ङी इति ङीप्-ङीष्-ङीनां सामान्येन ग्रहणं क्रियते। (ङीप्) कुमारी। (ङीष्) गौरी। (ङीन्) शाङ्र्गरवी। आप् इति टाप्-डाप्-चापां सामान्येन ग्रहणं क्रियते। (टाप्) अजा (डाप्) बहुराजा। (चाप्) कारीषगन्ध्या। (प्रातिपदिकम्) देवः। देवौ। देवाः।

(१) ङी-अन्तात्-

विभक्तिः	एक०	द्वि०	बहु०	भाषार्थ
प्रथमा	कुमारी	कुमार्यौ	कुमार्यः	कुमारी ने।
द्वितीया	कुमारीम्	,,	,,	कुमारी को।
तृतीया	कुमार्या	कुमारीभ्याम्	कुमारीभिः	कुमारी के द्वारा।
चतुर्थी	कुमार्यै	,,	कुमारीभ्यः	कुमारी के लिये।
पञ्चमी	कुमार्याः	,,	,,	कुमारी से।
षष्ठी	,,	कुमार्योः	कुमारीणाम्	कुमारी का/के/की।
सप्तमी	कुमार्याम्	,,	कुमारीषु	कुमारी में/पर।
सम्बोधन	हे कुमारि !	हे कुमार्यौ !	हे कुमार्यः !	हे कुमारी !

(२) आबन्तात्-

विभक्तिः	एक०	द्वि०	बहु०	भाषार्थ
प्रथमा	अजा	अजे	अजाः	अजाने (बकरी ने)।
द्वितीया	अजाम्	,,	,,	अजा को
तृतीया	अजया	अजाभ्याम्	अजाभिः	अजा के द्वारा।
चतुर्थी	अजायै	,,	अजाभ्यः	अजा के लिये।
पञ्चमी	अजायाः	,,	,,	अजा से।
षष्ठी	,,	अजयोः	अजानाम्	अजा का/के/की।
सप्तमी	अजायाम्	,,	अजासु	अजा में/पर।
सम्बोधन	हे अजा !	हे अजे !	हे अजाः !	हे अजा !

(3) प्रातिपदिकात्–

विभक्ति:	एक०	द्वि०	बहु०	भाषार्थ
प्रथमा	देवः	देवौ	देवाः	देव ने।
द्वितीया	देवम्	,,	देवान्	देव को।
तृतीया	देवेन	देवाभ्याम्	देवैः	देव के द्वारा।
चतुर्थी	देवाय	,,	देवेभ्यः	देव के लिये।
पञ्चमी	देवात्	,,	,,	देव से।
षष्ठी	देवस्य	देवयोः	देवानाम्	देव का/के/की।
सप्तमी	देवे	,,	देवेषु	देव में/पर।
सम्बोधन	हे देव !	हे देवौ !	हे देवाः !	हे देव !

आर्यभाषाः *अर्थ-(ङ्याप्प्रातिपदिकात्) ङी-अन्त, आबन्त और प्रातिपदिक से (सु०सुप्) सु-आदि २१ प्रत्यय होते हैं। ङी से ङीप्, ङीष्, ङीन् प्रत्ययों का ग्रहण किया जाता है। (ङीप्) कुमारी। (ङीष्) गौरी (पार्वती)। (ङीन्) शार्ङ्गरवी (शार्ङ्गरव जाति की नारी)। आप् से टाप्, डाप्, चाप् प्रत्ययों का ग्रहण किया जाता है। (टाप्) अजा (बकरी)। (डाप्) बहुराजा। बहुत राजाओंवाली। (चाप्) कारीषगन्ध्या। करीष के समान गन्धवाले की पुत्री। करीष=शुष्क गोमय (प्रतिपदिक)। देवः। देवौ। देवाः। देव=विद्वान्।*

उदा०-शेष उदाहरण संस्कृत भाग में देख लेवें।

(१) ङी-अन्त–

*सिद्धि-(१) **कुमारी।** कुमार+ङीप्। कुमार+ई। कुमारी। कुमारी+सु। कुमारी।*

*यहां प्रथम 'कुमार' शब्द से **'वयसि प्रथमे'** (४।१।२०) से ङीप् प्रत्यय है। ङी-अन्त कुमारी शब्द से इस सूत्र से 'सु' प्रत्यय है। **'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'** (६।१।६६) से 'सु' प्रत्यय का लोप होता है।*

*(२) **कुमार्यौ।** कुमारी+औ। कुमार्यौ।*

*यहां 'कुमारी' शब्द से 'औ' प्रत्यय और **'इको यणचि'** (६।१।७७) से 'यण्' आदेश होता है।*

*(३) **कुमार्यः।** कुमारी+जस्। कुमारी+अरु। कुमारी+अर्। कुमारी+अः। कुमार्यः।*

*यहां 'कुमारी' शब्द से 'जस्' प्रत्यय **'ससजुषो रुः'** (८।२।६६) से रुत्व, **'खरवसानयोर्विसर्जनीयः'** (८।३।१५) से विसर्जनीय और पूर्ववत् 'यण्' आदेश है।*

*(४) **कुमारीम्।** कुमारी+अम्। कुमारीम्।*

यहां 'कुमारी' शब्द से 'अम्' प्रत्यय, 'अमि पूर्वः' (६।१।१०३) से पूर्वसवर्ण होता है।

(५) **कुमार्यै।** कुमारी+ङे। कुमारी+आट्+ए। कुमारी+ऐ। कुमार्यै।

यहां 'कुमारी' शब्द से 'ङे' प्रत्यय, **'आण्नद्याः'** (७।३।११२) से आट् आगम और **'आटश्च'** (६।१।८७) से वृद्धि रूप एकादेश है।

(६) **कुमार्याः।** कुमारी+ङसि। कुमारी+आट्+अस्। कुमार्याः।

यहां 'कुमारी' शब्द से 'ङसि' प्रत्यय और पूर्ववत् 'आट्' आगम है।

(७) **कुमारीणाम्।** कुमारी+आम्। कुमारी+नुट्+आम्। कुमारी+नाम्। कुमारीणाम्।

यहां 'कुमारी' शब्द से 'आम्' प्रत्यय, **'ह्रस्वनद्यापो नुट्'** (७।१।५४) से 'नुट्' आगम और 'अट्कुप्वाङ्०' (८।४।२) से णत्व होता है।

(८) **कुमार्याम्।** कुमारी+ङि। कुमारी+आम्। कुमार्याम्।

यहां 'कुमारी' शब्द से 'ङि' प्रत्यय, **'ङेराम्नद्याम्नीभ्यः'** (७।३।११६) से 'ङि' के स्थान में 'आम्' आदेश है।

(९) **कुमारीषु।** कुमारी+सुप्। कुमारी+सु। कुमारीषु।

यहां 'कुमारी' शब्द से 'सुप्' प्रत्यय और **'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।५९) से षत्व होता है।

(१०) **गौरी।** गौर्+ङीष्। गौर्+ई। गौरी। गौरी+सु। गौरी।

यहां 'गौर' शब्द से **'षिद्गौरादिभ्यश्च'** (४।१।४१) से 'ङीष्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(११) **शार्ङ्गरवी।** शार्ङ्गरव+ङीन्। शार्ङ्गरव+ई। शार्ङ्गरवी। शार्ङ्गरवी+सु। शार्ङ्गरवी।

यहां 'शार्ङ्गरव' शब्द से **'शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्'** (४।१।७३) से 'ङीन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(२) आबन्त–

(१) **अजा।** अज+टाप्। अज+आ। अजा+सु। अजा।

यहां प्रथम 'अज' प्रातिपदिक से **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय है। आबन्त 'अजा' शब्द से इस सूत्र से 'सु' प्रत्यय है। **'हल्ङ्याब्भ्यो०'** (६।१।६६) से 'सु' प्रत्यय का लोप होता है।

(२) **अजे।** अजा+औ। अजा+शी। अजा+ई। अजे।

यहां 'अजा' शब्द से 'औ' प्रत्यय और **'औङ आपः'** (७।१।१८) से 'औ' प्रत्यय के स्थान में 'शी' आदेश होता है।

(३) **अजया।** अजा+टा। अजे+आ। अजया।

यहां 'अजा' शब्द से 'टा' प्रत्यय 'आङि चापः' (७।३।१०५) से 'टाप्' को 'ए' आदेश होता है।

(४) **अजायै।** अजा+ङे। अजा+याट्+ए। अजायै।

यहां 'अजा' शब्द से 'ङे' प्रत्यय और 'याडापः' (७।३।११३) से याट् आगम होता है।

(५) **अजयोः।** अजा+ओस्। अजे+ओ। अजयोः।

यहां 'अजा' शब्द से 'ओस्' प्रत्यय और 'आङि चापः' (७।३।१०५) से 'टाप्' को 'ए' आदेश होता है।

(६) **अजानाम्।** अजा+आम्। अजा+नुट्+आम्। अजानाम्।

यहां 'अजा' शब्द से 'आम्' प्रत्यय और उसे 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' (७।१।५४) से 'नुट्' आगम होता है।

(७) **अजायाम्।** अजा+ङि। अजा+याट्+आम्। अजायाम्।

यहां 'अजा' शब्द से 'ङि' प्रत्यय, उसे 'याडापः' (७।३।११३) से 'याट्' आगम, 'ङेराम्नाद्याम्नीभ्यः' (७।३।११६) से 'ङि' प्रत्यय को 'आम्' आदेश होता है।

(८) **अजे।** अजा+सु। अजे+सु। अजे+०। अजे।

यहां 'अजा' शब्द से 'सु' प्रत्यय, 'सम्बुद्धौ च' (७।३।१०६) से 'टाप्' को 'ए' आदेश और 'एङ्-ह्रस्वात् सम्बुद्धेः' (६।१।६९) से सम्बुद्धिसंज्ञक 'सु' प्रत्यय का लोप होता है।

(९) **बहुराजा।** बहुराजन्+डाप्। बहुराज्+आ। बहुराजा+सु। बहुराजा।

यहां 'बहुराजन्' शब्द से 'डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्' (४।१।१३) से 'डाप्' प्रत्यय 'वा०-डित्यभस्यापि टेर्लोपः' (६।४।१४३) से टि-भाग (अन्) का लोप होता है। तत्पश्चात् इस सूत्र से 'बहुराजा' शब्द से 'सु' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(१०) **कारीषगन्ध्या।** करीषगन्ध्+इ। करीषगन्धि+अण्। कारीषगन्ध्+अ। कारीषगन्ध। कारीषगन्ध्+ष्यङ्। कारीषगन्ध्य+चाप्। कारीषगन्ध्य+आ। कारीषगन्ध्या+सु। कारीषगन्ध्या।

यहां प्रथम '**करीषस्य गन्ध इव गन्धो यस्य स करीषगन्धिः।** 'गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्यः'-उपमानाच्च (५।४।१३७) से समासान्त इत्-आदेश होता है। **करीषगन्धेरपत्यम्-कारीषगन्धः।** 'तस्यापत्यम्' (४।१।९२) से 'अण्' प्रत्यय और 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। '**अणिञोरनार्षयो०**' (४।१।७८) से स्त्रीलिङ्ग में 'ष्यङ्' आदेश और '**यङश्चाप्**' (४।१।७४) से स्त्रीलिङ्ग में 'चाप्' प्रत्यय होता है। तत्पश्चात् इस सूत्र से 'सु' आदि प्रत्यय होते हैं।

(३) प्रातिपदिक–

(१) देवः। देव+सु। देवः।

*यहां प्रथम कृदन्त 'देव' शब्द की **'कृत्तद्धितसमासाश्च'** (१।२।४६) से प्रातिपदिक संज्ञा और उससे इस सूत्र से 'सु' प्रत्यय होता है। पूर्ववत् रुत्व और विसर्जनीय आदेश होता है।*

*(२) **देवान्।** देव+शस्। देव+अस्। देवा+स्। देवान्।*

*यहां 'देव' शब्द से 'शस्' प्रत्यय, **'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः'** (६।१।१०१) से पूर्व सवर्ण दीर्घ और **'तस्माच्छसो नः पुंसि'** (६।१।१०२) से 'शस्' के 'स्' को 'न्' आदेश होता है।*

*(३) **देवेन।** देव+टा। देव+इन। देवेन।*

*यहां 'देव' शब्द से 'टा' प्रत्यय, **'टाङसिङसामिनात्स्याः'** (७।१।१२) से 'टा' के स्थान में 'इन' आदेश होता है।*

*(४) **देवैः।** देव+भिस्। देव+ऐस्। देवैः।*

*यहां 'देव' शब्द से 'भिस्' प्रत्यय और **'अतो भिस ऐस्'** (७।१।९) से 'भिस्' के स्थान में 'ऐस्' आदेश होता है।*

*(५) **देवाय।** देव+ङे। देव+य। देवाय।*

*यहां 'देव' शब्द से 'ङे' प्रत्यय, **'ङेर्यः'** (७।१।१३) से 'ङे' के स्थान में 'य' आदेश और **'सुपि च'** (७।३।१०२) से अंग को दीर्घ होता है।*

*(६) **देवेभ्यः।** देव+भ्यस्। देवे+भ्यः। देवेभ्यः।*

*यहां 'देव' शब्द से 'भ्यस्' प्रत्यय और **'बहुवचने झल्येत्'** (७।३।१०३) से अंग को 'ए' आदेश होता है।*

*(७) **देवात्।** देव+ङसि। देव+आत्। देवात्।*

यहां 'देव' शब्द से 'ङसि' प्रत्यय और पूर्ववत् (७।१।१२) से 'ङसि' के स्थान में 'आत्' आदेश होता है।

*(८) **देवस्य।** देव+ङस्। देव+स्य। देवस्य।*

यहां 'देव' शब्द से 'ङस्' प्रत्यय और पूर्ववत् (७।१।१२) से 'ङस्' के स्थान में 'स्य' आदेश होता है।

*(९) **देवयोः।** देव+ओस्। देवे+ओः। देवयोः।*

*यहां 'देव' शब्द से 'ओस्' प्रत्यय और **'ओसि च'** (७।३।१०४) से अंग को 'ए' आदेश होता है।*

*(१०) **देवानाम्।** देव+आम्। देव+नुट्+आम्। देव+नाम्। देवानाम्।*

*यहां 'देव' शब्द से 'आम्' प्रत्यय और '**ह्रस्वनद्यापो नुट्**' (७।१।५४) से प्रत्यय को 'नुट्' आगम और '**नामि**' (६।४।३) से अंग को दीर्घत्व होता है।*

*(११) **देवेषु।** देव+सुप्। देवे+सु। देवेषु।*

*यहां 'देव' शब्द से 'सुप्' प्रत्यय और '**बहुवचने झल्येत्**' (७।३।१०३) से अंग को 'ए' आदेश और '**आदेशप्रत्यययोः**' (८।३।५९) से षत्व होता है।*

*(१२) **देव।** देव+सु। देव+०। देव।*

*यहां 'देव' शब्द से 'सु' प्रत्यय और '**एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः**' (६।१।६९) से सम्बुद्धिसंज्ञक 'सु' प्रत्यय का लोप होता है।*

स्त्रीप्रत्ययप्रकरणम्

(१) स्त्रियाम्।३।

प०वि०-स्त्रियाम् ७।१।

अर्थः-इत ऊर्ध्वं वक्ष्यामाणाः प्रत्ययाः स्त्रियां भवन्तीत्यधिकारोऽयम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-इससे आगे कहे जानेवाले प्रत्यय (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में होते हैं, यह '**दैवयज्ञि०**' (४।१।८१) सूत्र तक स्त्रीलिङ्ग का अधिकार है।*

टाप्-प्रत्ययविधिः

(१) अजाद्यष्टाप्।४।

प०वि०-अजादि-अतः ५।१ टाप् १।१।

स०-अज आदिर्येषां ते-अजादयः, अजादयश्च अत् च एतेषां समाहारः-अजाद्यत्, तस्मात्-अजाद्यतः (बहुव्रीहिगर्भितसमाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-स्त्रियामित्यनुवर्तते।

अन्वयः-अजाद्यतः स्त्रियां टाप्।

अर्थः-अजादिभ्योऽकारान्तेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां टाप्-प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(अजादिभ्यः)** अजा। एडका। कोकिला। चटका। अश्वा। **(अतः)** खट्वा। देवदत्ता।

अजा। एडका। चटका। अश्वा। मूषिका इति जातिः। बाला। होढा। पाका। वत्सा। मन्दा। विलाता इति वयः। पूर्वापहाणा। अपरापहाणा,

टित्, निपातनाण्णत्वम्। वा०-सम्भस्त्राजिनशणपिण्डेभ्यः फलात्। सफला। भस्त्रफला। अजिनफला। शणफला। पिण्डफला। त्रिफला-द्विगौ। बहुव्रीहौ-त्रिफली संहतिः। वा०-सत्प्राक्काण्डप्रान्तशतैकेभ्यः पुष्पात्। सत्पुष्पा। प्राक्पुष्पा। **'पाककर्ण०'** (४।१।६४) इति ङीषोऽपवादः। वा०-शूद्रा चामहत्पूर्वा जातिः। क्रुञ्चा। उष्णिहा। देविशा-हलन्ताः। ज्येष्ठा। कनिष्ठा मध्यमा-पुंयोगः। कोकिला-जातिः। वा०-मूलान्नञः। अमूला। इति अजादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अजाद्यतः) अजादिगण में पठित और अकारान्त प्रातिपदिकों से परे (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (टाप्) टाप्-प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(अजादि) अजा।** बकरी। **एडका।** भेड़। **कोकिला।** कोयल। **चटका।** चिड़िया। **अश्वा।** घोड़ी। **(अत्) खट्वा।** खाट। **देवदत्ता।** नामविशेष।*

सिद्धि-(१) अजा। *अज+टाप्। अज+आ। अजा। अजा+सु। अजा।*

यहां 'अज' प्रातिपदिक सूत्र से 'टाप्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् (४।१।२) है। ऐसे ही-एडका आदि।

*(२) **खट्वा।** यहां **'खट काङ्क्षायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से **'अशुप्रुषि०'** (उणा० १।१५१) से क्वन् प्रत्यय है। खट्+क्वन्। खट्व। खट्व+टाप्। खट्वा+सु। खट्वा। अकारान्त 'खट्व' प्रातिपदिक से इस सूत्र से 'टाप्' प्रत्यय है।*

(३) देवदत्ता। पूर्ववत्।

ङीप्-प्रत्ययप्रकरणम्

ङीप्-

(१) ऋन्नेभ्यो ङीप्।५।

प०वि०-ऋत्-नेभ्यः ५।३ ङीप् १।१।

स०-ऋतश्च नाश्च ते-ऋन्नाः, तेभ्यः-ऋन्नेभ्यः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-ऋन्नेभ्यः स्त्रियां ङीप्।

अर्थः-ऋकारान्तेभ्यो नकारान्तेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ङीप्-प्रत्ययो भवति।

उदा०-(ऋत्) कर्त्री। हर्त्री। (नः) दण्डिनी। छत्रिणी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ऋन्नेभ्यः) ऋकारान्त और नकारान्त प्रातिपदिकों से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीप्) ङीप्-प्रत्यय होता है।*

उदा०-(ऋकारान्त) ***कर्त्री।*** *करनेवाली।* ***हर्त्री।*** *हरनेवाली।* ***(नकारान्त) दण्डिनी।*** *दण्डवाली।* ***छत्रिणी।*** *छत्रवाली।*

सिद्धि-(१) ***कर्त्री।*** *यहां ऋकारान्त 'कर्तृ' प्रातिपदिक से इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय होता है।* ***'इको यणचि'*** *(६।१।७४) से 'यण्' आदेश होता है। ऐसे ही-'हर्तृ' शब्द से-* ***हर्त्री।***

(२) ***दण्डिनी।*** *दण्ड+इनि। दण्डिन्+ङीप्। दण्डिनी+सु। दण्डिनी।*

यहां नकारान्त 'दण्डिन्' प्रातिपदिक से इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय है। ऐसे ही छत्रिन् प्रातिपदिक से- ***छत्रिणी।***

ङीप्-

(२) उगितश्च।६।

प०वि०-उगितः ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-उक् इद् यस्य तद् उगित्, तस्मात्-उगितः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-ङीप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-उगितश्च स्त्रियां ङीप्।

अर्थः-उगितः प्रातिपदिकाद् अपि स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-भवती। पचन्ती। यजन्ती।

आर्यभाषाः *अर्थ-(उगितः) 'उक्' इत्वाले प्रातिपदिक से (च) भी (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है।*

उदा०- ***भवती।*** *आप (स्त्री)।* ***पचन्ती।*** *पकाती हुई।* ***यजन्ती।*** *यज्ञ करती हुई।*

सिद्धि-(१) ***भवती।*** *भवतु+ङीप्। भवत्+ई। भवती+सु। भवती।*

यहां सर्वादिगण (१।१।२७) में पठित 'भवतु' प्रातिपदिक के उगित् होने से इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय होता है।

(२) ***पचन्ती।*** *पच्+लट्। पच्+शतृ। पच्+शप्+अत्। पचत्+सु। पचनुम्त्+स्। पचन्त्+०। पचन्त्+ङीप्। पचन्त्+ई। पचन्ती+सु। पचन्ती।*

यहां 'पच्' धातु से 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में ***'लक्षणहेत्वोः क्रियायाः'*** *(३।२।१२४) से 'शतृ' प्रत्यय है। 'शतृ' प्रत्यय के उगित् होने से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र*

से 'ङीप्' प्रत्यय होता है। 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' प्रत्यय, 'उगिदचां०' (७।१।७०) से 'नुम्' आगम होता है। ऐसे ही 'यज' धातु से 'शतृ' प्रत्यय करने पर-यजन्ती।

ङीप्–

(३) वनो र च।७।

प०वि०-वनः ५।१ र १।१ (लुप्तप्रथमानिर्देशः) च अव्ययपदम्।

अनु०-ङीप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-वनः स्त्रियां ङीप् रश्च।

अर्थः-वन्-अन्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति, रेफश्चान्तादेशो भवति।

उदा०-धीवरी। पीवरी। शर्वरी। परलोकदृश्वरी।

आर्यभाषाः अर्थ-*(वनः) वन्-अन्तवाले प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है (च) और (रः) अन्त में र-आदेश होता है।*

*उदा०-**धीवरी।** धीवर (मल्लाह) की स्त्री अथवा मछली रखने की टोकरी, मछली मारने का बर्छा। **पीवरी।** तरुणी। **शर्वरी।** रात्रि। **परलोकदृश्वरी।** परलोक को जाननेवाली।*

*सिद्धि-(१) **धीवरी।** ध्या+क्वनिप्। धी+वन्। धीवन्। धीवर+ई। धीवरी+सु। धीवरी।*

*यहां **'ध्यै चिन्तायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से **'ध्याप्योः सम्प्रसारणं च'** (उणा० ४।११५) से क्वनिप् प्रत्यय और 'ध्या' धातु को सम्प्रसारण होता है। तत्पश्चात् 'धीवन्' प्रातिपदिक से इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय और 'न्' को 'र्' आदेश होता है।*

*(२) **पीवरी।** प्याय्+क्वनिप्। प्या०+वन्। पी+वन्। पीवन्+ङीप्। पीवर्+ई। पीवरी+सु। पीतरी।*

*यहां **'ओप्यायी वृद्धौ'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्वनिप्' प्रत्यय और सम्प्रसारण होता है। तत्पश्चात् 'पीवन्' प्रातिपदिक से इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय होता है और 'न्' को 'र्' आदेश होता है।*

*(३) **शर्वरी।** शॄ+वनिप्। शर्+वन्। शर्वन्+ङीप्। शर्वर्+ई। शर्वरी+सु। शर्वरी।*

*यहां **'शॄ हिंसायाम्'** (क्र्या०प०) धातु से **'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते'** (३।२।७५) से 'वनिप्' प्रत्यय और **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से गुण होता है। इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय और 'वन्' के 'न्' को 'र्' आदेश होता है।*

*(४) **परलोकदृश्वरी।** परलोक+अम्+दृश्+क्वनिप्। परलोक+दृश्+वन्। परलोकदृश्वन्+ङीप्। परलोकदृश्वर्+ई। परलोकदृश्वरी+सु। परलोकदृश्वरी।*

*यहां प्रथम परलोक उपपद होने पर **'दृशिर् प्रेक्षणे'** (भ्वा०प०) धातु से **'दृशेः क्वनिप्'** (३।२।९४) से 'क्वनिप्' प्रत्यय होता है। तत्पश्चात् **'परलोकदृश्वन्'** शब्द से इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय और 'वन्' के 'न्' को 'र्' आदेश होता है।*

ङीप्-विकल्पः–

(४) पादोऽन्यतरस्याम्।८।

प०वि०–पादः ५।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०–ङीप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–पादः स्त्रियाम् अन्यतरस्यां ङीप्।

अर्थः–पादन्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां विकल्पेन ङीप् प्रत्ययो भवति।

उदा०–द्विपात्। द्विपदी। त्रिपात्। त्रिपदी। चतुष्पात्। चतुष्पदी।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(पादः) पाद जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है।*

*उदा०–**द्विपात्। द्विपदी।** दो चरणोंवाली। **त्रिपात्। त्रिपदी।** तीन चरणोंवाली। **चतुष्पात्। चतुष्पदी।** चार चरणोंवाली।*

*सिद्धि–(१) **द्विपात्। द्वौ पादौ यस्याः सा द्विपात्** (बहुव्रीहिः)। यहां **'पादस्य लोपः०'** की अनुवृत्ति में **'संख्यासुपूर्वस्य'** (५।४।१४०) से 'पाद' शब्द के अकार का समासान्त लोप होता है। यहां विकल्प पक्ष में 'ङीप्' प्रत्यय नहीं है।*

*(२) **द्विपदी।** द्विपात्+ङीप्। द्विपत्+ई। द्विपदी+सु। द्विपदी।*

*यहां पूर्ववत् पाद शब्द के अकार का लोप होकर 'द्विपात्' प्रातिपदिक से इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय होता है। **'पादः पत्'** (६।४।१३०) से 'पात्' के स्थान में 'पत्' आदेश होता है। ऐसे ही–**त्रिपात्, त्रिपदी** आदि।*

टाप् (ऋचि)–

(५) टाबृचि।६।

प०वि०–टाप् १।१ ऋचि ७।१।

अनु०–ङीप्, पाद इति चानुवर्तते।

अन्वयः–पादः स्त्रियां टाप् ऋचि।

अर्थः-पादन्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां टाप् प्रत्ययो भवति, ऋचि अभिधेयायाम्।

उदा०-द्विपदा ऋक्। त्रिपदा ऋक्। चतुष्पदा ऋक्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(पादः) पाद जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (टाप्) टाप् प्रत्यय होता है (ऋचि) यदि वहां ऋचा अर्थ वाच्य हो।*

*उदा०-**द्विपदा ऋक्।** दो चरणोंवाली ऋचा। **त्रिपदा ऋक्।** तीन चरणोंवाली ऋचा। **चतुष्पदा ऋक्।** चार चरणोंवाली ऋचा।*

*सिद्धि-**द्विपदा।** द्विपात्+टाप्। द्विपत्+आ। द्विपदा+सु। द्विपदा।*

*यहां पादन्त 'द्विपात्' प्रातिपदिक से, ऋचा अभिधेय में इस सूत्र से 'टाप्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'पाद' के स्थान में 'पत्' आदेश होता है। ऐसे ही-**त्रिपदा, चतुष्पदा।***

स्त्रीप्रत्यय-प्रतिषेधः-

(६) न षट्स्वस्रादिभ्यः।१०।

प०वि०-न अव्ययपदम्। षट्-स्वस्रादिभ्यः ५।३।

स०-स्वसा आदिर्येषां ते स्वस्रादयः। षट् च स्वस्रादयश्च ते-षट्स्वस्रादयः, तेभ्यः-षट्स्वस्रादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अर्थः-षट्-संज्ञकेभ्यः स्वस्रादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां प्रत्ययो न भवति।

उदा०-**(षट्)** पञ्च ब्राह्मण्यः। षट् कुमार्यः। **(स्वस्रादिः)** स्वसा। दुहिता। ननान्दा। याता। माता। तिस्रः। चतस्रः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(षट्स्वस्रादिभ्यः) षट्संज्ञक और स्वसा आदि प्रातिपदिकों से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (न) कोई प्रत्यय नहीं होता है।*

*उदा०-**पञ्च ब्राह्मण्यः।** पांच ब्राह्मणियां। **षट् कुमार्यः।** छः कुमारियां। (स्वस्रादि) **स्वसा।** बहन। **दुहिता।** पुत्री। **ननान्दा।** ननन्द। **याता।** देवराणी-जेठानी। **माता।** जननी। **तिस्रः।** तीन स्त्रियां। **चतस्रः।** चार स्त्रियां।*

*सिद्धि-(१) **पञ्च ब्राह्मण्यः।** पञ्चन्+सु। पञ्च।*

*यहां 'पञ्चन्' शब्द की **'ष्णान्ता षट्'** (१।१।२३) से षट् संज्ञा है। इस सूत्र से यहां स्त्री-प्रत्यय का प्रतिषेध किया गया है। **'षड्भ्यो लुक्'** (७।१।२२) से सु-प्रत्यय का लुक् और **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से 'न्' का लोप होता है। ऐसे ही-**षट् कुमार्यः।***

(२) स्वसा। स्वसृ+सु। स्वस् अनङ्+सु। स्वसान्+सु। स्वसा।

यहां इस सूत्र से स्त्री-प्रत्यय का प्रतिषेध है। 'अनङ् सौ' (७।१।९३) से अनङ् आदेश 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' (६।४।८) से दीर्घ और 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से 'न्' का लोप होता है।

ङीप्-प्रतिषेधः--

(७) मनः।११।

प०वि०-मनः ५।१।

अनु०-ङीप्, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-मनः स्त्रियां ङीप् न।

अर्थः-मन्-अन्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो न भवति।

उदा०-सा दामा। ते दामानौ। ता दामानः। सा पामा। ते पामानौ। ताः पामानः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(मनः) मन् जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीप्) ङीप् प्रत्यय (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**सा दामा।** वह दानशील स्त्री है। **ते दामानौ।** वे दोनों दानशील स्त्रियां हैं। **ता दामानः।** वे सब दानशील स्त्रियां हैं। **सा पामा।** वह सोमपान करनेवाली स्त्री है। **ते पामानौ।** वे दोनों सोमपान करनेवाली स्त्रियां हैं। **ताः पामानः।** वे सब सोमपान करनेवाली स्त्रियां हैं।*

*सिद्धि-(१) **दामा।** दा+मनिन्। दा+मन्। दामन्+सु। दामान्+सु। दामान्+०। दामा।*

*यहां 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से '**आतो मनिन्क्वनिप्वनिपश्च**' (३।२।७४) से मनिन् प्रत्यय है। '**सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ**' (६।४।८) से नकारान्त अंग की उपधा को दीर्घ होता है। '**ऋन्नेभ्यो ङीप्**' (४।१।५) से प्राप्त 'ङीप्' (स्त्री-प्रत्यय) इस सूत्र से नहीं होता है।*

*(२) **पामा।** 'पा पाने' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् मनिन् प्रत्यय और ङीप् प्रत्यय का प्रतिषेध होता है।*

ङीप्-प्रतिषेधः--

(८) अनो बहुव्रीहेः।१२।

प०वि०-अनः ५।१ बहुव्रीहेः ५।१।

अनु०-ङीप्, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अनो बहुव्रीहेः स्त्रियां ङीप् न।

अर्थः-अन्-अन्ताद् बहुव्रीहि-संज्ञकात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो न भवति।

उदा०-शोभनं पर्व यस्याः सा सुपर्वा। सा सुपर्वा। ते सुपर्वाणौ। ताः सुपर्वाणः। शोभनं चर्म यस्याः सा सुचर्मा। ते सुचर्माणौ। ताः सुचर्माणः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अनः) अन् जिसके अन्त में है उस (बहुव्रीहेः) बहुव्रीहि संज्ञावाले प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीप्) ङीप् प्रत्यय (न) नहीं होता है।*

*उदा०-शोभनं पर्व यस्याः सा सुपर्वा। सुन्दर पर्व=पोरीवाली। सा **सुपर्वा।** वह सुन्दर पोरीवाली है। ते **सुपर्वाणौ।** वे दोनों सुन्दर पोरीवाली हैं। ताः **सुपर्वाणः।** वे सब सुन्दर पोरीवाली हैं। शोभनं चर्म यस्याः सा **सुचर्मा।** वह सुन्दर त्वचावाली है। ते **सुचर्माणौ।** वे दोनों सुन्दर त्वचावाली हैं। ताः **सुचर्माणः।** वे सब सुन्दर त्वचावाली हैं।*

*सिद्धि-(१) **सुपर्वा।** सु+पर्वन्+सु। सु+पर्वन्+सु। सुपर्वन्+०। सुपर्वा।*

*यहां बहुव्रीहि-संज्ञक नकारान्त 'पर्वन्' प्रातिपदिक से इस सूत्र से ङीप् प्रत्यय नहीं होता है। '**ऋन्नेभ्यो ङीप्**' (४।१।५) से ङीप् प्रत्यय प्राप्त था।*

*(२) **सुचर्मा।** सु+चर्मन्+सु। सुचर्मा। पूर्ववत्।*

डाप्-विकल्पः—

(६) डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्।१३।

प०वि०-डाप् १।१ उभाभ्याम् ५।२ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अर्थः-उभाभ्याम्=मन्-अन्ताद् अन्-अन्ताच्च बहुव्रीहिसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां विकल्पेन डाप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(मनः) दामा। दामे। दामाः। न च भवति-दामा। दामानौ। दामानः। पामा। पामे। पामाः। न च भवति-पामा। पामानौ। पामानः। (अनः) सुपर्वा। सुपर्वे। सुपर्वाः। न च भवति-सुपर्वा। सुपर्वाणौ। सुपर्वाणः। सुचर्मा। सुचर्मे। सुचर्माः। न च भवति-सुचर्मा। सुचर्माणौ। सुचर्माणः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(उभाभ्याम्) अन्-अन्त और मन्-अन्त बहुव्रीहिसंज्ञावाले प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (डाप्) डाप्-प्रत्यय होता है।*

***उदा०**-संस्कृत भाग में देख लेवें।*

*सिद्धि-(१) **दामा**। दामन्+डाप्। दाम्+आ। दामा+सु। दामा।*

*यहां मन्-अन्त 'दामन्' प्रातिपदिक से इस सूत्र से 'डाप्' प्रत्यय है। प्रत्यय के डित् होने से '**वा०-डित्यभस्यापि टेर्लोपः**' (६।४।१४३) से 'दामन्' के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। विकल्प पक्ष में डाप्-प्रत्यय नहीं होता है-**दामा। दामानौ। दामानः।***

*(२) **सुपर्वा**। सु+पर्वन्+डाप्। सु+पर्वन्+आ। सुपर्वा+सु। सुपर्वा। पूर्ववत्। विकल्प पक्ष में 'डाप्' प्रत्यय नहीं होता है-**सुपर्वा। सुपर्वाणौ। सुपर्वाणः।***

अनुपसर्जन-अधिकारः

(१०) अनुपसर्जनात्।१४।

प०वि०-अनुपसर्जनात्। ५।१।

स०-न उपसर्जनमिति अनुपसर्जनम्, तस्मात्-अनुपसर्जनात् (नञ्तत्पुरुषः)।

अर्थः-यदित ऊर्ध्वं वक्ष्यामः '**अनुपसर्जनात्**' तद् वेदितव्यमित्यधिकारोऽयम्। वक्ष्यति-'**टिड्ढाणञ्०**' (४।१।१५) इति ङीप् प्रत्ययः-कुरुचरी। मद्रचरी। स उपसर्जनान्न भवति-बहुकुरुचरा, बहुमद्रचरा मथुरा। वक्ष्यति-'**जातेस्त्रीविषयादयोपधात्**' (४।१।८३) इति ङीष्-प्रत्ययः-कुक्कुटी। शूकरी। स उपसर्जनान्न भवति-बहुकुक्कुटा, बहुशूकरा मथुरा।

आर्यभाषाः अर्थ**-जो इससे आगे कहेंगे वह प्रत्यय (अनुपसर्गात्) अनुपसर्जन से होता है। यह अधिकार सूत्र है। जैसे 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय कहा है, वह अनुपसर्जन प्रातिपदिक से होता है-**कुरुचरी। मद्रचरी।** वह उपसर्जन प्रातिपदिक से नहीं होता है-**बहुकुरुचरा, बहुमद्रचरा मथुरा।** '**जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्**' (४।१।६३) से ङीष् प्रत्यय कहा है, वह अनुपसर्जन प्रातिपदिक से होता है-**कुक्कुटी। शूकरी।** वह उपसर्जन प्रातिपदिक से नहीं होता है-**बहुकुक्कुटा, बहुशूकरा मथुरा।

*समास-विधायक सूत्रों में जो प्रथमा विभक्ति से निर्दिष्ट सुबन्त है उसकी '**प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्**' (१।२।४३) से उपसर्जन संज्ञा होती है। '**अनेकमन्यपदार्थे**' (२।२।२४) से विहित बहुव्रीहि समास में दोनों पदों की उपसर्जन संज्ञा होती है क्योंकि '**अनेकम्**' पद प्रथमा विभक्ति से निर्दिष्ट है। **बहुकुरुचरा, बहुमद्रचरा।** यहां **बहवो कुरुचरा यस्यां सा बहुकुरुचरा मथुरा।** यहां 'कुरुचर' शब्द बहुव्रीहिसमास में आ जाने से उपसर्जन-संज्ञक है। अतः उससे 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से विहित ङीप् स्त्रीप्रत्यय नहीं होता है, अपितु वह अनुपसर्जन से होता है-**कुरुचरी। मद्रचरी।** ऐसे ही-**बहुकुक्कुटा, बहुशूकरा मथुरा** आदि।*

ङीप्–

(११) टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्-ठक्ठञ्कञ्क्वरपः।१५।

प०वि०–टित्-ढ-अण्-अञ्-द्वयसच्-दघ्नच्-मात्रच्-तयप्-ठक्-ठञ्-कञ्-क्वरपः ५।१।

स०–टिच्च ढश्च अण् च अञ् च द्वयसच् च दघ्नच् च मात्रच् च तयप् च ठक् च ठञ् च कञ् च क्वरप् च एतेषां समाहारः-टित्०क्वरप्, तस्मात्-टित्०क्वरपः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–'**अतः**' (४।१।४) इति सर्वत्रानुवर्तते, तद् यथासम्भवं सम्बध्यते। ङीप्, अनुपसर्जनादिति चानुवर्तते।

अन्वयः–टित्०क्वरपोऽतोऽनुपसर्जनात् स्त्रियां ङीप्।

अर्थः–टित्-आदिभ्योऽदन्तेभ्योऽनुपसर्जनेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति। टापोऽपवादः। **उदाहरणम्**–

	प्रत्ययाः	प्रत्ययान्तपदम्	ङीप्	भाषार्थः
(१)	टित् (टः)	कुरुचरः	कुरुचरी	कुरु देश में विचरण करनेवाली।
		मद्रचरः	मद्रचरी	मद्र देश में विचरण करनेवाली।
(२)	ढः	सौपर्णेयः	सौपर्णेयी	सुपर्णी की पुत्री।
		वैतनेयः	वैनतेयी	विनता की पुत्री।
(३)	अण्	कुम्भकारः	कुम्भकारी	कुम्भ बनानेवाली।
		नगरकारः	नगरकारी	नगर बनानेवाली।
		औपगवः	औपगवी	उपागु की पुत्री।
(४)	अञ्	औत्सः	औत्सी	झरना सम्बन्धिनी धारा।
		औदपानः	औदपानी	जल-पान सम्बन्धिनी धारा।
(५)	द्वयसच्	ऊरुद्वयसम्	ऊरुद्वयसी	कटि-प्रमाणवाली (खाई)।
		जानुद्वयसम्	जानुद्वयसी	घुटना-प्रमाणवाली (खाई)।
(६)	दघ्नच्	ऊरुदघ्नम्	ऊरदघ्नी	कटि-प्रमाणवाली।
		जानुदघ्नम्	जानुदघ्नी	घुटना-प्रमाणवाली।

	प्रत्ययाः	प्रत्ययान्तपदम्	ङीप्	भाषार्थः
(७)	मात्रच्	ऊरुमात्रम्	ऊरुमात्री	कटि-प्रमाणवाली।
		जानुमात्रम्	जानुमात्री	घुटना-प्रमाणवाली।
(८)	तयप्	पञ्चतयम्	पञ्चतयी	पांच अवयवोंवाली (चित्तवृत्ति)।
		दशतयम्	दशतयी	दश अवयवोंवाली (दिशा)।
(९)	ठक्	आक्षिकः	आक्षिकी	पाशों से खेलनेवाली (जुआरिन)।
		शालाकिकः	शालाकिकी	शलाकाओं से खेलनेवाली (जुआरिन)।
(१०)	ठञ्	लावणिकः	लावणिकी	लवण का व्यापार करनेवाली।
(११)	कञ्	यादृशः	यादृशी	जैसी।
		तादृशः	तादृशी	वैसी।
(१२)	क्वरप्	इत्वरः	इत्वरी	घूमनेवाली (घुमक्कड़ नारी)।
		नश्वरः	नश्वरी	नष्ट होनेवाली (सृष्टि)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(टित्०क्वरपः) टित्-प्रत्ययान्त आदि (अतः) अकारान्त (अनुपसर्जनात्) अनुपसर्जन (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिकों से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनके अर्थ संस्कृत भाग में देख लेवें।

सिद्धि-(१) कुरुचरी। *कुरु+सुप्+चर्+ट। कुरुचर+ङीप्। कुरुचर्+ई। कुरुचरी+सु। कुरुचरी।*

यहां 'कुरु' उपपद होने पर ***'चर गतौ'*** *(भ्वा०प०) धातु से* ***'चरेष्टः'*** *(३।२।१६) से 'ट' प्रत्यय है। प्रत्यय के टित् होने से इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय होता है।* ***'यस्येति च'*** *(६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**मद्रचरी।***

(२) ***सौपर्णेयी।*** *सुपर्णी+ढक्। सुपर्ण्+एय। सौपर्णेय+ङीप्। सौपर्णेयी+सु। सौपर्णेयी।*

यहां 'सुपर्णी' शब्द से ***'स्त्रीभ्यो ढक्'*** *(४।१।१२०) से 'ढक्' प्रत्यय और इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**वैनतेयी।***

(३) ***कुम्भकारी।*** *कुम्भ+अम्+कृ+अण्। कुम्भ+कृ+अ। कुम्भकार+ङीप्। कुम्भकारी+सु। कुम्भकारी।*

यहां कुम्भ कर्म उपपद होने पर 'कृ' धातु से ***'कर्मण्यण्'*** *(३।२।१) से 'अण्' प्रत्यय और इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**नगरकारी।***

(४) औपगवी। *उपगु+अण्। औपगो+अ। औपगव+ङीप्। औपगवी+सु। औपगवी।*

यहां 'उपगु' शब्द से **'तस्यापत्यम्'** (४।१।९२) से 'अण्' प्रत्यय, **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि, **'ओर्गुणः'** (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है। इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय होता है।

(५) **औत्सी।** उत्स+अञ्। औत्स+ङीप्। औत्सी+सु। औत्सी।

यहां **'उत्सादिभ्योऽञ्'** (४।१।८६) से 'अञ्' प्रत्यय और इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग 'ङीप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**औदपानी** (उदपान+अञ्)।

(६) **ऊरुद्वयसी।** ऊरु+द्वयसच्। अरुद्वयस+ङीप्। ऊरुद्वयसी+सु। ऊरुद्वयसी।

यहां 'ऊरु' शब्द से **'प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्'** (५।२।३७) से द्वयसच् प्रत्यय और इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**जानुद्वयसी।**

(७) **ऊरुदघ्नी।** ऊरु+दघ्नच्। पूर्ववत्।

(८) **उरुमात्री।** ऊरु+मात्रच्। पूर्ववत्।

(९) **पञ्चतयी।** पञ्च+तयप्। पञ्चतय+ङीप्। पञ्चतयी+सु। पञ्चतयी।

यहां 'पञ्च' शब्द से **'संख्याया अवयवे तयप्'** (५।२।४२) से 'तयप्' प्रत्यय और इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**दशतयी।**

(१०) **आक्षिकी।** अक्ष+ठक्। अक्ष्+इक। आक्षिक+ङीप्। आक्षिकी+सु। आक्षिकी।

यहां **'तेन दीव्यति खनति जयति जितम्'** (४।४।२) से अक्ष शब्द से 'ठक्' प्रत्यय, **'ठस्येकः'** (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश है। इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**शालाकिकी** (शलाका+ठक्+ङीप्)।

(११) **लावणिकी।** लवण+ठञ्। लावण्+इक। लावणिक+ङीप्। लावणिकी+सु। लावणिकी।

यहां 'लवण' शब्द से **'लवणाट्ठञ्'** (४।४।५२) से 'ठञ्' प्रत्यय और इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय है।

(१२) **यादृशी।** यद्+दृश्+कञ्। या+दृश्+अ। यादृश+ङीप्। यादृशी+सु। यादृशी।

यहां 'यद्' शब्द उपपद होने पर 'दृश्' धातु से **'त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ् च'** (३।२।६०) से 'कञ्' प्रत्यय है। **'आ सर्वनाम्नः'** (६।३।९१) से अंग को 'आ' आदेश होता है। इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**तादृशी** (तद्+दृश्+कञ्+ङीप्)।

(१३) **इत्वरी।** इण्+क्वरप्। इ+तुक्+वर। इत्वर+ङीप्। इत्वरी+सु। इत्वरी।

यहां **'इण् गतौ'** (अदा०प०) धातु **'इण्नशजिसर्तिभ्यः क्वरप्'** (३।२।१६३) से क्वरप् प्रत्यय है, **'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्'** (६।१।७१) से 'तुक्' आगम होता है। इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**नश्वरी** (नश्+क्वरप्+ङीप्)।

ङीप्–

(१२) यञश्च।१६।

प०वि०–यञः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–ङीप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–यञोऽतोऽनुपसर्जनात् प्रातिपदिकाच्च स्त्रियां ङीप्।

अर्थः–यञन्ताद् अदन्ताद् अनुपसर्जनात् प्रातिपदिकाच्च स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति।

उदा०–गर्गस्यापत्यं स्त्री–गार्गी। वत्सस्यापत्यं स्त्री–वात्सी।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(यञः) यञ्-प्रत्ययान्त (अतः) अकारान्त (अनुपसर्जनात्) अनुपसर्जन प्रातिपदिक से (च) भी (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है।*

*उदा०–**गर्गस्यापत्यं स्त्री–गार्गी।** गर्ग की पौत्री, उपनिषत्कालीन एक ब्रह्मवादिनी। **वत्सस्यापत्यं स्त्री–वात्सी।** वत्स की पौत्री।*

*सिद्धि–**गार्गी।** गर्ग+यञ्। गार्ग्य+ङीप्। गार्ग्य्+ई। गार्गी+सु। गार्गी।*

*यहां 'गर्ग' शब्द से **'गर्गादिभ्यो यञ्'** (४।१।१०५) से यञ् प्रत्यय और इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अ-लोप और **'हलस्तद्धितस्य'** (६।४।१५०) से 'य' का लोप होता है। ऐसे ही–**वात्सी** (वत्स+यञ्+ङीप्)।*

ष्फः (ङीप्-अपवादः)–

(१३) प्राचां ष्फ तद्धितः।१७।

प०वि०–प्राचाम् ६।३ ष्फ १।१ (सु-लुक्) तद्धितः १।१।

अनु०–ङीप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–यञोऽतोऽनुपसर्जनात् स्त्रियां ष्फस्तद्धितः प्राचाम्।

अर्थः–यञन्ताद् अदन्ताद् अनुपसर्जनात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ष्फः प्रत्ययो भवति, स च तद्धितसंज्ञको भवति, प्राचामाचार्याणां मतेन।

उदा०–गर्गस्य गोत्रापत्यं स्त्री–गार्ग्यायणी (प्राचां मते)। अन्येषां मते–गार्गी। वत्सस्य गोत्रापत्यं स्त्री–वात्स्यायनी (प्राचां मते)। अन्येषां **मते–वात्सी।**

आर्यभाषाः अर्थ-(यञः) यञ्-प्रत्ययान्त (अतः) अकारान्त (अनुपसर्जनात्) अनुपसर्जन प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ष्फः) ष्फ प्रत्यय होता है। (प्राचाम्) प्राग्देशीय आचार्यों के मत में।

उदा०-**गर्गस्य गोत्रापत्यं स्त्री-गार्ग्यायणी।** (प्राग्देशीय आचार्यों के मत में)। अन्यों के मत में-**गार्गी।** गर्ग की पौत्री। **वत्सस्य गोत्रापत्यं स्त्री-वात्स्यायनी** (प्राग्देशीय आचार्यों के मत में)। अन्यों के मत में-**वात्सी।** वत्स की पौत्री।

सिद्धि-(१) **गार्ग्यायणी।** गर्ग+यञ्। गार्ग्य+ष्फ। गार्ग्य्+आयन। गार्ग्यायण+ङीष्। गार्ग्यायणी+सु। गार्ग्यायणी।

यहां प्रथम 'गर्ग' शब्द से **'गर्गादिभ्यो यञ्'** (४।१।१०५) से 'यञ्' प्रत्यय और तत्पश्चात् यञन्त गार्ग्य शब्द से 'ष्फ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'फ्' के स्थान में 'आयन्' आदेश होकर गार्ग्यायण शब्द से **'षिद्गौरादिभ्यश्च'** (४।१।४१) से 'ङीष्' प्रत्यय होता है। **'अट्कुप्वाङ्०'** (८।४।२) से 'णत्व' होता है। ऐसे ही-**वात्स्यायनी।** यह **'यञश्च'** (४।१।१६) से प्राप्त 'ङीप्' प्रत्यय का अपवाद है।

(२) **गार्गी/वात्सी।** पूर्ववत् (४।१।१६)।

यहां 'ष्फ' प्रत्यय का षकार **'षिद्गौरादिभ्यश्च'** (४।१।४१) से 'ङीष्' प्रत्यय के लिए और 'ष्फ' प्रत्यय की तद्धित संज्ञा **'कृत्तद्धितसमासाश्च'** (१।२।४६) से **'गार्ग्यायण'** शब्द की प्रातिपदिक संज्ञा के लिए है।

ष्फः (ङीप्-अपवादः)--

(१४) सर्वत्र लोहितादिकतन्तेभ्यः।१८।

प०वि०-सर्वत्र अव्ययपदम्, लोहितादि-कतन्तेभ्यः ५।३।

स०-लोहत आदिर्येषां ते लोहितादयः, कत अन्ते येषां ते कतन्ताः। लोहितादयश्च कतन्ताश्च ते-लोहितादिकतन्ताः, तेभ्यः-लोहितादिकतन्तेभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-ष्फस्तद्धित इति चानुवर्तते।

अन्वयः-लोहितादिकतन्तेभ्यो यञन्तेभ्यः स्त्रियां ष्फस्तद्धितः सर्वत्र।

अर्थः-लोहितादिभ्यः कतपर्यन्तेभ्यो यञन्तेभ्योऽदन्तेभ्योऽनुपसर्जनेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ष्फः प्रत्ययो भवति, स च तद्धितसंज्ञको भवति, सर्वेषामाचार्याणां मतेन।

उदा०-लोहितस्य गोत्रापत्यं स्त्री-लौहित्यायनी। शंसितस्य गोत्रापत्यं स्त्री-शांसित्यायनी। बभ्रोर्गोत्रापत्यं स्त्री-बाभ्रव्यायणी।

लोहित। संशित। बभ्रु। मण्डु। मक्षु। अलिगु। शङ्कु। लिगु। गुलु। मन्तु। जिगीषु। मनु। तन्तु। मनायी। भूत। कथक। कष। तण्ड। वतण्ड। कपि। कत। इति गर्गाद्यन्तर्गतो लोहितादिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(लोहितादिकन्तेभ्यः) गर्गादिगण के अन्तर्गत लोहित शब्द से लेकर कत शब्द पर्यन्त के (यञः) यञ्-प्रत्ययान्त (अतः) अकारान्त (अनुपसर्जनात्) अनुपसर्जन प्रातिपदिकों से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ष्फः) ष्फ प्रत्यय होता है और उसकी (तद्धितः) तद्धित संज्ञा होती है (सर्वत्र) सब आचार्यों के मत में।*

*उदा०-**लोहितस्य गोत्रापत्यं स्त्री-लौहित्यायनी।** लोहित की पौत्री। **शंसितस्य गोत्रापत्यं स्त्री-शांसित्यायनी।** शंसित की पौत्री। **बभ्रोर्गोत्रापत्यं स्त्री-बाभ्रव्यायणी।** बभ्रु की पौत्री।*

सिद्धि-(१) लौहित्यायनी। *लोहित+यञ्। लौहित्य+ष्फ। लौहित्य्+आयन। लौहित्यायन+ङीष्। लौहित्यायनी+सु। लौहित्यायनी।*

*यहां प्रथम 'लोहित' शब्द से **'गर्गादिभ्यो यञ्'** (४।१।१०५) से यञ् प्रत्यय, यञन्त लौहित्य शब्द से इस सूत्र से 'ष्फ' प्रत्यय है। प्रत्यय के षित् होने से **'षिद्गौरादिभ्यश्च'** (४।१।४१) से 'ङीष्' प्रत्यय होता है। यह **'यञश्च'** (४।१।१६) से प्राप्त 'ङीप्' प्रत्यय का अपवाद है।*

*(२) **शांसित्यायनी।** शंसित+यञ्+ष्फ+ङीष्।*

*(३) **बाभ्रव्यायणी।** बभ्रु+यञ्+ष्फ+ङीष्।*

ष्फः (टाप्-ङीप्-अपवादः)-

(१५) कौरव्यमाण्डूकाभ्यां च।१६।

प०वि०-कौरव्य-माण्डूकाभ्याम् ५।२ च अव्ययपदम्।

स०-कौरव्यश्च माण्डूकश्च तौ-कौरव्यमाण्डूकौ, ताभ्याम्-कौरव्यमाण्डूकाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-ष्फः, तद्धित इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कौरव्यमाण्डूकाभ्यामतोऽनुपसर्जनात् स्त्रियां ष्फस्तद्धितः।

अर्थः-कौरव्य-माण्डूकाभ्यामदन्ताभ्यामनुपसर्जनाभ्यां स्त्रियां ष्फः प्रत्ययो भवति, स च तद्धितसंज्ञको भवति।

उदा०-(**कौरव्यः**) कुरोरपत्यं स्त्री-कौरव्यायणी। (**माण्डूकः**) मण्डूकस्यापत्यं स्त्री-माण्डूकायनी।

***आर्यभाषाः* *अर्थ*-**(*कौरव्यमाण्डूकाभ्याम्*) *कौरव्य और माण्डूक* (*अतः*) *अकारान्त* (*अनुपसर्जनात्*) *अनुपसर्जन प्रातिपदिकों से* (*स्त्रियाम्*) *स्त्रीलिङ्ग में* (*ष्फः*) *'ष्फ' प्रत्यय होता है और उसकी* (*तद्धितः*) *तद्धित संज्ञा होती है।*

उदा०-(कौरव्य) ***कुरोरपत्यं स्त्री-कौरव्यायणी।*** *कुरु की पुत्री। (माण्डूक)* ***मण्डूकस्यापत्यं स्त्री-माण्डूकायनी।*** *माण्डूक ऋषि की पुत्री।*

सिद्धि-(१) कौरव्यायणी। *कुरु+ण्य। कौरो+य। कौरव्य+ष्फ। कौरव्+आयन। कौरव्यायण+ङीष्। कौरव्यायणी+सु। कौरव्यायणी।*

यहां प्रथम 'कुरु' शब्द से अपत्य अर्थ में ***'कुर्वादिभ्यो ण्यः'*** *(४।१।१५१) से 'ण्य' प्रत्यय होता है।* ***'तद्धितेष्वचामादेः'*** *(७।२।११७) से 'कुरु' शब्द को आदिवृद्धि और* ***'ओर्गुणः'*** *(६।४।१४६) से गुण तथा* ***'वान्तो यि प्रत्यये'*** *(६।१।७६) से 'अव्' आदेश होता है। ण्य-प्रत्ययान्त 'कौरव्य' शब्द से इस सूत्र से 'ष्फ' प्रत्यय है। प्रत्यय के षित् होने से* ***'षिद्गौरादिभ्यश्च'*** *(४।१।४१) से 'ङीष्' प्रत्यय होता है। यह* ***'अजाद्यतष्टाप्'*** *(४।१।४) से प्राप्त 'टाप्' प्रत्यय का अपवाद है।*

(२) माण्डूकायनी। *मण्डूक+अण्। माण्डूक+ष्फ। माण्डूक्+आयन। माण्डूकायन+ङीष्। माण्डूकायनी+सु। माण्डूकायनी।*

यहां प्रथम 'मण्डूक' शब्द से ***'ढक् च मण्डूकात्'*** *(४।१।११९) से अपत्य अर्थ में 'अण्' प्रत्यय होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है। अण्-प्रत्ययान्त माण्डूक शब्द से इस सूत्र से 'ष्फ' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ङीष्' प्रत्यय होता है। यह* ***'टिड्ढाणञ्०'*** *(४।१।१५) से प्राप्त 'ङीप्' प्रत्यय का अपवाद है।*

ङीप्-

(१६) वयसि प्रथमे।२०।

प०वि०-वयसि ७।१ प्रथमे ७।१।

अनु०-ष्फ इति निवृत्तम्, ङीप् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-प्रथमे वयसि प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप्।

अर्थः-प्रथमे वयसि श्रुत्या वर्तमानात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-कुमारी। किशोरी। वर्करी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(प्रथमे) प्राथमिक (वयसि) आयु अर्थ में लोकश्रुति से विद्यमान प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**कुमारी।** १० और १२ वर्ष के बीच की आयु की लड़की। अविवाहिता कन्या। **किशोरी।** १२ से १५ वर्ष तक की आयु की लड़की। **वर्करी।** आमोद-प्रमोद करनेवाली लड़की।*

कुमारी-कुमार+ङीप्। कुमार्+ई। कुमारी+सु। कुमारी।

*यहां प्राथमिक आयुवाची 'कुमार' शब्द से इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**किशोरी, वर्करी।***

ङीप्-

(१७) द्विगोः।२१।

वि०-द्विगोः ५।१।

अनु०-ङीप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-द्विगोः प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप्।

अर्थः-द्विगुसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पञ्चानां पूलानां समाहारः-पञ्चपूली। दशानां पूलानां समाहारः-दशपूली।

आर्यभाषाः *अर्थ-(द्विगोः) द्विगु संज्ञावाले प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**पञ्चानां पूलानां समाहारः-पञ्चपूली।** पांच पूलों का समूह। **दशानां पूलानां समाहारः-दशपूली।** दश पूलों का समूह।*

*सिद्धि-**पञ्चपूली।** पञ्चपूल+ङीप्। पञ्चपूल्+ई। पञ्चपूली+सु। पञ्चपूली।*

*यहां **'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च'** (२।१।५०) से द्विगु समास है। **'अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियां भाष्यते'** से वह स्त्रीलिङ्ग में होता है। इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**दशपूली।***

ङीप्-प्रतिषेधः-

(१८) परिमाणबिस्ताचितकम्बल्येभ्यो न तद्धितलुकि।२२।

प०वि०-अपरिमाण-बिस्त-आचित-कम्बल्येभ्यः ५।३ न अव्ययपदम्, तद्धितलुकि ७।१।

स०-न परिमाणमिति अपरिमाणम्। अपरिमाणं च बिस्तश्च आचितश्च कम्बल्यं च तानि-अपरिमाण०कम्बल्यानि, तेभ्यः-अपरिमाण०कम्बल्येभ्यः (नञ्गर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। तद्धितस्य लुक् इति तद्धितलुक्, तस्मिन्-तद्धितलुकि (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-द्विगोः, ङीप् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपरिमाणबिस्ताचितकम्बल्यान्ताद् द्विगोरतोऽनुपसर्जनात् तद्धितलुकि ङीप् न।

अर्थः-अपरिमाणान्ताद् बिस्ताचितकम्बल्यान्ताच्च द्विगुसंज्ञकाद् अदन्ताद् अनुपसर्जनात् प्रातिपदिकात् तद्धितप्रत्ययस्य लुकि सति स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो न भवति।

उदा०-**(अपरिमाणम्)** पञ्चभिरश्वैः क्रीता पञ्चाश्वा। दशाश्वा। द्वे वर्षे भूता इति द्विवर्षा। त्रिवर्षा। द्वाभ्यां शताभ्यां क्रीता इति द्विशता। त्रिशता। **(बिस्तः)** द्वौ बिस्तौ पचतीति द्विबिस्ता। त्रिबिस्ता। **(आचितः)** द्वावाचितौ पचतीति द्व्याचिता। त्र्याचिता। **(कम्बल्यम्)** द्वाभ्यां कम्बल्याभ्यां क्रीता इति द्विकम्बल्या। त्रिकम्बल्या।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपरिमाण०कम्बल्येभ्यः) अपरिमाणवाची, बिस्त, आचित, कम्बल्य शब्द जिसके अन्त में हैं ऐसे (द्विगोः) द्विगु-संज्ञक (अतः) अकारान्त (अनुपसर्जनात्) अनुपसर्जन प्रातिपदिक से (तद्धितलुकि) तद्धित प्रत्यय का लुक् होने पर (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीप्) ङीप् प्रत्यय (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**(अपरिमाणम्) पञ्चभिरश्वैः क्रीता पञ्चाश्वा।** पांच घोड़ों से खरीदी हुई गौ आदि। **दशाश्वा।** दश घोड़ों से खरीदी हुई गौ आदि। **द्वे वर्षे भूता इति द्विवर्षा।** जो दो वर्ष की हो चुकी हो। **त्रिवर्षा।** जो तीन वर्ष की हो चुकी हो। गौ की बछड़ी आदि। **द्वाभ्यां शताभ्यां क्रीता इति द्विशता।** दो सौ कार्षापण (रुपये) से खरीदी हुई गौ आदि। **त्रिशता।** तीन सौ कार्षापण (रुपये) से खरीदी हुई गौ आदि। (बिस्तः) **द्वौ बिस्तौ पचतीति द्विबिस्ता।** दो बिस्त पकानेवाली। **त्रिबिस्ता।** तीन बिस्त पकानेवाली। बिस्त=८० तोला। (आचितः) **द्वावाचितौ पचतीति द्व्याचिता।** दो आचित पकानेवाली। **त्र्याचिता।** तीन आचित पकानेवाली कढ़ाई आदि। आचित=८० हजार तोला (१००० सेर)। **(कम्बल्य) द्वाभ्यां कम्बल्याभ्यां क्रीता इति द्विकम्बल्या।** दो कम्बल्यों से खरीदी हुई। **त्रिकम्बल्या।** तीन कम्बल्यों से खरीदी हुई। कम्बल्य=१०० पल ऊन। पल=एक छटांक।*

सिद्धि-(१) पञ्चाश्वा। पञ्चाश्व+ठक्। पञ्चाश्व+०। पञ्चाश्व+टाप्। पञ्चाश्वा+सु। पञ्चाश्वा।

यहां 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' (२।१।५०) से तद्धितार्थ में द्विगु समास, 'तेन कृतम्' (५।१।३६) से तद्धित 'ठक्' प्रत्यय और 'अध्यर्धपूर्वाद् द्विगोर्लुगसंज्ञायाम्' (५।१।२८) से 'ठक्' प्रत्यय का लुक् होता है। इस तद्धित प्रत्यय के लुक् होने पर इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय का प्रतिषेध है। अतः 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**दशाश्वा।**

(२) **द्विवर्षा।** द्विवर्ष+ठक्। द्विवर्ष+०। द्विवर्ष+टाप्। द्विवर्षा+सु। द्विवर्षा।

यहां पूर्ववत् द्विगु समास, 'तमधीष्टो भृतो भूतो भावी' (५।१।७९) से 'ठक्' प्रत्यय और 'वर्षाल्लुक्' (५।१।८७) से 'ठक्' प्रत्यय का लुक् है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे-**त्रिवर्षा।**

(३) **द्विशता।** द्विशत+यत्। द्विशत+०। द्विशत्+टाप्। द्विशता+सु। द्विशता।

यहां पूर्ववत् द्विगु समास, 'शाणाद् वा'-वा०-'शताच्चेति वक्तव्यम्' (५।१।३५) से 'यत्' प्रत्यय और 'अध्यर्धपूर्वाद्०' (५।१।२८) से 'यत्' प्रत्यय का लुक् होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**त्रिशता।**

(४) **द्विबिस्ता।** द्विबिस्त+ठक्। द्विबिस्त+०। द्विबिस्त+टाप्। द्विबिस्ता+सु। द्विबिस्ता।

यहां पूर्ववत् द्विगु समास, 'सम्भवत्यवहरति पचति' (५।१।५१) से 'ठक्' प्रत्यय और पूर्ववत् उसका लुक् होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**त्रिबिस्ता।**

(५) **द्व्याचिता।** द्व्याचित+ष्ठन्। द्व्याचित+०। द्व्याचित+टाप्। द्व्याचिता+सु। द्व्याचिता।

यहां पूर्ववत् द्विगु समास, 'आढकाचितपात्रात् खोऽन्यतरस्याम्' (५।१।५२) की अनुवृत्ति में 'द्विगोः ष्ठंश्च' (५।१।५३) से 'ष्ठन्' प्रत्यय और पूर्ववत् उसका लुक् होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**त्र्याचिता।**

(६) **द्विकम्बल्या।** द्विकम्बल्य+ठक्। द्विकम्बल्य+०। द्विकम्बल्य+टाप्। द्विकम्बल्या+सु। द्विकम्बल्या।

यहां सब कार्य 'पञ्चाश्वा' (१) के समान है। ऐसे ही-**त्रिकम्बल्या।**

कम्बल्य शब्द में 'कम्बलाच्च संज्ञायाम्' (५।१।३) से 'यत्' प्रत्यय है। कम्बल+यत्। कम्बल्यम्। यह १०० पल (छटांक) ऊन की संज्ञा है।

ङीप्-प्रतिषेधः-

(१६) काण्डान्तात् क्षेत्रे।२३।

प०वि०-काण्डान्तात् ५।१ क्षेत्रे ७।१।

स०-काण्डम् अन्ते यस्य तत्-काण्डान्तम्, तस्मात्-काण्डान्तात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-ङीप्, द्विगोः, न, तद्धितलुकि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-काण्डान्ताद् द्विगोरतोऽनुपसर्जनात् तद्धितलुकि स्त्रियां ङीप् न क्षेत्रे।

अर्थः-काण्डान्ताद् द्विगुसंज्ञकाद् अदन्ताद् अनुपसर्जनात् प्रातिपदिकात् तद्धित- प्रत्ययस्य लुकि सति स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो न भवति क्षेत्रेऽभिधेये।

उदा०-द्वे काण्डे प्रमाणं यस्याः सा द्विकाण्डा क्षेत्रभक्तिः। त्रिकाण्डा क्षेत्रभक्तिः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(काण्डान्तात्) काण्ड शब्द जिसके अन्त में है ऐसे (द्विगोः) द्विगुसंज्ञक (अतः) अकारान्त (अनुपसर्जनात्) अनुपसर्जन प्रातिपदिक से (तद्धितलुकि) तद्धित प्रत्यय का लुक् हो जाने पर (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीप्) ङीप् प्रत्यय (न) नहीं होता है (क्षेत्रे) यदि वहां क्षेत्र=खेत वाच्यार्थ हो।*

*उदा०-**द्वे काण्डे प्रमाणं यस्याः सा द्विकाण्डा क्षेत्रभक्तिः।** दो काण्ड प्रमाणवाली क्यारी। **त्रिकाण्डा क्षेत्रभक्तिः।** तीन काण्ड प्रमाणवाली क्यारी। 'काण्ड' खेत को मापने का डंडा होता है। काण्डम्=मानदण्डः। काण्ड=८ हाथ।*

सिद्धि-(१) द्विकाण्डा। *द्विकाण्ड+द्वयसच्। द्विकाण्ड+०। द्विकाण्ड+टाप्। द्विकाण्डा+सु। द्विकाण्डा।*

*यहां पूर्ववत् द्विगुसमास, **'प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः'** (५।२।३७) से 'द्वयसच्' प्रत्यय, वा-**'प्रमाणे लो वक्तव्यः'** (५।२।३७) से प्रत्यय का लुक् होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**त्रिकाण्डा।***

ङीप्-विकल्पः-

(२०) पुरुषात् प्रमाणेऽन्यतरस्याम्।२४।

प०वि०-पुरुषात् ५।१ प्रमाणे ७।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०-ङीप्, द्विगोः, तद्धितलुकि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-प्रमाणे पुरुषात् द्विगोस्तद्धितलुकि स्त्रियाम् अन्यतरस्यां ङीप्।

अर्थः-प्रमाणेऽर्थे वर्तमानात् पुरुषान्ताद् द्विगुसंज्ञकाद् अदन्ताद् अनुपसर्जनात् प्रातिपदिकात् तद्धितप्रत्ययस्य लुकि सति स्त्रियां विकल्पेन ङीप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-द्वौ पुरुषौ प्रमाणं यस्याः सा-द्विपुरुषा परिखा, द्विपुरुषी परिखा। त्रिपुरुषा परिखा, त्रिपुरुषी परिखा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(प्रमाणे) प्रमाण अर्थ में विद्यमान (पुरुषात्) पुरुष शब्द जिसके अन्त में है उस (द्विगोः) द्विगुसंज्ञक (अतः) अकारान्त (अनुपसर्जनात्) अनुपसर्जन प्रातिपदिक से (तद्धितलुकि) तद्धित प्रत्यय का लुक् हो जाने पर (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**द्वौ पुरुषौ प्रमाणं यस्याः सा-द्विपुरुषा परिखा, द्विपुरुषी परिखा।** दो पुरुष माप वाली खाई। **त्रिपुरुषा परिखा, त्रिपुरुषी परिखा।** तीन पुरुष मापवाली खाई। पुरुष=१२० अंगुल।*

***सिद्धि-द्विपुरुषा**-द्विपुरुष+द्वयसच्। द्विपुरुष+०। द्विपुरुष+टाप्। द्विपुरुषा+सु। द्विपुरुषा।*

*यहां सब कार्य 'त्रिकाण्डा' (४।१।२३) के समान है। विकल्प पक्ष में 'ङीप्' प्रत्यय होता है-**द्विपुरुषी।** ऐसे ही-**त्रिपुरुषा, त्रिपुरुषी।***

ङीष्-

(२१) बहुव्रीहेरूधसो ङीष्।२५।

प०वि०-बहुव्रीहेः ५।१ ऊधसः ५।१ ङीष् १।१।

अनु०-द्विगोरिति निवृत्तम्।

अन्वयः-ऊधसो बहुव्रीहेः स्त्रियां ङीष्।

अर्थः-ऊधःशब्दान्ताद् बहुव्रीहिसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति।

उदा०-घट इव ऊधो यस्याः सा-घटोध्नी गौः। कुण्डमिव ऊधो यस्याः सा-कुण्डोध्नी गौः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ऊधसः) ऊध शब्द जिसके अन्त में है उस (बहुव्रीहेः) बहुव्रीहि संज्ञक प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीष्) ङीष् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**घट इव ऊधो यस्याः सा-घटोध्नी गौः।** घड़े के समान ऊधवाली गौ। **कुण्डमिव ऊधो यस्याः सा-कुण्डोध्नी गौः।** कुण्डा के समान ऊधवाली गौ। ऊधः=बांक (दुग्धाधार)।*

*सिद्धि-**घटोध्नी**। घट+ऊधस्। घटोधस्+ङीप्। घटोध अनङ्+ई। घटोधन्+ई। घटोध्नी+सु। घटोध्नी।*

*यहां बहुव्रीहि समास में प्रथम 'ऊधसोऽनङ्' (५।४।१३१) से समासान्त 'अनङ्' आदेश होता है। '**अतो गुणे**' (६।४।९४) से पररूप एकादेश और '**अल्लोपोऽनः**' (६।४।१३४) से 'अ' लोप होता है। यहां '**अनो बहुव्रीहेः**' (४।१।१२) से ङीप् प्रत्यय का प्रतिषेध और 'डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्' (४।१।१३) से 'डाप्' प्रत्यय प्राप्त था। यह सूत्र उन दोनों का अपवाद है। ऐसे ही-**कुण्डोध्नी**।*

ङीप्–

(२२) संख्याव्ययादेर्ङीप्।२६।

प०वि०-संख्या-अव्ययादेः ५।१। ङीप् १।१।

स०-संख्या च अव्ययं च ते-संख्याव्यये, संख्याव्यये आदिनी यस्य सः-संख्याव्ययादिः, तस्मात्-संख्याव्ययादेः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-बहुव्रीहेः, ऊधस इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संख्याव्ययादेरुधसो बहुव्रीहेः स्त्रियां ङीप्।

अर्थः-संख्यादेरव्ययादेश्च ऊधः-शब्दान्ताद् बहुव्रीहिसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति। पूर्वसूत्रस्यायमपवादः।

उदा०-**(संख्यादिः)** द्वे ऊधसी यस्याः सा-द्व्यूध्नी गौः। त्रीणि ऊधांसि यस्याः सा-त्र्यूध्नी गौः। **(अव्ययादिः)** अभिगतमूधो यस्याः सा-अभ्यूध्नी गौः। निर्गतमूधो यस्याः सा-निरूध्नी गौः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संख्याव्ययादेः) संख्यावाची तथा अव्ययसंज्ञक शब्द जिसके आदि में हैं उस (बहुव्रीहेः) बहुव्रीहि समास वाले (ऊधसः) ऊधः शब्दान्तवाले प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है। यह पूर्वसूत्र का अपवाद है।*

*उदा०-(संख्यादिः) **द्वे ऊधसी यस्याः सा-द्व्यूध्नी गौः**। द्विगुणित ऊधवाली गौ। **त्रीणि ऊधांसि यस्याः सा-त्र्यूध्नी गौः**। त्रिगुणित ऊधवाली गौ। (अव्ययादिः) **अभिगतमूधो यस्याः सा-अभ्यूध्नी गौ**। अभिमुख=प्रकट ऊधवाली गौ। **निर्गतमूधो यस्याः सा-निरूध्नी गौः**। ऊधरहित गौ।*

*सिद्धि-**द्व्यूध्नी**। द्वि+ऊधस्। द्व्यूध अनङ्+ङीप्। द्व्यूधन्+ई। द्व्यूध्नी+सु। द्व्यूध्नी। यहां सब कार्य '**घटोध्नी**' (४।१।२४) के समान है। ऐसे ही-**त्र्यूध्नी** आदि।*

विशेषः स्वर-ङीप् और ङीष् प्रत्यय का पृथक् विधान इसलिये किया गया है कि ङीप् प्रत्यय के पित् होने से 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' (३।१।४) से अनुदात्त स्वर होता है और ङीष् प्रत्यय का 'आद्युदात्तश्च' (३।१।३) से आद्युदात्त स्वर होता है।

ङीप्-

(२३) दामहायनान्ताच्च।२७।

प०वि०-दाम-हायनान्तात् ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-दाम च हायनश्च तौ दामहायनौ, दामहायनावन्ते यस्य तत्-दामहायनान्तम्, तस्मात्-दामहायनान्तात् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-संख्यादेः, बहुव्रीहेः, ङीप् इति चानुवर्तते, अव्ययादेरिति च नानुवर्तते, स्वरितत्वाभावात्।

अन्वयः-संख्यादेर्दामहायनान्ताच्च बहुव्रीहेः स्त्रियां ङीप्।

अर्थः-संख्यादेर्दामन्ताद् हायनान्ताच्च बहुव्रीहिसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(दाम)** द्वे दामनी यस्याः सा-द्विदाम्नी गर्दभी। त्रीणि दामानि यस्याः सा-त्रिदाम्नी गर्दभी। **(हायनः)** द्वौ हायनौ यस्याः सा द्विहायनी। त्रीणि हायनानि यस्याः सा त्रिहायनी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संख्यादेः) संख्यावाची शब्द जिसके आदि में है तथा (दामहायनान्तात्) दाम और हायन शब्द जिसके अन्त में है उस (बहुव्रीहेः) बहुव्रीहि-संज्ञक प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(दाम) **द्वे दामनी यस्याः सा-द्विदाम्नी गर्दभी।** दो बन्धनोंवाली रासभी। **त्रीणि दामानि यस्याः सा-त्रिदाम्नी गर्दभी।** तीन बन्धनोंवाली वैशाखनन्दिनी। (हायनः) **द्वौ हायनौ यस्याः सा द्विहायनी।** दो वर्ष की आयुवाली गौ आदि। **त्रीणि हायनानि यस्याः सा त्रिहायनी।** तीन वर्ष की आयुवाली गौ आदि।*

*सिद्धि-(१) **द्विदाम्नी।** द्वि+दामन्+ङीप्। द्विदाम्न्+ई। द्विदाम्नी+सु। द्विदाम्नी।*

*यहां 'अल्लोपोऽनः' (६।४।१३४) से 'अ' लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**त्रिदाम्नी।***

*(२) **द्विहायनी।** द्वि+हायन। द्विहायन+ङीप्। द्विहायनी+सु। द्विहायनी। पूर्ववत्।*

ङीप्-विकल्पः--

(२४) अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम्।२८।

प०वि०-अनः ५।१ उपधालोपिनः ५।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-उपधाया लोप इति उपधालोपः (षष्ठीतत्पुरुषः)। उपधालोपोऽस्यास्तीति उपधालोपी, तस्मात्-उपधालोपिनः। **'अत इनिठनौ'** (५।२।११५) इति इनिः प्रत्ययः।

अनु०-ङीप्, बहुव्रीहेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-उपधालोपिनोऽनो बहुव्रीहेः स्त्रियामन्यतरस्यां ङीप्।

अर्थः-उपधालोपिनोऽन्-अन्ताद् बहुव्रीहिसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां विकल्पेन ङीप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(ङीप्) बहवो राजानो यस्यां सा-बहुराज्ञी सभा। (डाप्) बहवो राजानो यस्यां सा-बहुराजा सभा। (डाप्-ङीप्-प्रतिषेधः)। बहवो राजानो यस्यां सा-बहुराजा, बहुराजानौ, बहुराजानः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(उपधालोपिनः) उपधा लोपवाले (अनः) जिसके अन्त में अन् है उस (बहुव्रीहेः) बहुव्रीहिसंज्ञक प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(ङीप्) **बहवो राजानो यस्यां सा-बहुराज्ञी सभा।** बहुत राजाओंवाली सभा। (डाप्) **बहवो राजानो यस्यां सा-बहुराजा सभा।** अर्थ पूर्ववत्। (डाप् और ङीप् का प्रतिषेध) **बहवो राजानो यस्यां सा-बहुराजा, बहुराजानौ, बहुराजानः।** अर्थ पूर्ववत्।*

*सिद्धि-(१) **बहुराज्ञी।** बहु+राजन्। बहुराजन्+ङीप्। बहुराज्न्+ई। बहुराज्ञ्+ई। बहुराज्ञी+सु। बहुराज्ञी।*

*यहां इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय है। **'अल्लोपोऽनः'** (६।४।१३४) से अ-लोप होता है। **'स्तोः श्चुना श्चुः'** (८।४।३९) से 'न्' को चवर्ग 'ञ्' होता है।*

*(२) **बहुराजा।** बहु+राजन्। बहुराजन्+डाप्। बहुराज्+आ। बहुराजा+सु। बहुराजा।*

*यहां विकल्प पक्ष में **'डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्'** (४।१।१३) से 'डाप्' प्रत्यय है। प्रत्यय के डित् होने से वा०- **'डित्यभस्यापि टेर्लोपः'** (६।४।१४३) से 'राजन्' के टिभाग (अन्) का लोप होता है।*

(३) बहुराजा। बहु+राजन्। बहुराजन्+सु। बहुराजान्+सु। बहुराजान्+०। बहुराजा०+०। बहुराजा।

यहां 'अनो बहुव्रीहे:' (४।१।१२) से स्त्री प्रत्यय के प्रतिषेध पक्ष में कोई प्रत्यय नहीं है। 'सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ' (६।१।८) से उपधा-दीर्घ, 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०' (६।१।६६) से सु-लोप और 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से न-लोप होता है।

विशेष-यहां उपधालोपी, अन्-अन्त, बहुव्रीहि समासवाले प्रातिपदिक से विकल्प से 'ङीप्' प्रत्यय का विधान किया है। अतः 'ङीप्' के पश्चात् 'डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्' (४।१।१३) से विकल्प पक्ष में 'डाप्' प्रत्यय होता है। 'डाप्' प्रत्यय का विकल्प से विधान होने से पक्ष में 'अनो बहुव्रीहे:' (४।१।१२) से कोई स्त्री प्रत्यय नहीं होता है। अतः यहां उपरिलिखित तीन रूप बनते हैं।

नित्यं ङीप्--

(२५) नित्यं संज्ञाछन्दसोः।२६।

प०वि०-नित्यम् १।१ संज्ञा-छन्दसोः ७।२।

स०-संज्ञा च छन्दश्च ते-संज्ञाछन्दसी, तयोः-संज्ञाछन्दसोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-ङीप्, अनः, उपधालोपिनः, बहुव्रीहेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संज्ञाछन्दसोरुपधालोपिनोऽनो बहुव्रीहेः स्त्रियां नित्यं ङीप्।

अर्थः-संज्ञायां छन्दसि च विषये उपधालोपिनोऽन्-अन्ताद् बहुव्रीहिसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां नित्यं ङीप् प्रत्ययो भवति। पूर्वविकल्पस्यापवादः।

उदा०-**(संज्ञा)** सुराज्ञी/अतिराज्ञी नाम ग्रामः। **(छन्दः)** गौः पञ्चदाम्नी। एकदाम्नी। द्विदाम्नी। एकमूर्ध्नी (शौ०सं० ८।९।१५)। समानमूर्ध्नी (तै०सं० ४।३।११।४)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संज्ञाछन्दसोः) संज्ञा और छन्द विषय में (उपधालोपिनः) उपधालोपवाले (अनः) अन् जिसके अन्त में है उस (बहुव्रीहेः) बहुव्रीहि संज्ञक प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (नित्यम्) सदा (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है। यह पूर्वविहित विकल्प का अपवाद है।*

*उदा०-(संज्ञा) सुराज्ञी/अतिराज्ञी नाम ग्रामः। (छन्दः) गौः **पञ्चदाम्नी**। पांच दाम=बन्धनोंवाली गौ। **एकदाम्नी**। एक बन्धनवाली गौ। **द्विदाम्नी**। दो बन्धनोंवाली गौ। **एकमूर्ध्नी**। एक मूर्धावाली गौ। **समानमूर्ध्नी**। तुल्य मूर्धावाली गौ।*

*सिद्धि-(१) **सुराज्ञी**। सु+राजन्। सुराजन्+ङीप्। सुराज्न्+ई। सुराज्ञ्+ई। सुराज्ञी+सु। सुराज्ञी।*

*यहां सब कार्य बहुराज्ञी (४।१।२८) के समान है। ऐसे ही-**अतिराज्ञी**।*

*(२) **पञ्चदाम्नी**। इसकी सिद्धि द्विदाम्नी (४।१।२८) के समान है।*

*(३) **एकमूर्ध्नी**। एक+मूर्धन्। एकमूर्धन्+ङीप्। एकमूर्ध्न्+ई। एकमूर्ध्नी+सु। एकमूर्ध्नी। पूर्ववत्।*

नित्यं ङीप्-

(२६) केवलमामकभागधेयपापापरसमानार्यकृत-सुमङ्गलभेषजाच्च।३०।

प०वि०-केवल-मामक-भागधेय-पाप-अपर-समान-आर्यकृत-सुमङ्गल-भेषजात् ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-केवलश्च मामकश्च भागधेयश्च पापश्च अपरश्च समानश्च आर्यकृतश्च सुमङ्गलश्च भेषजं च एतेषां समाहारः-केवल०भेषजम्, तस्मात्-केवल०भेषजात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-ङीप्, नित्यम्, संज्ञाछन्दसोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संज्ञाछन्दसोः केवल०भेषजाच्च स्त्रियां नित्यं ङीप्।

अर्थः-संज्ञायां छन्दसि च विषये केवलादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपि स्त्रियां नित्यं ङीप् प्रत्ययो भवति। **उदाहरणम्-**

	प्रातिपदिकम्	संज्ञायाम्	छन्दसि	भाषायाम्	भाषार्थः
(१)	केवलः	केवली	केवली (पै०सं० १६।२०।१)	केवला	अकेली।
(२)	मामकः	मामकी	मामकी (पै०सं० ६।६।८)	मामिका	मेरी।
(३)	भागधेयः	भागधेयी	भागधेयी (तै०सं० १।३।१२।१)	भागधेया	भागवाली।

	प्रातिपदिकम्	संज्ञायाम्	छन्दसि	भाषायाम्	भाषार्थः
(४)	पापः	पापी	पापी (मै०सं० ४ ।२ ।१४)	पापा	पापिन।
(५)	अपरः	अपरी	अपरी (ऋ० १ ।३२ ।१३)	अपरा	दूसरी।
(६)	समानः	समानी	समानी (ऋ० १० ।१९१ ।३)	समाना	समान (एक)।
(७)	आर्यकृतः	आर्यकृती	आर्यकृती (मै०सं० १ ।८ ।३)	आर्यकृता	आर्य के द्वारा बनाई हुई।
(८)	सुमङ्गलम्	सुमङ्गली	सुमङ्गली (ऋ० १० ।८५ ।३३)	सुमङ्गला	श्रेष्ठ मङ्गलवाली।
(९)	भेषजम्	भेषजी	भेषजी (तै०सं० ४ ।५ ।१० ।१)	भेषजा	भिषक् (वैद्य) सम्बन्धिनी।

आर्यभाषाः अर्थ- *(संज्ञाछन्दसोः) संज्ञा और छन्द विषय में (केवल०भेषजात्) केवल, मामक, भागधेय, पाप, अपर, समान, आर्यकृत, सुमङ्गल भेषज प्रातिपदिकों से (च) भी (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (नित्यम्) सदा (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनके अर्थ संस्कृत भाग में देख लेवें।

सिद्धि-(१) केवली। *केवल+ङीप्। केवल्+ई। केवली+सु। केवली।*

यहां 'केवल' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय और ***'यस्येति च'*** *(६ ।४ ।१४८) से अ-लोप होता है।*

(२) केवला। *केवल+टाप्। केवल्+आ। केवला+सु। केवला।*

संज्ञा और छन्द से अन्यत्र भाषा में ***'अजाद्यतष्टाप्'*** *(४ ।१ ।४) से टाप् प्रत्यय होता है।*

(३) मामकी। *अस्मद्+अण्। ममक+अ। मामक+ङीप्। मामकी+सु। मामकी।*

यहां प्रथम ***'युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च'*** *(४ ।३ ।१) से अस्मद् शब्द से 'अण्' प्रत्यय और* ***'तवकममकावेकवचने'*** *(४ ।३ ।३) से उसके स्थान में ममक आदेश होता है। तत्पश्चात् अण्-प्रत्ययान्त 'मामक' शब्द से इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय है।*

(४) मामिका। *यहां 'वा०-* ***'मामकनरकयोरुपसंख्यानम्'*** *(७ ।३ ।४४) से क से पूर्व वर्ण को इ-आदेश होता है।*

(५) भागधेयी। *भाग+धेय। भागधेय+ङीप्। भागधेयी+सु।* ***भागधेयी।***

यहां पुलिङ्ग भाग शब्द से स्वार्थ में धेय प्रत्यय है। उससे स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय होता है।

*(६) **पापी।** पाप+ङीप्। पापी+सु। पापी।*

यहां 'पाप' शब्द अभेद-उपचार से 'पापी' अर्थ में है। उससे स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय है।

*(७) **अपरी।** अपर+ङीप्। अपरी+सु। अपरी। पूर्ववत्।*

*(८) **समानी।** समान+ङीप्। समानी+सु। समानी। पूर्ववत्।*

*(९) **आर्यकृती।** आर्य+टा+कृत+सु। आर्यकृत+ङीप्। आर्यकृती+सु। आर्यकृती।*

*(१०) **सुमङ्गल।** सुमङ्गल+ङीप्। सुमङ्गली+सु। सुमङ्गली।*

(११) **भेषजी।** भिषज्+अण्। भेषज+ङीप्। भेषजी+सु। भेषजी।

*यहां प्रथम 'भिषज्' शब्द से '**तस्येदम्**' (४।३।१२०) से 'अण्' प्रत्यय है। '**तद्धितेष्वचामादेः**' (६।२।११७) से प्राप्त आदिवृद्धि इसी निपातन से नहीं होती है, अपितु एकार-आदेश होता है। तत्पश्चात् 'भेषज' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय होता है।*

ङीप्–

(२७) रात्रेश्चाजसौ।३१।

प०वि०–रात्रेः ५।१ च अव्ययपदम्, अजसौ ७।१।

स०–न जसिरिति अजसिः, तस्मिन्-अजसौ (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–ङीप्, संज्ञाछन्दसोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–संज्ञाछन्दसो रात्रेश्च स्त्रियां ङीप् अजसौ।

अर्थः–संज्ञायां छन्दसि च विषये रात्रिशब्दात् प्रातिपदिकादपि स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति, जसि परतस्तु न भवति।

उदा०–(संज्ञा) या च रात्री सृष्टा। (छन्दः) रात्रीभिः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संज्ञाछन्दसोः) संज्ञा और छन्द विषय में (रात्रेः) रात्रि प्रातिपदिक से (च) भी (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है (अजसौ) जस् प्रत्यय परे होने पर तो नहीं होता।*

*उदा०-(संज्ञा) **या च रात्री सृष्टा।** और जो यह रात्री बनाई है। (छन्दः) **रात्रीभिः।** रात्रियों के द्वारा।*

सिद्धि-(१) रात्री। रात्रि+ङीप्। रात्र्+ई। रात्री+सु। रात्री।

यहां प्रथमा विभक्ति के एकवचन में 'रात्रि' शब्द से इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से रात्रि शब्द के इकार का लोप होता है।

ङीप् (नुक)–

(२८) अन्तर्वत्पतिवतोर्नुक्।३२।

प०वि०–अन्तर्वत्-पतिवतोः ६।२ नुक् १।१।

स०–अन्तर्वच्च पतिवच्च तौ–अन्तर्वत्पतिवतौ, तयोः– अन्तर्वत्-पतिवतोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–ङीप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अन्तर्वत्पतिवतोः स्त्रियां ङीप् नुक् च।

अर्थः–अन्तर्वत्पतिवद्भ्यां प्रातिपदिकाभ्यां स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति, तयोश्च नुक्-आगमो भवति।

उदा०–(**अन्तर्वत्**) अन्तर्वत्नी। (**पतिवत्**) पतिवत्नी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अन्तर्वत्पतिवतोः) अन्तर्वत् और पतिवत् प्रातिपदिकों से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है और उन दोनों को (नुक्) नुक् आगम होता है।*

*उदा०-(अन्तर्वत्) **अन्तर्वत्नी**। गर्भिणी। (पतिवत्) **पतिवत्नी**। जीवितभर्तृका नारी।*

*सिद्धि-(१) **अन्तर्वत्नी**। अन्तर्वत्+ङीप्। अन्तर्वत्+नुक्+ई। अन्तर्वत्नी+सु। अन्तर्वत्नी।*

यहां 'अन्तर्वत्' प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय और प्रातिपदिक को नुक् आगम होता है।

*(२) **पतिवत्नी**। पूर्ववत्।*

ङीप् (नः)–

(२९) पत्युर्नो यज्ञसंयोगे।३३।

प०वि०–पत्युः ६।१ नः १।१ यज्ञसंयोगे ७।१।

स०–यज्ञेन संयोग इति यज्ञसंयोगः, तस्मिन्–यज्ञसंयोगे (तृतीया-तत्पुरुषः)।

अनु०-ङीप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-यज्ञसंयोगे पत्युः स्त्रियां ङीप् नश्च।

अर्थः-यज्ञसंयोगे सति पतिशब्दात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति, तस्य चान्ते नकारादेशो भवति।

उदा०-यजमानस्य पत्नी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(यज्ञसंयोगे) यज्ञ के साथ संयोग होने पर (पत्युः) पति प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है (नः) और पति शब्द के अन्त में नकार आदेश होता है।*

*उदा०-**यजमानस्य पत्नी।** यजमान की धर्मपत्नी।*

सिद्धि-पत्नी। *पति+ङीप्। पत् नुक्+ई। पत्नी+सु। पत्नी।*

यहां 'पति' शब्द से 'ङीप्' प्रत्यय और उसे इस सूत्र से नकार आदेश है।

ङीप्-विकल्पः-

(३०) विभाषा सपूर्वस्य।३४।

प०वि०-विभाषा १।१ सपूर्वस्य ६।१।

स०-पूर्वेण सह इति सपूर्वः, तस्य-सपूर्वस्य (बहुव्रीहिः)।

अनु०-ङीप्, पत्युः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सपूर्वस्य पत्युः स्त्रियां विभाषा ङीप् नश्च।

अर्थः-सपूर्वात् पति-प्रातिपदिकात् स्त्रियां विकल्पेन ङीप् प्रत्ययो भवति, तस्य चान्ते नकारादेशो भवति।

उदा०-वृद्धः पतिर्यस्याः सा-वृद्धपत्नी, वृद्धपतिः। स्थूलः पतिर्यस्याः सा-स्थूलपत्नी, स्थूलपतिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सपूर्वस्य) जिसके पूर्व कोई शब्द विद्यमान है उस (पत्युः) पति प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (विभाषा) विकल्प से (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है (नः) और पति शब्द के अन्त में नकार आदेश होता है।*

*उदा०-**वृद्धः पतिर्यस्याः सा-वृद्धपत्नी, वृद्धपतिः।** वृद्ध है पति जिसका वह-वृद्धपत्नी, वृद्धपति। **स्थूलः पतिर्यस्याः सा-स्थूलपत्नी, स्थूलपतिः।** स्थूल है पति जिसका वह-स्थूलपत्नी, स्थूलपति।*

*सिद्धि-(१) **वृद्धपत्नी ।** वृद्ध+पति । वृद्धपति+ङीप् । वृद्धपतन्+ई । **वृद्धपत्नी**+सु । वृद्धपत्नी ।*

*यहां 'वृद्ध' शब्द पूर्वक 'पति' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से '**ङीप्**' प्रत्यय है 'पति' शब्द के इकार को 'नकार' आदेश है। ऐसे ही-**स्थूलपत्नी ।***

*(२) **वृद्धपतिः ।** यहां विकल्प पक्ष में 'पति' शब्द से 'ङीप्' प्रत्यय **नहीं** है। ऐसे ही-स्थूलपतिः ।*

नित्यं ङीप्–

(३१) नित्यं सपत्न्यादिषु ।३५।

प०वि०-नित्यम् १ ।१ सपत्नी-आदिषु ७ ।३ ।

स०-सपत्नी आदिर्येषां ते-सपत्न्यादयः, तेषु-सपत्न्यादिषु (बहुव्रीहिः) ।

अनु०-ङीप्, पत्युः, न इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-सपत्न्यादिषु पत्युः स्त्रियां नित्यं ङीप् नश्च ।

अर्थः-सपत्न्यादिषु शब्देषु वर्तमानात् पतिशब्दात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां नित्यं ङीप् प्रत्ययो भवति, तस्य चान्ते नकारादेशो भवति ।

उदा०-समानः पतिर्यस्याः सा-सपत्नी । एकः पतिर्यस्याः सा-एकपत्नी ।

समान । एक । वीर । पिण्ड । भ्रातृ । पुत्र इति सपत्न्यादयः । अत्र समानादय एव गणे पठ्यन्ते न सपत्न्यादयः, समानस्य सभावार्थं **'सपत्न्यादिषु'** इति पठितम् ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(सपत्न्यादिषु) सपत्नी आदि शब्दों में विद्यमान (पत्युः) पति प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (नित्यम्) सदा (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है (नः) और पति शब्द के अन्त में नकार आदेश होता है।*

*उदा०-समानः **पतिर्यस्याः सा-सपत्नी ।** तुल्य है पति जिसका वह-सपत्नी । एकः **पतिर्यस्याः सा-एकपत्नी ।** एक है पति जिसका वह-एकपत्नी ।*

***सिद्धि-सपत्नी ।** समान+पति । सपति+ङीप् । सपतन्+ई । सपत्नी+सु । सपत्नी ।*

*यहां समानपूर्वक 'पति' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से ङीप् प्रत्यय और पति शब्द के इकार को नकार आदेश है। इसी वचन से समान को स-भाव होता है। ऐसे ही-**एकपत्नी** आदि ।*

ङीप् (ऐ:)–

(३२) पूतक्रतोरै च।३६।

प०वि०–पूतक्रतो: ६।१ ऐ १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्।

अनु०–ङीप् इत्यनुवर्तते।

अन्वय:–पूतक्रतो: स्त्रियां ङीप् ऐश्च।

अर्थ:–पूतक्रतो: प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति, तस्य चान्ते ऐकारादेशो भवति।

उदा०–पूतक्रतो: स्त्री-पूतक्रतायी।

***आर्यभाषा:** अर्थ-(पूतक्रतो:) पूतक्रतु प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है (च) और (ऐ:) पूतक्रतु शब्द के अन्त में ऐकार आदेश होता है।*

***उदा०–पूतक्रतो: स्त्री-पूतक्रतायी।** पूतक्रतु की स्त्री-पूतक्रतायी (इन्द्राणी) पूतक्रतु:=इन्द्र।*

***सिद्धि–पूतक्रतायी।** पूतक्रतु+ङीप्। पूतक्रतै+ई। पूतक्रताय्+ई। पूतक्रतायी+सु। पूतक्रतायी।*

यहां 'पूतक्रतु' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय और 'पूतक्रतु' के उकार के स्थान में 'ऐकार' आदेश है।

ङीप् (ऐरुदात्त:)–

(३३) वृषाकप्यग्निकुसितकुसीदानामुदात्त:।३७।

प०वि०–वृषाकपि-अग्नि-कुसित-कुसीदानाम् ६।३ उदात्त: १।१।

स०–वृषाकपिश्च अग्निश्च कुसितश्च कुसीदश्च ते-वृषाकपि०कुसीदा:, तेषाम्-वृषाकपि०कुसीदानाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०–ङीप्, ऐ इति चानुवर्तते।

अन्वय:–वृषाकप्यग्निकुत्सितकुसीदानां स्त्रियां ङीप् ऐश्चोदात्त:।

अर्थ:–वृषिकप्यादिभ्य: प्रातिपदिकेभ्य: स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति, तेषां चान्ते उदात्त ऐकारदेशो भवति।

उदा०-(**वृषाकपिः**) वृषाकपेः स्त्री-वृषाकपायी। (**अग्निः**) अग्नेः स्त्री-अग्नायी। (**कुत्सितः**) कुसितस्य स्त्री-कुसितायी। (**कुसीदः**) कुसीदस्य स्त्री-कुसीदायी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(वृषाकपि०कुसीदानाम्) वृषाकपि, अग्नि, कुत्सित, कुसीद प्रातिपदिकों से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है और उनके अन्त में (उदात्तः) उदात्त (ऐः) ऐकारादेश होता है।*

*उदा०- (वृषाकपि) **वृषाकपेः स्त्री-वृषाकपायी।** विष्णु की पत्नी लक्ष्मी। (अग्नि) **अग्नेः स्त्री-अग्नायी।** अग्निदेव की स्त्री स्वाहा। **(कुसित) कुसितस्य स्त्री-कुसितायी।** ब्याज से निर्वाह करनेवाले पुरुष की पत्नी। **(कुसीद) कुसीदस्य स्त्री-कुसीदायी।** ब्याजखोर की पत्नी।*

सिद्धि-वृषाकपायी। *वृषाकपि+ङीप्। वृषाकपै+ई। वृषाकपायी+सु। वृषाकपायी।*

*यहां 'वृषाकपि' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय है और '**वृषाकपि**' शब्द के 'इकार' को 'ऐकार' आदेश होता है। ऐसे ही-**अग्नायी** आदि।*

ङीप्-विकल्प (औः, ऐरुदात्तः)-

(३४) मनो रौ वा।३८।

प०वि०-मनोः ६।१ औ १।१ (सु-लुक्) वा अव्ययपदम्।

अनु०-ङीप्, ऐ, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-मनोः स्त्रियां वा ङीप्, औः, ऐश्चोदात्तः।

अर्थः-मनुशब्दात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां विकल्पेन ङीप् प्रत्ययो भवति, तस्य चान्ते औकार, उदात्त ऐकारादेशश्च भवति।

उदा०-मनोः स्त्री-मनावी, मनायी, मनुर्वा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(मनोः) मनु प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (वा) विकल्प से (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है (औः) और उसके अन्त में औकार तथा (उदात्तः) उदात्त (ऐः) ऐकार आदेश होता है।*

*उदा०-**मनोः स्त्री-मनावी, मनायी, मनुर्वा।** मनु की पत्नी-मनावी, मनायी अथवा मनु।*

सिद्धि-(१) मनावी। *मनु+ङीप्। मनौ+ई। मनावी+सु। मनावी।*

यहां 'मनु' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय और 'मनु' शब्द के उकार को औकार आदेश है।

*(२) **मनायी।** मनु+ङीप्। मनै+ई। मनायी+सु। मनायी।*

*यहां 'मनु' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय और 'मनु' शब्द के उकार को उदात्त ऐकार आदेश है। उणादि (१।१०) से व्युत्पन्न 'मनु' शब्द आद्युदात्त है किन्तु यहां ऐकार आदेश के उदात्त करने से वह अन्तोदात्त हो जाता है-**मनायी।***

*(३) **मनुः।** यहां विकल्प पक्ष में मनु शब्द से कोई स्त्री प्रत्यय नहीं है।*

ङीप्-विकल्पः--

(३५) वर्णादनुदात्तात् तोपधात् तो नः।३६।

प०वि०-वर्णात् ५।१ अनुदात्तात् ५।१ तोपधात् ५।१ तः ६।१ नः १।१।

स०-त उपधायां यस्य तत् तोपधम्, तस्मात्-तोपधात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-ङीप्, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-वर्णाद् अनुदात्तात् तोपधात् स्त्रियां वा ङीप् तो नः।

अर्थः-वर्णवाचिनोऽनुदात्तान्तात् तकारोपधात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां विकल्पेन ङीप् प्रत्ययो भवति, तस्य च तकारस्य स्थाने नकारादेशो भवति।

उदा०-एनी, एता। श्येनी, श्येता। हरिणी, हरिता।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(वर्णात्) वर्णवाची (अनुदात्तात्) अनुदात्तान्त (तोपधात्) तकार उपधावाले प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (वा) विकल्प से (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है और उसके (तः) तकार के स्थान में (नः) नकार आदेश होता है।*

*उदा०-**एनी, एता चटका।** रंगबिरंगी चिड़िया। **श्येनी, श्येता गौः।** सफेद गाय। **हरिणी, हरिता सारिका।** हरे रंग की सारिका (मैना)।*

***सिद्धि**-(१) **एनी।** एत+ङीप्। एन्+ई। एनी+सु। एनी।*

*यहां वर्णवाची 'एत' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय और तकार के स्थान में नकार आदेश है। ऐसे ही-**श्येनी, हरिणी।***

*(२) **एता।** यहां विकल्प पक्ष में 'एत' शब्द से 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय है। ऐसे ही **श्येता, हरिता।***

इति ङीप्प्रत्ययप्रकरणम्।

ङीष्प्रत्ययप्रकरणम्

ङीष्–

(१) अन्यतो ङीष्।४०।

प०वि०–अन्यतः अव्ययपदम्, ङीष् १।१।

अनु०–वर्णात्, अनुदात्तात् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तोपधाद् अन्यतो वर्णाद् अनुदात्तात् स्त्रियां ङीष्।

अर्थः–तकारोपधाद् अन्यतो वर्णवाचिनोऽनुदात्तान्ताद् अकारान्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति।

उदा०–सारङ्गी। कल्माषी। शबली।

***आर्यभाषाः* अर्थ**–*(अन्यतः) तकार उपधावाले शब्द से अन्य (वर्णात्) वर्णवाची (अनुदात्तात्) अनुदात्तान्त (अतः) अकारान्त प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीष्) ङीष् प्रत्यय होता है।*

उदा०–***सारङ्गी हरिणी।*** *चितकबरी हरिणी।* ***कल्माषी नारी।*** *सांवली स्त्री।* ***शबली गौः।*** *चितकबरी गाय।*

सिद्धि–सारङ्गी। *सारङ्ग+ङीष्। सारङ्ग्+ई। सारङ्गी+सु। सारङ्गी।*

*यहां वर्णवाची 'सारङ्ग' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय है। ऐसे ही–**कल्माषी** आदि।*

अनुवृत्ति–*'अतः' और अनुपसर्जनात् की सर्वत्र अनुवृत्ति है। उसका यथाविधि अनुवृत्ति में प्रयोग किया जाता है।*

ङीष्–

(२) षिद्गौरादिभ्यश्च।४१।

प०वि०–षिद्-गौरादिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०–ष इद् यस्य तत् षित्, गौर आदिर्येषां ते गौरादयः, षिच्च गौरादयश्च ते षिद्गौरादयः, तेभ्यः–षिद्गौरादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित-इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–ङीष् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-षिद्गौरादिभ्यश्च स्त्रियां ङीष्।

अर्थः-षिद्भ्यो गौरादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(षित्)** नर्तकी। खनकी। रजकी। **(गौरादिः)** गौरी। मत्सी।

गौर। मत्स्य। मनुष्य। शृङ्ग। हय। गवय। मुकय। ऋष्य। पुट। द्रुण। द्रोण। हरिण। कण। पटर। उकण। आमलक। कुवल। बदर। बिम्ब। तर्कार। शर्कार। पुष्कर। शिखण्ड। सुषम। सलन्द। गडुज। आनन्द। सुपाट। सुगेठ। आढक। शष्कुल। सूर्म। सुव्व। सूर्य। पूष। मूष। घातक। सकलूक। सल्लक। मालक। मालत। साल्वक। वेतस। अतस। पृस। मह। मठ। छेद। श्वन्। तक्षन्। अनडुही। अनड्वाही। एषणः करणे। देह। काकादन। गवादन। तेजन। रजन। लवण। पान। मेघ। गौतम। आयस्थूण। भोरि। भौतिकी। भौलिङ्गि। औद्गाहमानि। आलिपि। आपिच्छक। आरट। टोट। नट। नाट। मूलाट। शातन। पातन। पावन। आस्तरण। अधिकरण। एत। अधिकार। आग्रहायणी। प्रत्यवरोहिणी। सेवन। सुमङ्गलात् संज्ञायाम्। सुन्दर। मण्डल। पट। पिण्ड। पिटक। कुर्द। गुर्द। पाण्ट। लोफाण्ट। कुन्दर। कन्दल। तरुण। तलुन। बृहत्। महत्। सौधर्म। रोहिणी नक्षत्रे। विकल। निष्फल। पुष्कल। कटाच्छ्रेणिवचने। पिप्पल्यादयश्च-पिप्पली। हरीतकी। कोशातकी। शमी। करीरी। पृथिवी। क्रोष्ट्री। मातामह। पितामह। इति गौरादयः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(षिद्गौरादिभ्यः) ष् इत्वाले तथा गौर आदि प्रातिपदिकों से (च) भी (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ् में ङीष् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(षित्) ***नर्तकी।*** *नाचनेवाली।* ***खनकी।*** *खिननेवाली।* ***रजकी।*** *रंगनेवाली।* ***(गौरादिः) गौरी।*** *गौरवर्णवाली पार्वती।* ***मत्सी।*** *मछली।*

सिद्धि-(१) नर्तकी। *नृत्+ष्वुन्। नर्त्+अक। नर्तक+ङीष्। नर्तकी+सु। नर्तकी।*

यहां 'नृती गात्रविक्षेपे' (दि०प०) धातु से प्रथम 'शिल्पिनि ष्वुन्' (३।१।१४५) से 'ष्वुन्' प्रत्यय है। प्रत्यय के षित् होने से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय होता है।

*(२) **खनकी।** 'खनु अवदारणे' (भ्वा०प०)। पूर्ववत्।*

*(३) **रजकी।** 'रञ्ज रागे' (दि०प०)। 'रञ्जेश्च' (६।४।२६) में चकार को अनुक्त समुच्चार्थ मानकर यहां अनुनासिक 'न्' का लोप होता है।*

*(४) **गौरी।** गौर+ङीष्। गौरी+सु। गौरी।*

*(५) **मत्सी।** मत्स्य+ङीष्। मत्स्य+ई। मत्सी+सु। मत्सी।*

यहां 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अ-लोप और 'सूर्यतिष्यागस्त्यमत्स्यानां०' (६।४।१४९) से य-लोप होता है।

ङीष्–

(३) जानपदकुण्डगोणस्थलभाजनागकालनीलकुशकामुककबराद् वृत्त्यमत्रावपनाकृत्रिमाश्राणास्थौल्यवर्णानाच्छादनायोविकारमैथुनेच्छाकेशवेशेषु।४२।

प०वि०–जानपद-कुण्ड-गोण-स्थल-भाज-नाग-काल-नील-कुश-कामुक-कबरात् ५।१ वृत्ति-अमत्र-आवपन-अकृत्रिमा-श्राणा-स्थौल्य-वर्ण-अनाच्छान-अयोविकार-मैथुनेच्छा-केशवेशेषु ७।३।

स०–जानपदश्च कुण्डं च गोणं च स्थलं च भाजश्च नागश्च कालश्च नीलं च कुशश्च कामुकश्च कबरश्च एतेषां समाहारः–जानपद०कबरम्, तस्मात्–जानपद०कबरात् (समाहारद्वन्द्वः)। वृत्तिश्च अमत्रं च आवपनं च अकृत्रिमा च श्राणा च स्थौल्यं च वर्णश्च अनाच्छादनं च अयोविकारश्च मैथुनेच्छा च केशवेशश्च ते– जानपद०केशवेशाः, तेषु–जानपद०केशवेशेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–ङीष् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–जानपद०कबराद् यथासंख्यं वृत्ति०केशवेशेषु स्त्रियां ङीष्।

अर्थः–जानपदादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो यथासंख्यं वृत्त्यादिष्वर्थेषु स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति। **उदाहरणम्**–

	प्रातिपदिकम्	ङीष्	अर्थः	भाषार्थः
१.	जानपदः	जानपदी	वृत्तिः	वृत्ति (नौकरी)।
२.	कुण्डम्	कुण्डी	अमत्रम्	पात्र।
३.	गोणम्	गोणी	आवपनम्	बोरी।
४.	स्थलम्	स्थली	अकृत्रिमा	सूखी भूमि (थळी)।
५.	भाजः	भाजी	श्राणा	माण्ड।
६.	नागः	नागी	स्थौल्यम्	मोटी।
७.	कालः	काली	वर्णः	काले रंगवाली।
८.	नीलम्	नीली	अनाच्छादनम्	नंगी ओषधि, गौ, घोड़ी आदि।
९.	कुशः	कुशी	अयोविकारः	फाळी।
१०.	कामुकः	कामुकी	मैथुनेच्छा	मैथुन की इच्छावाली।
११.	कबरः	कबरी	केशवेशः	केश-शृंगार करनेवाली।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(जानपद०कबरात्) जानपद, कुण्ड, गोण, स्थल, भाज, नाग, काल, नील, कुश, कामुक, कबर प्रातिपदिकों से यथासंख्य (वृत्ति०केशवेशेषु) वृत्ति, अमत्र, आवपन, अकृत्रिमा, श्राणा, स्थौल्य, वर्ण, अनाच्छादन, अयोविकार, मैथुनेच्छा, केशवेश अर्थों में (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीष्) ङीष् प्रत्यय होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका अर्थ संस्कृत भाग में देख लेवें।

***सिद्धि-जानपदी।** जानपद+ङीष्। जानपदी+सु। जानपदी।*

*यहां 'जानपद' शब्द से वृत्ति अर्थ में स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अ-लोप होता है। ऐसे ही-**कुण्डी** आदि।*

ङीष् (प्राचां मते)–

(४) शोणात् प्राचाम्।४३।

प०वि०-शोणात् ५।१ प्राचाम् ६।३।

अनु०-ङीष् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-शोणात् स्त्रियां ङीष् प्राचाम्।

अर्थः-शोणात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति, प्राचामाचार्याणां मतेन।

उदा०-शोणी (प्राचां मते)। शोणा (पाणिनिमते)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(शोणात्) शोण प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीष्) ङीष् प्रत्यय होता है (प्राचाम्) प्राग्देशीय आचार्यों के मत में।*

*उदा०-**शोणी, शोणा।** (वडवा) लाल घोड़ी।*

*सिद्धि-(१) **शोणी।** शोण+ङीष्। शोणी+सु। शोणी।*

यहां रक्तवर्णवाची 'शोण' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से प्राग्देशीय आचार्यों के मत में 'ङीष्' प्रत्यय है।

*(२) **शोणा।** शोण+टाप्। शोणा+सु। शोणा।*

*पाणिनि मुनि के मत में '**अजाद्यतष्टाप्**' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है।*

ङीष्-विकल्पः—

(५) वोतो गुणवचनात्।४४।

प०वि०-वा अव्ययपदम्, उतः ५।१ गुणवचनात् ५।१।

स०-गुण उच्यते येन तत् गुणवचनम्, तस्मात्-गुणवचनात् (उपपदतत्पुरुषः)।

अनु०-ङीष् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-गुणवचनाद् उतः प्रातिपदिकात् स्त्रियां वा ङीष्।

अर्थः-गुणवचनाद् उकारान्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां विकल्पेन ङीष् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पट्वी, पटुर्वा ब्राह्मणी। मृद्वी, मृदुर्वा ब्राह्मणी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(गुणवचनात्) गुणवाची (उतः) उकारान्त प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (वा) विकल्प से (ङीष्) ङीष् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**पट्वी, पटुर्वा ब्राह्मणी।** चतुर ब्राह्मणी। **मृद्वी, मृदुर्वा ब्राह्मणी।** कोमल स्वभाववाली ब्राह्मणी।*

*सिद्धि-(१) **पट्वी।** पटु+ङीष्। पटु+ई। पट्वी+सु। पट्वी।*

*यहां उकारान्त, गुणवाची 'पटु' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय है। '**इको यणचि**' (६।१।७४) से यण्-आदेश होता है। ऐसे ही-**मृद्वी।***

*(२) **पटुः।** यहां विकल्प पक्ष में 'ङीष्' प्रत्यय नहीं है। ऐसे ही-**मृदुः** आदि।*

ङीष्-विकल्पः–

(६) बह्वादिभ्यश्च।४५।

प०वि०–बहु-आदिभ्य: ५।३ च अव्ययपदम्।

स०–बहु आदिर्येषां ते बह्वादयः, तेभ्यः-बह्वादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–ङीष्, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः–बह्वादिभ्यः स्त्रियां वा ङीष्।

अर्थः–बह्वादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां विकल्पेन ङीष् प्रत्ययो भवति।

उदा०–बह्वी, बहुः। पद्धती, पद्धतिः।

बहु। पद्धति। अङ्कति। अञ्चति। अंहति। वंहति। शकटिः। शक्तिः शस्त्रे। वारि। गति। अहि। कपि। मुनि। यष्टि। वा०-इतः प्राण्यङ्गात्। वा०-कृदिकारादक्तिनः। वा०-सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके। चण्ड। अराल। कमल। कृपाण। विकट। विशाल। विशङ्कट। भरुजध्वज। वा०-चन्द्रभागान्नद्याम्। कल्याण। उदार। अहन्। इति बह्वादयः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बह्वादिभ्यः) बहु आदि प्रातिपदिकों से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (वा) विकल्प से (ङीष्) ङीष् प्रत्यय होता है।*

उदा०-बह्वी, बहुर्वा प्रजा। बहुत प्रजा।

सिद्धि-(१) बह्वी। बहु+ङीष्। बह्वी+सु। बह्वी। पूर्ववत्।

(२) बहुः। यहां विकल्प पक्ष में 'ङीष्' प्रत्यय नहीं है।

नित्यं-ङीष्–

(७) नित्यं छन्दसि।४६।

प०वि०–नित्यम् १।१ छन्दसि ७।१।

अनु०–ङीष्, बह्वादिभ्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि बह्वादिभ्यः स्त्रियां नित्यं ङीष्।

अर्थः–छन्दसि विषये बह्वादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां नित्यं ङीष् प्रत्ययो भवति।

उदा०-बह्वीषु हित्वा प्रपिबन् (यजु० ७।३) बह्वी नाम ओषधी भवति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (बह्वादिभ्यः) बहु आदि प्रातिपदिकों से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (नित्यम्) सदा (ङीष्) ङीष् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**बह्वीषु हित्वा प्रपिबन्** (यजु० ७।३) बह्वी नाम ओषधी भवति।*

*सिद्धि-**बह्वी।** बहु+ङीष्। बह्वी+सु। बह्वी। पूर्ववत्।*

नित्यं ङीष्-

(८) भुवश्च।४७।

प०वि०-भुवः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-ङीष्, नित्यम्, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि भुवश्च स्त्रियां नित्यं ङीष्।

अर्थः-छन्दसि विषये भुवः प्रातिपदिकात् स्त्रियां नित्यं ङीष् प्रत्ययो भवति।

उदा०-विभ्वी च। प्रभ्वी च।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (भुवः) भू प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (नित्यम्) सदा (ङीष्) ङीष् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**विभ्वी च। प्रभ्वी च।** विभ्वी=व्यापिका। प्रभ्वी=समर्था।*

*सिद्धि-(१) **विभ्वी।** वि+भू+डु। वि+भ्+उ। विभु+ङीष्। विभु+ई। विभ्वी।*

*यहां प्रथम वि-उपसर्गपूर्वक '**भू सत्तायाम्**' (भ्वा०प०) धातु से '**विप्रसम्भ्यो ड्वसंज्ञायाम्**' (३।२।१८०) से 'डु' प्रत्यय है। प्रत्यय के डित् होने से वा०- '**डित्यभस्यापि टेर्लोपः**' (६।४।१४३) से 'भू' के टि-भाग (ऊ) का लोप. तत्पश्चात् विभु शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय है। '**इको यणचि**' (६।१।७४) से 'यण्' आदेश होता है।*

*(२) **प्रभ्वी।** प्रभु+ङीष्। प्रभ्वी+सु। प्रभ्वी। पूर्ववत्।*

ङीष्-

(९) पुंयोगादाख्यायाम्।४८।

प०वि०-पुंयोगात् ५।१ आख्यायाम् ७।१।

स०-पुंसा योगः (सम्बन्धः) इति पुंयोगः, तस्मात्-पुंयोगात् (तृतीयातत्पुषः)।

अनु०-ङीष् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-आख्यायां पुंयोगात् स्त्रियां ङीष्।

अर्थः-पूर्वं पुंस आख्यायां वर्तमानम्, पुंयोगाच्च हेतोर्यत् प्रातिपदिकं स्त्रियां वर्तते, तस्मात् ङीष् प्रत्ययो भवति।

उदा०-गणकस्य स्त्री-गणकी। प्रष्ठस्य स्त्री-प्रष्ठी। महामात्रस्य स्त्री-महामात्री।

आर्यभाषाः *अर्थ-(आख्यायाम्) जो प्रातिपदिक प्रथम पुरुष का वाचक हो (पुंयोगात्) उस पुरुष के योग=सम्बन्ध से जो प्रादिपदिक स्त्रीलिङ्ग में विद्यमान हो, उससे (ङीष्) ङीष् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**गणकस्य स्त्री-गणकी।** ज्योतिषी की पत्नी। **प्रष्ठस्य स्त्री-प्रष्ठी।** अग्रगामी (नेता) की पत्नी। **महामात्रस्य स्त्री-महामात्री।** प्रधान सचिव की स्त्री।*

*सिद्धि-**गणकी।** गणक+ङीष्। गणक्+ई। गणकी+सु। गणकी।*

*यहां 'गणक' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**प्रष्ठी** आदि।*

ङीष् (आनुक)-

(१०) इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवन-मातुलाचार्याणामानुक्।४६।

प०वि०-इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिम-अरण्य-यव-यवन-मातुल-आचार्याणाम् ६।३ आनुक् १।१।

स०-इन्द्रश्च वरुणश्च भवश्च शर्वश्च रुद्रश्च मृडश्च हिमं च अरण्यं च यवश्च यवनश्च मातुलश्च आचार्यश्च ते-इन्द्र०आचार्याः, तेषाम्-इन्द्र०आचार्यायाम्।

अनु०-ङीष् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-इन्द्र०आचार्याणां स्त्रियां ङीष् आनुक् च।

अर्थः-इन्द्रादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति, तेषां चानुक्-आगमो भवति। **उदाहरणम्-**

	प्रातिपदिकम्	ङीष्	अर्थः	भाषार्थः
१.	इन्द्रः	इन्द्राणी	इन्द्र	इन्द्र की स्त्री शची।
२.	वरुणः	वरुणानी	वरुण	वरुण की स्त्री।
३.	भवः	भवानी	भव (शिव)	शिव की पत्नी पार्वती।
४.	शर्वः	शर्वाणी	शर्व (शिव)	शिव की पत्नी पार्वती।
५.	रुद्रः	रुद्राणी	रुद्र (शिव)	शिव की पत्नी पार्वती।
६.	मृडः	मृडानी	शर्व (शिव)	शिव की पत्नी पार्वती।
७.	हिमम्	हिमानी	हिमाद् महत्त्वे	बर्फ का ढेर।
८.	अरण्यम्	अरण्यानी	अरण्यान्महत्त्वे	बड़ा लम्बा-चौड़ा वन।
९.	यवः	यवानी	यवाद् दोषे	दूषित जौ।
१०.	यवनः	यवनानी	यवनाल्लिप्याम्	यवनों की लिपि (फारसी)।
११.	मातुलः	मातुलानी	मातुल	मामी।
१२.	आचार्यः	आचार्यानी	आचार्यादणत्वं च	आचार्य की पत्नी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(इन्द्र०आचार्याणाम्) इन्द्र, वरुण, भव, शर्व, रुद्र, मृड, हिम, अरण्य, यव, यवन, मातुल, आचार्य प्रातिपदिकों से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीष्) ङीष् प्रत्यय होता है और उन्हें (आनुक्) आनुक् आगम होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका अर्थ संस्कृत भाग में देख लेवें।

सिद्धि-(१) इन्द्राणी। *इन्द्र+ङीष्। इन्द्र+आनुक्+ई। इन्द्र+आन्+ई। इन्द्राणी+सु। इन्द्राणी।*

*यहां 'इन्द्र' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय और प्रातिपदिक को 'आनुक्' आगम होता है। **'अट्कुप्वाङ्०'** (८।४।२) से णत्व होता है। ऐसे ही-**वरुणानी** आदि।*

(२) हिमानी। *यहां 'हिम' शब्द से **'वा०-हिमारण्ययोर्महत्त्वे'** (४।१।४८) से महत्त्व अर्थ में ङीष् प्रत्यय और आनुक् आगम होता है।*

(३) अरण्यानी। *पूर्ववत्।*

(४) यवानी। *यहां 'यव' शब्द से वा०- **'यवाद् दोषे'** (४।१।४८) से दोष अर्थ में 'ङीष्' प्रत्यय और 'आनुक्' आगम होता है।*

(५) यवनानी। *यहां 'यवन' शब्द से वा०- **'यवनाल्लिप्याम्'** (४।१।४८) से लिपि अर्थ में 'ङीष्' प्रत्यय और 'आनुक्' आगम होता है।*

(६) आचार्यानी। *यहां आचार्य शब्द से 'ङीष्' प्रत्यय और 'आनुक्' आगम करने पर 'अट्कुप्वाङ्०' (८।४।२) से प्राप्त णत्व का वा०-'आचार्यादणत्वं च' (४।१।४८) से प्रतिषेध होता है।*

ङीष्-

(११) क्रीतात् करणपूर्वात्।५०।

प०वि०-क्रीतात् ५।१ करणपूर्वात् ५।१।

स०-करणं पूर्वं यस्मिन्निति-करणपूर्वम्, तस्मात्-करणपूर्वात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-ङीष् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-करणपूर्वात् क्रीतान्तात् स्त्रियां ङीष्।

अर्थः-करणपूर्वात् क्रीतान्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति।

उदा०-वस्त्रेण क्रीयते या सा-वस्त्रक्रीती। वसनक्रीती।

आर्यभाषाः *अर्थ-(करणपूर्वात्) करण कारक जिसके पूर्व में है उस (क्रीतात्) क्रीत अन्तवाले प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीष्) ङीष् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**वस्त्रेण क्रीयते या सा-वस्त्रक्रीती। वसनक्रीती।** वस्त्र से खरीदी हुई।*

*सिद्धि-**वस्त्रक्रीती।** वस्त्र+टा+क्रीत। वस्त्रक्रीत+ङीष्। वस्त्रक्रीती+सु। वस्त्रक्रीती। यहां वस्त्र करणपूर्वक 'क्रीत' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय है।*

ङीष्-

(१२) क्तादल्पाख्यायाम्।५१।

प०वि०-क्तात् ५।१ अल्पाख्यायाम् ७।१।

स०-अल्पस्याऽऽख्या इति अल्पाख्या, तस्याम्-अल्पाख्यायाम् (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-करणपूर्वात् ङीष् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-करणपूर्वात् क्तात् स्त्रियां ङीष् अल्पाख्यायाम्।

अर्थः-करणपूर्वात् क्तान्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति, अल्पाख्यायां गम्यमानायाम्।

उदा०-अभ्रेण विलिप्ता इति अभ्रविलिप्ती द्यौः। सूपेन विलिप्ता इति सूपविलिप्ता पात्री। अल्पसूपा इत्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(करणपूर्वात्) करण कारक जिसके पूर्व में है उस (क्तात्) क्त-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीष्) ङीष् प्रत्यय होता है (अल्पाख्यायाम्) यदि वहां अल्पता अर्थ का कथन हो।*

*उदा०-**अभ्रेण विलिप्ता इति अभ्रविलिप्ती द्यौः।** थोड़े बादलोंवाला आकाश। **सूपेन विलिप्ता इति सूपविलिप्ता पात्री।** थोड़ी दालवाली थाली।*

*सिद्धि-(१) **अभ्रविलिप्ती।** यहां वि-उपसर्गपूर्वक 'लिप उपदेहे' (रुधा०प०) धातु से प्रथम 'क्त' प्रत्यय और तत्पश्चात् अभ्र करण कारक पूर्वक 'क्त' प्रत्ययान्त 'विलिप्त' प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**सूपविलिप्ती।***

ङीष्-

(१३) बहुव्रीहेश्चान्तोदात्तात्।५२।

प०वि०-बहुव्रीहेः ५।१ च अव्ययपदम्, अन्तोदात्तात् ५।१।

अनु०-ङीष्, क्तात् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहेः क्ताद् अन्तोदात्तात् स्त्रियां ङीष्।

अर्थः-बहुव्रीहिसंज्ञकात् क्त-प्रत्ययान्ताद् अन्तोदात्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति।

उदा०-शङ्खं भिन्नं यस्याः सा शङ्खभिन्नी। ऊरु भिन्नं यस्याः सा-ऊरुभिन्नी। गलम् उत्कृत्तं यस्याः सा-गलोत्कृत्ती। केशा लूना यस्याः सा-केशलूनी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहेः) बहुव्रीहि संज्ञक (क्तात्) क्त-प्रत्ययान्त (अन्तोदात्तात्) अन्तोदात्त प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीष्) ङीष् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**शङ्खं भिन्नं यस्याः सा शङ्खभिन्नी।** वह स्त्री जिसकी युद्ध में माथे की हड्डी टूट गई है। **ऊरु भिन्नं यस्याः सा-ऊरुभिन्नी।** वह स्त्री जिसकी युद्ध में जङ्घा टूट गई है। **गलम् उत्कृत्तं यस्याः सा-गलोत्कृत्ती।** वह स्त्री जिसकी युद्ध में गला कट गया है। **केशा लूना यस्याः सा-केशलूनी।** वह स्त्री जिसके युद्ध में बाल कट गये हैं।*

*सिद्धि-(१) **शङ्खभिन्नी।** यहां प्रथम **'भिदिर् विदारणे'** (रुधा०प०) धातु से 'क्त' प्रत्यय तत्पश्चात् उसका 'शङ्ख' शब्द के साथ समास होने पर स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय है।*

(२) अरुभिन्नी। अरु+भिन्न+ङीष्। पूर्ववत्।

(३) गलोत्कृत्ती। गल+उत्कृत्त+ङीष्। पूर्ववत्।

(४) केशलूनी। केश+लून+ङीष्। पूर्ववत्।

विशेष- 'जातिकालसुखादिभ्य०' (६।२।१६८) से 'शङ्खभिन्न' आदि पद अन्तोदात्त हैं और वा०-'निष्ठायाः पूर्वनिपाते जातिकालसुखादिभ्यः परवचनम्' (२।२।३६) से क्त-प्रत्ययान्त शब्द का परनिपात होता है।

ङीष्-विकल्पः–

(१४) अस्वाङ्गपूर्वपदाद् वा।५३।

प०वि०-अस्वाङ्ग-पूर्वपदात् ५।१ वा अव्ययपदम्।

स०-न स्वाङ्गमिति अस्वाङ्गम्, अस्वाङ्गं पूर्वपदं यस्य तत् अस्वाङ्गपूर्वपदम्, तस्मात्-अस्वाङ्गपूर्वपदात् (नञ्गर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-ङीष्, बहुव्रीहेः, अन्तोदात्ताद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अस्वाङ्गपूर्वपदाद् बहुव्रीहेः क्ताद् अन्तोदात्तात् स्त्रियां वा ङीष्।

अर्थः-अस्वाङ्गपूर्वपदाद् बहुव्रीहिसंज्ञकात् क्त-प्रत्ययान्ताद् अन्तोदात्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां विकल्पेन ङीष् प्रत्ययो भवति।

उदा०-सारङ्गो जग्धो यया सा-सारङ्गजग्धी, सारङ्गजग्धा। पलाण्डुर्भक्षितो यया सा-पलाण्डुभक्षिती, पलाण्डुभक्षिता। सुरा पीता यया सा-सुरापीती, सुरापीता।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अस्वाङ्गपूर्वपदात्) अस्वाङ्ग पूर्वपदवाले (बहुव्रीहेः) बहुव्रीहिसंज्ञक (क्तात्) क्त-प्रत्ययान्त (अन्तोदात्तात्) अन्तोदात्त प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (वा) विकल्प से (ङीष्) ङीष् प्रत्यय होता है।*

उदा०-सारङ्गो जग्धो यया सा-सारङ्गजग्धी, सारङ्गजग्धा। *वह स्त्री जिसने सारङ्ग (हरिण) का मांस खा लिया है।* ***पलाण्डुर्भक्षितो यया सा-पलाण्डुभक्षिती, पलाण्डुभक्षिता।*** *वह स्त्री जिसने प्याज खा लिया है।* ***सुरा पीता यया सा-सुरापीती, सुरापीता।*** *वह स्त्री जिसने शराब पी ली है।*

सिद्धि-(१) सारङ्गजग्धी। *सारङ्ग+जग्ध+ङीप्। सारङ्गजग्धी+सु।* ***सारङ्गजग्धी।***

यहां प्रथम अस्वाङ्ग पूर्वपद सारङ्ग और क्त-प्रत्ययान्त अन्तोदात्त जग्ध शब्द का बहुव्रीहि समास होने पर 'सारङ्गजग्ध' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय है।

*(२) **सारङ्गजग्धा।** यहां विकल्प पक्ष में '**अजाद्यतष्टाप्**' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। 'जग्धः' शब्द की सिद्धि '**अदो जग्धिर्ल्यप्ति किति**' (२।४।३६) के प्रवचन में देख लेवें। ऐसे ही-**प्लाण्डुभक्षिती, प्लाण्डुभक्षिता** आदि।*

ङीष्-विकल्पः-

(१५) स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्।५४।

प०वि०-स्वाङ्गात् ५।१ च अव्ययपदम्, उपसर्जनात् ५।१ असंयोगोपधात् ५।१।

स०-संयोग उपधायां यस्य तत् संयोगोपधम्, न संयोगोपधम् इति असंयोगोपधम्, तस्मात्-असंयोगोपधात् (बहुव्रीहिगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-बहुव्रीहेः, क्तात् अन्तोदात्ताद् इति च निवृत्तम्; वा, अत इति चानुवर्तते।

अन्वयः-असंयोगोपधाद् उपसर्जनाद् अतः स्त्रियां वा ङीष्।

अर्थः-असंयोगोपधाद् उपसर्जनात् स्वाङ्गवाचिनोऽकारान्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां विकल्पेन ङीष् प्रत्ययो भवति।

उदा०-चन्द्र इव मुखं यस्याः सा-चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा। अतिक्रान्ता केशान् इति-अतिकेशी, अतिकेशा।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(असंयोगोपधात्) जिसकी उपधा में संयोग नहीं है और (उपसर्जनात्) जिसकी उपसर्जन संज्ञा है उस (स्वाङ्गात्) स्वाङ्गवाची (अतः) अकारान्त प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (वा) विकल्प से (ङीष्) ङीष् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**चन्द्र इव मुखं यस्याः सा-चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा।** चन्द्र के समान सुन्दर मुखवाली स्त्री। **अतिक्रान्ता केशान् इति-अतिकेशी, अतिकेशा।** बहुत बड़े बालोंवाली स्त्री।*

*सिद्धि-(१) **चन्द्रमुखी।** चन्द्र+मुख+ङीष्। चन्द्रमुखी+सु। चन्द्रमुखी।*

यहां असंयोग उपधावाले, उपसर्जन, स्वाङ्गवाची, अकारान्त मुख शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय है। यहां 'मुख' शब्द के बहुव्रीहि समास में होने से उसकी

उपसर्जन संज्ञा है क्योंकि 'अनेकमन्यपदार्थे' (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास में दोनों पद उपसर्जन होते हैं।

*(२) **चन्द्रमुखा।** यहां विकल्प पक्ष में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय है।*

*(३) **अतिकेशी।** यहां 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से प्रादि समास है और 'एकविभक्ति चापूर्वनिपाते' (१।२।४४) से केश शब्द की उपसर्जन संज्ञा होती है।*

*(४) **अतिकेशा।** यहां पूर्ववत् 'टाप्' प्रत्यय है।*

ङीष्-विकल्पः—

(१६) नासिकोदरौष्ठजङ्घादन्तकर्णशृङ्गाच्च।५५।

प०वि०-नासिका-उदर-ओष्ठ-जङ्घा-दन्त-कर्ण-शृङ्गात् ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-नासिका च उदरं च ओष्ठौ च जङ्घा च दन्तश्च कर्णश्च शृङ्गं च एतेषां समाहारः-नासिका०शृङ्गम्, तस्मात्-नासिका०शृङ्गात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-ङीष्, वा, स्वाङ्गात्, उपसर्जनादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-उपसर्जनात् स्वाङ्गात् नासिका०शृङ्गाच्च स्त्रियां वा ङीष्।

अर्थः-उपसर्जनेभ्यः स्वाङ्गवाचिभ्यो नासिकाद्यन्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां विकल्पेन ङीष् प्रत्ययो भवति। **उदाहरणम्-**

	प्रातिपदिकम्	वा ङीष्	भाषार्थः
१.	नासिका	तुङ्गा नासिका यस्याः सा- तुङ्गनासिकी, तुङ्गनासिका	ऊंचे नाकवाली स्त्री।
२.	उदरम्	वृक इव उदरं यस्याः सा- वृकोदरी, वृकोदरा।	भेड़िया के समान पेटवाली।
३.	ओष्ठौ	बिम्बमिवौष्ठौ यस्याः सा- बिम्बौष्ठी, बिम्बौष्ठा।	बिम्ब=कुन्दरू फल के समान लाल ओठोंवाली नारी।
४.	जङ्घा	दीर्घा जङ्घा यस्याः सा- दीर्घजङ्घी, दीर्घजङ्घा।	विस्तृत जांघवाली नारी।

	प्रातिपदिकम्	वा ङीष्	भाषार्थः
५.	दन्ताः	समा दन्ता यस्याः सा- समदन्ती, समदन्ता।	समान दांतोंवाली स्त्री।
६.	कर्णौ	चारू कर्णौ यस्याः सा- चारुकर्णी, चारुकर्णा।	सुन्दर कानोंवाली नारी।
७.	शृङ्गे	तीक्ष्णे शृङ्गे यस्याः सा- तीक्ष्णशृङ्गी, तीक्ष्णशृङ्गा।	तेज सींगोंवाली गौ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(उपसर्जनात्) उपसर्जन संज्ञावाले (स्वाङ्गात्) स्वाङ्गवाची (नासिका०शृङ्गात्) नासिका, उदर, ओष्ठ, जङ्घा, दन्त, कर्ण, शृङ्ग प्रातिपदिकों से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (वा) विकल्प से (ङीष्) ङीष् प्रत्यय होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका अर्थ संस्कृत भाग में देख लेवें।

सिद्धि-(१) तुङ्गनासिकी। *तुङ्गा+नासिका। तुङ्गनासिक+ङीष्। तुङ्गनासिकी+सु। तुङ्गनासिकी।*

*यहां उपसर्जन, स्वाङ्गवाची नासिका शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय है। यहां प्रथम **'स्त्रियाः पुंवद्०'** (६।४।३४) से तुङ्गा और नासिका को पुंवद्भाव होता है तुङ्गनासिक। 'ङीष्' प्रत्यय होने पर **'यस्येति च'** (६।४।१४२) से अंग का अ-लोप होता है।*

(२) तुङ्गनासिका। *तुङ्गा+नासिका। तुङ्गनासिक+टाप्। तुङनासिका+सु। तुङ्गनासिका।*

*यहां विकल्प पक्ष में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-वृकोदरी, वृकोदरा आदि।*

ङीष्-प्रतिषेधः—

(१७) न क्रोडादिबह्वचः।५६।

प०वि०-न अव्ययपदम्, क्रोडादि-बह्वचः ५।१।

स०-क्रोड आदिर्येषां ते क्रोडादयः, बहवोऽचो यस्मिँस्तत्-बह्वच्, क्रोडादयश्च बह्वच् च एतेषां समाहारः-क्रोडादिबह्वच्, तस्मात्-क्रोडादिबह्वचः (बहुव्रीहिगर्भितसमाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-ङीष्, स्वाङ्गात्, उपसर्जनाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-उपसर्जनात् स्वाङ्गात् क्रोडादिबह्वचः स्त्रियां न ङीष्।

अर्थः-उपसर्जनात् स्वाङ्गवाचिनः क्रोडाद्यन्ताद् बह्वजन्ताच्च प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो न भवति।

उदा०-**(क्रोडाद्यन्तात्)** कल्याणक्रोडा। कल्याणखुरा। **(बह्वजन्तात्)** पृथुजघना। महाललाटा।

क्रोड। खुर। बाल। शफ। गुद। घोण। नख। मुख। भग। गल। आकृतिगणोऽयम्। इति क्रोडादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(उपसर्जनात्) उपसर्जन संज्ञावाले **(स्वाङ्गात्)** स्वाङ्गवाची (क्रोडादिबह्वचः) क्रोड-आदि और बहु-अच् पद जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीष्) ङीष् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(क्रोडादि) **कल्याणक्रोडा।** वह स्त्री जिसकी गोदी मङ्गलमयी है। **कल्याणखुरा।** वह गौ जिसके खुर सुन्दर हैं। **(बहु-अच्) पृथुजघना।** वह स्त्री जिसका कटि देश स्थूल है। **महाललाटा।** वह स्त्री जिसका माथा विशाल है।*

*सिद्धि-(१) **कल्याणक्रोडा।** कल्याण+क्रोड। कल्याणक्रोड+टाप्। कल्याणक्रोडा+सु। कल्याणक्रोडा।*

*यहां उपसर्जन, स्वाङ्गवाची क्रोड-अन्तवाले प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय का प्रतिषेध है। **'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनात्०'** (४।१।५४) से 'ङीष्' प्रत्यय प्राप्त था। अतः **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**कल्याणखुरा** आदि।*

*(२) **पृथुजघना।** पृथु+जघन। पृथुजघन+टाप्। पृथुजघना+सु। पृथुजघना।*

*यहां उपसर्जन, स्वाङ्गवाची बहु-अच् पद अन्तवाले प्रातिपदिक से पूर्ववत् 'ङीष्' प्रत्यय का प्रतिषेध होकर 'टाप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**महाललाटा** आदि।*

ङीष्-प्रतिषेधः-

(१८) सहनञ्विद्यमानपूर्वाच्च।५७।

प०वि०-सह-नञ्-विद्यमानपूर्वात् ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-सहश्च नञ् च विद्यमानं च एतेषां समाहारः-सहनञ्विद्यमानम्, सहनञ्विद्यमानं पूर्वं यस्य तत्-सहनञ्विद्यमानपूर्वम्, तस्मात्- सहनञ्-विद्यमानपूर्वात् (समाहारद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-ङीष्, स्वाङ्गात्, उपसर्जनात् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-उपसर्जनात् सहनञ्विद्यमानपूर्वाच्च स्वाङ्गात् स्त्रियां ङीष् न।

अर्थः-उपसर्जनात् सहनञ्विद्यमानपूर्वाच्च स्वाङ्गवाचिनः प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो न भवति।

उदा०-**(सह)** सह केशा यस्याः सा-सकेशा। **(नञ्)** न विद्यमानाः केशा यस्याः सा अकेशा। **(विद्यमानम्)** विद्यमानाः केशा यस्याः सा-विद्यमानकेशा। एवम्-सनासिका, अनासिका, विद्यमाननासिका, इत्यादिकम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(उपसर्जनात्) उपसर्जन संज्ञावाले (सहनञ्विद्यमानपूर्वात्) सह, नञ्, विद्यमान शब्द पूर्ववाले (च) भी (स्वाङ्गात्) स्वाङ्गवाची प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीष्) ङीष् प्रत्यय (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(सह) सह **केशा यस्याः सा-सकेशा।** वह स्त्री जो केशों सहित है। (नञ्) **न विद्यमानाः केशा यस्याः सा अकेशा।** वह स्त्री जिसके केश नहीं हैं (गंजी)। **(विद्यमानम्) विद्यमानाः केशा यस्याः सा-विद्यमानकेशा।** वह स्त्री जिसके केश विद्यमान हैं।*

***सिद्धि**-(१) **सकेशा।** सह+केश। स+केश। सकेश+टाप्। सकेशा+सु। सकेशा।*

*यहां सह पूर्वक, उपसर्जन, स्वाङ्गवाची 'केश' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय का प्रतिषेध है। अतः '**अजाद्यतष्टाप्**' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। यहां '**तेन सहेति तुल्ययोगे**' (२।२।२८) से बहुव्रीहिसमास और '**वोपसर्जनस्य**' (६।३।८०) से 'सह' के स्थान में 'स' आदेश होता है।*

*(२) **अकेशा।** नञ्+केश। अकेश+टाप्। अकेशा+सु। अकेशा।*

*यहां पूर्ववत् 'ङीष्' प्रत्यय का प्रतिषेध होने पर 'टाप्' प्रत्यय है। **अविद्यमानाः केशा यस्याः सा अकेशा।** यहां वा०-'**नञोऽस्त्यर्थानां बहुव्रीहिरुत्तरपदलोपश्च**' (२।२।२४) से बहुव्रीहि और विद्यमान शब्द का लोप होता है।*

*(३) **विद्यमानकेशा।** विद्यमान+केश। विद्यमानकेश+टाप्। विद्यमानकेशा+सु। विद्यमानकेशा। पूर्ववत्।*

ङीष्-प्रतिषेधः–

(१६) नखमुखात् संज्ञायाम्।५८।

प०वि०-नखमुखात् ५।१ संज्ञायाम् ७।१।

स०-नखं च मुखं च एतयोः समाहारः-नखमुखम्, तस्मात्-नखमुखात्।

अनु०-ङीष्, स्वाङ्गात्, उपसर्जनात् न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-उपसर्जनात् स्वाङ्गात् नखमुखात् स्त्रियां ङीष् न संज्ञायाम्।

अर्थः-उपसर्जनसंज्ञकात् स्वाङ्गवाचिनो नखान्ताद् मुखान्ताच्च प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो न भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-**(नखम्)** शूर्पमिव नखानि यस्याः सा-शूर्पणखा। वज्रमिव नखानि यस्याः सा-वज्रणखा। **(मुखम्)** गौरं मुखं यस्याः सा-गौरमुखा। कालं मुखं यस्याः सा-कालमुखा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(उपसर्जनात्) उपसर्जन संज्ञावाले (स्वाङ्गात्) स्वाङ्गवाची (नखमुखात्) नख और मुख शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीष्) ङीष् प्रत्यय (न) नहीं होता है।*

उदा०-(नखम्) ***शूर्पमिव नखानि यस्याः सा-शूर्पणखा।*** *वह स्त्री जिसके छाज के समान बड़े-बड़े नाखून हों, रावण की बहिन।* ***वज्रमिव नखानि यस्याः सा-वज्रणखा।*** *वह स्त्री जिसके नाखून वज्र (हीरा) के समान कठोर हों।* ***(मुखम्) गौरं मुखं यस्याः सा-गौरमुखा।*** *गौर मुखवाली स्त्री।* ***कालं मुखं यस्याः सा-कालमुखा।*** *काले मुखवाली स्त्री।*

सिद्धि-शूर्पणखा। *शूर्प+नख। शूर्पणख+टाप्। शूर्पणखा+सु। शूर्पणखा।*

यहां उपसर्जन, स्वाङ्गवाची मुखान्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय का प्रतिषेध है। अतः 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है और ***'पूर्वपदात् संज्ञायामगः'*** *(८।४।३) से णत्व होता है। ऐसे ही-***वज्रणखा, गौरमुखा, कालमुखा।***

ङीष् (निपातनम्)-

(२०) दीर्घजिह्वी च च्छन्दसि।५६।

प०वि०-दीर्घजिह्वी १।१ च अव्ययपदम्, छन्दसि ७।१।

अनु०-ङीष् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि दीर्घजिह्वी च ङीष्।

अर्थः-छन्दसि विषये दीर्घजिह्वी इति च ङीष् प्रत्ययान्तो निपात्यते।

उदा०-दीर्घजिह्वी वै देवानां हव्यमलेट् (तु०-मै०सं० ३।१०।६)

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (दीर्घजिह्वी) 'दीर्घजिह्वी' यह शब्द (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीष्) ङीष् प्रत्ययान्त निपातित है।*

उदा०-दीर्घजिह्वी वै देवानां हव्यमलेट्। दीर्घजिह्वी ने देवताओं के हव्य को चाट लिया।

सिद्धि-दीर्घजिह्वी। दीर्घ+जिह्वा। दीर्घजिह्व+ङीष्। दीर्घजिह्वी+सु। दीर्घजिह्वी।

यहां 'जिह्वा' शब्द के संयोगोपध होने से 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्' (४।१।५४) से 'ङीष्' प्रत्यय का प्रतिषेध प्राप्त था, अतः इस सूत्र से वेद में 'ङीष्' प्रत्यय निपातित किया गया है।

ङीप्–

(२१) दिक्पूर्वपदान्ङीप्।६०।

प०वि०-दिक्-पूर्वपदात् ५।१ ङीप् १।१।

स०-दिक् पूर्वपदं यस्य तत्-दिक्पूर्वपदम्, तस्मात् दिक्पूर्वपदात् (बहुव्रीहिः)।

अन्वयः-दिक्पूर्वात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप्।

अर्थः-दिक्पूर्वपदात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-प्राङ् मुखं यस्याः सा-प्राङ्मुखी, प्राङ्मुखा। प्राङ् नासिका यस्याः सा-प्राङ्नासिकी, प्राङ्नासिका।

आर्यभाषाः *अर्थ-(दिक्पूर्वपदात्) दिशावाची पूर्वपदवाले (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग (ङीप्) प्रत्यय होता है।*

उदा०-प्राङ् मुखं यस्याः सा-प्राङ्मुखी, प्राङ्मुखा। पूर्व दिशा की ओर मुखवाली। प्राङ् नासिका यस्याः सा-प्राङ्नासिकी, प्राङ्नासिका। पूर्व दिशा की ओर नासिकावाली।

सिद्धि-(१) प्राङ्मुखी। प्राक्+मुख। प्राङ्मुख+ङीप्। प्राक्मुखी+सु। प्राङ्मुखी।

यहां दिशावाची प्राक् शब्द उपपद होने पर स्वाङ्गवाची मुख शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय है।

यहां 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्' (४।१।५४) से लेकर जहां-जहां 'ङीप्' प्रत्यय का विधान अथवा प्रतिषेध किया गया है, वहां-वहां इस सूत्र से दिशावाची शब्द पूर्वपद होने पर 'ङीप्' प्रत्यय का विधान किया गया है। 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनाद०' (४।१।५४) से विकल्प से 'ङीप्' प्रत्यय का विधान है अतः दिशावाची शब्द पूर्वपद होने पर उस विषय में 'ङीप्' प्रत्यय भी विकल्प से होता है। ऐसे ही सर्वत्र समझ लेवें।

(२) प्राङ्मुखा। प्राक्+मुख। प्राङ्मुख+टाप्। प्राङ्मुखा+सु। प्राङ्मुखा।

यहां 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनाद०' (४।१।५४) की विधि से विकल्प पक्ष में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रयय होता है। ऐसे ही-प्राङ्नासिकी। प्राङ्नासिका।

ङीष्–

(२२) वाहः ।६१।

प०वि०–वाहः ५ ।१ ।

अनु०–अत्र ङीष् इत्यनुवर्तते, न ङीप्, ङीषः प्रकरणत्वात् ।

अन्वयः–वाहः प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष् ।

अर्थः–वाहन्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति ।

उदा०–दित्यं वहतीति दित्यौही । प्रष्ठं वहतीति प्रष्ठौही ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(वाहः) वाह् जिसके अन्त में है उस (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीष्) ङीष् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**दित्यं वहतीति दित्यौही।** दित्य (राक्षस) को वहन करनेवाली गाड़ी। **प्रष्ठं वहतीति प्रष्ठौही।** नेता को वहन करनेवाली गाड़ी।*

*सिद्धि-**दित्यौही।** वह्+ण्वि। वह्+०। वाह्। दित्य+वाह्+ङीष्। दित्य+ऊठ्+आह्+ई। दित्य+ऊह्+ई। दित्यौही+सु। दित्यौही।*

*यहां प्रथम 'वह प्रापणे' (भ्वा०प०) धातु से **'वहश्च'** (३।२।६४) से 'ण्वि' प्रत्यय, **'वेरपृक्तस्य'** (६।१।६५) से 'वि' का सर्वहारी लोप, **'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्'** (१।१।६१) से प्रत्ययलक्षण कार्य **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से 'वह्' धातु को उपधावृद्धि होती है। 'दित्य+वाह्' इस वाहन्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय होता है। **'वाह ऊठ्'** (६।४।१३२) से सम्प्रसारण रूप ऊठ् आदेश, **'सम्प्रसारणाच्च'** (६।१।१०४) से पूर्वरूप-एकादेश और **'एत्येधत्यूठ्सु'** (६।१।८६) से वृद्धिरूप एकादेश होता है। ऐसे ही-**प्रष्ठौही।***

ङीष् (निपातनम्)–

(२३) सख्यशिश्वीति भाषायाम् ।६२।

प०वि०–सखी १।१ अशिश्वी १।१ इति अव्ययपदम्, भाषायाम् ७।१ ।

अनु०–ङीष् इत्यनुवर्तते ।

अन्वयः–भाषायां सखी, अशिश्वी इति स्त्रियां ङीष् ।

अर्थः–भाषायां विषये सखी, अशिश्वी इति शब्दौ स्त्रियां ङीष्-प्रत्ययान्तौ निपात्येते ।

उदा०–सखीयं मे ब्राह्मणी । न यस्याः शिशुरस्तीति-अशिश्वी ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(भाषायाम्) लोक भाषा में (सख्यशिश्वी) सखी और अशिश्वी (इति) ये दोनों शब्द (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीष्) ङीष्-प्रत्ययान्त निपातित हैं।*

*उदा०-**सखीयं मे ब्राह्मणी।** यह ब्राह्मणी मेरी सखी है। **न यस्याः शिशुरस्तीति-अशिश्वी।** वह ब्राह्मणी जिसका कोई शिशु=बालक नहीं है-वन्ध्या।*

*सिद्धि-(१) **सखी।** सखि+ङीष्। सखि+ई। सखी+सु। सखी।*

यहां 'सखि' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय निपातित है।

*(२) **अशिश्वी।** न+शिशु। अ+शिशु। अशिशु+ङीष्। अशिश्व्+ई। अशिश्वी+सु। अशिश्वी।*

यहां 'अशिशु' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय निपातित है। 'इको यणचि' (६।१।७४) से 'यण्' आदेश है।

ङीष्–

(२४) जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्।६३।

प०वि०-जातेः ५।१ अस्त्रीविषयात् ५।१ अयोपधात् ५।१।

स०-स्त्री विषयो यस्य तत्-स्त्रीविषयम्, न स्त्रीविषयम् इति अस्त्रीविषयम्, तस्मात्-अस्त्रीविषयात् (बहुव्रीहिगर्भितनञ्तत्पुरुषः)। य उपधा यस्य तद् योपधम्, न योपधम् इति अयोपधः, तस्मात्-अयोपधात् (बहुव्रीहिगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-ङीष् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अस्त्रीविषयाद् अयोपधाद् जातेः प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष्।

अर्थः-अनियतस्त्रीविषयाद् अयकारोपधाद् जातिवाचिनः प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति।

उदा०-कुक्कुटी। सूकरी। ब्राह्मणी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अस्त्रीविषयात्) जो शब्द केवल स्त्रीविषय में ही नियत नहीं है उस (अयोपधात्) यकार उपधा से रहित (जातेः) जातिवाची (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीष्) ङीष् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**कुक्कुटी**=मुर्गी। **सूकरी**=सूअरी। **ब्राह्मणी**=ब्राह्मण जाति की स्त्री।*

*सिद्धि-**कुक्कुटी।** कुक्कुट+ङीष्। कुक्कुटी+सु। कुक्कुटी।*

यहां स्त्री विषय में अनियत, यकार उपधा से रहित, जातिवाची 'कुक्कुट' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय है। ऐसे ही-सूकरी आदि।

ङीष्–

(२५) पाककर्णपर्णपुष्पफलमूलबालोत्तरपदाच्च।६४।

प०वि०–पाक-कर्ण-पर्ण-पुष्प-फल-मूल-बाल-उत्तरपदात् ५।१। च अव्ययपदम्।

स०–पाकश्च कर्णौ च पर्णं च पुष्पं च फलं च मूलं च बालं च-एतेषां समाहारः–पाक०बालम्। पाक०बालम् उत्तरपदं यस्य तत्-पाक०बालोत्तरपदम्, तस्मात्–पाक०बालोत्तरपदात् (समाहारद्वन्द्वगर्भित-बहुव्रीहिः)।

अनु०–ङीष्, जातेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–पाक०बालोत्तरपदाच्च जातेः प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष्।

अर्थः–पाकाद्युत्तरपदाद् जातिवाचिनः प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति। **उदाहरणम्**–

	उत्तरपदम्	ङीष्	भाषार्थः
१.	पाकः	ओदनस्य पाक इव पाको यस्याः सा-ओदनपाकी	ओदन के समान शीघ्र पकनेवाली ओषधि।
२.	कर्णौ	शङ्कुरिव कर्णौ यस्याः सा-शङ्कुकर्णी	शंकु (खूटी) के समान तीक्ष्ण कानों वाली गर्दभी।
३.	पर्णम्	शालस्य पर्णानीव पर्णानि यस्याः सा-शालपर्णी	साल वृक्ष के पत्तों के समान पत्तोंवाली ओषधि।
४.	पुष्पम्	शङ्खमिव पुष्पाणि यस्याः सा-शङ्खपुष्पी।	शंख के समान फूलोंवाली ओषधि।
५.	फलम्	दासी इव फलं यस्याः सा-दासीफली।	दासी=वेश्या के समान फलवाली नारी।
६.	मूलम्	दर्भस्य मूलमिव मूलं यस्याः सा-दर्भमूली।	डाभ के मूल के समान मूलवाली ओषधि।
७.	बालम्	गोर्बालानीव बालानि यस्याः सा गोबाली।	गौ के बालों के समान बालोंवाली नील गाय।

आर्यभाषाः *अर्थ-(पाक०बालोत्तरपदात्) पाक, कर्ण, पर्ण, पुष्प, फल, मूल, बाल-उत्तरपदवाले (जातेः) जातिवाचक प्रातिपदिक से (च) भी (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीष्) ङीष् प्रत्यय होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका अर्थ संस्कृत भाग में देख लेवें।

सिद्धि-ओदनपाकी। *ओदन+पाक। ओदनपाक+ङीष्। ओदनपाकी+सु। ओदनपाकी।*

यहां पाक उत्तरपदवाले, जातिवाची 'ओदनपाक' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से ङीष्' प्रत्यय है। ऐसे ही-शङ्कुकर्णी आदि।

ङीष्--

(२६) इतो मनुष्यजातेः।६५।

प०वि०-इतः ५।१ मनुष्यजातेः ५।१।

स०-मनुष्यस्य जातिरिति मनुष्यजातिः, तस्मात्-मनुष्यजातेः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-ङीष् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-मनुष्यजातेरिति प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष्।

अर्थः-मनुष्यजातिवाचिन इकारान्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति।

उदा०-अवन्ती। कुन्ती। दाक्षी। प्लाक्षी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(मनुष्यजातेः) मनुष्यजातिवाची (इतः) इकारान्त प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीष्) ङीष् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**अवन्ती।** मालवा प्रदेश की नारी। **कुन्ती।** शूरसेन राजा की औरसी पुत्री जिसका नाम पृथा था और यदुवंशी राजा कुन्तिभोज ने इसे गोद लिया था। यह राजा पाण्डु की पटरानी थी, इसी के गर्भ से कर्ण, युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन का जन्म हुआ था। **दाक्षी।** दक्ष की कन्या। पाणिनि की माता का नाम। **प्लाक्षी।** प्लक्ष जाति की नारी।*

*सिद्धि-(१) **अवन्ती।** अवन्ति+ञ्यङ्। अवन्ति+०। अवन्ति+ङीष्। अवन्ती+सु। अवन्ती।*

*यहां 'अवन्ति' शब्द से **'वृद्धेत्कोशलाजादाञ्ञ्यङ्'** (४।१।१६९) से 'ञ्यङ्' प्रत्यय, **'स्त्रियामवन्ति०'** (४।१।१७४) से उसका लुक्, तत्पश्चात् मनुष्यजातिवाची इकारान्त 'अवन्ति' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से ङीष् प्रत्यय है।*

(२) कुन्ती। कुन्ति+ञ्यङ्। कुन्ति+०। कुन्ति+ङीष्। कुन्ती+सु। कुन्ती। पूर्ववत्।

(३) दाक्षी। दाक्षि+ङीष्। दाक्षी+सु। दाक्षी। पूर्ववत्।

(४) प्लाक्षी। प्लाक्षि+ङीष्। प्लाक्षी+सु। प्लाक्षी। पूर्ववत्।

इति ङीष्प्रत्ययप्रकरणम्।

ऊङ्प्रत्ययप्रकरणम्

ऊङ्–

(१) ऊङुतः।६६।

प०वि०–ऊङ् १।१ उतः ५।१।

अनु०–मनुष्यजातेरित्यनुवर्तते।

अन्वयः–मनुष्यजातेरुतः प्रातिपदिकात् स्त्रियाम् ऊङ्।

अर्थः–मनुष्यजातिवाचिन उकारान्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियाम् ऊङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–कुरोरपत्यं स्त्री–कुरूः। ब्रह्म बन्धुर्यस्याः सा–ब्रह्मबन्धूः। वीरो बन्धुर्यस्याः सा–वीरबन्धूः।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(मनुष्यजातेः) मनुष्यजातिवाची (उतः) उकारान्त प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ऊङ्) ऊङ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०–कुरोपत्यं स्त्री–**कुरूः**। कुरु प्रदेश की पुत्री। कुरु=आधुनिक दिल्ली के आस-पास का प्रदेश। **ब्रह्मबन्धूः**। पतित ब्राह्मणी। **वीरबन्धूः**। पतित क्षत्रिया।*

***सिद्धि–कुरूः**। कुरु+ण्य। कुरु+०। कुरु+ऊङ्। कुरू+सु। कुरूः।*

*यहां 'कुरु' शब्द से आपत्य अर्थ में '**कुरुनादिभ्यो ण्यः**' (४।१।१७०) से 'ण्य' प्रत्यय, **स्त्रियामवन्तिकुन्तिकुरुभ्यश्च**' (४।१।१७४) से प्रत्यय का लुक् और स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ऊङ्' प्रत्यय होता है।*

*(२) **ब्रह्मबन्धूः**। ब्रह्मबन्धु+ऊङ्। ब्रह्मबन्धू+सु। ब्रह्मबन्धूः। ऐसे ही–**वीरबन्धूः**।*

ऊङ्–

(२) बाह्वन्तात् संज्ञायाम्।६७।

प०वि०–बाहु–अन्तात् ५।१ संज्ञायाम् ७।१।

स०–बाहुरन्ते यस्य तद्–बाह्वन्तम्, तस्मात्–बाह्वन्तात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०–ऊङ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–बाह्वन्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ऊङ् संज्ञायाम्।

अर्थः-बाहुशब्दान्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियाम् ऊङ्-प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-भद्रो बाहुर्यस्याः सा-भद्रबाहूः। जालं बाहुर्यस्याः सा-जालबाहूः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बाहु-अन्तात्) बाहु शब्द जिसके अन्त में है उस (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ऊङ्) ऊङ् प्रत्यय होता है (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।*

*उदा०-**भद्रो बाहुर्यस्याः सा-भद्रबाहूः।** कल्याणकारक बाहुवाली स्त्री। **जालं बाहुर्यस्याः सा-जालबाहूः।** फन्दा रूप बाहुवाली स्त्री।*

*सिद्धि-**भद्रबाहूः।** भद्र+बाहु। भद्रबाहु+ऊङ्। भद्रबाहू+सु। भद्रबाहूः।*

*यहां 'भद्रबाहु' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ऊङ्' प्रत्यय है। यह नारी विशेष की संज्ञा है। ऐसे ही-**जालबाहूः।***

ऊङ्—

(३) पङ्गोश्च।६८।

प०वि०-पङ्गोः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-ऊङ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-पङ्गोः प्रातिपदिकाच्च स्त्रियाम् ऊङ्।

अर्थः-पङ्गु-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अपि स्त्रियाम् ऊङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पङ्गूरियं ब्राह्मणी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(पङ्गोः) पङ्गु प्रातिपदिक से (च) भी (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ऊङ्) ऊङ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**पङ्गूरियं ब्राह्मणी।** यह ब्राह्मणी। यह ब्राह्मणी लंगड़ी है।*

*सिद्धि-**पङ्गूः।** पङ्गु+ऊङ्। पङ्गू+सु। पङ्गूः।*

*यहां पङ्गु शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ऊङ्' प्रत्यय है। '**अकः सवर्णे दीर्घः**' (६।१।९७) से दीर्घत्व होता है।*

ऊङ्—

(४) ऊरूत्तरपदादौपम्ये।६९।

प०वि०-ऊरु-उत्तरपदात् ५।१ औपम्ये ७।१।

स०-ऊरुरुत्तरपदं यस्य तत्-ऊरूत्तरपदम्, तस्मात्-ऊरूत्तरपदात् (बहुव्रीहिः)। सादृश्यम्=उपमा। उपमाया भाव औपम्यम्, तस्मिन्-औपम्ये।

अनु०-ऊङ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-ऊरूत्तरपदात् प्रातिपदिकात् स्त्रियाम् ऊङ् औपम्ये।

अर्थः-ऊरु-उत्तरपदात् प्रातिपदिकात् स्त्रियाम् ऊङ् प्रत्ययो भवति, औपम्ये गम्यमाने।

उदा०-कदलीस्तम्भ इव ऊरू यस्याः सा-कदलीस्तम्भोरूः। नागनासा इव ऊरू यस्याः सा-नागनासोरूः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ऊरूत्तरपदात्) 'ऊरु' शब्द उत्तरपद में है जिसके उस प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ऊङ्) ऊङ् प्रत्यय होता है (औपम्ये) यदि वहां उपमा=सदृशता अर्थ की प्रतीति हो।*

*उदा०-**कदलीस्तम्भ इव ऊरू यस्याः सा-कदलीस्तम्भोरूः।** केले के खम्भ के समान चिकणी हैं जंघायें (रान) जिसकी वह स्त्री। **नागनासा इव ऊरू यस्याः सा-नागनासोरूः।** हाथी के सूण्ड के समान गोल हैं जंघायें जिसकी वह स्त्री।*

*सिद्धि-**कदलीस्तम्भोरूः।** कदलीस्तम्भ+ऊरु। कदलीस्तम्भोरु+ऊङ्। कदलीस्तम्भोरू+सु। कदलीस्तम्भोरूः।*

*यहां ऊरु-उत्तरपदवाले 'कदलीस्तम्भरु' प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ऊङ्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**नागनासोरूः।***

ऊङ्-

(५) संहितशफलक्षणवामादेश्च।७०।

प०वि०-संहित-शफ-लक्षण-वामादेः ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-संहितश्च शफश्च लक्षणं च वामश्च ते-संहित०वामाः, संहित०वामा आदौ यस्य तत्-संहित०वामादि, तस्मात्-संहित०वामादेः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-ऊङ्, ऊरूत्तरपदाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितशफलक्षणवामादेरूत्तरपदात् प्रातिपदिकात् स्त्रियाम् ऊङ्।

अर्थः-संहितशफलक्षणवामादिभूताद् ऊरूत्तरपदात् प्रातिपदिकात् स्त्रियाम् ऊङ् प्रत्ययो भवति। **उदाहरणम्**-

	पूर्वपदम्	ऊरूत्तरपदम् (ऊङ्)	भाषार्थः
१.	संहितः	संहितावूरू यस्याः सा-संहितोरूः ।	परस्पर मिली हुई जंघाओंवाली स्त्री।
२.	शफाः	शफ इवोरू यस्याः सा-शफोरूः ।	गौ के खुर के समान पृथक्-पृथक् जंघाओंवाली।
३.	लक्षणम्	लक्षणमूरू यस्याः सा-लक्षणोरूः ।	शुभ लक्षण से युक्त जंघावाली स्त्री।
४.	वामः	वामावूरू यस्याः सा-वामोरूः	सुन्दर जंघाओंवाली स्त्री।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहित०वामादेः) संहित, शफ, लक्षण, वाम जिसके आदि में हैं और (ऊरूत्तरपदात्) ऊरु शब्द जिसके उत्तरपद में है उस प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ऊङ्) ऊङ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनके अर्थ संस्कृत भाग में देख लेवें।

सिद्धि-संहितोरूः। यहां संहित पूर्वपद और ऊरु उत्तरपदवाले 'संहितोरु' प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ऊङ्' प्रत्यय है। ऐसे ही-शफोरूः आदि।

ऊङ्—

(६) कद्रुकमण्डल्वोश्छन्दसि।७१।

प०वि०-कद्रु-कमण्डल्वोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) छन्दसि ७।१।

स०-कद्रुश्च कमण्डलुश्च तौ-कद्रुकमण्डलू, तयोः-कद्रुकमण्डल्वोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-ऊङ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि कद्रुकमण्डलुभ्यां स्त्रियाम् ऊङ्।

अर्थः-छन्दसि विषये कद्रुकमण्डलुभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां स्त्रियाम् ऊङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(कद्रुः)** कद्रूश्च वै सुपर्णी च (तै०सं० ६।१।६।१)। **(कमण्डलुः)** मा स्म कमण्डलूं शूद्राय दद्यात्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (कद्रुकमण्डल्वोः) कद्रु और कमण्डलु प्रातिपदिकों से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ऊङ्) ऊङ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(कद्रुः) **कद्रूश्च वै सुपर्णी च।** कद्रू का अर्थ सुपर्णी है। **(कमण्डलुः) मा स्म कमण्डलूं शूद्राय दद्यात्।** अपना जलपात्र किसी अपवित्र जन को न देवें।*

*सिद्धि-**कद्रूः।** कद्रू+ऊङ्। कद्रू+सु। कद्रूः।*

*यहां 'कद्रु' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ऊङ्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**कमण्डलूः।***

ऊङ्—

(७) संज्ञायाम्।७२।

प०वि०-संज्ञायाम् ७।१।

अनु०-ऊङ्, कद्रुकमण्डल्वोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-कद्रुकमण्डलुभ्यां स्त्रियाम् ऊङ् संज्ञायाम्।

अर्थः-कद्रुकमण्डलुभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां स्त्रियाम् ऊङ् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-(कद्रुः) कद्रूः। (कमण्डलुः) कमण्डलूः।

आर्यभाषाः अर्थ- *(कद्रुकमण्डल्वोः) कद्रु और कमण्डलु प्रातिपदिकों से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ऊङ्) ऊङ् प्रत्यय होता है (संज्ञायाम्) यदि यहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।*

*उदा०-**(कद्रु) कद्रूः।** कश्यप ऋषि की स्त्री का नाम। **(कमण्डलुः) कमण्डलूः।** कमण्डलु के समान कृष्ण वर्ण की स्त्री।*

*सिद्धि-(१) **कद्रूः।** कद्रु+ऊङ्। कद्रू+सु। कद्रूः।*

यहां 'कद्रु' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ऊङ्' प्रत्यय है।

*(२) **कमण्डलूः।** कमण्डलु+कन्। कमण्डलु+०। कमण्डलु+ऊङ्। कमण्डलु+सु। कमण्डलूः।*

*यहां प्रथम **'संज्ञायां च'** (५।३।९७) से इव-अर्थ में 'कन्' प्रत्यय और **'लुम्मनुष्ये'** (५।३।९८) से 'कन्' प्रत्यय का लुप् होता है। स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ऊङ्' प्रत्यय है।*

इति ऊङ्प्रत्ययप्रकरणम्।

ङीन्प्रत्ययप्रकरणम्

ङीन्—

(१) शाङ्गर्वाद्यञो ङीन्।७३।

प०वि०-शाङ्गर्रवादि-अञः ५।१ ङीन् १।१।

स०-शाङ्र्गरव आदिर्येषां ते-शाङ्र्गरवादयः, शारङ्गरवादयश्च अञ् च एतेषां समाहारः-शाङ्र्गरवाद्यञ्, तस्मात्-शारङ्र्गवाद्यञः (बहुव्रीहिगर्भित-समाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः-शाङ्र्गरवाद्यञः प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीन्।

अर्थः-शाङ्र्गरवादिभ्योऽञ्प्रत्ययान्तेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ङीन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(शाङ्र्गरवादिः) शृङ्गरोरपत्यं स्त्री-शाङ्र्गरवी। कपटोरपत्यं स्त्री-कापटवी। (अञ्) बिदस्य गोत्रापत्यं बैदी। उर्वस्य गोत्रापत्यं स्त्री और्वी।

शाङ्र्गरव। कापटव। गौगुलव। ब्राह्मण। गौतम। कामण्डलेय। ब्राह्मणकृतेय। आनिचेय। आनिधेय। आशोकेय। वात्स्यायन। माञ्जायन। केकसेय। काव्य। शैव्य। एहि। पर्य्येहि। आश्मरथ्य। औदपान। अराल। चण्डाल। वतण्ड। भोगवद्गौरिमतोः संज्ञायाम्। भोगवती। गौरिमती। नृनरयोर्वृद्धिश्च। नारी इति शाङ्र्गरवादयः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(शाङ्र्गरवाद्यञः) शाङ्र्गरव आदि तथा अञ्-प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीन्) ङीन् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(शाङ्र्गरवादिः) **शृङ्गरोरपत्यं स्त्री-शाङ्र्गरवी।** शृङ्गरु की पुत्री। **कपटोरपत्यं स्त्री-कापटवी। (अञ्) बिदस्य गोत्रापत्यं बैदी।** बिद की पौत्री। **उर्वस्य गोत्रापत्यं स्त्री और्वी।** उर्व की पौत्री।*

***सिद्धि-(१) शाङ्र्गरवी।** शृङ्गरु+अण्। शाङ्र्गरो+अ। शाङ्र्गरव्+ङीन्। शाङ्र्गरवी+सु। शाङ्र्गरवी।*

*यहां प्रथम 'शृङ्गरु' शब्द से **'तस्यापत्यम्'** (४।१।९२) से अपत्य अर्थ में 'अण्' प्रत्यय, **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'ओर्गुणः'** (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है। तत्पश्चात् स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीन्' प्रत्यय है।*

***(२) कापटवी।** कपटु+अण्+ङीन्। कापटवी। पूर्ववत्।*

***(३) बैदी।** बिद+अञ्। बैद+ङीन्। बैदी+सु। बैदी।*

*यहां प्रथम **'अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्'** (४।१।१०४) से गोत्रापत्य अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय, तत्पश्चात् स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीन्' प्रत्यय है।*

***(४) और्वी।** उर्व+अञ्+ङीन्। और्वी।*

स्वरः-ङीन् प्रत्यय के नित् होने से 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (६।१।१९१) से आद्युदात्त स्वर होता है-शार्ङ्गरवी।

इति ङीन्प्रत्ययप्रकरणम्।

चाप्प्रत्ययप्रकरणम्

चाप्–

(१) यङश्चाप्।७४।

प०वि०-यङः ५।१ चाप् १।१।

अन्वयः-यङः प्रातिपदिकात् स्त्रियां चाप्।

अर्थः-यङ्प्रत्ययान्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां चाप् प्रत्ययो भवति। यङ् इत्यनेन ञ्यङः ष्यङश्च सामान्येन ग्रहणं क्रियते।

उदा०-**(ञ्यङ्)** आम्बष्ठस्यापत्यं स्त्री आम्बष्ठ्या। सौवीरस्यापत्यं स्त्री सौवीर्या। कौसलस्यापत्यं स्त्री कौसल्या। **(ष्यङ्)** करीषस्य गन्ध इव गन्धो यस्येति करीषगन्धिः, करीषगन्धेरपत्यं स्त्री कारीषगन्ध्या। वराहस्यापत्यं स्त्री वाराह्या। बलाकस्यापत्यं स्त्री बालाक्या।

***आर्यभाषाः* अर्थ-*(यङः) यङ्-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (चाप्) चाप् प्रत्यय होता है। यहां यङ् कहने से ञ्यङ् और ष्यङ् प्रत्यय का ग्रहण किया जाता है।*

*उदा०-(ञ्यङ्) **आम्बष्ठस्यापत्यं स्त्री आम्बष्ठ्या।** आम्बष्ठ की पुत्री। **सौवीरस्यापत्यं स्त्री सौवीर्या।** सौवीर की पुत्री। **कौसलस्यापत्यं स्त्री कौसल्या।** कोसल की पुत्री। **(ष्यङ्) करीषस्य गन्ध इव गन्धो यस्याः सा करीषगन्धिः, करीषगन्धेरपत्यं स्त्री कारीषगन्ध्या।** करीषगन्धि की पौत्री। **वराहस्यापत्यं स्त्री वाराह्या।** वराह की पौत्री। **बलाकस्यापत्यं स्त्री बालाक्या।** बलाक की पौत्री।*

***सिद्धि-(१) आम्बष्ठ्या।** आम्बष्ठ+ञ्यङ्। आम्बष्ठ्य+चाप्। आम्बष्ठ्या+सु। आम्बष्ठ्या।*

यहां आम्बष्ठ शब्द से 'वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ्' (४।१।१७१) से अपत्य अर्थ में ञ्यङ्' प्रत्यय और इस सूत्र से 'चाप्' प्रत्यय होता है।

*(२) **सौवीर्या।** सौवीर+ञ्यङ्+चाप्। पूर्ववत्।*

*(३) **कौसल्या।** कोसल+ञ्यङ्+चाप्। पूर्ववत्।*

*(४) **कारीषगन्ध्या।** करीष+गन्ध। करीषगन्धि। कारीषगन्धि+अण्। कारीषगन्ध+ष्यङ्। कारीषगन्ध्य+चाप्। कारीषगन्ध्या+सु। कारीषगन्ध्या।*

यहां प्रथम 'गन्धस्येद०' (५।४।१३५) से समासान्त इत्-आदेश, करीषगन्धि शब्द से 'तस्यापत्यम्' (४।१।९२) से 'अण्' प्रत्यय, 'अणिञोरनार्षयो०' (४।१।७८) से 'ष्यङ्' प्रत्यय और इस सूत्र से 'चाप्' प्रत्यय होता है।

*(५) **वाराह्या**। वराह+इञ्। वाराहि। वाराह+ष्यङ्। वाराह्य+चाप्। वाराह्या+सु। वाराह्या।*

यहां प्रथम 'वराह' शब्द से 'अत इञ्' (४।१।९५) से अपत्य अर्थ में 'इञ्' प्रत्यय, 'अणिञोरनार्षयो०' (४।१।७८) से 'ष्यङ्' प्रत्यय और स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'चाप्' प्रत्यय होता है।

*(६) **बालाक्या**। बलाक+इञ्। बालाकि। बालाक्+ष्यङ्। बालाक्य+चाप्। बालाक्या+सु। बालाक्या। पूर्ववत्।*

चाप्–

(२) आवट्याच्च।७५।

प०वि०–आवट्यात् ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–चाप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–आवट्याच्च स्त्रियां चाप्।

अर्थः–आवट्यात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां चाप् प्रत्ययो भवति।

उदा०–अवटस्य गोत्रापत्यं स्त्री-आवट्या।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(आवट्यात्) आवट्य प्रातिपदिक से (च) भी (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (चाप्) चाप् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**अवटस्य गोत्रापत्यं स्त्री-आवट्या**। अवट नामक पुरुष की पौत्री।*

*सिद्धि-**आवट्या**। अवट+यञ्। आवट्य+चाप्। आवट्या+सु। आवट्या।*

यहां प्रथम 'अवट' शब्द से 'गर्गादिभ्यो यञ्' (४।१।१०५) से गोत्रापत्य अर्थ में 'यञ्' प्रत्यय और यञन्त 'आवट्य' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'चाप्' प्रत्यय होता है।

इति चाप्प्रत्ययप्रकरणम्।

तद्धितप्रत्ययाधिकारः

(१) तद्धिताः।७६।

प०वि०–तद्धिताः १।३।

अर्थः–इत ऊर्ध्वं यद् वक्ष्यामस्तद्धितसंज्ञकाः प्रत्ययास्ते वेदितव्याः, इत्यधिकारोऽयम् आ पञ्चमाध्यायपरिसमाप्तेः।

आर्यभाषाः अर्थ-*जो इससे आगे कहेंगे उन प्रत्ययों की (तद्धिताः) तद्धित संज्ञा होती है। यह पञ्चम अध्याय की समाप्ति पर्यन्त तद्धित संज्ञा का अधिकार है।*

*तद्धित संज्ञा का यह फल है कि '**कृत्तद्धितसमासाश्च**' (१।२।४६) से तद्धित प्रत्ययान्त शब्दों की प्रातिपदिक संज्ञा होती है और उनसे '**स्वौजस०**' (४।१।२) से सु-आदि प्रत्ययों की उत्पत्ति होती है।*

तिः–

(१) यूनस्तिः।७७।

प०वि०-यूनः ५।१ तिः १।१।

अन्वयः-यूनः प्रातिपदिकात् स्त्रियां तिः।

अर्थः-युवन्-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां तिः प्रत्ययो भवति, स च तद्धितसंज्ञको भवति।

उदा०-युवतिः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(यूनः) युवन् शब्द प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (तिः) ति प्रत्यय होता है और उसकी (तद्धिताः) तद्धित संज्ञा होती है।*

उदा०-युवतिः। *युवावस्थावाली स्त्री।*

सिद्धि-युवतिः। *युवन्+ति। यहां 'युवन्' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ति' प्रत्यय है। 'ति' प्रत्यय के परे होने पर '**स्वादिष्वसर्वनामस्थाने**' (१।४।१७) से 'युवन्' शब्द की पदसंज्ञा होती है और '**नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य**' (८।२।७) से 'युवन्' के 'न्' का लोप होता है। युवति शब्द में 'ति' प्रत्यय की तद्धित संज्ञा होने से '**कृत्तद्धितसमासाश्च**' से युवति शब्द की प्रातिपदिक संज्ञा होती है और तत्पश्चात् उससे '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'सु' आदि प्रत्ययों की उत्पत्ति होती है।*

ष्यङ्-आदेशः–

(१) अणिञोरनार्षयोर्गुरूपोत्तमयोः ष्यङ् गोत्रे।७८।

प०वि०-अण्-इञोः ६।२ अनार्षयोः ६।२ गुरु-उपोत्तमयोः ६।२ ष्यङ् १।१। गोत्रे ७।१।

स०-अण् च इञ् च तौ-अणिञौ, तयोः-अणिञोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। ऋषिणा प्रोक्त आर्षः, नार्षः-अनार्षः। अनार्षश्च अनार्षश्च तौ-अनार्षौ, तयोः-अनार्षयोः (नञ्गर्भित एकशेषद्वन्द्वः)। त्रिप्रभृतीनामन्त्यमक्षरमुत्तमम्,

उत्तमस्य समीपम् उपोत्तमम्, गुरु उपोत्तमं ययोस्ते गुरूपोत्तमे, तयोः-गुरूपोत्तमयोः (अव्ययीभावगर्भितबहुव्रीहिः)।

अन्वयः-गोत्रेऽनार्षयोरणिञोर्गुरूपोत्तमयोः प्रातिपदिकयोः स्त्रियां ष्यङ्।

अर्थः-गोत्रे यावनार्षौ अणिञौ प्रत्ययौ, तदन्तयोर्गुरूपोत्तमयोः प्रातिपदिकयोः स्थाने स्त्रियां ष्यङ् आदेशो भवति।

उदा०-करीषस्य गन्ध इव गन्धो यस्य सः-करीषगन्धिः। करीषगन्धेरपत्यं स्त्री-कारीषगन्ध्या। कुमुदस्य गन्ध इव गन्धो यस्य सः-कुमुदगन्धिः। कुमुदगन्धेरपत्यं स्त्री-कौमुदगन्ध्या। वराहस्यापत्यं स्त्री-वाराह्या। बलाकस्यापत्यं स्त्री-बालाक्या।

आर्यभाषाः *अर्थ-(गोत्रे) गोत्रापत्य अर्थ में जो (अनार्षौ) ऋषिवाची प्रातिपदिक से भिन्न विहित (अणिञौ) अण् और इञ् प्रत्यय हैं, (गुरूपोत्तमयोः) तदन्त प्रातिपदिकों का अन्तिम अक्षर से पूर्ववर्ती अक्षर गुरु हो तो उन प्रातिपदिकों से विहित उन अण् और इञ् प्रत्ययों के स्थान में 'ष्यङ्' आदेश होता है।*

उदा०-उदाहरण संस्कृत भाग में देख लेवें। इनका अर्थ और सिद्धि (४।१।७४) के प्रवचन में देख लेवें।

सिद्धि-(१) करीषगन्ध्या। *करीष+गन्ध। कारीषगन्धि+अण्। करीषगन्ध्+अ। कारीषगन्ध+ष्यङ्। कारीषगन्ध्य्+चाप्। कारीषगन्ध्या+सु। कारीषगन्ध्या।*

*यहां 'करीषगन्धि' शब्द ऋषिवाची नहीं, अतः अनार्ष है, इससे गोत्रापत्य अर्थ में **'तस्यापत्यम्'** (४।१।९२) से 'अण्' प्रत्यय और उसके स्थान में इस सूत्र से 'ष्यङ्' आदेश होता है और तत्पश्चात् **'यङश्चाप्'** (४।१।७४) से स्त्रीलिङ्ग में 'चाप्' प्रत्यय होता है।*

विशेष-*तीन वा अधिक अक्षरवाले शब्द के अन्तिम स्वर को उत्तम कहते हैं, उत्तम के समीपवर्ती स्वर को उपोत्तम कहा जाता है। यहां 'कारीषगन्ध' शब्द में अन्तिम स्वर 'अ' है और गकारवर्ती उपोत्तम 'अ' **'संयोगे गुरु'** (१।४।११) से गुरु है। अतः 'कारीषगन्ध' शब्द गुरूपोत्तम है।*

*(२) **वाराह्या।** वराह+इञ्। वाराह्+इ। वाराह्+ष्यङ्। वाराह्य+चाप्। वाराह्या+सु। वाराह्या।*

*यहां अनार्ष, गुरूपोत्तम 'वाराहि' शब्द में **'अत इञ्'** (४।१।९५) से गोत्रापत्य अर्थ में 'इञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'इञ्' प्रत्यय के स्थान में 'ष्यङ्' आदेश होता है। **'यङश्चाप्'** (४।१।७४) से स्त्रीलिङ्ग में 'चाप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**बालाक्या** आदि।*

ष्यङ् आदेशः–

(२) गोत्रावयवात् ।७६।

प०वि०-गोत्रावयवात् ५ ।१।

स०-गोत्रं च तदवयवं चेति गोत्रावयवम्, तस्मात्-गोत्रावयवात् (कर्मधारयः)। अत्र राजदन्तादेराकृतिगणत्वाद् विशेषणस्य परनिपातः।

गोत्रं चेह लौकिकं गृह्यते, न पारिभाषिकम्। लोके च प्रधानभूत आदिपुरुषः स्वप्रभवस्यापत्यसन्तानस्य संज्ञाकारी गोत्रमित्युच्यते। तथा हि भरतो नाम कश्चिद् आद्यः प्रधानः पुरुषोऽभूत्, तेन सर्वे एव तत्पूर्वकाः पुत्रपौत्रादयो भरता इति व्यपदिश्यन्ते।

अनु०-अणिञोः, ष्यङ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-गोत्रावयवाद् अणिञोः स्त्रियां ष्यङ्।

अर्थः-गोत्रावयववाचिभ्यः=लोके गोत्राख्येभ्यः प्रातिपदिभ्यो गोत्रापत्येऽर्थे विहितयोरणिञोः प्रत्यययोः स्थाने स्त्रियां ष्यङ् आदेशो भवति।

उदा०-पुणिकस्य गोत्रापत्यं स्त्री-पौणिक्या। भुणिकस्य गोत्रापत्यं स्त्री-भौणिक्या। मुखरस्य गोत्रापत्यं स्त्री मौखर्या।

आर्यभाषाः *अर्थ-(गोत्रावयवात्) लोक में गोत्र नाम से प्रसिद्ध प्रातिपदिकों से (गोत्रे) गोत्रापत्य अर्थ में विहित (अणिञोः) अण् और इञ् प्रत्यय के स्थान में (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ष्यङ्) ष्यङ् आदेश होता है।*

*उदा०-**पुणिकस्य गोत्रापत्यं स्त्री-पौणिक्या।** पुणिक की पौत्री। **भुणिकस्य गोत्रापत्यं स्त्री-भौणिक्या।** भुणिक की पौत्री। **मुखरस्य गोत्रापत्यं स्त्री मौखर्या।** मुखर की पौत्री।*

सिद्धि-पौणिक्या। *पुणिक+इञ्। पौणिक्+इ। पौणिक्+ष्यङ्+चाप्। पौणिक्य+आ। पौणिक्या+सु। पौणिक्या।*

*यहां लोक में प्रसिद्ध गोत्रवाची 'पुणिक' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में **'अत इञ्'** (४।१।९५) से 'इञ्' प्रत्यय और इस सूत्र से 'इञ्' के स्थान में 'ष्यङ्' आदेश है। **'यङश्चाप्'** (४।१।७४) से स्त्रीलिङ्ग में 'चाप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**भौणिक्या, मौखर्या।***

ष्यङ्-प्रत्ययः–

(३) क्रौड्यादिभ्यश्च ।८०।

प०वि०–क्रौडि-आदिभ्यः ५ ।३ च अव्ययपदम् ।

स०–क्रौडिरादिर्येषां ते-क्रौड्यादयः, तेभ्यः-क्रौड्यादिभ्यः (बहुव्रीहिः) ।

अनु०–ष्यङ् इत्यनुवर्तते ।

अन्वयः–क्रौड्यादिभ्यश्च स्त्रियां ष्यङ् ।

अर्थः–क्रौडि-आदिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ष्यङ् प्रत्ययो भवति ।

उदा०–क्रौड्या । लाड्या इत्यादिकम् ।

क्रौडि । लाडि । व्याडि । आपिशलि । अप्पक्षिति । चौपयत । चैटयत । शैकयत । वैल्वयत । वैकल्पयत । सौधातकि । सूतात् युवत्याम् । सूत्या युवतिः । भोज, क्षत्रिये । भोज्या क्षत्रिये । भौरिकि । भौलिकि । शाल्मलि । शालास्थलि । कापिष्ठलि । गौकक्ष्य इति क्रौड्यादयः ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(क्रौड्यादिभ्यः) क्रौडि आदि प्रातिपदिकों से (च) भी (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ष्यङ्) ष्यङ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(क्रौडि)** क्रौड्या। **(लाडि)** लाड्या।*

सिद्धि-क्रौड्या। *कौडि+ष्यङ्। क्रौड्+य। क्रौड्य। चाप्। क्रौड्या+सु। क्रौड्या।*

*यहां क्रौडि शब्द से इस सूत्र से 'ष्यङ्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से इकार का लोप होता है। **'यङश्चाप्'** (४।१।७४) से स्त्रीलिङ्ग में 'चाप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**लाड्या** आदि।*

ष्यङ् विकल्पः–

(४) दैवयज्ञिशौचिवृक्षिसात्यमुग्रिकाण्ठेविद्धिभ्यो-ऽन्यतरस्याम् ।८१।

प०वि०–दैवयज्ञि-शौचिवृक्षि-सात्यमुग्रि-काण्ठेविद्धिभ्यः ५ ।३ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम् ।

स०–दैवयज्ञिश्च शौचिवृक्षिश्च सात्यमुग्रिश्च काण्ठेविद्धिश्च ते-दैवयज्ञि०काण्ठेविद्धयः, तेभ्यः-दैवयज्ञिकाण्ठेविद्धिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः) ।

अनु०-ष्यङ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-दैवयज्ञि०काण्ठेविद्धिभ्यः स्त्रियाम् अन्यतरस्यां ष्यङ्।

अर्थः-दैवयज्ञिशौचिवृक्षिसात्यमुग्रिकाण्ठेविद्धिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां विकल्पेन ष्यङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**दैवयज्ञिः**) देवयज्ञस्य गोत्रापत्यं स्त्री-दैवयज्ञ्या, दैवयज्ञी। (**शौचिवृक्षिः**) शौचिवृक्षेर्गोत्रापत्यं स्त्री-शौचिवृक्ष्या, शौचिवृक्षी। (**सात्यमुग्रिः**) सात्यमुग्रेर्गोत्रापत्यं स्त्री-सात्यमुग्र्या, सात्यमुग्री। (**काण्ठेविद्धिः**) काण्ठेविद्धेर्गोत्रापत्यं स्त्री-काण्ठेविद्ध्या, काण्ठेविद्धी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(दैवयज्ञि०काण्ठेविद्धिभ्यः) दैवयज्ञि, शौचिवृक्षि, सात्यमुग्रि, काण्ठेविद्धि, प्रातिपदिकों से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (ष्यङ्) ष्यङ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(दैवयज्ञिः) देवयज्ञस्य गोत्रापत्यं स्त्री-दैवयज्ञ्या, **दैवयज्ञी**। देवयज्ञ की पौत्री। (शौचिवृक्षिः) शौचिवृक्षेर्गोत्रापत्यं स्त्री-**शौचिवृक्ष्या, शौचिवृक्षी**। शुचिवृक्ष की पौत्री। (सात्यमुग्रिः) सात्यमुग्रेर्गोत्रापत्यं स्त्री-**सात्यमुग्र्या, सात्यमुग्री**। सत्यमुग्र की पौत्री। (काण्ठेविद्धिः) काण्ठेविद्धेर्गोत्रापत्यं स्त्री-**काण्ठेविद्ध्या, काण्ठेविद्धी**। कण्ठेविद्ध की पौत्री।*

*सिद्धि-(१) **दैवयज्ञ्या**। देवयज्ञ+इञ्। दैवयज्ञि। दैवयज्ञि+ष्यङ्। दैवयज्ञ्य+चाप्। दैवयज्ञ्या+सु। दैवयज्ञ्या।*

*यहां प्रथम 'देवयज्ञ' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में **'अत इञ्'** (४।१।९५) से इञ् प्रत्यय है, तत्पश्चात् 'दैवयज्ञि' शब्द से इस सूत्र से 'ष्यङ्' प्रत्यय होता है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से इकार का लोप होता है। **'यङश्चाप्'** (४।१।७४) से स्त्रीलिङ्ग में 'चाप्' प्रत्यय है।*

*(२) **दैवयज्ञी**। दैवयज्ञि+ङीष्। दैवयज्ञ+ई। दैवयज्ञी+सु। दैवयज्ञी।*

*यहां विकल्प पक्ष में **'इतो मनुष्यजातेः'** (४।१।६५) से 'ङीष्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**शौचिवृक्ष्या, शौचिवृक्षी** आदि।*

*विशेष-अत्र पदमञ्जर्यां पण्डितहरदत्तमिश्रः प्राह-देवा यज्ञा यष्टव्या अस्य देवयज्ञः, शुचिर्वृक्षोऽस्य शुचिवृक्षः, सत्यमुग्रमस्य सत्यमुग्रः, निपतनाद् विशेष्यस्य पूर्वनिपातो मुमागमश्च, कण्ठे विद्धमस्य, कण्ठे वा विद्धः **'अमूर्द्धमस्तकात्०'** (६।३।१२) इत्यलुक्।*

इति स्त्रीप्रत्ययप्रकरणम्।

तद्धितप्रत्ययविकल्पाधिकारः

(१) समर्थानां प्रथमाद् वा।८२।

प०वि०-समर्थानाम् ६ ।३ प्रथमात् ५ ।१ वा अव्ययपदम्।

इत ऊर्ध्वं वक्ष्यमाणास्तद्धितप्रत्ययाः समर्थानां मध्ये यः प्रथमः (सूत्रपाठे यः प्रथमोच्चारितः) तस्माद् विकल्पेन भवन्तीत्यधिकारोऽयम् **'प्राग्दिशो विभक्तिः'** (५ ।३ ।१) इति यावत्। यथा **'तस्यापत्यम्'** (४ ।१ ।९२) इत्यत्र 'तस्य' अपत्यम् इति द्वयमपि समर्थम्, परं 'तस्य' इति सूत्रपाठे प्रथममुच्चारितमतः षष्ठ्यन्तात् प्रातिपदिकादेव प्रत्ययो विधीयते, नापत्यशब्दात्। उपगोरपत्यमौपगव इत्यादिकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-इससे आगे कहे जानेवाले तद्धित प्रत्यय (समर्थानां प्रथमाद् वा) जो पद समर्थ-पदों में प्रथम अर्थात् सूत्रपाठ में प्रथमोच्चारित है, उससे विकल्प से होते हैं, यह 'प्राग्दिशो विभक्तिः' (५ ।३ ।१) तक अधिकार है। जैसे- 'तस्यापत्यम्' (४ ।१ ।९२) यहां 'तस्य' और 'अपत्यम्' ये दो समर्थ पद हैं, परन्तु इन दोनों में 'तस्य' यह पद सूत्रपाठ में प्रथम उच्चारित है, अतः तस्य=षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से ही प्रत्ययविधि होती है, अपत्य शब्द से नहीं। 'वा' कथन से विकल्प पक्ष में वाक्य भी बना रहता है। जैसे-उपगोरपत्यम्-औपगवः, इत्यादि।*

प्राग्दीव्यतीयाण्प्रत्ययाधिकारः

अण्-

(१) प्राग्दीव्यतोऽण्।८३।

प०वि०-प्राक् १ ।१ दीव्यतः ५ ।१ अण् १ ।१।

अर्थः-दीव्यतः=**'तेन दीव्यति खनति जयति जितम्'** (४ ।४ ।२) इत्यस्मात् प्राक्=पूर्वम् अण् प्रत्ययो भवतीत्यधिकारोऽयम्। वक्ष्यति- **'तस्यापत्यम्'** (४ ।१ ।९२) इति। तत्राण् प्रत्ययो भवति-उपगोरपत्यम्-औपगवः। कपटोरपत्यम्-कापटव इत्यादिकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(दीव्यतः) तेन दीव्यति खनति जयति जितम्' (४ ।४ ।२) इस सूत्र से (प्राक्) पहले-पहले (अण्) अण् प्रत्यय होता है, अपवाद विषय को छोड़कर,*

यह अधिकार सूत्र है। जैसे- ***'तस्यापत्यम्'*** *(४।१।९२) यहां इस अकिार सूत्र से अपत्य अर्थ में प्रथम समर्थ प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय होता है। उपगोरपत्यम्-* ***औपगवः।*** *उपगु का पुत्र।* ***कपटोरपत्यम्-कापटवः।*** *कपटु का पुत्र इत्यादि।*

अण्–

(२) अश्वपत्यादिभ्यश्च।८४।

प०वि०–अश्वपति-आदिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०–अश्वपतिरादिर्येषां ते-अश्वपत्यादयः, तेभ्यः अश्वपतिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–प्राग्दीव्यतः, अण् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अश्वपत्यादिभ्यश्च प्राग्दीव्यतोऽण्।

अर्थः–अश्वपत्यादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः प्राक्-दीव्यतीयेष्वर्थेष्वण् प्रत्ययो भवति।

उदा०–अश्वपतेरपत्यम्-आश्वपतम्। शतपतेरपत्यम्-शातपतम्, इत्यादिकम्।

अश्वपति। शतपति। धनपति। गणपति। राष्ट्रपति। कुलपति। गृहपति। धान्यपति। पशुपति। धर्मपति। सभापति। प्राणपति। क्षेत्रपति। स्थानपति। यज्ञपति। धन्वपति। अधिपति। बन्धुपति। इत्यश्वपत्यादयः।

आर्यभाषाः अर्थ–*(अश्वपत्यादिभ्यः) अश्वपति आदि प्रातिपदिकों से (प्राग्-दीव्यतः) पूर्वदीव्यतीय अर्थों में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

उदा०– ***अश्वपतेरपत्यम्-आश्वपतम्।*** *अश्वपति का पुत्र-आश्वपतः।* ***शतपतेरपत्यम्- शातपतम्।*** *शतपति का पुत्र-शातपत, इत्यादि।*

सिद्धि–आश्वपतम्। *अश्वपति+अण्। आश्वपत्+अ। आश्वपत+सु। आश्वपतम्।*

यहां 'अश्वपति' शब्द से ***'तस्यापत्यम्'*** *(४।१।९२) से प्राग्दीव्यतीय अपत्य अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है।* ***'तद्धितेष्वचामादेः'*** *(७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और* ***'यस्येति च'*** *(६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-* ***शातपतम्*** *आदि। यहां* ***'दित्यदितिपत्युत्तरपदाण्ण्यः'*** *(४।१।८५) से 'ण्य' प्रत्यय प्राप्त था, यह सूत्र उसका पूर्व अपवाद है।*

ण्यः–

(३) दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः ।८५।

प०वि०–दिति–अदिति–आदित्य–पत्युत्तरपदात् ५।१ ण्यः १।१।

स०–पतिरुत्तरपदं यस्य तत्–पत्युत्तरपदम्। दितिश्च अदितिश्च आदित्यश्च प्रत्युत्तरपदं च एतेषां समाहारः–दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदम्, तस्मात्–दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदात् (बहुव्रीहिगर्भितसमाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–प्राग्, दीव्यत इति चानुवर्तते।

अन्वयः–दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदात् प्राग्दीव्यतो ण्यः।

अर्थः–दित्यदित्यादित्येभ्यः प्रत्युत्तरपदेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु ण्यः प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(दितिः)** दितेरपत्यम्–दैत्यः। **(अदितिः)** अदितेरपत्यम्–आदित्यः। **(आदित्यः)** आदित्यस्यापत्यम्–आदित्यः। **(पत्युत्तरपदम्)** प्रजापतेरपत्यम्–प्राजापत्यम्। सेनापतेरपत्यम्–सैनापत्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ–(दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदात्) दिति, अदिति, आदित्य और पति–उत्तरपदवाले प्रातिपदिक से (प्राग्दीव्यतः) पूर्व–दीव्यतीय अर्थों में (ण्यः) ण्य प्रत्यय होता है।*

*उदा०–**(दितिः) दितेरपत्यम्–दैत्यः।** दिति का पुत्र राक्षस। दिति दक्ष की पुत्री थी, जो कश्यप को ब्याही थी, यह दैत्यों की माता थी। **(अदितिः) अदितेरपत्यम्–आदित्यः।** अदिति का पुत्र देवता। देवताओं की माता का नाम अदिति है। **(आदित्यः) आदित्यस्यापत्यम्–आदित्यः।** आदित्य=देवता का पुत्र। धाता, मित्र अर्यमा, रुद्र, वरुण, सूर्य, भग, विवस्वान्, पूषा, सविता, त्वष्टा और विष्णु ये १२ आदित्य कहाते हैं। **(पत्युत्तरपदम्) प्रजापतेरपत्यम्–प्राजापत्यम्।** प्रजापति=ब्रह्मा का पुत्र, विराट्। विराट् का मनु और मनु के मरीचि आदि दश पुत्र थे। **सेनापतेरपत्यम्–सैनापत्यम्।** सेनापति का पुत्र।*

*सिद्धि–(१) **दैत्यः।** दिति+ण्य। दैत्+य। दैत्य+सु। दैत्यः।*

*यहां 'दिति' शब्द से प्राग्दीव्यतीय अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'ण्य' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११६) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है।*

*(२) **आदित्यः।** अदिति+ण्य। आदित्यः। पूर्ववत्।*

(३) आदित्यः । आदित्य+ण्य । आदित्यः । पूर्ववत् ।

*यहां 'हलो यमां यमि लोपः' (८।४।६३) से पूर्व-यकार का विकल्प से लोप होता है, विकल्प पक्ष में दो यकार भी रहते हैं-**आदित्यः ।***

*(४) **प्राजापत्यम् ।** प्रजापति+ण्य । प्राजापत्य+सु । प्राजापत्यम् । पूर्ववत् । ऐसे ही-**सैनापत्यम् ।***

अञ्–

(४) उत्सादिभ्योऽञ् ।८६।

प०वि०-उत्सादिभ्यः ५ ।३ अञ् १ ।१ ।

स०-उत्स आदिर्येषां ते-उत्सादयः, तेभ्यः-उत्सादिभ्यः (बहुव्रीहिः) ।

अनु०-प्राग्, दीव्यत इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-उत्सादिभ्यः प्राग् दीव्यतोऽञ् ।

अर्थः-उत्सादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु अञ् प्रत्ययो भवति ।

उदा०-उत्सस्यापत्यम्-औत्सः । उदपानस्यापत्यम्-औदपानः, इत्यादिकम् ।

उत्स । उपदान । विकर । विनोद । महानद । महानस । महाप्राण । तरुण । तलुन । वष्कयासे । धेनु । पृथिवि । पंक्ति । जगती । त्रिष्टुप् । अनुष्टुप् । जनपद । भरत । उशीनर । ग्रीष्म । पीलु । कुल । उदस्थान, देशे । पृष, दंशे भल्लकीय । रथन्तर । मध्यन्दिन । बृहत् । महत् । सत्वन्तु । कुरु । पञ्चाल । इन्द्रावसान । उष्णिक् । ककुप् । सुवर्ण । सुपर्ण । देव ग्रीष्मादच्छन्दसि । इत्युत्सादयः ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(उत्सादिभ्यः) उत्स आदि प्रातिपदिकों से (प्राग्दीव्यतः) पूर्व-दीव्यतीय अर्थों में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है ।*

*उदा०-**उत्से जातः-औत्सः ।** उत्स=स्रोत में पैदा हुआ । **उदपाने जातः-औदपानः ।** उदपान=कूप समीपवर्ती होद में उत्पन्न हुआ ।*

यहां प्राग्दीव्यतीय अर्थों में 'अञ्' प्रत्यय का विधान किया गया है अतः अपत्य आदि यथासम्भव अर्थ ग्रहण किये जाते हैं, ऐसा सर्वत्र समझें ।

***सिद्धि-औत्सः ।** उत्स+अञ् । औत्स्+अ । औत्स+सु । औत्सः ।*

*यहां 'उत्स' शब्द से प्राग्दीव्यतीय 'तत्र जातः' (४।३।२५) से जात अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और 'यस्येति च' (६।४।११७) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**औदपानः** आदि।*

नञ्+स्नञ्-

(५) स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्।८७।

प०वि०-स्त्री-पुंसाभ्याम् ५।२ नञ्-स्नञौ १।२ भवनात् ५।१।

स०-स्त्री च पुमाँश्च तौ-स्त्रीपुंसौ, ताभ्याम्-स्त्रीपुंसाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। नञ् च स्नञ् च तौ-नञस्नञौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-प्राग् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-स्त्रीपुंसाभ्यां प्राग् भवनाद् नञ्स्नञौ।

अर्थः-स्त्रीपुंसाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां प्राग्भवनीयेष्वर्थेषु यथासंख्यं नञ्स्नञौ प्रत्ययौ भवतः। **'धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्'** (५।२।१) इत्यस्मात् प्राक् येऽर्थास्तत्रायं विधिर्वेदितव्यः। **उदाहरणम्-**

	प्रातिपदिकम्	नञ्+स्नञ्	भाषार्थः
१.	स्त्री	१ स्त्रीषु भवम्=स्त्रैणम्	स्त्रियों में होनेवाला कार्य।
२.	पुमान्	पुंसु भवम्=पौंस्नम्।	पुरुषों में होनेवाले कार्य।
१.	स्त्री	स्त्रीणां समूहः=स्त्रैणम्	स्त्रियों का समूह।
२.	पुमान्	पुंसां समूहः=पौंस्नम्	पुरुषों का समूह।
१.	स्त्री	स्त्रीभ्यो हितम्=स्त्रैणम्	स्त्रियों के लिये हितकारी।
२.	पुमान्	पुंभ्यो हितम्=पौंस्नम्	पुरुषों के लिये हितकारी।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(स्त्रीपुंसाभ्याम्) स्त्री और पुंस् प्रातिपदिकों से (प्राग् भवनात्) प्राग्भवनीय अर्थों में यथासंख्य (नञ्स्नञौ) नञ् और स्नञ् प्रत्यय होते हैं।

उदा०-उदाहरण और उनका अर्थ संस्कृत भाग में देख लेवें।

__सिद्धि-(१) स्त्रैणम्।__ स्त्री+नञ्। स्त्रै+न। स्त्रैण+सु। स्त्रैणम्।

*यहां 'स्त्री' प्रादिपदिक से प्राग्-भवनीय- '**तत्र भवः**' (४।३।५३) से भव-अर्थ में, '**तस्य समूहः**' (४।२।३६) से समूह अर्थ में और '**तस्मै हितम्**' (५।१।५) से हित अर्थ*

में इस सूत्र से 'नञ्' प्रत्यय होता है। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और 'अट्कुप्वाङ्०' (८।४।२) से णत्व होता है।

*(२) **पौंस्नम्।** पुंस्+स्नञ्। पौं+स्न। पौंस्न+सु। पौंस्नम्।*

यहां 'संयोगान्तस्य लोपः' (८।२।२३) से पुंस् के सकार का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

प्रत्ययस्य लुक्–

(६) द्विगोर्लुगनपत्ये।८८।

प०वि०–द्विगोः ५।१ लुक् १।१ अनपत्ये ७।१।

स०–न अपत्यमिति अनपत्यम्, तस्मिन्–अनपत्ये (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–प्राग्, दीव्यत इति चानुवर्तते।

अन्वयः–द्विगोः प्राग् दीव्यतो लुग् अनपत्ये।

अर्थः–द्विगुसंज्ञकात् प्रातिपदिकाद् विहितस्य प्राग्दीव्यतीयस्य प्रत्ययस्य लुग् भवति, अपत्येऽर्थे तु न भवति।

उदा०–पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पुरोडाशः–पञ्चकपालः, दशकपालः। द्वौ वेदावधीते इति द्विवेदः, त्रिवेदः।

आर्यभाषाः *अर्थ–(द्विगोः) द्विगुसंज्ञक प्रातिपदिक से विहित (प्राग् दीव्यतः) पूर्व-दीव्यतीय प्रत्यय का (लुक्) लुक् होता है (अनपत्ये) अपत्य अर्थ में तो नहीं होता है।*

*उदा०–**पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पुरोडाशः–पञ्चकपालः।** पांच शरावों में शुद्ध किया हुआ पुरोडाश। **दशकपालः।** दश शरावों में शुद्ध किया हुआ पुरोडाश। **द्वौ वेदावधीते–द्विवेदः।** दो वेदों का अध्ययन करनेवाला। **त्रिवेदः।** तीन वेदों का अध्ययन करनेवाला।*

*सिद्धि–(१) **पञ्चकपालः।** पञ्चकपाल+अण्। पञ्चकपाल+०। पञ्चकपाल+सु। पञ्चकपालः।*

*यहां 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' (२।१।५०) से तद्धितार्थ में तत्पुरुष समास, 'संख्यापूर्वो द्विगुः' (२।१।५१) से द्विगु संज्ञा, 'संस्कृतं भक्षाः' (४।२।१५) से 'अण्' प्रत्यय और इस सूत्र से उसका लुक् होता है। ऐसे ही–**दशकपालः।***

*(२) **द्विवेदः।** द्विवेदः+अण्। द्विवेद+०। द्विवेदः+सु। द्विवेदः।*

*यहां 'तदधीते तद् वेद' (४।२।५८) से अण् प्रत्यय और इस सूत्र से उसका लुक् होता है। ऐसे ही–**त्रिवेदः।***

प्रत्ययस्य-अलुक्--

(७) गोत्रेऽलुगचि।८६।

प०वि०-गोत्रे ७।१ अलुक् १।१ अचि ७।१।

स०-न लुक् इति अलुक् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-प्राग्, दीव्यत इति चानुवर्तते।

अन्वयः-प्रातिपदिकाद् गोत्रेऽलुक् प्राग्दीव्यतोऽचि।

अर्थः-प्रातिपदिकाद् गोत्रापत्येऽर्थे विहितस्य प्रत्ययस्यालुग् भवति, प्राग्दीव्यतीयेऽजादौ प्रत्यये परतः।

उदा०-गर्गस्य गोत्रापत्यं गार्ग्यः, गार्ग्यस्येमे छात्रा इति-गार्गीयाः, वात्सीयाः। अत्रेर्गोत्रापत्यम्-आत्रेयः, आत्रेयस्येमे छात्रा इति आत्रेयीयाः। खरपस्य गोत्रापत्यं खारपायणः, खारपायणस्येमे छात्रा इति खारपायणीयाः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक से (गोत्रे) गोत्रापत्य अर्थ में विहित प्रत्यय का (अलुक्) लुक् नहीं होता है, (प्राग्दीव्यतः) यदि प्राग्दीव्यतीय (अचि) अजादि प्रत्यय परे हो।*

*उदा०-गर्गस्य **गोत्रापत्यं गार्ग्यः, गार्ग्यस्येमे** छात्रा इति-**गार्गीयाः।** गर्ग का पौत्र गार्ग्य और गार्ग्य के छात्र 'गार्गीयाः' कहाते हैं। ऐसे ही-**वात्सीयाः। अत्रेर्गोत्रापत्यम्-आत्रेयः, आत्रेयस्येमे** छात्रा इति **आत्रेयीयाः।** अत्रि का पौत्र आत्रेय और आत्रेय के छात्र '**आत्रेयीयाः**' कहाते हैं। खरपस्य **गोत्रापत्यम्-खारपायणः, खारपायणस्येमे छात्रा इति खारपायणीयाः।** खरप का पौत्र खारपायण और खारपायण के छात्र '**खारपायणीयाः**' कहाते हैं।*

*सिद्धि-(१) **गार्गीयाः।** गर्ग+यञ्। गार्ग्य। गार्ग्य+छ। गार्ग्य्+ईय। गार्गीय+जस् गार्गीयाः।*

*यहां प्रथम 'गर्ग' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में '**गर्गादिभ्यो यञ्**' (४।१।१०५) से 'यञ्' प्रत्यय है, तत्पश्चात् 'गार्ग्य' प्रातिपदिक से '**वृद्धाच्छः**' (४।२।११३) से प्राग्दीव्यतीय अजादि 'छ' (ईय) प्रत्यय है। इस सूत्र से इस अजादि प्रत्यय के परे होने पर गोत्रापत्य अर्थ में विहित 'यञ्' प्रत्यय का लुक् नहीं होता है। '**यञिञोश्च**' से 'यञ्' का लुक् प्राप्त था, इस सूत्र से प्रतिषेध किया गया है। यहां '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप और '**आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति**' (६।४।१५१) से अंग के यकार का लोप होता है। ऐसे ही-**वात्सीयाः।***

*(२) **आत्रेयीयाः।** अत्रि+ढक्। आत्र्+एय। आत्रेय। आत्रेय+छ। आत्रेय्+ईय। आत्रेयीय+जस्। आत्रेयीयाः।*

यहां 'अत्रि' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में 'इतश्चानिञः' (४।१।१२२) से 'ढक्' प्रत्यय है। इस सूत्र से उसका लुक् नहीं होता है। 'अत्रिभृगु०' (२।४।६५) से लुक् प्राप्त था, उसका प्रतिषेध किया गया है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

*(३) **खारपायणीयाः।** खरप+फक्। खारप्+आयन। खारपायण। खारपायण+छ। खारपायण्+ईय। खारपायणीय+जस्। खारपायणीयाः।*

*यहां 'खरप्' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में '**नडादिभ्यः फक्**' (४।१।९९) से 'फक्' प्रत्यय है। इस सूत्र से उसका लुक् नहीं होता है। '**यस्कादिभ्यो गोत्रे**' (२।४।६३) से लुक् प्राप्त था, उसका प्रतिषेध किया गया है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

प्रत्ययस्य लुक्–

(८) यूनि लुक्।६०।

प०वि०–यूनि ७।१ लुक् १।१।

अनु०–प्राग्, दीव्यतः, अचि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–प्रातिपदिकाद् यूनि लुक् प्राग् दीव्यतोऽचि।

अर्थः–प्रातिपदिकाद् युवापत्येऽर्थे विहितस्य प्रत्ययस्य लुग् भवति प्राग्दीव्यतीयेऽजादौ प्रत्यये परतः।

उदा०–फाण्टाहृतस्यापत्यम्–फाण्टाहृतिः, फाण्टाहृतेर्युवापत्यम्–फाण्टाहृतः, फाण्टाहृतस्येमे छात्रा इति–फाण्टाहृताः। भागवित्तस्यापत्यम्–भागवित्तिः, भागवित्तेर्युवापत्यम्–भागवित्तिकः, भागवित्तिकस्येमे छात्रा इति–भागवित्ताः।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक से (यूनि) युवापत्य अर्थ में विहित प्रत्यय का (लुक्) लुक् होता है। (प्राग्दीव्यतः) यदि प्राग्दीव्यतीय (अचि) अजादि प्रत्यय परे हो।*

*उदा०–**फाण्टाहृतस्यापत्यम्–फाण्टाहृतिः, फाण्टाहृतेर्युवापत्यम्–फाण्टाहृतः, फाण्टाहृतस्येमे छात्रा इति–फाण्टाहृताः।** फाण्टाहृत का पुत्र 'फाण्टाहृति' कहाता है। फाण्टाहृति का युवापत्य 'फाण्टाहृतः' कहाता है और 'फाण्टाहृतः' के छात्र 'फाण्टाहृताः' कहाते हैं। **भागवित्तस्यापत्यम्–भागवित्तिः, भागवित्तेर्युवापत्यम्–भागवित्तिकः, भागवित्तिकस्येमे छात्रा इति–भागवित्ताः।** भागवित्त का पुत्र 'भागवित्तिः' कहाता है। भागवित्ति का युवापत्य 'भागवित्तिक' कहाता है। 'भागवित्तिक' के छात्र 'भागवित्ताः' कहाते हैं।*

सिद्धि-(१) फाण्टाहृताः । फाण्टाहृत+इञ् । फाण्टाहृति । फाण्टाहृति+ण । फाण्टाहृति+० । फाण्टाहृति+अण् । फाण्टाहृत्+अ । फाण्टाहृत+जस् । फाण्टाहृताः ।

*यहां प्रथम 'फाण्टाहृत' शब्द से अपत्य अर्थ **'अत इञ्'** (४।१।९५) से 'इञ्' प्रत्यय है। 'फाण्टाहृति' से युवापत्य अर्थ में **'फाटाहृतिमिमताभ्यां णफिञौ'** (४।१।१५०) से 'ण' प्रत्यय है। उससे प्राग्दीव्यतीय अजादि प्रत्यय की विवक्षा में युवापत्य अर्थ में विहित 'ण' प्रत्यय का लुक् हो जाता है। तत्पश्चात् शेष 'फाण्टाहृति' प्रातिपदिक से **'इञश्च'** (४।२।१११) से प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय होता है।*

(२) भागवित्ताः । भागवित्त+इञ् । भागवित्ति । भागवित्ति+ठक् । भागवित्ति+० । भागवित्ति+अण् । भागवित्त्+अ । भागवित्त+जस् । भागवित्ताः ।

*यहां युवापत्य अर्थ में **'वृद्धाद् ठक् सौवीरेषु बहुलम्'** (४।१।१४८) से ठक् प्रत्यय और युवापत्य अर्थ में इस सूत्र से उसका लुक् होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

प्रत्ययस्य लुग्विकल्पः-

(६) फक्फिञोरन्यतरस्याम् ।६१।

प०वि०-फक्फिञोः ६।२ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-प्राग्, दीव्यतः, अचि, यूनि, लुक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-प्रातिपदिकात् यूनि फक्फिञोरन्यतरस्यां लुक्, प्राग्-दीव्यतोऽचि।

अर्थः-प्रातिपदिकाद् युवापत्येऽर्थे विहितयोः फक्फिञोर्विकल्पेन लुग् भवति, प्राग्दीव्यतीयेऽजादौ प्रत्यये परतः।

उदा०-(फक्) गर्गस्य गोत्रापत्यम्-गार्ग्यः। गार्ग्यस्य युवापत्यम्-गार्ग्यायणः। गार्ग्यायणस्येमे छात्रा इति गार्गीयाः, गार्ग्यायणीया वा। वात्स्याः, वात्स्यायनीया वा। **(फिञ्)** यस्कस्यापत्यम्-यास्कः। यास्कस्य युवापत्यम्-यास्कायनिः। यास्कायनेरिमे छात्रा इति-यास्कीयाः, यास्कायनीया वा।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक से (यूनि) युवापत्य अर्थ में विहित (फक्फिञोः) फक् और फिञ् प्रत्ययों का (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (लुक्) लुक् होता है (प्राग् दीव्यतः) यदि प्राग्दीव्यतीय (अचि) अजादि प्रत्यय परे हो।*

*उदा०-(फक्) **गर्गस्य गोत्रापत्यम्-गार्ग्यः। गार्ग्यस्य युवापत्यम्-गार्ग्यायणः। गार्ग्यायणस्येमे छात्रा इति गार्गीयाः, गार्ग्यायणीया वा।** गर्ग का पौत्र गार्ग्य कहाता है। गार्ग्य का युवापत्य गार्ग्यायण कहाता है। गार्ग्यायण के छात्र 'गार्गीयाः' अथवा 'गार्ग्यायणीयाः'*

*कहाते हैं। (फिञ्) **यस्कस्यापत्यम्-यास्कः। यास्कस्य युवापत्यम्-यास्कायनिः। यास्कायनेरिमे छात्रा इति-यास्कीयाः, यास्कायनीया वा।** यस्क का पुत्र 'यास्कः' कहाता है। यास्क का युवापत्य 'यास्कायनि' कहाता है। यास्कायनि के छात्र 'यास्कीयाः' अथवा 'यास्कायनीयाः' कहाते हैं।*

*सिद्धि-**गार्गीयाः।** गर्ग+यञ्। गार्ग्य। गार्ग्य+फक्। गार्ग्य+०। गार्ग्य+छ। गार्ग्+ईय। गार्गीय+जस्। गार्गीयाः।*

*यहां गर्ग शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में '**गर्गादिभ्यो यञ्**' (४।१।१०५) से यञ् प्रत्यय है। तत्पश्चात् 'गार्ग्य' शब्द से युवापत्य अर्थ में '**यञिञोश्च**' (४।१।१०१) से 'फक्' प्रत्यय है। उससे प्राग्दीव्यतीय अजादि 'छ' (ईय) प्रत्यय करने पर युवापत्य अर्थ में विहित 'फक्' प्रत्यय का इस सूत्र से लुक् होता है।*

*(२) **गार्ग्यायणीयाः।** गर्ग+यञ्। गार्ग्य। गार्ग्य+फक्। गार्ग्य+आयन। गार्ग्यायण। गार्ग्यायण+छ। गार्ग्यायण्+ईय। गार्ग्यायणीय+जस्। गार्ग्यायणीयाः।*

यहां विकल्प पक्ष में युवापत्य अर्थ में विहित 'फक्' प्रत्यय का लुक् नहीं होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

*(३) **यास्कीयाः।** यस्क+अण्। यास्क। यास्क+फिञ्। यास्क+०। यास्कीय+जस्। यास्कीयाः।*

*यहां 'यस्क' शब्द से अपत्य अर्थ में '**शिवादिभ्योऽण्**' (४।१।११२) से 'अण्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् 'यास्क' शब्द से युवापत्य अर्थ में '**अणो द्व्यचः**' (४।१।१५६) से 'फिञ्' प्रत्यय है। उससे प्राग्दीव्यतीय अजादि 'छ' प्रत्यय की विवक्षा में युवापत्य अर्थ में विहित 'फिञ्' प्रत्यय का इस सूत्र से लुक् होता है।*

*(४) **यास्कायनीयाः।** यस्क+अण्। यास्क। यास्क+फिञ्। यास्क्+आयनि। यास्कायनि। यास्कायनि+छ। यास्कयिन्+ईय। यास्कायनीय+जस्। यास्कायनीयाः।*

यहां विकल्प पक्ष में युवापत्य अर्थ में विहित 'फिञ्' प्रत्यय का प्राग्दीव्यतीय अजादि 'छ' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से लुक् नहीं होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

अपत्यार्थप्रत्ययप्रकरणम्

यथाविहितं प्रत्ययः-

(१) तस्यापत्यम्।६२।

प०वि०-तस्य ६।१ अपत्यम् १।१।

अनु०-समर्थानां, प्रथमाद् वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-समर्थानां प्रथमात् तस्य अपत्यं वा यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः-समर्थानां सूत्रे प्रथमोच्चारितात् तस्य इति षष्ठी-समर्थात् प्रातिपदिकात् **'अपत्यम्'** इत्यस्मिन्नर्थे विकल्पेन यथाविहितं प्रत्ययो भवति।

उदा०-उपगोरपत्यम्-औपगवः। अश्वपतेरपत्यम्-आश्वपतः। दितेरपत्यम्-दैत्यः। उत्सस्यापत्यम्-औत्सः। स्त्रिया अपत्यम्-स्त्रैणः। पुंसोऽपत्यम्-पौस्नः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(समर्थानाम्) समर्थ पदों में (प्रथमात्) सूत्रपाठ में प्रथम उच्चारित (तस्य) षष्ठी-समर्थ (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (वा) विकल्प से यथाविहित प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**उपगोरपत्यम्-औपगवः।** उपगु का पुत्र-औपगव। **अश्वपतेरपत्यम्-आश्वपतः।** अश्वपति का पुत्र-आश्वपत। **दितेरपत्यम्-दैत्यः।** दिति का पुत्र-दैत्य। **उत्सस्यापत्यम्-औत्सः।** उत्स का पुत्र-औत्स। **स्त्रिया अपत्यम्-स्त्रैणः।** स्त्री का पुत्र-स्त्रैण। स्त्री के नाम से प्रसिद्ध। **पुंसोऽपत्यम्-पौस्नः।** पुमान् का पुत्र-पौंस्न। पुरुष के नाम से प्रसिद्ध।*

*सिद्धि-(१) **औपगवः।** उपगु+ङस्+अण्। औपगो+अ। औपगव+सु। औपगवः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'उपगु' शब्द से इस सूत्र से अपत्य अर्थ में **'प्राग् दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय है। **तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और 'ओर्गुणः' (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है।*

*(२) **आश्वपतम्।** अश्वपति+ङस्+अण्। आश्वपतम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'अश्वपति' शब्द से इस सूत्र से अपत्य अर्थ में **'अश्वपत्यादिभ्यश्च'** (४।१।८४) से यथाविहित अण् प्रत्यय है।*

*(३) **दैत्यः।** दिति+ङस्+ण्य। दैत्यः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'दिति' शब्द से इस सूत्र से अपत्य अर्थ में **'दित्यदित्या०'** (४।१।८५) से यथाविहित 'ण्य' प्रत्यय है।*

*(४) **औत्सः।** उत्स+ङस्+अञ्। औत्सः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'उत्स' शब्द से इस सूत्र से अपत्य अर्थ में **'उत्सादिभ्योऽञ्'** (४।१।८६) से यथाविहित 'अञ्' प्रत्यय है।*

*(५) **स्त्रैणः।** स्त्री+ङस्+नञ्। स्त्रैणः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ स्त्री शब्द से अपत्य अर्थ में **'स्त्रीपुंसाभ्यां०'** (४।१।८७) से यथाविहित 'नञ्' प्रत्यय है।*

*(६) **पौस्नः।** पुंस्+स्नञ्। पौंस्नः। पूर्ववत् 'स्नञ्' प्रत्यय है।*

एकप्रत्ययनियमः–

(२) एको गोत्रे।६३।

प०वि०-एकः १।१ गोत्रे ७।१।

अनु०-प्रातिपदिकाद् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-प्रातिपदिकाद् गोत्रे एकः प्रत्ययः।

अर्थः-प्रातिपदिकाद् गोत्रापत्येऽर्थे एक एव प्रत्ययो भवति।

उदा०-गर्गस्यापत्यम्-गार्गिः। गार्गेरपत्यम्-गार्ग्यः। गार्ग्यस्यापत्यम्-गार्ग्यः। सर्वस्मिन् व्यवहितजनितेऽपि गोत्रापत्ये गर्गशब्दाद् यञेव प्रत्ययो भवतीति प्रत्ययो नियम्यते।

आर्यभाषाः अर्थ-*(प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक से (गोत्रे) गोत्रापत्य अर्थ में (एकः) एक ही प्रत्यय होता है।*

*उदा०-गर्गस्यापत्यम्-गार्गिः। गार्गेरपत्यम्-गार्ग्यः। गार्ग्यस्यापत्यम्-गार्ग्यः। गर्ग का पुत्र 'गार्गिः' कहाता है। गार्गि का पुत्र 'गार्ग्य' कहाता है। गोत्रापत्य की विवक्षा में 'गर्ग' शब्द से एक 'यञ्' ही प्रत्यय होता है और वह 'गार्ग्य' कहाता है। इस प्रकार प्रत्यय का नियमन किया गया है। **गर्गस्य गोत्रापत्यम्-गार्ग्यः। वत्सस्य गोत्रापत्यम्-वात्स्यः।** गर्ग का पौत्र-गार्ग्य। वत्स का पौत्र-वात्स्य।*

*सिद्धि-**गार्ग्यः।** गर्ग+ङस्+यञ्। गार्ग्+य। गार्ग्य+सु। गार्ग्यः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'गर्ग' शब्द गोत्रापत्य अर्थ में **'गर्गादिभ्यो यञ्'** (४।१।१०५) से विहित 'यञ्' प्रत्यय का इस सूत्र से यह नियम किया गया है कि एक ही प्रत्यय होता है। ऐसे ही-वत्स शब्द से-**वात्स्यः।***

युवापत्ये प्रत्ययनियमः–

(३) गोत्राद् यून्यस्त्रियाम्।६४।

प०वि०-गोत्रात् ५।१ यूनि ७।१ अस्त्रियाम् ७।१।

स०-न स्त्रीति अस्त्री, तस्याम्-अस्त्रियाम् (नञ्तत्पुरुषः)।

अन्वयः-यूनि गोत्राद् यथाविहितं प्रत्ययोऽस्त्रियाम्।

अर्थः-युवापत्ये विवक्षिते गोत्रप्रत्ययान्तादेव प्रातिपदिकाद् यथाविहितं प्रत्ययो भवति, स्त्रियां तु न भवति।

उदा०–गर्गस्य गोत्रापत्यम्–गार्ग्यः। गार्ग्यस्य युवापत्यम्–गार्ग्यायणः, वात्स्यायनः। उपगोर्गोत्रापत्यम्–औपगवः। औपगवस्य युवापत्यम्–औपगविः। नडस्य गोत्रापत्यम्–नाडायनः। नाडायनस्य युवापत्यम्–नाडायनिः।

आर्यभाषाः *अर्थ*–*(यूनि) युवापत्य की विवक्षा में (गोत्रात्) गोत्र-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से ही यथाविहित प्रत्यय होता है (अस्त्रियाम्) स्त्रीत्व की विवक्षा में तो नहीं होता।*

उदा०–***गर्गस्य गोत्रापत्यम्–गार्ग्यः। गार्ग्यस्य युवापत्यम्–गार्ग्यायणः।*** *गर्ग का पौत्र गार्ग्य कहाता है और गार्ग्य का युवापत्य गार्ग्यायण कहाता है।* ***उपगोर्गोत्रापत्यम्–औपगवः। औपगवस्य युवापत्यम्–औपगविः।*** *उपगु का पौत्र 'औपगवः' कहाता है और औपगव का युवापत्य 'औपगविः' कहाता है।* ***नडस्य गोत्रापत्यम्–नाडायनः। नाडायनस्य युवापत्यम्–नाडायनिः।*** *नड का पौत्र 'नाडायन' कहाता है और नाडायन का युवापत्य 'नाडायनिः' कहाता है।*

सिद्धि–(१) गार्ग्यायणः। *गर्ग+ङस्+यञ्। गार्ग्+य। गार्ग्य+फक्। गार्ग्य+आयन। गार्ग्यायण+सु। गार्ग्यायणः।*

यहां प्रथम षष्ठी-समर्थ 'गर्ग' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में ***'गर्गादिभ्यो यञ्'*** *(४।१।१०५) से 'यञ्' प्रत्यय और गोत्रप्रत्ययान्त 'गार्ग्य' शब्द से युवापत्य की विवक्षा में* ***'यञिञोश्च'*** *(४।१।१०१) से 'फक्' प्रत्यय होता है।*

(२) औपगविः। *उपगु+ङस्+अण्। औपगो+अ। औपगव। औपगव+इञ्। औपगवि+सु। औपगविः।*

यहां प्रथम षष्ठी-समर्थ 'उपगु' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में ***'तस्यापत्यम्'*** *(४।१।९२) से 'अण्' प्रत्यय और गोत्रप्रत्ययान्त 'औपगव' शब्द से युवापत्य की विवक्षा में* ***'अत इञ्'*** *(४।१।९२) से 'इञ्' प्रत्यय होता है।*

(३) नाडायनिः। *नड+ङस्+फक्। नाडायन। नाडायन+इञ्। नाडायनि+सु। नाडायनिः।*

यहां प्रथम षष्ठी-समर्थ 'नड' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में ***'नडादिभ्यः फक्'*** *(४।१।९९) से 'फक्' प्रत्यय और गोत्रप्रत्ययान्त 'नाडायन' शब्द से युवापत्य अर्थ में पूर्ववत् 'इञ्' प्रत्यय होता है।*

इञ्–

(४) अत इञ्।९५।

प०वि०–अतः ५।१ इञ् १।१।

अनु०–समर्थानाम्, प्रथमात्, वा, तस्य, अपत्यम् इति चानुवर्तते।

अन्वय:-समर्थानां प्रथमात् तस्य अतोऽपत्यं वा इञ्।

अर्थ:-समर्थानां सूत्रे प्रथमोच्चारितात् तस्य इति षष्ठी-समर्थाद् अकारान्तात् प्रातिपदिकाद् 'अपत्यम्' इत्यस्मिन्नर्थे विकल्पेन 'इञ्' प्रत्ययो भवति।

उदा०-दक्षस्यापत्यम्-दाक्षिः, प्लाक्षिः। दशरथस्यापत्यम्-दाशरथिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(समर्थानाम्) समर्थ पदों में (प्रथमात्) सूत्रपाठ में प्रथम उच्चारित (तस्य) षष्ठी-समर्थ (अतः) अकारान्त प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (वा) विकल्प से (इञ्) इञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**दक्षस्यापत्यम्-दाक्षिः।** दक्ष का पुत्र-दाक्षि। **प्लाक्षिः।** प्लक्ष का पुत्र-प्लाक्षि। **दशरथस्यापत्यम्-दाशरथिः।** दशरथ का पुत्र (राम)।*

सिद्धि-दाक्षिः। *दक्ष+ङस्+इञ्। दाक्ष्+इ। दाक्षि+सु। दाक्षिः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ अकारान्त 'दक्ष' शब्द से इस सूत्र से अपत्य अर्थ में 'इञ्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**प्लाक्षिः** आदि।*

इञ्-

(२) बाह्वादिभ्यश्च।९६।

प०वि०-बाह्वादिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-बाहुरादिर्येषां ते-बाह्वादयः, तेभ्यः-बाह्वादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-समर्थानाम्, प्रथमात् वा, तस्य, अपत्यम्, इञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-समर्थानां प्रथमात् तस्य बाह्वादिभ्यश्चाऽपत्यं वा इञ्।

अर्थः-समर्थानां सूत्रे प्रथमोच्चारितेभ्यः 'तस्य' इति षष्ठीसमर्थेभ्यो बाह्वादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्योऽपत्यमित्यस्मिन्नर्थे विकल्पेन इञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-बाहोरपत्यम्-बाहविः। उपबाहोरपत्यम्-औपबाहविः, इत्यादिकम्।

बाहु। उपबाहु। विवाकु। शिवाकु। बटाकु। उपबिन्दु। बृक। चूडाला। मूषिका। बलाका। भगला। छगला। ध्रुवका। ध्रुवका। सुमित्रा। दुर्मित्रा। पुष्करसत्। अनुहरत्। देवशर्मन्। अग्निशर्मन्। कुनामन्। सुनामन्। पञ्चन्। सप्तन्। अष्टन्। अमितौजसः सलोपश्च। उदञ्चु। शिरस्।

शराविन्। क्षेमवृद्धिन्। शङ्खलातोदिन्। खरनादिन्। नगरमर्दिन्। प्राकारमर्दिन्। लोमन्। अजीगर्त्त। कृष्ण। सलक। युधिष्ठिर। अर्जुन। साम्ब। गद। प्रद्युम्न। राम। उदङ्कः संज्ञायाम्। सम्भूयोऽम्भसोः सलोपश्च। इति बाह्वादयः। आकृतिगणोऽयम्।।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(समर्थानाम्) समर्थ पदों में (प्रथमात्) सूत्र में प्रथम उच्चारित (तस्य) षष्ठी-समर्थ (बाह्वादिभ्यः) बाहु-आदि प्रातिपदिकों से (च) भी (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (इञ्) इञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-बाहोरपत्यम्-बाहविः। बाहु का पुत्र-बाहवि। उपबाहोरपत्यम्-औपबाहविः। उपबाहु का पुत्र-औपबाहवि, इत्यादि।

__सिद्धि-(१) बाहविः।__ बाहु+ङस्+इञ्। बाहो+इ। बाहवि+सु। बाहविः।

यहां षष्ठी-समर्थ 'बाहु' शब्द से इस सूत्र से अपत्य अर्थ में 'इञ्' प्रत्यय है। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि, 'ओर्गुणः' (६।४।१४६) से अंग को गुण, 'एचोऽयवायावः' (६।१।७५) से 'अव्' आदेश होता है। ऐसे ही-__औपबाहविः।__

__विशेषः__ अनुवृत्तिः- __'समर्थानां प्रथमाद् वा'__ (४।१।८२) की अनुवृत्ति __'प्राग् दिशो विभक्तिः'__ (५।३।१) तक है। यहां उसकी सूत्रार्थ के साथ संगति लगाकर दिखाई गई है। 'वा' वचन से विकल्प पक्ष में वाक्य भी होता है। लाघव के स्नेह से और विस्तार के भय से इसकी प्रत्येक सूत्रार्थ में अनुवृत्ति नहीं दिखाई जायेगी।

इञ् (अकङ्)-

सुधातुरकङ् च।६७।

प०वि०-सुधातुः ५।१ अकङ् १।१। च अव्ययपदम्।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, इञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य सुधातुः अपत्यम् इञ् अकङ् च।

अर्थः-'तस्य' इति षष्ठीसमर्थात् सुधातृशब्दात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे इञ् प्रत्ययो भवति, तत्सन्नियोगेन चाकङ् आदेशो भवति।

उदा०-सुधातुरपत्यम्-सौधातकिः।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (सुधातुः) सधातृ प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (इञ्) इञ् प्रत्यय होता है और उसके सन्नियोग से 'सुधातृ' शब्द को अकङ् आदेश होता है।

उदा०-सुधातुरपत्यम्-सौधातकिः। सुधाता का पुत्र-सौधातकि।

सिद्धि-सौधातकिः। सुधातृ+ङस्+इञ्। सुधात्अकङ्+इ। सौधात्अक्+इ। सौधातकि+सु। सौधातकिः।

यहां षष्ठी-समर्थ 'सुधातृ' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'इञ्' प्रत्यय और 'अकङ्' आदेश है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है।

गोत्रापत्यप्रकरणम्

च्फञ्–

(१) गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ्।६८।

प०वि०–गोत्रे ७।१ कुञ्जादिभ्यः ५।३ च्फञ् १।१।

स०–कुञ्ज आदिर्येषां ते-कुञ्जादयः, तेभ्यः-कुञ्जादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–तस्य, अपत्यम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य कुञ्जादिभ्यो गोत्रे च्फञ्।

अर्थः–'तस्य' इति षष्ठीसमर्थेभ्यः कुञ्जादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो गोत्रापत्येऽर्थे च्फञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–कुञ्जस्य गोत्रापत्यम्-कौञ्जायन्यः।। कौञ्जायन्यः। कौञ्जायन्यौ। कौञ्जायनाः। ब्रध्नस्य गोत्रापत्यम्-ब्राध्नायन्यः।। ब्राध्नायन्यः। ब्राध्नायन्यौ। ब्राध्नायनाः, इत्यादिकम्।

कुञ्ज। ब्रध्न। शङ्ख। भस्मन्। गण। लोमन्। शठ। शाक। शाकट। शुण्डा। शुभ। विपाश। स्कन्द। स्कम्भ। शुम्भा। शिव। शुभया। इति कुञ्जादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (कुञ्जादिभ्यः) कुञ्ज आदि प्रातिपदिकों से (गोत्रे, अपत्यम्) गोत्रापत्य अर्थ में (च्फञ्) च्फञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**कुञ्जस्य गोत्रापत्यम्-कौञ्जायन्यः।** कुञ्ज का पौत्र-कौञ्जायन्य। **ब्रध्नस्य गोत्रापत्यम्- ब्राध्नायन्यः।** ब्रध्न का पौत्र-ब्राध्नायन्य।*

*सिद्धि-**कौञ्जायन्यः।** कुञ्ज+ङस्+च्फञ्। कौञ्ज्+आयन। कौञ्जायन। कौञ्जायन+यञ्। कौञ्जायन्य+सु। कौञ्जायन्यः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'कुञ्ज' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में इस सूत्र से 'च्फञ्' प्रत्यय होता है। च्फञ् प्रत्ययान्त 'कौञ्जायन' शब्द से **'व्रातच्फञोरन्यतरस्याम्'** (५।३।११३) से*

*स्वार्थ में 'ञ्य' प्रत्यय होता है और उसकी 'ञ्यादयस्तद्राजाः' (२।३।११९) से तद्राजसंज्ञा होकर 'तद्राजस्य बहुषु०' (२।४।६२) से बहुवचन में लुक् हो जाता है-**कौजायनाः।** ऐसे ही-**ब्राध्नायन्यः**' आदि।*

फक्—

(१) नडादिभ्यः फक्।९९।

प०वि०-नडादिभ्यः ५।३ फक् १।१।

स०-नड आदिर्येषां ते-नडादयः, तेभ्यः-नडादिभ्यः।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, गोत्रे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य नडादिभ्यो गोत्रेऽपत्यं फक्।

अर्थः-'तस्य' इति षष्ठी-समर्थेभ्यो नडादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो गोत्रापत्येऽर्थे फक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-नडस्य गोत्रापत्यम्-नाडायनः, चारायणः, इत्यादिकम्।

नड। चर। बक। मुञ्ज। इतिक। इतिश। उपक। लमक। 'शलंकु शलङ्कञ्च'। सप्तल। वाजप्य। तिक। 'अग्निशर्मन् वृषगणे'। प्राण। नर। सायक। दास। मित्र। द्वीप। पिङ्गर। पिङ्गल। किङ्कर। किङ्कल। कातर। कातल। काश्य। काश्यप। काव्य। अज। अमुष्य। 'कृष्णरणौ ब्राह्मणवासिष्ठयोः'। अमित्र। लिगु। चित्र। कुमार। क्रोष्टु क्रोष्टञ्च। लोह। दुर्ग। स्तम्भ। शिंशपा। अग्र। तृण। शकट। सुमनस्। सुमत। मिमत्। ऋक्। जत्। युगन्धर। हंसक। दण्डिन्। हस्तिन्। पञ्चाल। चमसिन्। सुकृत्य। स्थिरक। ब्राह्मण। चटक। बदर। अश्वक। खरप। कामुक। ब्रह्मदत्त। उदुम्बर। शोण। अलोह। दण्ड। एक। वानव्य। शावक। नाव्य। अन्वजत्। अन्तजन। इत्वरा। अंशक। अश्वला। अध्वर। दण्डप। इति नडादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (नडादिभ्यः) नड-आदि प्रातिपदिकों से (गोत्रे, अपत्यम्) गोत्रापत्य अर्थ में (फक्) फक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**नडस्य गोत्रापत्यम्-नाडायनः।** नड का पौत्र-नाडायन। **चारायणः।** चर का पौत्र-चारायण।*

सिद्धि-नाडायनः । नड+ङस्+फक् । नाड्+आयन । नाडायन+सु । नाडायनः ।

यहां षष्ठी-समर्थ 'नड' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में इस सूत्र से 'फक्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'फ्' के स्थान में 'आयन' आदेश होता है। 'किति च' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-चारायणः आदि।

फक्-

(२) हरितादिभ्योऽञः।१००।

प०वि०-हरितादिभ्यः ५।३ अञः ५।१।

स०-हरित आदिर्येषां ते-हरितादयः, तेभ्यः-हरितादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, फक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य अञो हरितादिभ्योऽपत्यं, फक्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्योऽञन्तेभ्यो हरितादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्यमित्यस्मिन्नर्थे फक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-हरितस्य गोत्रापत्यम्-हारितः, हारितस्य युवापत्यम्-हारितायनः। किन्दासस्य गोत्रापत्यम्-कैन्दासः, कैन्दासस्य युवापत्यम्-कैन्दासायनः, इत्यादिकम्।

हरित। किन्दास। वह्यस्क। अर्कलूष। वध्योष। विष्णुवृद्ध। प्रतिबोध। रथन्तर। रथीतर। गविष्ठिर। निषाद। मठर। मृद। पुनर्भू। पुत्र। दुहितृ। ननान्दृ। 'परस्त्री परशुं च'। इति बिदाद्यन्तर्गताः (४।१।१०४) हरितादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (अञः) अञ्-प्रत्ययान्त (हरितादिभ्यः) हरित आदि प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (फक्) फक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**हरितस्य गोत्रापत्यम्-हारितः, हारितस्य युवापत्यम्-हारितायनः।** हरित का पौत्र 'हारित' कहाता है और हारित का युवापत्य 'हारितायन' कहाता है। **किन्दासस्य गोत्रापत्यम्-कैन्दासः, कैन्दासस्य युवापत्यम्-कैन्दासायनः।** किन्दास का पौत्र 'कैन्दास' कहाता है और कैन्दास का युवापत्य 'कैन्दासायन' कहाता है, इत्यादि।*

*सिद्धि-**हारितायनः।** हरित+ङस्+अञ्। हारित। हारित+फक्। हारित्+आयन। हारितायन+सु। हारितायनः।*

यहां प्रथम षष्ठी-समर्थ 'हरित' शब्द से 'अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्' (४।१।१०४) से गोत्रापत्य अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय है। अञ्-प्रत्ययान्त 'हारित' शब्द से 'गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्'

*(४।१।९४) के नियम से इस सूत्र से युवापत्य अर्थ में 'फक्' प्रत्यय है। '**आयनेय०**' (७।१।२) से 'फ्' के स्थान में 'आयन्' आदेश होता है। ऐसे ही-**कैन्दासायनः** आदि।*

*विशेष-यहां प्रथम 'हरित' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय किया जाता है तत्पश्चात् अजन्त हारित शब्द से फक् प्रत्यय होता है। '**एको गोत्रे**' (४।१।९३) के नियम से गोत्रापत्य अर्थ में दो प्रत्यय नहीं हो सकते। अतः यहां 'गोत्रे' पद की अनुवृत्ति नहीं की जाती है। अतः 'फक्' प्रत्यय युवापत्य अर्थ में समझना चाहिये।*

फक्–

(३) यञिञोश्च।१०१।

प०वि०-यञिञोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) च अव्ययपदम्।

स०-यञ् च इञ् च तौ-यञिञौ, तयोः-यञिञोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, गोत्रे, फक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य, गोत्रे यञिञोश्चापत्यं फक्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् गोत्रापत्येऽर्थे वर्तमानाद् यञन्ताद् इञन्ताच्च प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे फक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(यञ्) गर्गस्य गोत्रापत्यम्-गार्ग्यः, गार्ग्यस्य युवापत्यम्-गार्ग्यायणः। वत्स्यायनः। **(इञ्)** दक्षस्य गोत्रापत्यम्-दाक्षिः। दाक्षेर्युवापत्यम्-दाक्षायणः। प्लाक्षायणः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तस्य) षष्ठी-समर्थ (गोत्रे) गोत्रापत्य अर्थ में विद्यमान (यञिञोः) यञ्-प्रत्ययान्त और इञ्-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (फक्) फक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(यञ्) **गर्गस्य गोत्रापत्यम्-गार्ग्यः, गार्ग्यस्य युवापत्यम्-गार्ग्यायणः।** गर्ग का पौत्र 'गार्ग्यः' कहाता है और गार्ग्य का युवापत्य 'गार्ग्यायणः' कहाता है, ऐसे ही-वत्स्यायनः (इञ्) **दक्षस्य गोत्रापत्यम्-दाक्षिः। दाक्षेर्युवापत्यम्-दाक्षायणः।** दक्ष का पौत्र 'दाक्षि' कहाता है और दाक्षि का युवापत्य 'दाक्षायण' कहाता है। ऐसे ही-**प्लाक्षायणः।***

*सिद्धि-(१) **गार्ग्यायणः।** गर्ग+ङस्+यञ्। गार्ग्य। गार्ग्य+फक्। गार्ग्+आयन। गार्ग्यायण+सु। गार्ग्यायणः।*

*यहां प्रथम षष्ठी-समर्थ 'गर्ग' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में '**गर्गादिभ्यो यञ्**' (४।१।१०५) से 'यञ्' प्रत्यय और तत्पश्चात् यञन्त 'गार्ग्य' शब्द से युवापत्य अर्थ में इस सूत्र से 'फक्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**वात्स्यायनः।***

(२) दाक्षायण: । दक्ष+ङस्+इञ् । दाक्षि । दाक्षि+फक् । दाक्ष्+आयन । दाक्षायण+सु । दाक्षायण: ।

यहां प्रथम षष्ठी-समर्थ 'दक्ष' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में 'अत इञ्' (४।१।९५) से 'इञ्' प्रत्यय और तत्पश्चात् इञन्त 'दाक्षि' शब्द से युवापत्य अर्थ में इस सूत्र से 'फक्' प्रत्यय होता है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है।

*विशेष-यहां अनुवर्तमान 'गोत्रे' पद, 'यञिञो:' पद का विशेषण है। गोत्र प्रत्ययान्त यञन्त और इञन्त प्रातिपदिक से विहित 'फक्' प्रत्यय **'गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्'** (४।१।९४) के नियम से युवापत्य अर्थ में होता है।*

फक्–

(४) शरद्वच्छुनकदर्भाद् भृगुवत्साग्रायणेषु।१०२।

प०वि०-शरद्वत्-शुनक्-दर्भात् ५।१ भृगु-वत्स-आग्रायणेषु ७।३।

स०-शरद्वच्च शुनकश्च दर्भश्च एतेषां समाहार:-शरद्वच्छुन-कदर्भम्, तस्मात्-शरद्वच्छुनकदर्भात् (समाहारद्वन्द्व:)। भृगुश्च वत्सश्च आग्रायण च २गश्च ते-भृगुवत्साग्रायणा:, तेषु-भृगुवत्साग्रायणेषु (इतरेतरयोगद्वन्

अनु०-तस्य, अपत्यम्, गोत्रे, फक् इति चानुवर्तते।

अन्वय:-तस्य शरदवच्छुनकदर्भाद् गोत्रे भृगुवत्साग्रायणेषु फक्।

अर्थ:-तस्य-इति षष्ठी-समर्थेभ्य: शरदवच्छुनकदर्भेभ्य: प्रातिपदिकेभ्यो गोत्रापत्येऽर्थे यथासंख्यं भृगुवत्साग्रायणेष्वभिधेयेषु फक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(शरद्वत्)** शरद्वतो गोत्रापत्यम्-शारद्वतायनो भार्गव:। **(शुनक:)** शुनकस्य गोत्रापत्यम्-शौनकायनो वात्स्य:। **(दर्भ:)** दर्भस्य गोत्रापत्यम्-दार्भायण आग्रायण:।

आर्यभाषा: *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (शरद्वत्०दर्भात्) शरद्वत्, शुनक, दर्भ प्रातिपदिकों से (गोत्रे, अपत्यम्) गोत्रापत्य अर्थ में यथासंख्य (भृगु०आग्रायणेषु) भृगु, वत्स, आग्रायण अर्थ में (फक्) फक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(शरद्वत्) **शरद्वतो गोत्रापत्यम्-शारद्वतायनो भार्गव:।** शरद्वान् का पौत्र शारद्वतायन भार्गव। (शुनक) **शुनकस्य गोत्रापत्यम्-शौनकायनो वात्स्य:।** शुनक का पौत्र शौनकायन वात्स्य। (दर्भ) **दर्भस्य गोत्रापत्यम्-दार्भायण आग्रायण:।** दर्भ का पौत्र दार्भायण आग्रायण।*

सिद्धि-शारद्वतायनः । शरद्वत्+ङस्+फक् । शारद्वत्+आयन । शाद्वतायन+सु । शारद्वतायनः ।

यहां षष्ठी-समर्थ 'शरद्वत्' प्रातिपदिक से गोत्रापत्य (भार्गव) अर्थ में इस सूत्र से 'फक्' प्रत्यय है। ऐसे ही-शौनकायनः, दार्भायणः ।

फक्-विकल्पः–

(५) द्रोणपर्वतजीवन्तादन्यतरस्याम्।१०३।

प०वि०-द्रोण-पर्वत-जीवन्तात् ५।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम् ।

स०-द्रोणश्च पर्वतश्च जीवन्तश्च एतेषां समाहारः-द्रोणपर्वतजीवन्तम्, तस्मात्-द्रोणपर्वतजीवन्तात् (समाहारद्वन्द्वः) ।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, गोत्रे, फक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य द्रोणपर्वतजीवन्ताद् गोत्रेऽपत्यम् अन्यतरस्यां फक्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठी-समर्थेभ्यो द्रोणपर्वतजीवन्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो गोत्रापत्येऽर्थे विकल्पेन फक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(द्रोणः) द्रोणस्य गोत्रापत्यम्-द्रौणायनः, द्रौणिर्वा। **(पर्वतः)** पर्वतस्य गोत्रापत्यम्-पार्वतायनः, पार्वतिर्वा। **(जीवन्तः)** जीवन्तस्य गोत्रापत्यम्-जीवन्तायनः, जैवन्तिर्वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (द्रोणपर्वतजीवन्तात्) द्रोण, पर्वत, जीवन्त प्रातिपदिकों से (गोत्रे-अपत्यम्) गोत्रापत्य अर्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (फक्) फक् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(द्रोण) **द्रोणस्य गोत्रापत्यम्-द्रौणायनः, द्रौणिर्वा।** द्रोण का पौत्र द्रोणायन अथवा द्रोणि कहाता है। (पर्वत) **पर्वतस्य गोत्रापत्यम्-पार्वतायनः, पार्वतिर्वा।** पर्वत का पौत्र पर्वतायन अथवा पार्वति कहाता है। (जीवन्त) **जीवन्तस्य गोत्रापत्यम्-जीवन्तायनः, जैवन्तिर्वा।** जैवन्तायन अथवा जैवन्ति कहाता है।*

*सिद्धि-(१) **द्रौणायनः ।** द्रोण+ङस्+फक् । द्रौण्+आयन । द्रौणायन+सु । द्रौणायनः ।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'द्रोण' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में इस सूत्र से 'फक्' प्रत्यय है।

*(२) **द्रौणिः ।** द्रोण+ङस्+इञ् । द्रौणि+सु । द्रौणिः ।*

यहां विकल्प पक्ष में 'द्रोण' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में 'अत इञ्' (४।१।९५) से 'इञ्' प्रत्यय है। यहां महाभारतकालीन द्रोण का कथन नहीं है, अपितु किसी प्राचीन द्रोण का निर्देश है।

*(३) **पार्वतायनः।** पर्वत+ङस्+फक्। पार्वतायन+सु। पार्वतायनः। पूर्ववत्।*

*(४) **पार्वतिः।** पर्वत+ङस्+इञ्। पार्वतिः। पूर्ववत्।*

*(५) **जैवन्तायनः।** जीवन्त+ङस्+फक्। जैवन्तायनः। पूर्ववत्।*

*(६) **जैवन्तिः।** जीवन्त+इञ्। जैवन्तिः। पूर्ववत्।*

अञ्—

(१) अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्।१०४।

प०वि०-अनृषि ५।१ (लुप्तपञ्चमीनिर्देशः) आनन्तर्ये ७।१ बिदादिभ्यः ५।१ अञ् १।१।

स०-न ऋषिरिति अनृषिः (नञ्तत्पुरुषः)। अनन्तरस्य भाव आनन्तर्यम्, तस्मिन्-आनन्तर्ये (तद्धितः ष्यञ्)। बिद आदिर्येषां ते-बिदादयः, तेभ्यः-बिदादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, गोत्रे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य बिदादिभ्यो गोत्रेऽपत्यम् अञ्, अनृषिभ्य आनन्तर्येऽपत्यम्, अञ्।

अर्थः-तस्य-इति षष्ठीसमर्थेभ्यो बिदादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो गोत्रापत्येऽर्थेऽञ् प्रत्ययो भवति, अत्र ये चानृषिवाचिनः शब्दास्तेभ्योऽनन्तरापत्येऽर्थेऽञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**बिदादिः**) बिदस्य गोत्रापत्यम्-बैदः। उर्वस्य गोत्रापत्यम्-औवः। (**अनृषिः**) पुत्रस्यानन्तरापत्यम्-पौत्रः। दुहितुरनन्तरापत्यम्-दौहित्रः।

विद। उर्व। कश्यप। कुशिक। भरद्वाज। उपमन्यु। किलालप। किदर्भ। विश्वानर। ऋष्टिषेण। ऋषभाग। हर्य्यश्व। प्रियक। आपस्तम्ब। कूचवार। शरद्वत्। शुनक। धेनु। गोपवन। शिग्रु। बिन्दु। भाजन। अश्वावतान। श्यामाक। श्यमाक। श्यापर्ण। हरित। किन्दास। वह्यस्क। अर्कलूष। बध्योष। विष्णुवृद्ध। प्रतिबोध। रथन्तर। रथीतर। गविष्ठिर। निषाद। मठर। मृद। पुनर्भू। पुत्र। दुहितृ। ननान्दृ। 'परस्त्री, परशुं च'। किता। सम्बक। शावली। श्यायक। अलस। इति बिदादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (बिदादिभ्यः) बिद-आदि प्रातिपदिकों से (गोत्रे, अपत्यम्) गोत्रापत्य अर्थ में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है और यहां बिदादिगण में जो (अनृषिः) अनृषिवाची शब्द पठित हैं उनसे (आनन्तर्ये, अपत्यम्) अनन्तरापत्य अर्थ में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(बिदादिः) बिदस्य गोत्रापत्यम्-बैदः।** बिद का पौत्र 'बैद' कहाता है। **उर्वस्य गोत्रापत्यम्-और्वः।** उर्व का पौत्र और्व कहाता है। **(अनृषिः) पुत्रस्यानन्तरापत्यम्-पौत्रः।** पुत्र का अनन्तरापत्य 'पौत्र' कहाता है। **दुहितुरनन्तरापत्यम्-दौहित्रः।** दुहिता (पुत्री) का पुत्र 'दौहित्र' कहाता है।*

*सिद्धि-(१) **बैदः।** बिद+ङस्+अञ्। बैद्+अ। बैद+सु। बैदः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, ऋषिवाची 'बिद' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**और्वः।***

*(२) **पौत्रः।** पुत्र+ङस्+अञ्। पौत्र्+अ। पौत्र+सु। पौत्रः।*

यहां षष्ठी-समर्थ अनृषिवाची 'पुत्र' शब्द से अनन्तरापत्य अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है।

*(३) **दौहित्रः।** दुहितृ+ङस्+अञ्। दौहित्र+सु। दौहित्रः। पूर्ववत्।*

विशेषः *अपत्य-अनन्तरापत्य का अर्थ पुत्र, गोत्रापत्य का अर्थ पौत्र और युवापत्य का अर्थ प्रपौत्र है।*

यञ्-

(१) गर्गादिभ्यो यञ्।१०५।

प०वि०-गर्गादिभ्यः ५।३ यञ् १।१।

स०-गर्ग आदिर्येषां ते-गर्गादयः, तेभ्यः-गर्गादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, गोत्रे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य, गर्गादिभ्यो गोत्रेऽपत्यं यञ्।

अर्थः-तस्य-इति षष्ठीसमर्थेभ्यो गर्गादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो गोत्रापत्येऽर्थे यञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-गर्गस्य गोत्रापत्यम्-गार्ग्यः। वत्सस्य गोत्रापत्यम्-वात्स्यः, इत्यादिकम्।

गर्ग। वत्स। वाजाऽसे। संकृति। अज। व्याघ्रपात्। विदभृत्। प्राचीनयोग। अगस्ति। पुलस्ति। रेभ। अग्निवेश। शङ्ख। शठ। धूम।

अवट । चमस । धनञ्जय । मनस । वृक्ष । विश्वावसु । जनमान । लोहित । संशित । बभ्रु । मण्डु । मक्षु । अलिंगु । शङ्क । लिगु । गुलु । मन्तु । जिगीषु । मनु । तन्तु । मनायी । भूत । कथक । कष । तण्ड । वतण्ड । कपि । कत । कुरुकत । अनडुह् । कण्व । शकल । गोकक्ष । अगस्त्य । कुण्डिन । यज्ञवल्क । उभय । जात । विरोहित । वृषगण । रहूगण । शाण्डिल । वण । कचुलुक । मुद्गल । मुसल । पराशर । जतूकर्ण । मन्त्रित । संहित । अश्मरथ । शर्कराक्ष । पूतिमाष । स्थूण । अररक । पिङ्गल । कृष्ण । गोलुन्द । उलूक । तितिक्ष । भिषज् । भडित । भण्डित । दल्भ । चेकित । देवहू । इन्द्रहू । एकलू । पिप्पलु । वृहदग्नि । जमदग्नि । सुलोमिन् । उक्थ । कुटीगु । इति गर्गादयः ।।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (गर्गादिभ्यः) गर्ग आदि प्रातिपदिकों से (गोत्रे-अपत्यम्) गोत्रापत्य अर्थ में (यञ्) यञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-__गर्गस्य गोत्रापत्यम्-गार्ग्यः।__ गर्ग का पौत्र 'गार्ग्य' कहाता है। __वत्सस्य गोत्रापत्यम्-वात्स्यः।__ वत्स का पौत्र 'वात्स्य' कहाता है, इत्यादि।

__सिद्धि-गार्ग्यः।__ गर्ग+ङस्+यञ्। गार्ग्+य। गार्ग्य+सु। गार्ग्यः।

यहां षष्ठी-समर्थ 'गर्ग' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में इस सूत्र से 'यञ्' प्रत्यय है। __'तद्धितेष्वचामादेः'__ (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और __'यस्येति च'__ (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-__वात्स्यः__ आदि।

यञ्-

(२) मधुबभ्र्वोर्ब्राह्मणकौशिकयोः।१०६।

प०वि०-मधु-बभ्र्वोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) ब्राह्मणकौशिकयोः ७।२।

स०-मधुश्च बभ्रुश्च तौ मधबभ्रू, तयोः-मधुबभ्र्वोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। ब्राह्मणश्च कौशिकश्च तौ ब्राह्मणकौशिकौ, तयोः-ब्राह्मणकौशिकयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, गोत्रे, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य, मधुबभ्रुभ्यां गोत्रेऽपत्यं यञ्, ब्राह्मणकौशिकयोः।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाभ्यां मधुबभ्रुभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां गोत्रापत्येऽर्थे यञ् प्रत्ययो भवति, यथासंख्यं ब्राह्मणकौशिकयोरभिधेययोः।

उदा०-(मधुः) मधोर्गोत्रापत्यम्-माधव्यो ब्राह्मणः। बभ्रोर्गोत्रापत्यम्-बाभ्रव्यः कौशिकः।

आर्यभाषाः अर्थ- *(तस्य) षष्ठी-समर्थ (मधुबभ्र्वोः) मधु और बभ्रु प्रातिपदिकों से (गोत्रे-अपत्यम्) गोत्रापत्य अर्थ में (यञ्) यञ् प्रत्यय होता है (ब्राह्मणकौशिकयोः) यदि वहां यथासंख्य ब्राह्मण और कौशिक अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-(मधु) ***मधोर्गोत्रापत्यम्-माधव्यो ब्राह्मणः।*** *मधु का पौत्र-माधव्य ब्राह्मण।* ***बभ्रोर्गोत्रापत्यम्-बाभ्रव्यः कौशिकः।*** *बभ्रु का पौत्र-बाभ्रव्य कौशिक।*

सिद्धि-(१) ***माधव्यः।*** *मधु+ङस्+यञ्। माधो+य। माधव्य+सु। माधव्यः।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'मधु' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में इस सूत्र 'यञ्' प्रत्यय है। ***'तद्धितेष्वचामादेः'*** *(७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि अंग को* ***'ओर्गुणः'*** *(६।४।१४६) से गुण और* ***'वान्तो यि प्रत्यये'*** *(६।१।७६) से वान्त आदेश (अव्) होता है। ऐसे ही 'बभ्रु' शब्द से-**बाभ्रव्यः।***

विशेष- 'बभ्रु' शब्द गर्गादिगण में पठित हैं। उससे 'यञ्' प्रत्यय तो सिद्ध ही है, किन्तु बभ्रु शब्द से कौशिक अर्थ में ही 'यञ्' प्रत्यय हो इस नियम के लिये यह कथन किया गया है। मधु और बभ्रु क्रमशः ब्राह्मण और कौशिक वंश के ऋषि हैं।

यञ्–

(३) कपिबोधादाङ्गिरसे।१०७।

प०वि०-कपि-बोधात् ५।१ आङ्गिरसे ७।१।

स०-कपिश्च बोधश्च एतयोः समाहारः-कपिबोधम्, तस्मात्-कपिबोधात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, गोत्रे, यञ्।

अन्वयः-तस्य कपिबोधाद् गोत्रेऽपत्यं यञ् आङ्गिरसे।

अर्थः-तस्य-इति षष्ठीसमर्थाभ्यां कपिबोधाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां गोत्रापत्येऽर्थे यञ् प्रत्ययो भवति, आङ्गिरसेऽभिधेये।

उदा०-(कपिः) कपेर्गोत्रापत्यम्-काप्य आङ्गिरसः। **(बोधः)** बोधस्य गोत्रापत्यम्-बौध्य आङ्गिरसः।

आर्यभाषाः अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (कपिबोधात्) *कपि और बोध प्रातिपदिकों से (गोत्रे, अपत्यम्) गोत्रापत्य अर्थ में (यञ्) यञ् प्रत्यय होता है (आङ्गिरसे) यदि वहां आङ्गिरस अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-(कपि:) कपेर्गोत्रापत्यम्-काप्य आङ्गिरस:। कपि ऋषि का पौत्र-काप्य आङ्गिरस। (बोध:) बोधस्य गोत्रापत्यम्-बौध्य आङ्गिरस:। बोध ऋषि का पौत्र-बौध्य आङ्गिरस:।

सिद्धि-(१) काप्य:। *कपि+ङस्+यञ्। काप्+य। काप्य+सु। काप्य:।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'कपि' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में इस सूत्र से 'यञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-**बौध्य:।***

विशेष-कपि शब्द गर्गादिगण में पठित है, उससे 'यञ्' प्रत्यय तो सिद्ध ही है किन्तु कपि शब्द से आङ्गिरस अर्थ में ही 'यञ्' प्रत्यय हो इस नियम के लिए यहां कथन किया गया है।

यञ्—

(४) वतण्डाच्च।१०८।

प०वि०-वतण्डात् ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, गोत्रे, यञ्, आङ्गिरसे इति चानुवर्तते।

अन्वय:-तस्य वतण्डाच्च गोत्रेऽपत्यं यञ्, आङ्गिरसे।

अर्थ:-तस्य-इति षष्ठीसमर्थाद् वतण्डात् प्रातिपदिकादपि गोत्रापत्येऽर्थे यञ् प्रत्ययो भवति, आङ्गिरसेऽभिधेये।

उदा०-वतण्डस्य गोत्रापत्यम्-वातण्ड्य आङ्गिरस:।

आर्यभाषा: *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (वतण्डात्) वतण्ड प्रातिपदिक से (च) भी (गोत्रे, अपत्यम्) गोत्रापत्य अर्थ में (यञ्) यञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**वतण्डस्य गोत्रापत्यम्-वातण्ड्य आङ्गिरस:।** वतण्ड ऋषि का पौत्र-वातण्ड्य आङ्गिरस।*

सिद्धि-वातण्ड्य:। *वतण्ड+ङस्+यञ्। वातण्ड्+य। वातण्ड्य+सु। वातण्ड्य:।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'वतण्ड' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में इस सूत्र से 'यञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

विशेष- *वतण्ड शब्द गर्गादिगण में पठित है और यह शब्द शिवादिगण में भी पठित है। अत: '**शिवादिभ्योऽण्**' (४।१।११२) से आङ्गिरस अर्थ में अण् प्रत्यय भी प्राप्त होता है। उसके प्रतिषेध के लिए यह कथन किया गया है कि आङ्गिरस अर्थ में 'यञ्' प्रत्यय ही हो; अण् न हो।*

यञ्-लुक्—

(५) लुक् स्त्रियाम्।१०६।

प०वि०-लुक् १।१ स्त्रियाम् ७।१।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, गोत्रे, यञ्, वतण्डात्, आङ्गिरसे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य वतण्डाद् गोत्रेऽपत्यं यञो लुक्, आङ्गिरस्यां स्त्रियाम्।

अर्थः-तस्य-इति षष्ठीसमर्थाद् वतण्डात् प्रातिपदिकाद् गोत्रापत्येऽर्थे विहितस्य यञ्-प्रत्ययस्य लुग् भवति, आङ्गिरस्यां स्त्रियामभिधेयायाम्।

उदा०-वतण्डस्य गोत्रापत्यं स्त्री-वतण्डी आङ्गिरसी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (वतण्डात्) वतण्ड प्रातिपदिक से (गोत्रे, अपत्यम्) गोत्रापत्य अर्थ में विहित (यञ्) यञ् प्रत्यय का (लुक्) लुक् होता है (आङ्गिरसे-स्त्रियाम्) यदि वहां आङ्गिरसी स्त्री अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-**वतण्डस्य गोत्रापत्यं स्त्री-वतण्डी आङ्गीरसी।** वतण्ड ऋषि की पौत्री-वतण्डी आङ्गिरसी।*

*सिद्धि-**वतण्डी।** वतण्ड+ङस्+यञ्। वतण्ड+०। वतण्ड+ङीन्। वतण्ड्+ई। वतण्डी+सु। वतण्डी।*

*यहां षष्ठीसमर्थ 'वतण्ड' शब्द से गोत्रापत्य (स्त्री) अर्थ में विहित 'यञ्' प्रत्यय का इस सूत्र से लुक् होता है। प्रत्यय के लुक् हो जाने पर 'वतण्ड' शब्द का शाङ्गरव आदि गण में पाठ होने से **'शाङ्गरवाद्यञो ङीन्'** (४।१।७३) से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीन्' प्रत्यय होता है।*

फञ्—

(१) अश्वादिभ्यः फञ्।११०।

प०वि०-अश्वादिभ्यः ५।३ फञ् १।१।

स०-अश्व आदिर्येषां ते-अश्वादयः, तेभ्यः-अश्वादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, गोत्रे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य अश्वादिभ्यो गोत्रेऽपत्यं फञ्।

अर्थः-तस्य-इति षष्ठीसमर्थेभ्योऽश्वादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो गोत्रापत्येऽर्थे फञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-अश्वस्य गोत्रापत्यम्-आश्वायनः। अश्मनो गोत्रापत्यम्-आश्मायनः, इत्यादिकम्।

अश्व। अश्मन्। शङ्ख। विद। पुट। रोहिण। खर्ज्जूर। खर्ज्जूल। पिञ्जूर। भडिल। भण्डिल। भडित। भण्डित। भण्डिक। प्रहृत। रामोद। क्षत्र। ग्रीवा। काश। गोलाङ्क्य। अर्क। स्वन। ध्वन। पाद। चक्र। कुल। पवित्र। गोमिन्। श्याम। धूम। धूम्र। वाग्मिन्। विश्वानर। कुट। वेश। आत्रेय। नत्त। तड। नड। ग्रीष्म। अर्ह। विशम्य। विशाला। गिरि। चपल। चुनम। दासक। वैल्य। धर्म। आनडुह्य। पुंसिजात। अर्जुन। शूद्रक। सुमनस्। दुर्मनस्। क्षान्त। प्राच्य। कित। काण। चुम्प। श्रविष्ठा। वीक्ष्य। पविन्दा। कुत्स। आतब। कितब। शिव। खदिर। आत्रेय, भारद्वाजे। भारद्वाज, आत्रये। पथ। कन्थु। श्रुव। सूनु। कर्कटक। रुक्ष। तरुक्ष। तलुक्ष। प्रचुल। विलम्ब। मिष्णुज। इत्यश्वादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (अश्वादिभ्यः) अश्व आदि प्रातिपदिकों से (गोत्रे, अपत्यम्) गोत्रापत्य अर्थ में (फक्) फक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**अश्वस्य गोत्रापत्यम्-आश्वायनः।** अश्व ऋषि का पौत्र-आश्वायन। **अश्मनो गोत्रापत्यम्-आश्मायनः।** अश्मा ऋषि का पौत्र-आश्मायन।*

*सिद्धि-(१) **आश्वायनः।** अश्व+ङस्+फक्। आश्व्+आयन। आश्वायन+सु। आश्वायनः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'अश्व' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में इस सूत्र से 'फक्' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'फ्' के स्थान में 'आयन्' आदेश होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है।*

*(२) **आश्मायनः।** अश्मन्+ङस्+फक्। आश्मन्+आयन। आश्म०+आयन। आश्मायन+सु। आश्मायनः।*

*यहां षष्ठी समर्थ 'अश्मन्' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ मे इस सूत्र से 'फक्' प्रत्यय है। **'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने'** (१।४।१७) से 'अश्मन्' शब्द की पद संज्ञा होकर **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से 'न्' का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

फञ्-

(२) भर्गात् त्रैगर्ते।१११।

प०वि०-भर्गात् ५।१ त्रैगर्ते ७।१।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, गोत्रे, फञ् इति चानुवर्त्तते।

अन्वयः-तस्य भर्गाद् गोत्रेऽपत्यं फञ् त्रैगर्ते।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् भर्गात् प्रातिपदिकाद् गोत्रापत्येऽर्थे फञ् प्रत्ययो भवति, त्रैगर्तेऽभिधेये।

उदा०-भर्गस्य गोत्रापत्यम्-भार्गायणस्त्रैगर्तः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (भर्गात्) भर्ग प्रातिपदिक से (गोत्रे, अपत्यम्) गोत्रापत्य अर्थ में (फञ्) फञ् प्रत्यय होता है (त्रैगर्ते) यदि वहां त्रैगर्त अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-**भर्गस्य गोत्रापत्यम्-भार्गायणस्त्रैगर्तः।** भर्ग ऋषि का पौत्र 'भार्गायण' त्रैगर्त।*

सिद्धि-भार्गायणः। *भर्ग+ङस्+फञ्। भार्ग्+आयन। भार्गायण+सु। भार्गायणः।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'भर्ग' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ तथा त्रैगर्त अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'फञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

***विशेष**-वर्तमान पंजाब का उत्तर-पूर्वी भाग जो चम्बा से कांगड़ा तक फैला हुआ है, प्राचीन 'त्रिगर्त' देश था। सतलुज, व्यास और रावी इन तीन नदियों की घाटियों के कारण इसका नाम 'त्रिगर्त' पड़ा। 'त्रिगर्त' के निवासी 'त्रैगर्त' कहाते हैं। (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ४१)।*

इति गोत्रापत्यप्रकरणम्।

अपत्यसामान्यप्रकरणम्

अण्-

(१) शिवादिभ्योऽण्।११२।

प०वि०-शिवादिभ्यः ५।३ अण् १।१।

स०-शिव आदिर्येषां ते-शिवादयः, तेभ्यः-शिवादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम् इति चानुवर्तते, 'गोत्रे' इति च निवृत्तम्, इतः प्रभृति सामान्येन प्रत्यया विधीयन्ते।

अन्वयः-तस्य शिवादिभ्योऽपत्यम् अण्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः शिवादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्येऽर्थेऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-शिवस्यापत्यम्-शैवः । प्रौष्ठस्यापत्यम्-प्रौष्ठः, इत्यादिकम् ।

शिव । प्रौष्ठ । प्रौष्ठिक । चण्ड । मण्ड । जम्भ । मुनि । सन्धि । भूरि । कुठार । अनभिम्लान । अनभिग्लान । ककुत्स्थ । कहोड । लेख । रोध । खञ्जन । कोहड़ । पिष्ट । हेहय । खञ्जार । खञ्जाल । सुरोहिका । पर्ण । कहूष । परिल । वतण्ड । तृण । कर्ण । क्षीरह्रद । जलह्रद । परिषिक । जटिलिक । गोफिलिक । बधिरिका । मञ्जीरक । वृष्णिक । रेख । आलेखन । विश्रवण । खण । वर्तनाक्ष । पिटक । पिटाक । तुक्षाक । नभाक । ऊर्णनाभ । जरत्कारु । उत्क्षिपा । रोहितिक । आर्यश्वेत । सुपिष्ट । खर्जूरकर्ण । मसूरकर्ण । तूनकर्ण । मयूरकर्ण । खडरक । तक्षन् । ऋष्टिषेण । गङ्गा । विपाशा । यस्क । लह्य । द्रुघ । अयःस्थूण । भलन्दन । विरूपाक्ष । भूमि । इला । सपत्नी । द्व्यचो नद्याः । त्रिवेणी त्रिवणं च । कह्वय । कबोध । परल । ग्रीवाक्ष । गोभिलिक । राजल । तडाक । वडाक । इति शिवादयः ।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (शिवादिभ्यः) शिव आदि प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**शिवस्यापत्यम्-शैवः ।** शिव ऋषि का पुत्र-शैव । **प्रौष्ठस्यापत्यम्-प्रौष्ठः ।** प्रौष्ठ ऋषि का पुत्र-प्रौष्ठ, इत्यादि ।*

***सिद्धि-शैवः ।** शिव+ङस्+अण् । शैव्+अ । शैव+सु । शैवः ।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'शिव' शब्द से अपत्य सामान्य अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**प्रौष्ठः** आदि ।*

अण्—

(२) अवृद्धाभ्यो नदीमानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्यः ।११३।

प०वि०-अवृद्धाभ्यः ५ ।३ नदी-मानुषीभ्यः ५ ।३ तन्नामिकाभ्यः ५ ।३ ।

स०-न वृद्धा इति अवृद्धाः, ताभ्यः-अवृद्धाभ्यः (नञ्तत्पुरुषः) । नद्यश्च मानुष्यश्च ताः-नदीमानुष्यः, ताभ्यः-नदीमानुषीभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः) । तानि नामानि यासां ताः-तन्नामिकाः, ताभ्यः-तन्नामिकाभ्यः (बहुव्रीहिः) ।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, अण् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य अवृद्धाभ्यो नदीमानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्योऽपत्यम् अण्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्योऽवृद्धसंज्ञकेभ्यो नदीनां मानुषीणां च नामधेयेभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्येऽर्थेऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(नदी)** यमुनाया अपत्यम्-यामुनः। इरावत्या अपत्यम्-ऐरावतः। वितस्ताया अपत्यम्-वैतस्तः। नर्मदाया अपत्यम्-नार्मदः। **(मानुषी)** शिक्षिताया अपत्यम्-शैक्षितः। चिन्तिताया अपत्यम्-चैन्तितः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (अवृद्धाभ्यः) अवृद्धसंज्ञक (नदीमानुषीभ्यः) नदियों और मानुषियों (तन्नामिकाभ्यः) के नामवाले प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(नदी) यमुनाया अपत्यम्-यामुनः।** यमुना नामक स्त्री का पुत्र-यामुन। **इरावत्या अपत्यम्-ऐरावतः।** इरावती नामक स्त्री का पुत्र-ऐरावत। **वितस्ताया अपत्यम्-वैतस्तः।** वितस्ता नामक स्त्री का पुत्र-वैतस्त। **नर्मदाया अपत्यम्-नार्मदः।** नर्मदा नामक स्त्री का पुत्र-नार्मद। **(मानुषी) शिक्षिताया अपत्यम्-शैक्षितः।** शिक्षित नामक मानुषी का पुत्र-शैक्षित। **चिन्तिताया अपत्यम्-चैन्तितः।** चिन्तिता नामक मानुषी का पुत्र-चैन्तित।*

__सिद्धि-यामुनः।__ यमुना+ङस्+अण्। यामुन्+अ। यामुन+सु। यामुनः।

यहां षष्ठी-समर्थ अवृद्ध संज्ञक, नदीवाची स्त्रीनाम 'यमुना' शब्द से इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही-ऐरावतः आदि।

अण्-

(३) ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च।११४।

प०वि०-ऋषि-अन्धक-वृष्णि-कुरुभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-ऋषिश्च अन्धकश्च वृष्णिश्च कुरुश्च ते-ऋष्यन्धकवृष्णिकुरवः, तेभ्यः-ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, अण् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्चापत्यम् अण्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्य ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्येऽर्थेऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**ऋषिः**) वसिष्ठस्यापत्यम्-वासिष्ठः। विश्वामित्रस्यापत्यम्-वैश्वामित्रः। (**अन्धकः**) श्वफल्कस्यापत्यम्-श्वाफल्कः। रन्धसस्यापत्यम्-रान्धसः। (**वृष्णिः**) वसुदेवस्यापत्यम्-वासुदेवः। अनिरुद्धस्यापत्यम्-आनिरुद्धः। (**कुरुः**) नकुलस्यापत्यम्-नाकुलः। सहदेवस्यापत्यम्-साहदेवः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (ऋषि०कुरुभ्यः) ऋषि, अन्धक, वृष्णि, कुरु वाचक प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(ऋषिः) **वसिष्ठस्यापत्यम्-वासिष्ठः।** वसिष्ठ ऋषि का पुत्र-वासिष्ठ। **विश्वामित्रस्यापत्यम्-वैश्वामित्रः।** विश्वामित्र ऋषि का पुत्र-वैश्वामित्र। (अन्धकः) **श्वफल्कस्यापत्यम्-श्वाफल्कः।** श्वफल्क (अन्धक) का पुत्र-श्वाफलक। **रन्धसस्यापत्यम्-रान्धसः।** रन्धस (अन्धक) का पुत्र-रान्धस। (वृष्णिः) **वसुदेवस्यापत्यम्-वासुदेवः।** वसुदेव (वृष्णि) का पुत्र-वासुदेव (कृष्ण)। **अनिरुद्धस्यापत्यम्-आनिरुद्धः।** अनिरुद्ध (वृष्णि) का पुत्र-आनिरुद्ध। (कुरुः) **नकुलस्यापत्यम्-नाकुलः।** नकुल (कुरु) का पुत्र-नाकुल। **सहदेवस्यापत्यम्-साहदेवः।** सहदेव (कुरु) का पुत्र-साहदेव।*

सिद्धि-वासिष्ठः। *वसिष्ठ+ङस्+अण्। वासिष्ठ्+अ। वासिष्ठ+सु। वासिष्ठः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ ऋषिवाची 'वसिष्ठ' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**वैश्वामित्रः** आदि।*

विशेष- *अन्धक और वृष्णि, संघ के नाम हैं। श्वाफल्क अन्धक संघ का नेता और वसुदेव वृष्णि संघ का नेता था। कुरु जनपद का नाम है। आधुनिक दिल्ली के आसपास का प्रदेश कुरु कहलाता है।*

अण्–

(४) मातुरुत् संख्यासम्भद्रपूर्वायाः।११५।

प०वि०- मातुः ५।१ उत् १।१ संख्या-सम्-भद्रपूर्वायाः ५।१।

स०- संख्या च सम् च भद्रश्च ते-संख्यासम्भद्राः, संख्यासम्भद्राः पूर्वाः यस्याः सा-संख्यासम्भद्रपूर्वा, तस्याः-संख्यासम्भद्रपूर्वायाः (इतरेतरयोगद्वन्द्वबहुव्रीहिः)।

अनु०- तस्य, अपत्यम्, अण् इति चानुवर्तते।

अन्वयः- तस्य संज्ञासम्भद्रपूर्वाया मातुरपत्यम् अण्, उच्च।

अर्थः- तस्य इति षष्ठीसमर्थात् संख्यासम्भद्रपूर्वाद् मातृ-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति, उकारश्चान्तादेशो भवति।

उदा०-**(संख्या)** द्वयोर्मात्रोरपत्यम्-द्वैमातुरः । षण्णां मातॄणामपत्यम्-षाण्मातुरः । **(सम्)** सम्मातुरपत्यम्-साम्मातुरः **(भद्रः)** भद्रमातुरपत्यम्-भाद्रमातुरः ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (संख्यासम्भद्रपूर्वायाः) संख्यावाची शब्द, सम् और भद्र पूर्वक (मातुः) मातृ प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है और (उत्) मातृ शब्द के अन्त्य 'ऋ' के स्थान में 'उकार' आदेश होता है।*

उदा०-(संख्या) ***द्वयोर्मात्रोरपत्यम्-द्वैमातुरः।*** *दो माताओं का पुत्र-द्वैमातुर। माता के अतिरिक्त चाची आदि भी जिसे अपना पुत्र मानती हों।* ***षण्णां मातॄणामपत्यम्-षाण्मातुरः।*** *छः माताओं का पुत्र-षाण्मातुर। माता के अतिरिक्त अन्य पांच चाची, ताई आदि भी जिसे अपना पुत्र मानती हों।* ***(सम्) सम्मातुरपत्यम्-साम्मातुरः।*** *श्रेष्ठ माता का पुत्र-साम्मातुर।* ***(भद्रः) भद्रमातुरपत्यम्-भाद्रमातुरः।*** *कल्याणकारिणी माता का पुत्र-भाद्रमातुर।*

सिद्धि-द्वैमातुरः। *द्विमातृ+ङस्+अण्। द्वैमातुर्+अ। द्वैमातुर+सु। द्वैमातुरः।*

यहां षष्ठी-समर्थ संख्यावाची 'द्वि' शब्दपूर्वक 'मातृ' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। मातृ शब्द के 'ऋ' के स्थान में 'उकार' आदेश भी होता है। वह ***'उरण् रपरः'*** *(१।१।५०) से रपर होता है।* ***'तद्धितेष्वचामादेः'*** *(७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**षाण्मातुरः** आदि।*

अण्-

(५) कन्यायाः कनीन च।११६।

प०वि०-कन्यायाः ५।१ कनीन १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, अण् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य कन्याया अपत्यम् अण् कनीनश्च।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् कन्याशब्दात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति, कनीनश्चादेशो भवति।

उदा०-कन्याया अपत्यम्-कानीनः कर्णः। कानीनो व्यासः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठीसमर्थ (कन्यायाः) कन्या प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है (च) और (कनीनः) कन्या के स्थान में कनीन आदेश होता है।*

उदा०- ***कन्याया अपत्यम्-कानीनः कर्णः।*** *कन्या (कुन्ती) का पुत्र-कानीन (कर्ण)।* ***कानीनो व्यासः।*** *कन्या (सत्यवती) का पुत्र-कानीन (व्यास)।*

सिद्धि- ***कानीनः।*** *कन्या+ङस्+अण्। कानीन्+अ। कानीन+सु। कानीनः।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'कन्या' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है और 'कन्या' शब्द के स्थान में 'कनीन' आदेश भी होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

अण्-

(६) विकर्णशुङ्गच्छगलाद् वत्सभरद्वाजात्रिषु।११७।

प०वि०-विकर्ण-शुङ्ग-छगलात् ५।१ वत्स-भरद्वाज-अत्रिषु ७।३।

स०-विकर्णश्च शुङ्गश्च छगलश्च एतेषां समाहारः-विकर्ण-शुङ्गच्छगलम्, तस्मात्-विकर्णशुङ्गच्छगलात् (समाहारद्वन्द्वः)। वत्सश्च भरद्वाजश्च अत्रिश्च ते-वत्सभरद्वाजात्रयः, तेषु-वत्सभरद्वाजात्रिषु (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, अण् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य विकर्णशुङ्गच्छगलाद् अपत्यम् अण्, वत्सभरद्वाजात्रिषु।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो विकर्णशुङ्गच्छगलेभ्यः प्राति-पदिकेभ्योऽपत्यमित्यस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति, यथासंख्यं वत्सभरद्वाजा-त्रिष्वभिधेयेषु।

उदा०-विकर्णस्यापत्यम्-वैकर्णो वात्स्यः। शुङ्गस्यापत्यम्-शौङ्गो भारद्वाजः। छगलस्यापत्यम्-छागल आत्रेयः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (विकर्णशुङ्गच्छगलात्) विकर्ण, शुङ्ग, छगल प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है (वत्सभरद्वाजात्रिषु) यदि वहां वत्स, भरद्वाज और अत्रि अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०- ***(विकर्ण) विकर्णस्यापत्यम्-वैकर्णो वात्स्यः।*** *विकर्ण ऋषि का पुत्र-वैकर्ण वात्स्य।* ***(शुङ्ग) शुङ्गस्यापत्यम्-शौङ्गो भारद्वाजः।*** *शुङ्ग ऋषि का पुत्र-शौङ्ग भारद्वाज।* ***(छगल) छगलस्यापत्यम्-छागल आत्रेयः।*** *छगल ऋषि का पुत्र-छागल आत्रेय। विकर्ण, शुङ्ग और छगल क्रमशः वत्स, भरद्वाज और अत्रि वंश के ऋषि हैं।*

सिद्धि- ***वैकर्णः।*** *विकर्ण+ङस्+अञ्। वैकर्ण्+अ। वैकर्ण+सु। वैकर्णः।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'विकर्ण' शब्द से अपत्य अर्थ में तथा वत्स ऋषि अभिधेय में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-शौङ्गः आदि।

अण्-विकल्पः–

(७) पीलाया वा।११८।

प०वि०–पीलायाः ५।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०–तस्य, अपत्यम्, अण् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य पीलाया अपत्यं वाऽण्।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थात् पीला-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे विकल्पेनाण् प्रत्ययो भवति।

उदा०–पीलाया अपत्यम्-पैलः, पैलेयो वा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (पीलायाः) पीला प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (वा) विकल्प से (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**पीलाया अपत्यम्-पैलः, पैलेयो वा।** पीला ऋषि का पुत्र-पैल, अथवा पैलेय। पीला=प्रतिष्ठिता।*

सिद्धि-(१) पैलः। *पीला+ङस्+अण्। पैल्+अ। पैल+सु। पैलः।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'पीला' शब्द प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के आकार का लोप होता है।

*(२) **पैलेयः।** पीला+ङस्+ढक्। पैल्+एय। पैलेय+सु। पैलेयः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'पीला' प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में विकल्प पक्ष में **'द्व्यचः'** (४।१।१२१) से 'ढक्' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश होता है।*

ढक्+अण्–

(८) ढक् च मण्डूकात्।११९।

प०वि०–ढक् १।१ च अव्ययपदम्, मण्डूकात् ५।१।

अनु०–तस्य, अपत्यम्, अण्, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य मण्डूकाद् अपत्यं वा ढक् अण् च।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् मण्डूकशब्दात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे विकल्पेन ढक् अण् च प्रत्ययो भवति।

उदा०-मण्डूकस्यापत्यम्-माण्डूकेयः (ढक्)। माण्डूकः (अण्)। माण्डूकिः (इञ्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (मण्डूकात्) मण्डूक प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (वा) विकल्प से (ढक्) ढक् (च) और (अण्) अण् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-**मण्डूकस्यापत्यम्-माण्डूकेयः (ढक्)। माण्डूकः (अण्)। माण्डूकिः (इञ्)।** मण्डूक ऋषि का पुत्र-माण्डूकेय, माण्डूक अथवा माण्डूकि।*

*सिद्धि-**(१) माण्डूकेयः।** मण्डूक+ढक्। माण्डूक्+एय। माण्डूकेय+सु। माण्डूकेयः।*

*यहां 'मण्डूक' प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'ढक्' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।*

(२) माण्डूकः। *मण्डूक+ङस्+अण्। माण्डूक्+अ। माण्डूक+सु। माण्डूकः।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'मण्डूक' शब्द से इस सूत्र से पूर्ववत् 'अण्' प्रत्यय है।

(३) माण्डूकिः। *माण्डूक+इञ्। माण्डूक+इ। माण्डूकि+सु। माण्डूकिः।*

यहां विकल्प पक्ष में 'अत इञ्' (४।१।९५) से 'इञ्' प्रत्यय है।

विशेष-ब्रह्मविद्या से मण्डित (विभूषित) ऋषि को 'मण्डूक' कहते हैं। यहां 'मण्डूक' शब्द का मेंढक अर्थ नहीं है।

ढक्-

(१) स्त्रीभ्यो ढक्।१२०।

प०वि०-स्त्रीभ्यः ५।३ ढक् १।१।

अनु०-तस्य, अपत्यमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य स्त्रीभ्योऽपत्यं ढक्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः स्त्रीप्रत्ययान्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्यस्मिन्नर्थे ढक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-सुपर्ण्या अपत्यम्-सौपर्णेयः। विनताया अपत्यम्-वैनतेयः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (स्त्रीभ्यः) स्त्री-प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (ढक्) ढक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**सुपर्ण्या अपत्यम्-सौपर्णेयः।** कश्यप ऋषि की पत्नी सुपर्णी का पुत्र-सौपर्णेय। **विनताया अपत्यम्-वैनतेयः।** कश्यप ऋषि की पत्नी विनता का पुत्र-वैनतेय (गरुड़)।*

सिद्धि-(१) सौपर्णेयः । सुपर्णी+ङस्+ढक् । सौपर्ण्+एय । सौपर्णेय+सु । सौपर्णेयः ।

यहां षष्ठी-समर्थ स्त्री-प्रत्ययान्त 'सुपर्णी' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'ढक्' प्रत्यय है। 'किति च' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और पूर्ववत् अंग 'इकार' का लोप होता है।

(२) वैनतेयः । विनता+ङस्+ढक् । वैनत्+एय । वैनतेय+सु । वैनतेयः । पूर्ववत् ।

विशेष-कश्यप ऋषि की सुपर्णी और विनता दो पत्नियां थीं। सुपर्णी के पुत्र सौपर्णेय और विनता के पुत्र वैनतेय कहाते हैं। वैनतेय=गरुड़। गरुड़ आकाशीय उड्डयन विद्या में कुशल था। इसका पक्षीविशेष अर्थ भ्रान्तिपूर्ण है। गरुड़ के छोटे भाई का नाम अरुण था।

ढक्-

(२) द्व्यचः ।१२१।

प०वि०-द्वि-अचः ५।१।

स०-द्वावचौ यस्मिन् स द्व्यच्, तस्मात्-द्व्यचः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, स्त्रीभ्यः, ढक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य स्त्रिया द्व्यचोऽपत्यं ढक्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् स्त्रीप्रत्ययान्ताद् द्व्यचः प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे ढक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-गङ्गाया अपत्यम्-गाङ्गेयः । दत्ताया अपत्यम्-दात्तेयः । गोप्या अपत्यम्-गौपेयः ।

आर्यभाषाः अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (स्त्रीभ्यः) स्त्री-प्रत्ययान्त (द्व्यचः) दो अच् वाले प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (ढक्) ढक् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**गङ्गाया अपत्यम्-गाङ्गेयः ।** गङ्गा का पुत्र-गाङ्गेय (भीष्म)। **दत्ताया अपत्यम्-दात्तेयः ।** दत्ता नामक स्त्री का पुत्र-दात्तेय। **गोप्या अपत्यम्-गौपेयः ।** गोपी नामक स्त्री का पुत्र-गौपेय।*

सिद्धि-गाङ्गेयः । गङ्गा+ङस्+ढक् । गाङ्ग्+एय । गाङ्गेय+सु । गाङ्गेयः ।

*यहां षष्ठी-समर्थ नदीवाची, स्त्रीप्रत्ययान्त, दो अच्वाले 'गङ्गा' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'ढक्' प्रत्यय है। '**आयनेय०**' (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में '**एय्**' आदेश होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि तथा अंग के आकार का लोप होता है। यह '**अवृद्धाभ्यो नदीमानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्यः**' (४।१।११३) से प्राप्त 'अण्' प्रत्यय का अपवाद है। ऐसे ही-**दात्तेयः** आदि।*

ढक्–

(३) इतश्चानिञः ।१२२।

प०वि०–इत: ५ ।१ च अव्ययपदम्, अनिञ: ५ ।१।

स०–न इञ् इति अनिञ्, तस्मात्–अनिञ: (नञ्तत्पुरुष:)।

अनु०–तस्य, अपत्यम, ढक्, द्व्यच इति चानुवर्तते।

अन्वय:–तस्य अनिञ इतो द्व्यचोऽपत्यं ढक्।

अर्थ:–तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् अनिञन्ताद् इकारान्ताद् द्व्यच: प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे ढक् प्रत्ययो भवति।

उदा०–अत्रेरपत्यम्–आत्रेय:। निधेरपत्यम्–नैधेय:।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (अनिञ:) इञ्-प्रत्ययान्त से रहित (इत:) इकारान्त (द्व्यच:) दो अच्वाले प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (ढक्) ढक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०–**अत्रेरपत्यम्–आत्रेय:।** अत्रि ऋषि का पुत्र–आत्रेय। **निधेरपत्यम्–नैधेय:।** निधि ऋषि का पुत्र–नैधेय।*

सिद्धि–आत्रेय:। *अत्रि+ङस्+ढक्। आत्र्+एय। आत्रेय+सु। आत्रेय:।*

*यहां षष्ठी-समर्थ इञ् प्रत्ययान्त से वर्जित, इकारान्त, द्वि-अज्वान् 'अत्रि' शब्द से इस सूत्र से 'ढक्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही–**नैधेय:।***

ढक्–

(४) शुभ्रादिभ्यश्च।१२३।

प०वि०–शुभ्रादिभ्य: ५ ।३ च अव्ययपदम्।

स०–शुभ्र आदिर्येषां ते शुभ्रादय:, तेभ्य:–शुभ्रादिभ्य: (बहुव्रीहि:)।

अनु०–तस्य, अपत्यम्, ढक् इति चानुवर्तते।

अन्वय:–तस्य शुभ्रादिभ्यश्च अपत्यं ढक्।

अर्थ:–तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्य: शुभ्रादिभ्योऽपि प्रातिपदिकेभ्योऽपत्यमित्यस्मिन्नर्थे ढक् प्रत्ययो भवति।

उदा०–शुभ्रस्यापत्यम्–शौभ्रेय:। विष्टपुरस्यापत्यम्–वैष्टपुरेय:, इत्यादिकम्।

शुभ्र । विष्टपुर । ब्रह्मकृत । शतद्वार । शतावर । शलाका । शालाचल । शलकाभ्रू । लेखाभ्रू । विमातृ । विधवा । किंकसा । रोहिणी । रुक्मिणी । दिशा । शालूक । अजवस्ति । शकन्धि । लक्षणश्यामयोर्वसिष्ठे । गोधा । कृकलास । अणीव प्रवाहण । भरत । भारत । भारम । भृकण्डु । मघष्टु । मकष्टु । कर्पूर । इतर । अन्यतर । आलीढ । सुदत्त । सुचक्षस । सुनामन् । कद्रु । तुद । अकशाप । कुमारिका । किशोरिका । कुवेणिका । जिह्माशिन । परिधि । वायुदत्त । शकल । खट्वर । अम्बिका । अशोका । शुद्धपिङ्गला । खडोन्मत्ता । अनुदृष्टि । जरतिन् । बलिवर्दिन् । विग्रज । बीज । श्वन् । अश्मन् । अश्व । अजिर । स्थूल । सृकण्डू । यकथु । यमष्टु । कष्टु । सृकण्ड । मृकण्ड । गुद । रुद । कुशेरिका । शकल । शबल । उग्र । अजिन । इति शुभ्रादयः ।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (शुभ्रादिभ्यः) शुभ्र आदि प्रातिपदिकों से (च) भी (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (ढक्) ढक् प्रत्यय होता है।

उदा०-__शुभ्रस्यापत्यम्-शौभ्रेयः__ । शुभ्र ऋषि का पुत्र-शौभ्रेय। __विष्टपुरस्यापत्यम्-वैष्टपुरेयः__ । विष्टपुर ऋषि का पुत्र-वैष्टपुरेय।

सिद्धि-__शौभ्रेयः__ । शुभ+ङस्+ढक्। शौभ्र्+एय। शौभ्रेय+सु। शौभ्रेयः ।

यहां षष्ठी-समर्थ 'शुभ्र' शब्द से अपत्य अर्थ में 'ढक्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-__वैष्टपुरेयः__ ।

ढक्-

(५) विकर्णकुषीतकात् काश्यपे।१२४।

प०वि०-विकर्ण-कुषीतकात् ५।१ काश्यपे ७।१।

स०-विकर्णश्च कुषीतकश्च एतयोः समाहारः-विकर्णकुषीतकम्, तस्मात्-विकर्णकुषीतकात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, ढक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य विकर्णकुषीतकाद् अपत्यं ढक् काश्यपे।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाभ्यां विकर्ण-कुषीतकाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यामपत्यमित्यस्मिन्नर्थे ढक् प्रत्ययो भवति, **काश्यपेऽभिधेये।**

उदा०-विकर्णस्यापत्यम्-वैकर्णेयः काश्यपः। कुषीतकस्यापत्यम्-कौषीतकेयः काश्यपः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (विकर्णकुषीतकात्) विकर्ण और कुषीतक प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (ढक्) ढक् प्रत्यय होता है (काश्यपे) यदि वहां काश्यप अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-(विकर्ण) विकर्णस्यापत्यम्-वैकर्णेयः काश्यपः। विकर्ण ऋषि का पुत्र-वैकर्णेय काश्यप। (कुषीतक) कुषीतकस्यापत्यम्-कौषीतकेयः काश्यपः। कुषीतक ऋषि का पुत्र-कौषीतकेय काश्यप। विकर्ण और कुषीतक काश्यप वंश के ऋषि हैं।

सिद्धि-वैकर्णेयः। विकर्ण+ङस्+ढक्। विकर्ण्+एय।वैकर्णेय+सु। वैकर्णेयः।

*यहां षष्ठी-समर्थ 'विकर्ण' शब्द से अपत्य अर्थ में तथा 'काश्यप' अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'ढक्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**कौषीतकेयः।***

ढक्-

(६) भ्रुवो वुक् च।१२५।

प०वि०-भ्रुवः ५।१ वुक् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, ढक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य भ्रुवोऽपत्यं ढक् वुक् च।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् भ्रूशब्दात् प्रातिपदिकाद् अपत्य-मित्यस्मिन्नर्थे ढक् प्रत्ययो भवति, वुक् चागमो भवति।

उदा०-भ्रुवोऽपत्यम्-भ्रौवेयः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (भ्रुवः) भ्रू शब्द प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (ढक्) ढक् प्रत्यय होता है (च) और (वुक्) भ्रू शब्द को वुक् आगम होता है।*

*उदा०-**भ्रुवोऽपत्यम्-भ्रौवेयः।** भ्रू ऋषि का पुत्र-भ्रौवेय।*

सिद्धि-भ्रौवेयः। भ्रू+ङस्+ढक्। भ्रूवुक्+एय। भ्रौव्+एय। भ्रौवेय+सु। भ्रौवेयः।

यहां षष्ठी-समर्थ 'भ्रू' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'ढक्' प्रत्यय और भ्रू शब्द को 'वुक्' आगम होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

ढक् (इनङ्)–

(७) कल्याण्यादीनामिनङ् च।१२६।

प०वि०-कल्याणी-आदीनाम् ६।३ इनङ् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-कल्याणी आदिर्येषां ते-कल्याण्यादयः, तेषाम्-कल्याण्यादीनाम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, ढक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य कल्याणादीनाम् अपत्यं ढक् इनङ् च।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः कल्याण्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्यमित्यस्मिन्नर्थे ढक् प्रत्ययो भवति, इनङ् चादेशो भवति।

उदा०-कल्याण्या अपत्यम्-काल्याणिनेयः। सुभगाया अपत्यम्-सौभागिनेयः।

कल्याणी। सुभगा। दुर्भगा। बन्धकी। अनुदृष्टि। अनुसृष्टि। जरती। बलीवर्दी। ज्येष्ठा। कनिष्ठा। मध्यमा। परस्त्री। इति कल्याण्यादयः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (कल्याण्यादीनाम्) कल्याणी आदि प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (ढक्) ढक् प्रत्यय होता है (च) और उन्हें (इनङ्) इनङ् आदेश होता है।*

*उदा०-**कल्याण्या अपत्यम्-काल्याणिनेयः।** कल्याणी का पुत्र-काल्याणिनेय। **सुभगाया अपत्यम्-सौभागिनेयः।** सुभगा का पुत्र-सौभागिनेय।*

*सिद्धि-(१) **काल्याणिनेयः।** कल्याणी+ङस्+ढक्। काल्याण्+इनङ्+एय। काल्याणिन्+एय। काल्याणिनेय+सु। काल्याणिनेयः।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'कल्याणी' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से ढक् प्रत्यय और 'कल्याणी' शब्द को 'इनङ्' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

*(२) **सौभागिनेयः।** यहां '**हृद्भगसिन्ध्वन्ते०**' (७।३।१९) से अंग को उभयपद-वृद्धि होती है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

ढक्-विकल्पः–

(८) कुलटाया वा।१२७।

प०वि०-कुलटायाः ५।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, ढक्, इनङ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य कुलटाया अपत्यं ढक् वा इनङ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् कुलटाशब्दात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे ढक् प्रत्ययो भवति, विकल्पेन च इनङ् आदेशो भवति।

उदा०-कुलटाया अपत्यम्-कौलटिनेयः, कौलटेयो वा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (कुलटायाः) कुलटा प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (ढक्) ढक् प्रत्यय होता है और (वा) विकल्प से (इनङ्) इनङ् आदेश होता है।*

*उदा०-**कुलटाया अपत्यम्-कौलटिनेयः, कौलटेयो वा।** कुलटा=व्यभिचारिणी स्त्री का पुत्र-कौलटिनेय अथवा कौलटेय।*

सिद्धि-(१) कौलटिनेयः। *कुलटा+ङस्+ढक्। कुलट् इनङ्+एय। कौलटिन्+एय। कौलटिनेय+सु। कौलटिनेयः।*

यहां 'कुलटा' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'ढक्' प्रत्यय और इनङ् आदेश होता है। 'किति च' (७।२।११२) से अंग को आदिवृद्धि होती है।

(२) कौलटेयः। *कुलटा+ङस्+ढक्। कौलट्+एय। कौलटेय+सु। कौलटेयः।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'कुलटा' शब्द से अपत्य अर्थ में 'ढक्' प्रत्यय और विकल्प-पक्ष में 'इनङ्' आदेश नहीं है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

विशेष-कुलान्यटतीति-कुलटा। कुल+अटा=कुलटा। यहां इसी सूत्रोक्त निपातन से पररूप एकादेश होता है।

ऐरक्-

(१) चटकाया ऐरक्।१२८।

प०वि०-चटकायाः ५।१ ऐरक् १।१।

अनु०-तस्य, अपत्यमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य चटकाया अपत्यम् ऐरक्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाच्चटकाशब्दात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे ऐरक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-चटकाया अपत्यम्-चाटकैरः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (चटकायाः) चटका प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (ऐरक्) ऐरक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-चटकाया अपत्यम्-चाटकैरः। चिड़िया का बच्चा-चाटकैर (चीकला)।

सिद्धि-चाटकैरः। चटका+ङस्+ऐरक्। चाटक्+ऐर। चाटकैर+सु। चाटकैरः।

*यहां षष्ठी-समर्थ 'चटका' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'ऐरक्' प्रत्यय है। **'किति च'** (६।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है।*

ढ्रक्–

(१) गोधाया ढ्रक्।१२९।

प०वि०-गोधायाः ५।१ ढ्रक् १।१।

अनु०-तस्य, अपत्यमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य गोधाया अपत्यं ढ्रक्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् गोधाशब्दात् प्रातिपदिकात् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे ढ्रक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-गोधाया अपत्यम्-गौधेरः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (गोधायाः) गोधा प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (ढ्रक्) ढ्रक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**गोधाया अपत्यम्-गौधेरः**। गोह का बच्चा-गौधेर (गोहेरा)।*

*सिद्धि-**गौधेरः**। गोधा+ङस्+ढ्रक्। गौध्+एय्र। गौध्ए०र। गौधेर+सु। गौधेरः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'गोधा' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'ढ्रक्' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश और **'लोपो व्योर्वलि'** (६।१।६६) से एय् के 'य्' का लोप होता है। **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है।*

आरक्–

(२) आरगुदीचाम्।१३०।

प०वि०-आरक् १।१ उदीचाम् ६।३।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, गोधाया इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य गोधाया अपत्यम् आरक्, उदीचाम्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् गोधाशब्दात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे आरक् प्रत्ययो भवति, उदीचामाचार्याणां मतेन।

उदा०–गोधाया अपत्यम्–गौधारः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (गोधायाः) गोधा-शब्द प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (आरक्) आरक् प्रत्यय होता है (उदीचाम्) उत्तर-भारत के आचार्यों के मत में।*

*उदा०-**गोधाया अपत्यम्-गौधारः।** गोह का बच्चा-गौधार (गोहेरा)।*

सिद्धि-गौधारः। *गोधा+ङस्+आरक्। गौध्+आर। गौधार्+सु। गौधारः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'गोधा' शब्द अपत्य अर्थ में तथा उत्तर भारत के आचार्यों के मत में इस सूत्र से 'आरक्' प्रत्यय है। **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है।*

ढ्रक्–

(३) क्षुद्राभ्यो वा।१३१।

प०वि०–क्षुद्राभ्यः ५।३ वा अव्ययपदम्।

अनु०–तस्य, अपत्यम्, ढ्रक् इति चानुवर्तते, आरक् इति च नानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य क्षुद्राभ्योऽपत्यं ढ्रक्।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः क्षुद्रावाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्यमित्यस्मिन्नर्थे विकल्पेन ढ्रक् प्रत्ययो भवति। अङ्गहीनाः शीलहीनाश्च स्त्रियः क्षुद्रा इत्युच्यन्ते।

उदा०–काणाया अपत्यम्–काणेरः, काणेयो वा। दास्या अपत्यम्–दासेरः, दासेयो वा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (क्षुद्राभ्यः) क्षुद्रावाची प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (वा) विकल्प से (ढ्रक्) ढ्रक् प्रत्यय होता है। अङ्गहीन अथवा चरित्रहीन स्त्रियों को क्षुद्रा कहते हैं।*

*उदा०-(अङ्गहीन) **काणाया अपत्यम्-काणेरः, काणेयो वा।** काणी स्त्री का पुत्र काणेर अथवा काणेय। (शीलहीन) **दास्या अपत्यम्-दासेरः, दासेयो वा।** दासी का पुत्र दासेर अथवा दासेय।*

सिद्धि-(१) काणेरः। *काणा+ङस्+ढ्रक्। काण्+एय्+र। काण्+ए०र। काणेर+सु। काणेरः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ क्षुद्रावाची 'काणा' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'ढ्रक्' प्रत्यय है। शेष कार्य **'गौधेरः'** (४।१।१२९) के समान है।*

*(२) **काणेयः।** काणा+ङस्+ढक्। काण्+एय। काणेय+सु। काणेयः।*

यहां षष्ठी-समर्थ क्षुद्रावाची 'काणा' शब्द से अपत्य अर्थ में विकल्प पक्ष में 'द्वयचः' (४।१।१२१) से 'ढक्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही दासी शब्द से-दासेरः, दासेयः।

छण्–

(१) पितृष्वसुश्छण्।१३२।

प०वि०-पितृष्वसुः ५।१ छण् १।१।

स०-पितुः स्वसा इति पितृष्वसा, तस्याः-पितृष्वसुः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य पितृष्वसुरपत्यं छण्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् पितृस्वसृशब्दात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे छण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पितृस्वसुरपत्यम्-पैतृष्वस्रीयः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (पितृष्वसुः) पितृष्वसा प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (छण्) छण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**पितृस्वसुरपत्यम्-पैतृष्वस्रीयः।** पिता की बहिन (बूआ) का बेटा-पैतृस्वस्रीय।*

***सिद्धि-पैतृष्वस्रीयः।** पितृष्वसृ+ङस्+छण्। पैतृष्वसृ+ईय। पैतृष्वस्रीय+सु। पैतृष्वस्रीयः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'पितृष्वसृ' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'छण्' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है। **'इको यणचि'** (६।१।७५) से 'ऋ' के स्थान में यण् (र्) आदेश है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है। **'तस्यापत्यम्'** (४।१।९२) से सामान्य 'अण्' प्रत्यय की प्राप्ति थी, यह उसका अपवाद है।*

ढक् (अन्त्यलोपः)–

(२) ढकि लोपः।१३३।

प०वि०-ढकि ७।१ लोपः १।१।

अनु०-तस्य, अपत्यम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य पितृष्वसुरपत्यम् ढकि लोपः।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् पितृष्वसृशब्दाद् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे ढकि प्रत्यये परतोऽन्त्यस्य ऋवर्णस्य लोपो भवति।

उदा०-पितृष्वसुरपत्यम्-पैतृष्वसेयः।

आर्यभाषा: *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (पितृष्वसुः) पितृष्वसा प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (ढकि) ढक् प्रत्यय परे होने पर (लोपः) पितृष्वसृ के अन्त्य ऋवर्ण का लोप होता है।*

*उदा०-**पितृष्वसुरपत्यम्-पैतृष्वसेयः।** पिता की बहिन (बूआ) का बेटा-पैतृष्वसेय।*

*सिद्धि-**पैतृष्वसेयः।** पितृष्वसृ+ङस्+ढक्। पैतृष्वस्+एय। पैतृष्वसेय+सु। पैतृष्वसेयः।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'पितृष्वसृ' शब्द से अपत्य अर्थ में 'ढक्' प्रत्यय करने पर 'पितृष्वसृ' शब्द के अन्त्य वर्ण 'ऋ' का इस सूत्र से लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

विशेष-पितृष्वसृ शब्द से किसी सूत्र से ढक् प्रत्यय का विधान नहीं किया गया है। यहां आचार्य पाणिनिमुनि द्वारा ढक् प्रत्यय परे होने पर जो लोप विधान किया गया है इससे ज्ञात होता है कि 'पितृष्वसृ' शब्द से ढक् प्रत्यय होता है।

ढक्+छण्-

(२) मातृष्वसुश्च।१३४।

प०वि०-मातृष्वसुः ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-मातुः स्वसा इति मातृष्वसा, तस्याः-मातृष्वसुः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, ढकि लोपश्छण् च।

अन्वयः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् मातृष्वसृशब्दात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे ढकि परतोऽन्त्यस्य ऋवर्णस्य लोपो भवति, छण् च प्रत्ययोऽपि भवति।

उदा०-**(ढक्)** मातृष्वसुरपत्यम्-मातृष्वसेयः। **(छण्)** मातृष्वसुरपत्यम्-मातृष्वस्रीयः।

आर्यभाषा: *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (मातृष्वसुः) मातृष्वसृ प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (ढकि) ढक् प्रत्यय परे होने (लोपः) मातृष्वसृ शब्द के अन्त्य ऋवर्ण का लोप होता है (च) और (छण्) छण् प्रत्यय भी होता है।*

*उदा०-(ढक्) **मातृष्वसुरपत्यम्-मातृष्वसेयः।** माता की बहिन (मा-सी) का बेटा। (छण्) **मातृष्वसुरपत्यम्-मातृष्वस्रीयः।** माता की बहिन का बेटा-मातृष्वस्रीय।*

*सिद्धि-**मातृष्वसेयः** और **मातृष्वस्रीयः** शब्दों की सिद्धि पूर्ववत् (४।१।१३२-१३३) है।*

ढञ्–

(१) चतुष्पाद्भ्यो ढञ्।१३५।

प०वि०–चतुष्पाद्भ्यः ५।३ ढञ् १।१।

स०–चत्वारः पादा यासां ताः–चतुष्पादः, ताभ्यः–चतुष्पाद्भ्यः (बहुव्रीहिः) **'पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः'** (५।४।१३८) इति समासान्तोऽकारलोपः।

अनु०–तस्य, अपत्यम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य चतुष्पाद्भ्योऽपत्यं ढञ्।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यश्चतुष्पाद्वाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्यस्मिन्नर्थे ढञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(कमण्डलूः)** कमण्डल्वा अपत्यम्–कामण्डलेयः। **(शुन्तिबाहूः)** शुन्तिबाह्वा अपत्यम्–शौन्तिबाहेयः। **(जम्बूः)** जम्ब्वा अपत्यम्–जाम्ब्वेयः।

आर्यभाषाः *अर्थ–(तस्य) षष्ठी-समर्थ (चतुष्पाद्भ्यः) चौपायों के वाचक प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (ढञ्) ढञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०–(कमण्डलूः) **कमण्डल्वा अपत्यम्–कामण्डलेयः।** कमण्डलू नामक पशुविशेष का पुत्र-कामण्डलेय। (शुन्तिबाहूः) **शुन्तिबाह्वा अपत्यम्–शौन्तिबाहेयः।** शुन्तिबाहू नामक पशुविशेष का पुत्र-शौन्तिबाहेय। (जम्बूः) **जम्बा अपत्यम्–जाम्ब्वेयः।** गीदड़ी का बच्चा–जाम्ब्वेय।*

*सिद्धि–**कामण्डलेयः।** कमण्डलू+ङस्+ढञ्। कामण्डल्+एय। कामण्डलेय+सु। कामण्डलेयः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ चतुष्पाद्वाची 'कमण्डलू' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'ढञ्' प्रत्यय है। **'ढे लोपोऽकद्र्वाः'** (६।४।१४७) से कमण्डलू के ऊकार का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही–**शौन्तिबाहेयः, जाम्ब्वेयः।***

ढञ्–

(२) गृष्ट्यादिभ्यश्च।१३६।

प०वि०–गृष्टि–आदिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०–गृष्टिरादिर्येषां ते–गृष्ट्यादयः, तेभ्यः–गृष्ट्यादिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, ढञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य गृष्ट्यादिभ्यश्चापत्यं ढञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो गृष्ट्यादिभ्योऽपि प्रातिपदिकेभ्योऽपत्यमित्यस्मिन्नर्थे ढञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(गृष्टिः) गृष्टेरपत्यम्-गार्ष्टेयः। (हृष्टिः) हृष्टेरपत्यम्-हार्ष्टेयः, इत्यादिकम्।

गृष्टि। हृष्टि। हलि। बलि। विश्रि। कुद्रि। अजवस्ति। मित्रयु। फलि। अलि। दृष्टि। इति गृष्ट्यादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (गृष्ट्यादिभ्यः) गृष्टि आदि प्रातिपदिकों से (च) भी (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (ढञ्) ढञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(गृष्टिः) गृष्टेरपत्यम्-**गार्ष्टेयः**। गृष्टि=पहली बार प्रसूता स्त्री का पुत्र-गार्ष्टेय। (हृष्टिः) हृष्टेरपत्यम्-**हार्ष्टेयः**। हृष्टि=रोमांचिता स्त्री का पुत्र-हार्ष्टेय।*

सिद्धि-गार्ष्टेयः। गृष्टि+ङस्+ढञ्। गार्ष्ट्+एय। गार्ष्टेय+सु। गार्ष्टेयः।

*यहां षष्ठी-समर्थ 'गृष्टि' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'ढञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**हार्ष्टेयः**।*

विशेष-'गृष्टि' शब्द प्रथम बार प्रसूता गौ आदि अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। चतुष्पाद्वाची से तो 'चतुष्पाद्भ्यो ढञ्' (४।१।१३५) से ही ढञ् प्रत्यय सिद्ध है। यहां चतुष्पाद् को छोड़कर प्रथम बार प्रसूता स्त्री अर्थ का ग्रहण करना चाहिए।

यत्--

(१) राजश्वशुराद् यत्।१३७।

प०वि०-राज-श्वशुरात् ५।१ यत् १।१।

स०-राजा च श्वशुरश्च एतयोः समाहारः-राजश्वशुरम्, तस्मात्-राजश्वशुरात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, अपत्यमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य राजश्वशुराद् अपत्यं यत्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाभ्यां राजश्वशुराभ्यां प्रातिपदिकाभ्यामपत्यमित्यस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(राजा) राज्ञोऽपत्यम्-राजन्यः। (श्वशुरः) श्वशुरस्यापत्यम्-श्वशुर्यः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (राजश्वशुरात्) राजन् और श्वशुर प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (यत्) यत् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(राजा) **राज्ञोऽपत्यम्-राजन्यः।** राजा का पुत्र-राजन्य। (श्वशुर) **श्वशुरस्यापत्यम्-श्वशुर्यः।** श्वशुर का पुत्र-श्वशुर्य (साला)।*

*सिद्धि-(१) **राजन्यः।** राजन्+ङस्+यत्। राजन्+य। राजन्य+सु। राजन्यः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'राजन्' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। '**ये चाभावकर्मणोः**' (६।४।१६८) से प्रकृतिभाव होता है, नकार का लोप नहीं होता है।*

*(२) **श्वशुर्यः।** श्वशुर+ङस्+यत्। श्वशुर्+य। श्वशुर्य+सु। श्वशुर्यः। पूर्ववत्।*

घः-

(१) क्षत्राद् घः।१३८।

प०वि०-क्षत्रात् ५।१ घः १।१।

अनु०-तस्य, अपत्यमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य क्षत्राद् अपत्यं घः।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् क्षत्रशब्दात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे घः प्रत्ययो भवति।

उदा०-क्षत्रस्यापत्यम्-क्षत्रियः।

***आर्यभाषाः अर्थ-**(तस्य) षष्ठी-समर्थ (क्षत्रात्) क्षत्र प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (घः) घ प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**क्षत्रस्यापत्यम्-क्षत्रियः।** राजा का पुत्र-क्षत्रिय।*

*सिद्धि-**क्षत्रियः।** क्षत्र+घ। क्षत्र्+इय। क्षत्रिय+सु। क्षत्रियः।*

*यहां 'क्षत्र' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'घ' प्रत्यय है। '**आयनेय०**' (७।१।२) से 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश होता है।*

खः-

(१) कुलात् खः।१३९।

प०वि०-कुलात् ५।१ खः १।१।

अनु०-तस्य, अपत्यमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य कुलाद् अपत्यं खः ।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् कुलान्तात् केवलाच्च प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे खः प्रत्ययो भवति ।

उदा०-**(तदन्तात्)** आढ्यकुलस्यापत्यम्-आढ्यकुलीनः । श्रोत्रियकुलस्यापत्यम्-श्रोत्रियकुलीनः । **(केवलात्)** कुलस्यापत्यम्-कुलीनः ।

उत्तरसूत्रे पूर्वपदप्रतिषेधादत्र तदन्तः केवलश्च कुलशब्दो गृह्यते ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (कुलान्तात्) कुलान्त तथा केवल कुल शब्द प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (खः) ख प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(तदन्त) **आढ्यकुलस्यापत्यम्-आढ्यकुलीनः** । धनी कुल का पुत्र-आढ्यकुलीन। **श्रोत्रियकुलस्यापत्यम्-श्रोत्रियकुलीनः** । वेदपाठी कुल का पुत्र-श्रोत्रियकुलीन। (केवल) **कुलस्यापत्यम्-कुलीनः** । उच्च वंश का पुत्र-कुलीन।*

आगामी सूत्र (४।१।१४०) में पूर्वपदवाले 'कुल' शब्द से 'ख' प्रत्यय के प्रतिषेध से यहां तदन्त और केवल 'कुल' शब्द का ग्रहण किया जाता है।

*सिद्धि-**आढ्यकुलीनः** । आढ्यकुल+ङस्+ख। आढ्यकुल्+ईन। आढ्यकुलीन+सु। आढ्यकुलीनः ।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'आढ्यकुल' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश होता है। ऐसे ही-**श्रोत्रियकुलीनः, कुलीनः** ।*

यत्+ढकञ्-

(१) अपूर्वपदादन्यतरस्यां यड्ढकञौ।१४०।

प०वि०-अपूर्वपदात् ५।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्, यड्ढकञौ १।२।

स०-अविद्यमानं पूर्वपदं यस्य तद्-अपूर्वपदम्, तस्मात्-अपूर्वपदात् (बहुव्रीहिः)। यच्च ढकञ् च तौ-यड्ढकञौ, (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, कुलादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य अपूर्वपदात् कुलाद् अपत्यम् अन्यतरस्यां यड्ढकञौ ।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् अपूर्वपदात् कुलशब्दात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे विकल्पेन यत्-ढकञौ प्रत्ययौ भवतः ।

उदा०-(यत्) कुलस्यापत्यम्-कुल्यः। **(ढकञ्)** कुलस्यापत्यम्-कौलेयकः। **(खः)** कुलस्यापत्यम्-कुलीनः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (अपूर्वपदात्) पूर्वपद से रहित (कुलात्) कुल प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (यड्ढकञौ) यत् और ढकञ् प्रत्यय होते हैं। विकल्प-विधान से 'ख' प्रत्यय भी होता है।*

*उदा०-(यत्) **कुलस्यापत्यम्-कुल्यः।** (ढकञ्) **कलस्यापत्यम्-कौलेयकः।** (खः) **कुलस्यापत्यम्-कुलीनः।** उच्च वंश का पुत्र-कुल्य, कौलेयक, कुलीन।*

*सिद्धि-(१) **कुल्यः।** कुल+ङस्+यत्। कुल्+य। कुल्य+सु। कुल्यः।*

यहां षष्ठी-समर्थ पूर्वपद से रहित 'कुल' शब्द से अपत्य अर्थ में 'यत्' प्रत्यय है।

*(२) **कौलेयकः।** कुल+ढकञ्। कुल्+एयक। कौल्+एयक। कौलेयक+सु। कौलेयकः।*

*यहां पूर्ववत् 'कुल' शब्द से 'ढकञ्' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश होता है।*

*(३) **कुलीनः।** यहां 'कुलात् खः' (४।१।१३९) से विकल्प पक्ष में 'ख' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश होता है।*

अञ्+खञ्--

(१) महाकुलादञ्खञौ।१४१।

प०वि०-महाकुलात् ५।१ अञ्-खञौ १।२।

स०-अञ् च खञ् च तौ-अञ्खञौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, अन्यतरस्यामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य महाकुलाद् अपत्यम् अन्यतरस्याम् अञ्खञौ।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् महाकुलशब्दात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे विकल्पेन अञ्-खञौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(अञ्) महाकुलस्यापत्यम्-माहाकुलः। **(खञ्)** महाकुलस्यापत्यम्-माहाकुलीनः। **(खः)** महाकुलस्यापत्यम्-महाकुलीनः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (महाकुलात्) महाकुल प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (अञ्खञौ) अञ् और खञ् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-(अञ्) **महाकुलस्यापत्यम्-माहाकुलः।** (खञ्) **महाकुलस्यापत्यम्-माहाकुलीनः।** (खः) **महाकुलस्यापत्यम्-महाकुलीनः।** महान् वंश का पुत्र-माहाकुल, माहाकुलीन, महाकुलीन।*

सिद्धि-(१) माहाकुल: । महाकुल+ङस्+अञ् । माहाकुल्+अ । माहाकुल+सु । माहाकुल: ।

यहां षष्ठीसमर्थ 'महाकुल' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

(२) माहाकुलीन: । महाकुल+खञ् । माहाकुल्+ईन । महाकुलीन+सु । महाकुलीन: । पूर्ववत् ।

(३) महाकुलीन: । महाकुल+ख । महाकुल्+ईन । महाकुलीन+सु । महाकुलीन: ।

यहां विकल्प पक्ष में 'कुलात् ख:' (४।१।१३९) से 'ख' प्रत्यय भी होता है।

ढक्–

(१) दुष्कुलाड्ढक्।१४२।

प०वि०-दुष्कुलात् ५।१ ढक् १।१।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, अन्यतरस्यामिति चानुवर्तते।

अन्वय:-तस्य दुष्कुलाद् अपत्यमन्यतरस्यां ढक्।

अर्थ:-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् दुष्कुलशब्दात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे विकल्पेन ढक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(ढक्) दुष्कुलस्यापत्यम्-दौष्कुलेय: । (ख:) दुष्कुलस्यापत्यम्-दुष्कुलीन: ।

आर्यभाषा: *अर्थ-(तस्य) षष्ठीसमर्थ (दुष्कुलात्) दुष्कुल प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (ढक्) ढक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(ढक्) दुष्कुलस्यापत्यम्-दौष्कुलेय: । (ख) दुष्कुलस्यापत्यम्-दुष्कुलीन: ।दुष्ट वंश का पुत्र-दौष्कुलेय, दुष्कुलीन।

सिद्धि-(१) दौष्कुलेय: । दुष्कुल+ङस्+ढक् । दौष्कुल्+एय । दौष्कुलेय+सु । दौष्कुलेय: ।

यहां षष्ठी-समर्थ 'दुष्कुल' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'ढक्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश होता है। 'किति च' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि होती है।

(२) दुष्कुलीन: । यहां विकल्प पक्ष में 'कुलात् ख:' (४।१।१३९) से 'ख' प्रत्यय है।

छः–

(१) स्वसुश्छः ।१४३।

प०वि०–स्वसुः ५।१ छः १।१।

अनु०–तस्य, अपत्यमिति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य स्वसुरपत्यं छः।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थात् स्वसृशब्दात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे छः प्रत्ययो भवति।

उदा०–स्वसुरपत्यम्-स्वस्रीयः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठीसमर्थ (स्वसुः) स्वसृ प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (छः) छ प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**स्वसुरपत्यम्-स्वस्रीयः।** बहिन का पुत्र-स्वस्रीय (भानजा)।*

*सिद्धि-**स्वस्रीयः।** स्वसृ+ङस्+छ। स्वसृ+ईय्। स्वस्रीय+सु। स्वस्रीयः।*

*यहां षष्ठीसमर्थ 'स्वसृ' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है। **'इको यणचि'** (६।१।७५) से 'स्वसृ' के 'ऋ' के स्थान में यण् (र्) आदेश होता है।*

व्यत्+छः–

(१) भ्रातुर्व्यच्च।१४४।

प०वि०–भ्रातुः ५।१ व्यत् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–तस्य, अपत्यम् छ इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य भ्रातुरपत्यं व्यत् छश्च।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् भ्रातृशब्दात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे व्यत् छश्च प्रत्ययो भवति।

उदा०–(**व्यत्**) भ्रातुरपत्यम्-भ्रातृव्यः। (**छः**) भ्रातुरपत्यम्-भ्रात्रीयः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठीसमर्थ (भ्रातुः) भ्रातृ प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (व्यत्) व्यत् (च) और (छः) छ प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-(व्यत्) **भ्रातुरपत्यम्-भ्रातृव्यः।** भाई का पुत्र-भ्रातृव्य। (छः) **भ्रातुरपत्यम्-भ्रात्रीयः।** भाई का पुत्र-भ्रात्रीय (भतीजा)।*

*सिद्धि-(१) **भ्रातृव्यः।** भ्रातृ+ङस्+व्यत्। भ्रातृ+व्य। भ्रातृव्य+सु। भ्रातृव्यः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'भ्रातृ' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'व्यत्' प्रत्यय है। प्रत्यय का 'त्' इत् होने से **'तित् स्वरितम्'** (६।१।१७९) से स्वरित स्वर होता है-**भ्रातृव्यः**।*

*(२) **भ्रात्रीयः**। भ्रातृ+ङस्+छ। भ्रातृ+ईय। भ्रात्रीय+सु। भ्रात्रीयः।*

*यहां षष्ठीसमर्थ 'भ्रातृ' शब्द से अपत्य अर्थ में 'छ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है। **'इको यणचि'** (६।१।७५) से भ्रातृ के 'ऋ' वर्ण को यण् (र्) आदेश होता है।*

व्यन्–

(१) व्यन् सपत्ने।१४५।

प०वि०–व्यन् १।१ सपत्ने ७।१।

अनु०–भ्रातुरित्यनुवर्तते।

अन्वयः–भ्रातुर्व्यन् सपत्ने।

अर्थः–भ्रातृशब्दात् प्रातिपदिकात् सपत्नेऽभिधेये व्यन् प्रत्ययो भवति।

उदा०–भ्रातृव्यः कण्टकः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(भ्रातुः) भ्रातृ प्रातिपदिक से (सपत्ने) शत्रु अर्थ अभिधेय होने पर (व्यन्) व्यन् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**भ्रातृव्यः कण्टकः**। काटे के समान दुःखदायक शत्रु-भ्रातृव्य।*

*सिद्धि-**भ्रातृव्यः**। भ्रातृ+ङस्+व्यन्। भ्रातृ+व्य। भ्रातृव्य+सु। भ्रातृव्यः।*

*यहां षष्ठीसमर्थ 'भ्रातृ' शब्द से सपत्न (शत्रु) अर्थ में इस सूत्र से 'व्यन्' प्रत्यय है। प्रत्यय के नित् होने से **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।१९१) से आद्युदात्त स्वर होता है-**भ्रातृव्यः**।*

विशेष-यहां 'भ्रातृव्य' शब्द के भतीजा और शत्रु दो अर्थ बताये गये हैं। भतीजा अर्थ में 'भ्रातृव्य' शब्द अन्तस्वरित होता है और शत्रु अर्थ में आद्युदात्त होता है जैसा कि ऊपर सिद्धि-सन्दर्भ में दिखाया गया है।

ठक्–

(१) रेवत्यादिभ्यष्ठक्।१४६।

प०वि०–रेवती-आदिभ्यः ५।३ ठक् १।१।

स०–रेवती आदिर्येषां ते-रेवत्यादयः, तेभ्यः-रेवत्यादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–तस्य, अपत्यमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य रेवत्यादिभ्योऽपत्यं ठक्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो रेवत्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्यमित्यस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-रेवत्या अपत्यम्-रैवतिकः। अश्वपाल्या अपत्यम्-आश्वपालिकः, इत्यादिकम्।

रेवती। अश्वपाली। मणिपाली। द्वारपाली। वृकवञ्चिन्। वृकग्राह। कर्णग्राह। दण्डग्राह। कुक्कुटाक्ष। वृकबन्धु। चामरग्राह। ककुदाक्ष। इति रेवत्यादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (रेवत्यादिभ्यः) रेवती आदि प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**रेवत्या अपत्यम्-रैवतिकः।** रेवती नामक स्त्री का पुत्र-रैवतिक। **अश्वपाल्या अपत्यम्-आश्वपालिकः।** अश्वपाली नामक स्त्री का पुत्र-आश्वपालिक।*

*सिद्धि-(१) **रैवतिकः।** रेवती+ङस्+ठक्। रैवत्+इक। रैवतिक+सु। रैवतिकः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'रेवती' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। **'ठस्येकः'** (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश होता है। **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है।*

*(२) **आश्वपालिकः।** अश्वपाली+ङस्+ठक्। आश्वपाल्+इक्। आश्वपालिक+सु। अश्वपालिकः। पूर्ववत्।*

ण+ठक्-

(१) गोत्रस्त्रियाः कुत्सने ण च।१४७।

प०वि०-गोत्रस्त्रियाः ५।१ कुत्सने ७।१ ण १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्।

स०-गोत्रं चासौ स्त्रीति गोत्रस्त्री, तस्याः-गोत्रस्त्रियाः (कर्मधारयः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य गोत्रस्त्रिया अपत्यं णः, ठक् च कुत्सने।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् गोत्रवाचिनः स्त्रीप्रत्ययान्तात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे णः, ठक् च प्रत्ययो भवति, कुत्सने गम्यमाने।

उदा०-(**णः**) गार्ग्या अपत्यम्-गार्गो जाल्मः। (**ठक्**) गार्ग्या अपत्यम्-गार्गिको जाल्मः। (**णः**) ग्लुचुकायन्या अपत्यम्-ग्लौचुकायनः। (**ठक्**) ग्लुचुकायन्या अपत्यम्-ग्लौचुकायनिकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठीसमर्थ (गोत्रस्त्रियाः) गोत्रवाची स्त्रीप्रत्ययान्त प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (णः) ण प्रत्यय (च) और (ठक्) ठक् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-(ण) **गार्ग्या अपत्यम्-गार्गो जाल्मः।** (ठक्) **गार्ग्या अपत्यम्-गार्गिको जाल्मः।** गार्गी का नीच पुत्र-गार्ग, गार्गिक। (ण) **ग्लुचुकायन्या अपत्यम्-ग्लौचुकायनः।** (ठक्) **ग्लुचुकायन्या अपत्यम्-ग्लौचुकायनिकः।** ग्लुचुकायनी का नीच पुत्र-ग्लौचुकायन, ग्लौचुकायनिक।*

सिद्धि-(१) गार्गः। *गर्ग+ङस्+यञ्। गार्ग्य+ङीष्। गार्ग्य्+ई। गार्गी। गार्गी+ङस्+ण। गार्ग्+अ। गार्ग+सु। गार्गः।*

*यहां प्रथम षष्ठी-समर्थ 'गर्ग' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में **'गर्गादिभ्यो यञ्'** (४।१।१०५) से 'यञ्' प्रत्यय और **'यञश्च'** (४।१।१६) से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय है। गोत्रवाची स्त्रीप्रत्ययान्त 'गार्गी' शब्द से अपत्य (निन्दित) अर्थ में इस सूत्र से 'ण' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(२) **गार्गिकः।** गार्गी+ङस्+ठक्। गार्ग्+इक। गार्गिकः।*

*यहां षष्ठीसमर्थ गोत्रवाची स्त्रीप्रत्ययान्त गार्गी शब्द से अपत्य (निन्दित) अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय है। **'ठस्येकः'** (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश होता है।*

*(३) **ग्लौचुकायनः।** ग्लुचुक+ङस्+फिन्। ग्लुचुक+आयनि। ग्लुचुकायनि। ग्लुचुकायनि+ङीष्। ग्लुचुकायनी। ग्लुचुकायनी+ङस्+ण। ग्लौचुकायन्+अ। ग्लौचुकायन+सु। ग्लौचुकायनः।*

*यहां प्रथम षष्ठी-समर्थ 'ग्लुचुकायन' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में **'प्राचामवृद्धात् फिन् बहुलम्'** (४।१।१६०) से 'फिन्' प्रत्यय तत्पश्चात् स्त्रीलिङ्ग में **'इतो मनुष्यजातेः'** (४।१।६५) से 'ङीष्' प्रत्यय है। षष्ठीसमर्थ गोत्रवाची स्त्रीप्रत्ययान्त 'ग्लुचुकायनी' शब्द से अपत्य (निन्दित) अर्थ में इस सूत्र से 'ण' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **ग्लौचुकायनिकः।** ग्लुचुकायनी+ठक्। ग्लौचुकायन्+इक। ग्लौचुकायनिक+सु। ग्लोचुकायनिकः। पूर्ववत्।*

***विशेष**-यहां स्त्री-पुत्र होने से निन्दित नहीं अपितु निन्दित आचरण से पुत्र निन्दित समझना चाहिये।*

ठक्–

(१) वृद्धाट्ठक् सौवीरेषु बहुलम्।१४८।

प०वि०–वृद्धात् ५।१। ठक् १।१ सौवीरेषु ७।१ बहुलम् १।१।

अनु०–तस्य, अपत्यम्, गोत्रात्, कुत्सने इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य सौवीरेषु गोत्राद् वृद्धाद् अपत्यं बहुलं ठक् कुत्सने।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थात् सौवीरगोत्रवाचिनो वृद्धसंज्ञकात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे बहुलं ठक् प्रत्ययो भवति, कुत्सने गम्यमाने।

उदा०–भागवित्तेरपत्यम्–भागवित्तिको जाल्मः, भागवित्तायनो वा। तार्णबिन्दवस्यापत्यम्–तार्णबिन्दविको जाल्मः, तार्णबिन्दविर्वा। आकशापेयस्यापत्यम्–आकशापेयिको जाल्मः, आकशापेयिर्वा।

आर्यभाषाः *अर्थ–(तस्य) षष्ठीसमर्थ (सौवीरेषु-गोत्रात्) सौवीरगोत्रवाची (वृद्धात्) वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (बहुलम्) प्रायशः (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०–**भागवित्तेरपत्यम्–भागवित्तिको जाल्मः, भागवित्तायनो वा।** भागवित्ति का नीच पुत्र–भागवित्तिक अथवा भागवित्तायन। **तार्णबिन्दवस्यापत्यम्–तार्णबिन्दविको जाल्मः, तार्णबिन्दविर्वा।** तार्णबिन्दव का नीच पुत्र–तार्णबिन्दाविक अथवा तार्णबिन्दवि। **आकशापेयस्यापत्यम्–आकशापेयिको जाल्मः, आकशापेयिर्वा।** आकशापेय का नीच पुत्र–आकशापेयिक अथवा आकशापेयि।*

*सिद्धि–(१) **भागवित्तिकः।** भागवित्त+ङस्+इञ्। भागवित्ति। भागवित्ति+ङस्+ठक्। भागवित्त्+इक। भागवित्तिक+सु। भागवित्तिकः।*

*यहां प्रथम षष्ठीसमर्थ सौवीर गोत्रवाची 'भागवित्त' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में **'अत इञ्'** (४।१।९५) से 'इञ्' प्रत्यय, तत्पश्चात् गोत्रप्रत्ययान्त वृद्धसंज्ञक 'भागवित्ति' शब्द से अपत्य (निन्दित) अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(२) **भागवित्तायनः।** भागवित्ति+फक्। भागवित्त्+आयन। भागवित्तायन+सु। भागवित्तायनः।*

*यहां षष्ठीसमर्थ सौवीर गोत्रवाची वृद्धसंज्ञक 'भागवित्ति' शब्द से अपत्य अर्थ में बहुल पक्ष में **'यञिञोश्च'** (४।१।१०१) से 'फक्' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **तार्णबिन्दविकः।** तृणबिन्दु+अण्। तार्णबिन्दो+अ। तार्णबिन्दव+सु। तार्णबिन्दवः। तार्णबिन्दव+ङस्+ठक्। तार्णबिन्दव्+इक। तार्णबिन्दविक+सु। तार्णबिन्दविकः।*

यहां प्रथम षष्ठीसमर्थ सौवीर गोत्रवाची 'तृणबिन्दु' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में 'तस्यापत्यम्' (४।१।९२) से 'अण्' प्रत्यय होता है। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और 'ओर्गुणः' (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है। तत्पश्चात् षष्ठीसमर्थ गोत्रप्रत्ययान्त, वृद्धसंज्ञक 'तार्णबिन्दव' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

*(४) **तार्णबिन्दविः।** तार्णबिन्दव+इञ्। तार्णबिन्दव्+इ। तार्णबिन्दवि+सु। तार्णबिन्दविः।*

*यहां सौवीर गोत्रवाची, वृद्धसंज्ञक 'तार्णबिन्दव' शब्द से बहुल पक्ष में **'अत इञ्'** (४।१।९५) से 'इञ्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**आकशापेयिकः, आकशापेयिः।***

छः+ठक्–

(१) फेश्छ च।१४६।

प०वि०-फेः ५।१ छ १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, गोत्रात्, कुत्सने, वृद्धात्, ठक्, सौवीरेषु, बहुलम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य सौवीरेषु गोत्राद् फेर्वृद्धाद् अपत्यं बहुलं छः, ठक् च कुत्सने।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् सौवीरगोत्रवाचिनः फिञ्प्रत्ययान्ताद् वृद्धसंज्ञकात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे छः, ठक् च प्रत्ययो भवति, कुत्सने गम्यमाने।

उदा०-यमुन्दस्य गोत्रापत्यम्-यामुन्दायनिः। यामुन्दायनेरपत्यम्-यामुन्दायनीयो जाल्मः, यामुन्दायनिको वा।

***आर्यभाषाः** **अर्थ**-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (सौवीरेषु-गोत्रात्) सौवीर गोत्रवाची (फेः) फिञ्-प्रत्ययान्त (वृद्धात्) वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (बहुलम्) प्रायशः (छः) छ प्रत्यय (च) और (ठक्) ठक् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-**यमुन्दस्य गोत्रापत्यम्-यामुन्दायनिः। यामुन्दायनेरपत्यम्-यामुन्दायनीयो जाल्मः, यामुन्दायनिको वा।** यमुन्द का पौत्र यामुन्दायनि कहाता है और यामन्दायनि का पुत्र यामुन्दायनीय अथवा यामुन्दायनिक कहाता है।*

***सिद्धि-(१) यामुन्दायनीयः।** यमुन्द+ङस्+फिञ्। यामुन्द्+आयनि। यामुन्दायनिः। यामुन्दायनि+ङस्+छ। यामुन्दायन्+ईय। यामुन्दायनीय+सु। यामुन्दायनीयः।*

यहां प्रथम षष्ठीसमर्थ सौवीर गोत्रवाची 'यमुन्द' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में ***'तिकादिभ्यः फिञ्'*** *(४।१।१५४) से 'फिञ्' प्रत्यय होता है। तत्पश्चात् फिञ्प्रत्ययान्त, वृद्धसंज्ञक 'यामुन्दायनि' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से ठक् प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

विशेष-यहां 'फि' कहने से फिञ्-प्रत्ययान्त शब्द का ग्रहण किया जाता है, फिन् प्रत्ययान्त शब्द का नहीं क्योंकि वहां वृद्धसंज्ञा का सम्भव नहीं है।

णः+फिञ्-

(१) फाण्टाहृतिमिमताभ्यां णफिञौ।१५०।

प०वि०-फाण्टाहृति-मिमताभ्याम् ५।२ ण-फिञौ १।२।

स०-फाण्टाहृतिश्च मिमतश्च तौ फाण्टाहृतिमिमतौ, ताभ्याम्-फाण्टाहृतिमिमताभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। णश्च फिञ् च तौ-णफिञौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, गोत्रात्, सौवीरेषु, बहुलमिति चानुवर्तते, 'कुत्सने' इति निवृत्तम्।

अन्वयः-तस्य सौवीरेषु गोत्रात् फाण्टाहृतिमिमताभ्याम् अपत्यं बहुलं णफिञौ।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाभ्यां सौवीरगोत्रवाचिभ्यां फाण्टाहृति-मिमताभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे बहुलं णफिञौ प्रत्ययौ भवतः।

'फाण्टाहृतिमिमताभ्याम्' इत्यत्र द्वन्द्वे समासेऽल्पाच्तरस्यापूर्वनिपातो लक्षणव्यभिचारचिह्नम्, तेनात्र यथासंख्यं प्रत्ययविधिर्न भवति।

उदा०-**(फाण्टाहृतिः)** फाण्टाहृतेरपत्यम्-फाण्टाहृतः, फाण्टाहृतायनिर्वा। **(मिमतः)** मिमतस्यापत्यम्-मैमतः, मैमतायनिर्वा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (सौवीरेषु-गोत्रात्) सौवीर गोत्रवाची (फाण्टाहृतिमिमताभ्याम्) फाण्टाहृति और मिमत प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (बहुलम्) प्रायशः (णफिञौ) ण और फिञ् प्रत्यय होते हैं।*

'फाण्टाहृतिमिमताभ्याम्' *यहां द्वन्द्वसमास में* ***'अल्पाच्तरम्'*** *(२।२।३४) से 'मिमत' शब्द का पूर्वनिपात न करना लक्षण-व्यभिचार का चिह्न है, इसलिये यहां यथासंख्य प्रत्ययविधि नहीं होती है।*

उदा०-(फाण्टाहृतिः) फाण्टाहृतेरपत्यम्-फाण्टाहृतः, फाण्टाहृतायनिर्वा। फाण्टाहृति का पुत्र-फाण्टहृत अथवा फाण्टाहृतायनि। (मिमतः) मिमतस्यापत्यम्-मैमतः, मैमतायनिर्वा। मिमत का पुत्र-मैमत अथवा मैमतायनि।

सिद्धि-(१) फाण्टाहृतः। फाण्टाहृति+ङस्+ण। फाण्टाहृत्+अ। फाण्टाहृत+सु। फाण्टाहृतः।

यहां षष्ठीसमर्थ सौवीर गोत्रवाची 'फाण्टाहृति' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'ण' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(२) फाण्टाहृतायनिः। फाण्टाहृति+ङस्+फिञ्। फाण्टाहृत्+आयनि। फाण्टाहृतायनि+सु। फाण्टाहृतायनिः।

यहां सौवीर गोत्रवाची 'फाण्टाहृति' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'फिञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-मैमतः, मैमतायनिः।

ण्यः--

(१) कुर्वादिभ्यो ण्यः।१५१।

प०वि०-कुरु-आदिभ्यः ५।३ ण्यः १।१।

स०-कुरुरादिर्येषां ते-कुर्वादयः, तेभ्यः-कुर्वादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-सौवीरेषु, बहुलमिति च निवृत्तम्। तस्य, अपत्यमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य कुर्वादिभ्योऽपत्यं ण्यः।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः कुर्वादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्यमित्यस्मिन्नर्थे ण्यः प्रत्ययो भवति।

उदा०-कुरोरपत्यम्-कौरव्यः। गर्गस्यापत्यम्-गार्ग्यः, इत्यादिकम्।

कुरु। गर्ग। मङ्गुष। अजमारक। रथकार। वावदूक। सम्राजः क्षत्रिये। कवि। मति। वाक्। पितृमत्। इन्द्रजालि। दामोष्णीषि। गणकारि। कैशोरि कापिञ्जलादि।। कुट। शलाका। मुर। एरक। अभ्र। दर्भ। केशिनी। वेनाच्छन्दसि। शूर्पणाय। श्यावनाय। श्यावरथ। श्यावपुत्र। सत्यंकार। वडभीकार। शङ्कु। शाक। पथिकारिन्। मूढ। शकन्धु। कर्त्तृ। हर्त्तृ। शाकिन्। इनपिण्डी। विस्फोटक। काक। फाण्टक। शाकिन्। घातकि। धेनुजि। बुद्धिकार। वामरथस्य कण्वादिवत् स्वरवर्जम्। इति कुर्वादयः।।

आर्यभाषा: अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (कुर्वादिभ्यः) कुरु आदि प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (ण्यः) ण्य प्रत्यय होता है।

उदा०-कुरोरपत्यम्-कौरव्यः। गर्गस्यापत्यम्-गार्ग्यः, इत्यादि।

सिद्धि-कौरव्यः। कुरु+ङस्+ण्य। कौरो+य। कौरव्य+सु। कौरव्यः।

यहां षष्ठीसमर्थ 'कुरु' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'ण्य' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि, **'ओर्गुणः'** (६।४।१४६) से अंग को गुण और **'वान्तोयि प्रत्यये'** (६।१।७६) से वान्त (अव्) आदेश होता है। ऐसे ही-गार्ग्यः।

विशेष-यहां 'कुरु' शब्द से 'ण्य' प्रत्यय का विधान किया गया है। आगे **'कुरुनादिभ्यो ण्यः'** (४।१।१७२) से भी 'कुरु' शब्द से 'ण्य' प्रत्यय का विधान किया जायेगा। दोनों स्थानों पर प्रत्यय की समानता से 'कौरव्यः' पद ही बनता है। अन्तर यह है कि यहां 'कुरु' शब्द व्यक्तिवाची है और वहां जनपदवाची है। जनपदवाची शब्द से विहित ण्य प्रत्यय की 'तद्राज' संज्ञा होने से बहुवचन में **'तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्'** (२।४।६२) से लुक् हो जाता है-कौरव्यः, कौरव्यौ, कुरवः। इस ण्य प्रत्यय का बहुवचन में लुक् नहीं होता है-कौरव्यः, कौरव्यौ, कौरव्याः।

ण्यः-

(२) सेनान्तलक्षणकारिभ्यश्च।१५२।

प०वि०-सेनान्त-लक्षण-कारिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-सेनाऽन्ते यस्य सः-सेनान्तः। सेनान्तश्च लक्षणश्च कारिश्च ते-सेनान्तलक्षणकारयः, तेभ्यः-सेनान्तलक्षणकारिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, ण्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य सेनान्तलक्षणकारिभ्यश्चापत्यं ण्यः।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् सेनान्ताल्लक्षणशब्दात् कारिवाचिनश्च प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे ण्यः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(सेनान्तः) कारिषेणस्यापत्यम्-कारिषेण्यः। हारिषेणस्यापत्यम्-हारिषेण्यः। **(लक्षणः)** लक्षणस्यापत्यम्-लाक्षण्यः। **(कारिः)** कुम्भकारस्यापत्यम्-कौम्भकार्यः। तन्तुवायस्यापत्यम्-तान्तुवाय्यः। नापितस्यापत्यम्-नापित्यः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठीसमर्थ (सेनान्तलक्षणकारिभ्यः) सेनान्त, लक्षण शब्द और कारि (शिल्पी) वाची प्रातिपदिकों से (च) भी (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (ण्यः) ण्य प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(सेनान्तः) **कारिषेणस्यापत्यम्-कारिषेण्यः।** कारिषेण का पुत्र-कारिषेण्य। **हारिषेणस्यापत्यम्-हारिषेण्यः।** हारिषेण का पुत्र-हारिषेण्य। (लक्षणः) **लक्षणस्यापत्यम्-लाक्षण्यः।** लक्षण-सारस का बच्चा-लाक्षण्य। (कारिः) **कुम्भकारस्यापत्यम्-कौम्भकार्यः।** कुम्भकार का पुत्र-कौम्भकार्य। **तन्तुवायस्यापत्यम्-तान्तुवाय्यः।** जुलाहे का पुत्र-तन्तुवाय्य। **नापितस्यापत्यम्-नापित्यः।** नायी का पुत्र-नापित्य।*

*सिद्धि-**कारिषेण्यः।** कारिषेण+ङस्+ण्य। कारिषेण्+य। कारिषेण्य+सु। कारिषेण्यः।*

*यहां षष्ठीसमर्थ सेनान्त 'कारिषेण' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'ण्य' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**हारिषेण्यः, लाक्षण्य** और **कौम्भकार्यः** आदि।*

इञ्-(उदीचां मते)-

(१) उदीचामिञ्।१५३।

प०वि०-उदीचाम् ६।३ इञ् १।१।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, सेनान्तलक्षणकारिभ्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य सेनान्तलक्षणकारिभ्योऽपत्यमिञ् उदीचाम्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् सेनान्ताल्लक्षणशब्दात् कारिवाचिनश्च प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे इञ् प्रत्ययो भवति, उदीचामाचार्याणां मतेन।

उदा०-(सेनान्तः) कारिषेणस्यापत्यम्-कारिषेणिः। हारिषेणस्यापत्यम्-हारिषेणिः। **(लक्षणः)** लक्षणस्यापत्यम्-लाक्षणिः। **(कारिः)** कुम्भकारस्यापत्यम्-कौम्भकारिः। तन्तुवायस्यापत्यम्-तान्तुवायिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठीसमर्थ (सेनान्तलक्षणकारिभ्यः) सेनान्त शब्द, लक्षणशब्द और कारि (शिल्पी) वाची प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (इञ्) इञ् प्रत्यय होता है (उदीचाम्) उत्तर भारत के आचार्यों के मत में।*

*उदा०-(सेनान्त) **कारिषेणस्यापत्यम्-कारिषेणिः।** कारिषेण का पुत्र-कारिषेणि। **हारिषेणस्यापत्यम्-हारिषेणिः।** हारिषेण का पुत्र-हारिषेणि। (लक्षण) **लक्षणस्यापत्यम्-लाक्षणिः।** लक्षण=सारस का बच्चा-लाक्षणि। (कारि) **कुम्भकारस्यापत्यम्-कौम्भकारिः।** कुम्भकार का पुत्र-कौम्भकारि। **तन्तुवायस्यापत्यम्-तान्तुवायिः।** जुलाहे का पुत्र-तान्तुवायि।*

*सिद्धि-**कारिषेणिः ।** कारिषेण+ङस्+इञ् । कारिषेण्+इ । कारिषेणि+सु । कारिषेणिः ।*

*यहां षष्ठीसमर्थ सेनान्त 'कारिषेण' शब्द से अपत्य अर्थ में उत्तर भारत के आचार्यों के मत में इस सूत्र से 'इञ्' प्रत्यय है। ऐसे ही-'**हारिषेणिः**' आदि।*

फिञ्-

(१) तिकादिभ्य फिञ्।१५४।

प०वि०-तिकादिभ्यः ५।३ फिञ् १।१।

स०-तिक आदिर्येषां ते-तिकादयः, तेभ्यः-तिकादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तस्य, अपत्यमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य तिकादिभ्योऽपत्यं फिञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यस्तिकादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्यमित्यस्मिन्नर्थे फिञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-तिकस्यापत्यम्-तैकायनिः। कितवस्यापत्यम्-कैतवायनिः, इत्यादिकम्।

तिक। कितव। संज्ञा। बाल। शिखा। उरस। शाट्य। सैन्धव। यमुन्द। रूप्य। ग्राम्य। नील। अमित्र। गौकक्ष्य। कुरु। देवरथ। तैतिल। ओरस। कौरव्य। भौरिकि। भौलिकि। चौपयति। चैटयत। शैकयत। क्षैतयत। ध्वाजवत। चन्द्रमस। शुभ। गङ्गा। वरेण्य। सुयामन्। आरद्ध। वह्यका। खल्य। वृष। लोमक। उदन्य। यज्ञ। ऋष्य। भीत। जाजल। रस। लावक। ध्वजवद। वसु। बन्धु। आबन्धका। सुपामन इति तिकादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (तिकादिभ्यः) तिक आदि प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (फिञ्) फिञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**तिकस्यापत्यम्-तैकायनिः।** तिक का पुत्र-तैकायनि। **कितवस्यापत्यम्-कैतवायनिः।** कितव=जुआरी का पुत्र-कैतवायनि।*

*सिद्धि-**तैकायनिः।** तिक+ङस्+फिञ्। तैक्+आयनि। तैकायनि+सु। तैकायनिः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'तिक' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'फिञ्' प्रत्यय है। '**आयनेय०**' (७।१।२) से 'फ्' के स्थान में 'आयन्' आदेश होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**कैतवायनिः।***

फिञ्–

(२) कौसल्यकार्मार्याभ्यां च।१५५।

प०वि०–कौसल्य-कार्मार्याभ्याम् ५।२ च अव्ययपदम्।

स०–कौसल्यश्च कार्मार्यश्च तौ–कौसलकार्मार्यौ, ताभ्याम्–कौसल्यकार्मार्याभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–तस्य, अपत्यम्, फिञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य कौसल्यकार्मार्याभ्यां चापत्यं फिञ्।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थाभ्यां कौसल्यकार्मार्याभ्यां च प्रातिपदिकाभ्यामपत्यमित्यस्मिन्नर्थे फिञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–कोसलस्यापत्यम्–कौसल्यायनिः। कार्मार्यस्यापत्यम्–कार्मार्यायणिः।

आर्यभाषाः अर्थ–(तस्य) षष्ठी-समर्थ (कौसल्यकार्मार्याभ्याम्) कौसल्य और कार्मार्य प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (फिञ्) फिञ् प्रत्यय होता है।

उदा०–कोसलस्यापत्यम्–कौसल्यायनिः। कोसल देश का पुत्र–कौसल्यायनि। कोसल=प्राचीन जनपद (अवध)। कार्मार्यस्यापत्यम्–कार्मार्यायणिः। कारीगर का पुत्र–कार्मार्यायणि।

सिद्धि–(१) कौसल्यायनिः। कोसल+ङस्+फिञ्। कौसल्य्+आयनि। कौसल्यायनि+सु। कौसल्यायनिः।

यहां षष्ठी-समर्थ 'कोसल' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'फिञ्' प्रत्यय होता है। इस सूत्रोक्त निपातन से 'कोसल' शब्द के स्थान में 'कौसल्य' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(२) कार्मार्यायणिः। कर्मार+ङस्+फिञ्। कार्मार्य्+आयनि। कार्मार्यायणि+सु। कार्मार्यायणिः।

यहां 'कर्मार' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'फिञ्' प्रत्यय होता है। इस सूत्रोक्त निपातन से 'कर्मार' शब्द के स्थान में 'कार्मार्य' आदेश होता है। 'अट्कुप्वाङ्०' (८।४।२) से णत्व होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

फिञ्–

(३) अणो द्व्यचः।१५६।

प०वि०–अणः ५।१ द्वि-अचः ५।१।

स०-द्वावचौ यस्मिन् सः-द्व्यच्, तस्मात्-द्व्यचः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, फिञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य अणो द्व्यचोऽपत्यं फिञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् अण्प्रत्ययान्ताद् द्व्यचः प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे फिञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-कर्तुरपत्यम्-कार्त्रः। कार्त्रस्यापत्यम्-कार्त्रायणिः। हर्तुरपत्यम्-हार्त्रः। हार्त्रस्यापत्यम्-हार्त्रायणिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (अणः) अण्-प्रत्ययान्त (द्व्यचः) दो अचोंवाले प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (फिञ्) फिञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**कर्तुरपत्यम्-कार्त्रः। कार्त्रस्यापत्यम्-कार्त्रायणिः।** कर्ता का पुत्र-कार्त्र। कार्त्र का पुत्र-कार्त्रायणि। हर्तुरपत्यम्-हार्त्रः। **हार्त्रस्यापत्यम्-हार्त्रायणिः।** हर्ता का पुत्र-हार्त्र। हार्त्र का पुत्र-हार्त्रायणि।*

*सिद्धि-**कार्त्रायणिः।** कर्तृ+ङस्+अण्। कार्तृर+अ। कार्त्र। कार्त्र+ङस्+फिञ्। कार्त्र्+आयनि। कार्त्रायणि+सु। कार्त्रायणिः।*

*यहां प्रथम षष्ठी-समर्थ 'कर्तृ' शब्द से **'तस्यापत्यम्'** (४।१।९२) से 'अण्' प्रत्यय और तत्पश्चात् अण् प्रत्ययान्त द्व्यच् 'कार्त्र' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से फिञ् प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'फ्' के स्थान में 'आयन्' आदेश होता है। ऐसे ही-**हार्त्रायणिः।***

फिञ् (उदीचां मते)–

(४) उदीचां वृद्धादगोत्रात्।१५७।

प०वि०-उदीचाम् ६।३ वृद्धात् ५।१ अगोत्रात् ५।१।

स०-न गोत्रमिति अगो[illegible], तस्मात्-अगोत्रात् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, फिञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य अगोत्राद् वृद्धाद् अपत्यं फिञ् उदीचाम्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् गोत्रभिन्नाद् वृद्धसंज्ञकात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे फिञ् प्रत्ययो भवति, उदीचांमाचार्याणां मतेन।

उदा०-आम्रगुप्तस्यापत्यम्-आम्रगुप्तायनिः। ग्रामरक्षस्यापत्यम्-ग्रामरक्षायणिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (अगोत्रात्) गोत्र से भिन्न (वृद्धात्) वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (फिञ्) फिञ् प्रत्यय होता है (उदीचाम्) उत्तर भारत के आचार्यों के मत में।*

*उदा०-**आम्रगुप्तस्यापत्यम्-आम्रगुप्तायनिः।** आम्रगुप्त का पुत्र-आम्रगुप्तायनिः। आम्रगुप्त=आमों का रक्षक। **ग्रामरक्षस्यापत्यम्-ग्रामरक्षायणिः।** ग्रामरक्ष का पुत्र-ग्रामरक्षायणि। ग्रामरक्ष=ग्राम का रक्षक।*

सिद्धि-आम्रगुप्तायनिः। *आम्रगुप्त+ङस्+फिञ्। आम्रगुप्त्+आयनि। आम्रगुप्तायनि+सु। आम्रगुप्तायनिः।*

*यहां षष्ठीसमर्थ गोत्र से भिन्न वृद्धसंज्ञक 'आम्रगुप्त' शब्द से उत्तर भारत के आचार्यों के मत में 'फिञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**ग्रामरक्षायणिः।***

फिञ् (कुक)–

(५) वाकिनादीनां कुक् च।१५८।

प०वि०-वाकिन-आदीनाम् ६।३ कुक् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-वाकिन आदिर्येषां ते-वाकिनादयः, तेषाम्-वाकिनादीनाम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, फिञ्, उदीचाम् वृद्धात्, अगोत्रात् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य अगोत्राद् वृद्धात् वाकिनादिभ्योऽपत्यं फिञ्, कुक् च उदीचाम्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो गोत्रभिन्नेभ्यो वृद्धसंज्ञकेभ्यो वाकिनादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्यमित्यस्मिन्नर्थे फिञ् प्रत्ययो भवति, तेषां च कुक् आगमो भवति, उदीचामाचार्याणां मतेन।

उदा०-वाकिनस्यापत्यम्-वाकिनकायनिः। गारेधस्यापत्यम्-गारेधकायनिः।

वाकिन। गारेध। कार्कठ्य। काक। लङ्का। वा०-चर्मिवर्मिणोर्नलोपश्च। इति वाकिनादयः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तस्य) षष्ठीसमर्थ (अगोत्रात्) गोत्र से भिन्न (वृद्धात्)* ***वृद्धसंज्ञक (वाकिनादीनाम्) वाकिन आदि प्रातिपदिकों से*** *(अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (फिञ्)*

फिञ् प्रत्यय होता है (च) और उन्हें (कुक्) कुक् आगम होता है (उदीचाम्) उत्तर भारत के आचार्यों के मत में।

*उदा०-**वाकिनस्यापत्यम्-वाकिनकायनिः।** वाकिन का पुत्र-वाकिनकायनि। **गारेधरस्यापत्यम्-गारेधकायनिः।** गारेध का पुत्र-गारेधकायनि।*

__सिद्धि-वाकिनकायनिः।__ वाकिन+ङस्+फिञ्। वाकिन कुक्+आयनि। वाकिनक्+आयनि। वाकिनकायनि+सु। वाकिनकायनिः।

यहां षष्ठीसमर्थ 'वाकिन' शब्द से अपत्य अर्थ में उत्तर भारत के आचार्यों के मत में इस सूत्र से 'फिञ्' प्रत्यय है और 'वाकिन' शब्द को 'कुक्' आगम भी होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-गारेधकायनिः आदि।

फिञ्-विकल्पः-

(६) पुत्रान्तादन्यतरस्याम्।१५६।

प०वि०-पुत्रान्तात् ५।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-पुत्रोऽन्ते यस्य सः-पुत्रान्तः, तस्मात्-पुत्रान्तात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, फिञ्, उदीचाम्, वृद्धात्, अगोत्रात् कुक् च इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तस्य अगोत्राद् वृद्धात् पुत्रान्ताद् अपत्यम् अन्यतरस्यां फिञ् कुक् च उदीचाम्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् गोत्रभिन्नाद् वृद्धसंज्ञकात् पुत्रान्तात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे फिञ् प्रत्ययो भवति, तस्य च विकल्पेन कुक् आगमो भवति, उदीचामाचार्याणां मतेन।

उदा०-गार्गीपुत्रस्यापत्यम्-गार्गीपुत्रकायणिः। गार्गीपुत्रायणिः, गार्गीपुत्रिर्वा। वात्सीपुत्रस्यापत्यम्-वात्सीपुत्रकायणिः, वात्सीपुत्रायणिः, वात्सीपुत्रिर्वा।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठीसमर्थ (अगोत्रात्) गोत्र से भिन्न (वृद्धात्) वृद्धसंज्ञक (पुत्रान्तात्) पुत्रान्त प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (फिञ्) **फिञ्** प्रत्यय होता है, (च) और (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (कुक्) कुक् आगम होता है (उदीचाम्) उत्तर भारत के आचार्यों के मत में।*

*उदा०-**गार्गीपुत्रस्यापत्यम्-गार्गीपुत्रकायणिः, गार्गीपुत्रायणिः, गार्गीपुत्रिर्वा। गार्गीपुत्र** का पुत्र-गार्गीपुत्रकायणि, गार्गीपुत्रायणि अथवा गार्गीपुत्रि। **वात्सीपुस्यापत्यम्-वात्सीपुत्रकायणिः,***

वात्सीपुत्रायणिः, वात्सीपुत्रिर्वा। वात्सीपुत्र का पुत्र-वात्सीपुत्रकायणि, वात्सीपुत्रायणि अथवा वात्सीपुत्रि।

सिद्धि-(१) गार्गीपुत्रकायणिः। गार्गीपुत्र+ङस्+फिञ्। गार्गीपुत्र कुक्+आयनि। गार्गीपुत्रकायणि+सु। गार्गीपुत्रकायणिः।

यहां षष्ठी-समर्थ, गोत्र से भिन्न, वृद्धसंज्ञक, पुत्रान्त 'गार्गीपुत्र' शब्द से अपत्य अर्थ में उत्तर भारत के आचार्यों के मत में इस सूत्र से 'फिञ्' प्रत्यय है और उसे 'कुक्' आगम भी होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(२) गार्गीपुत्रायणिः। यहां विकल्प पक्ष में 'कुक्' आगम नहीं है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) गार्गीपुत्रिः। गार्गीपुत्र+इञ्। गार्गीपुत्र्+इ। गार्गीपुत्रि+सु। गार्गीपुत्रिः।

यहां अन्य आचार्यों के मत में 'अत इञ्' (४।१।९) से 'इञ्' प्रत्यय है। 'कुक्' आगम 'फिञ्' प्रत्यय परे होने पर होता है, 'इञ्' प्रत्यय परे होने पर नहीं।

फिन् (बहुलं प्राचां मते)–

(१) प्राचामवृद्धात् फिन् बहुलम्।१६०।

प०वि०-प्राचाम् ६।३ अवृद्धात् ५।१ फिन् १।१ बहुलम् १।१।

स०-न वृद्धमिति अवृद्धम्, तस्मात्-अवृद्धात् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-तस्य, अपत्यमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य अवृद्धाद् अपत्यं बहुलं फिन् प्राचाम्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् अवृद्धसंज्ञकात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे बहुलं फिञ् प्रत्ययो भवति, प्राचामाचार्याणां मतेन।

उदा०-ग्लुचुकस्यापत्यम्-ग्लुचुकायनिः, ग्लौचुकिर्वा। अहिचुम्बकस्यापत्यम्-अहिचुम्बकायनिः आहिचुम्बकिर्वा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठीसमर्थ (अवृद्धात्) अवृद्धसंज्ञक प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (बहुलम्) प्रायशः (फिञ्) फिञ् प्रत्यय होता है (प्राचाम्) पूर्व भारत के आचार्यों के मत में।*

*उदा०-**ग्लुचुकस्यापत्यम्-ग्लुचुकायनिः, ग्लौचुकिर्वा।** ग्लुचुक=चोर का पुत्र-ग्लुचुकायनि अथवा ग्लौचुकि। **अहिचुम्बकस्यापत्यम्-अहिचुम्बकायनिः, आहिचुम्बकिर्वा।** अहिचुम्बक=सर्पविष का चुम्बन करनेवाले (गारडू) का पुत्र-अहिचुम्बकायनि अथवा आहिचुम्बकि।*

सिद्धि-(१) ग्लुचुकायनिः । ग्लुचुक+ङस्+फिन् । ग्लुचुक्+आयनि । ग्लुचुकायनि+सु । ग्लुचुकायनिः ।

यहां षष्ठीसमर्थ अवृद्धसंज्ञक 'ग्लुचुक' शब्द से अपत्य अर्थ में पूर्व भारत के आचार्यों के मत में 'फिन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(२) ग्लौचुकिः । ग्लुचुक+ङस्+इञ् । ग्लौचुक्+इ । ग्लौचुकि+सु । ग्लौचुकिः ।

*यहां पूर्वोक्त 'ग्लुचुक' शब्द से अपत्य अर्थ में अन्य आचार्यों के मत में **'अत इञ्'** (४।१।९२) से बहुल पक्ष में 'इञ्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**अहिचुम्बकायनिः, आहिचुम्बकिः ।***

अञ्+यत् (षुक्)-

(१) मनोर्जातावञ्यतौ षुक् च।१६१।

प०वि०-मनोः ५।१ जातौ ७।१ अञ्-यतौ १।२ षुक् १।१ च अव्ययपदम् ।

अनु०-तस्य, अपत्यमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य मनोरपत्यम् अञ्यतौ षुक् च जातौ।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् मनुशब्दात् प्रातिपदिकाद् अपत्य-मित्यस्मिन्नर्थेऽञ्-यतौ प्रत्ययौ भवतः, तस्य च षुक् आगमो भवति, जातौ गम्यमानायाम् ।

उदा०-मनोरपत्यम्-मानुषः, मनुष्यश्च ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (मनोः) मनु शब्द प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (अञ्यतौ) अञ् और यत् प्रत्यय होते हैं (च) और उसे (षुक्) षुक् आगम होता है (जातौ) यदि वहां जाति अर्थ की प्रतीति हो।*

*उदा०-**मनोरपत्यम्-मानुषः, मनुष्यश्च ।** मनु का पुत्र-मानुष और मनुष्य।*

*सिद्धि-**(१) मानुषः ।** मनु+अञ् । मनु षुक्+अ । मानुष्+अ । मानुष+सु । मानुषः ।*

यहां मनु शब्द से अपत्य अर्थ में तथा जाति अर्थ अभिधेय होने पर इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय और मनु शब्द को 'षुक्' आगम होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

*(२) **मनुष्यः ।** मनु+यत् । मनु षुक्+य । मनुष्+य । मनुष्य+सु । मनुष्यः ।*

यहां मनु शब्द से पूर्ववत् यत् प्रत्यय और उसे षुक् आगम है।

विशेष-यहां पं० जयादित्य आदि भाष्यकार अपत्य अर्थ की अनुवृत्ति नहीं मानते हैं। गुरुवर पं० विश्वप्रिय शास्त्री का मत है कि यहां अपत्य अर्थ की अनुवृत्ति है, अतः तदनुसार ही सूत्र की व्याख्या की गई है। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने यहां मनु शब्द से

*अपत्य अर्थ में 'माणवः' शब्द की सिद्धि की है। आचार्य यास्क लिखते हैं-**मनुष्यः कस्मात् ? मनोरपत्यं मनुषो वा** (निरुक्त ३।२)।*

गोत्रसंज्ञा–

(१) अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्।१६२।

प०वि०–अपत्यमम् १।१ पौत्रप्रभृति १।१ गोत्रम् १।१।

स०–पौत्रं प्रभृतिर्यस्य तत्–पौत्रप्रभृति (बहुव्रीहिः)।

अन्वयः–पौत्रप्रभृति अपत्यं गोत्रम्।

अर्थः–पौत्रप्रभृति यदपत्यं तद् गोत्रसंज्ञकं भवति।

उदा०–गर्गस्यापत्यं पौत्रप्रभृति–गार्ग्यः। वत्सस्यापत्यं पौत्रप्रभृति–वात्स्यः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(पौत्रप्रभृति) पौत्र से लेकर जो (अपत्यम्) सन्तान है उसकी (गोत्रम्) गोत्र संज्ञा होती है।*

*उदा०-**गर्गस्यापत्यं पौत्रप्रभृति-गार्ग्यः।** गर्ग के पौत्र से लेकर जो अपत्य=सन्तान है उसको गार्ग्य कहते हैं। **वत्सस्यापत्यं पौत्रप्रभृति-वात्स्यः।** वत्स के पौत्र से लेकर जो अपत्य=सन्तान है, उसको वात्स्य कहते हैं।*

*सिद्धि-**गार्ग्यः।** गर्ग+ङस्+यञ्। गार्ग्+य। गार्ग्य+सु। गार्ग्यः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'गर्ग' शब्द से पौत्रप्रभृति अपत्य अर्थात् गोत्रापत्य अर्थ में **'गर्गादिभ्यो यञ्'** (४।१।१०५) से 'यञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**वात्स्यः।***

युव-संज्ञा–

(१) जीवति तु वंश्ये युवा।१६३।

प०वि०–जीवति ७।१ तु अव्ययपदम्, वंश्ये ७।१ युवा १।१।

वंशे भवो भवः, **'दिगादिभ्यो यत्'** (४।३।५।४) इति भवार्थे यत् प्रत्ययः।

अनु०–अपत्यम्, पौत्रप्रभृति इति चानुवर्तते।

अन्वयः–वंश्ये जीवति पौत्रप्रभृतेरपत्यं युवा तु।

अर्थः–वंश्ये=पित्रादौ जीवति सति पौत्रप्रभृतेर्यदपत्यं तद् युवसंज्ञकमेव भवन्ति।

पूर्वसूत्राद् यद् 'पौत्रप्रभृति' इत्यनुवर्तते तदत्र षष्ठ्यां विपरिणम्यते। तेन चतुर्थादपत्यादारभ्य युवसंज्ञा विधीयते।

उदा०-गार्ग्यस्य युवापत्यम्-गार्ग्यायणः। वत्सस्य युवापत्यम्-वात्स्यायनः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(वंश्ये) वंश के पिता आदि के (जीवति) जीवित रहने पर (पौत्रप्रभृतेः) पौत्र आदि के (अपत्यम्) सन्तान की (युवा) युवासंज्ञा (तु) ही होती है, गोत्रसंज्ञा नहीं।*

*उदा०-**गार्ग्यस्य युवापत्यम्-गार्ग्यायणः।** गार्ग्य का युवापत्य-गार्ग्यायण। **वात्स्यस्य युवापत्यम्-वात्स्यायनः।** वात्स्य का युवापत्य-वात्स्यायन।*

*सिद्धि-**गार्ग्यायणः।** गर्ग+ङस्+यञ्। गार्ग्+य। गार्ग्य। **गार्ग्य+ङस्+फक्।** गार्ग्+आयन। गार्ग्यायण+सु। गार्ग्यायणः।*

*यहां प्रथम षष्ठीसमर्थ 'गर्ग' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में **'गर्गादिभ्यो यञ्'** (४।१।१०५) से 'यञ्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् **'गोत्राद् यून्यस्त्रियाम्'** (४।१।९४) के नियम से गोत्र प्रत्ययान्त षष्ठी-समर्थ 'गार्ग्य' शब्द से युवापत्य अर्थ में **'यञिञोश्च'** (४।१।१०१) से 'फक्' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**वात्स्यायनः।***

विशेष**-प्रथम पुरुष 'गर्ग' है। गर्ग का पुत्र 'गार्गि' कहाता है। यहां **'अत इञ्'** (४।१।९५) से अपत्य अर्थ में 'इञ्' प्रत्यय होता है। 'गर्ग' का गोत्रापत्य=पौत्र 'गार्ग्य' कहाता है। यहां **'गर्गादिभ्यो यञ्'** (४।१।१०५) से गोत्रापत्य अर्थ में 'यञ्' प्रत्यय होता है। गार्ग्य का युवापत्य 'गार्ग्यायण' कहाता है। यहां **'यञिञोश्च'** (४।१।१०१) से युवापत्य अर्थ में 'फक्' प्रत्यय होता है। जब तक वंश्य गार्गि आदि जीवित रहते हैं तब तक चतुर्थ पुत्र की 'गार्ग्यायण' युव-संज्ञा (छोरा) होती है। 'गार्गि' आदि के जीवित न रहने पर चतुर्थ पुत्र की गोत्र संज्ञा होती है-**गार्ग्य।

युव-संज्ञा-

(२) भ्रातरि च ज्यायसि।१६४।

प०वि०-भ्रातरि ७।१ च अव्ययपदम्, ज्यायसि ७।१।

अनु०-अपत्यं पौत्रप्रभृति जीवति युवा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ज्यायसि भ्रातरि जीवति पौत्रप्रभृतेरपत्यं युवा।

अर्थः-ज्यायसि भ्रातरि जीवति सति च पौत्रप्रभृतेर्यदपत्यं तद् युवसंज्ञकं भवति।

उदा०-गार्ग्यस्य युवापत्यम्-गार्ग्यायण: कनीयान् भ्राता, गार्ग्यश्च ज्यायान् भ्राता भवति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ज्यायसि) बड़ा (भ्रातरि) भाई (जीवति) जीवित रहने पर (च) भी (पौत्रप्रभृतेः) पौत्र आदि का जो (अपत्यम्) पुत्र है उसकी (युवा) युवासंज्ञा होती है।*

*उदा०-**गार्ग्यस्य युवापत्यम्-गार्ग्यायण: कनीयान् भ्राता, गार्ग्यश्च ज्यायान् भ्राता भवति।** गार्ग्य का पुत्र-छोटा भाई 'गार्ग्यायण' और बड़ा भाई 'गार्ग्य' कहाता है।*

विशेष-गार्ग्य के दो पुत्र हैं। एक का नाम देवदत्त और दूसरे का नाम यज्ञदत्त है। पिता की मृत्यु हो जाने पर और बड़े भाई देवदत्त के जीवित रहने पर छोटे भाई यज्ञदत्त की युवा संज्ञा होती है, अतः वह 'गार्ग्यायण' कहाता है और बड़े भाई की गोत्रसंज्ञा होने से वह 'गार्ग्य' कहाता है। भारतीय संस्कृति में बड़ा भाई पिता के तुल्य माना जाता है। अतः बड़े भाई के जीवित रहते छोटा भाई 'गोत्र' पद प्राप्त नहीं करता है, उसकी युवासंज्ञा ही होती है। वह अभी युवा (लड़का) ही है।

युव-संज्ञा-

(३) वाऽन्यस्मिन् सपिण्डे स्थविरतरे जीवति।१६५।

प०वि०-वा अव्ययपदम्, अन्यस्मिन् ७।१ सपिण्डे ७।१ स्थविरतरे ७।१ जीवति ७।१। सप्तमपुरुषावधयः सपिण्डाः स्मर्यन्ते।

अनु०-अपत्यम्, पौत्रप्रभृति, जीवति, भ्रातरि, युवा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भ्रातरि अन्यस्मिन् सपिण्डे स्थविरतरे जीवति, पौत्रप्रभृतेरपत्यं जीवति वा युवा।

अर्थः-भ्रातुरन्यस्मिन् सपिण्डे स्थविरतरे जीवति सति पौत्रप्रभृतेर्यदपत्यं तद् जीवदेव विकल्पेन युवसंज्ञकं भवति।

उदा०-गर्गस्यापत्यम्-गार्ग्यायण:, गार्ग्यो वा। वत्सस्यापत्यम्-वात्स्यायनो वात्स्यो वा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(भ्रातरि) भाई से (अन्यस्मिन्) अन्य (सपिण्डे) सात पीढी के (स्थविरतरे) पद वा आयु से वृद्ध पुरुष के (जीवति) जीवित रहने पर (पौत्रप्रभृतेः) पौत्र आदि के (अपत्यम्) सन्तान की (जीवति) जीवित अवस्था में (वा) विकल्प से (युवा) युवा संज्ञा होती है।*

उदा०-गर्गस्यापत्यम्-गार्ग्यायणः, गार्ग्यो वा। गर्ग के पौत्र आदि का पुत्र भ्राता से भिन्न सात पीढी में किसी वृद्ध के जीवित रहने पर वह स्वयं जीवित अवस्था में 'गार्ग्यायण' अथवा 'गार्ग्य' कहाता है। ऐसे ही-वात्स्यायन अथवा वात्स्य।

विशेष-पं० जयादित्य ने काशिकावृत्ति में 'वृद्धस्य च पूजायाम्' तथा 'यूनश्च कुत्सायाम्' इन दोनों वार्तिकों को पाणिनीय सूत्र मानकर व्याख्या की है। वार्तिक होने से इनका यहां प्रवचन नहीं किया जाता है।

तद्राजसंज्ञा

अञ्-

(१) जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्।१६६।

प०वि०- जनपदशब्दात् ५।१ क्षत्रियात् ५।१ अञ् १।१।

अनु०-तस्य, अपत्यमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य क्षत्रियाद् जनपदशब्दाद् अपत्यम् अञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् क्षत्रियवाचिनो जनपदशब्दात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थेऽञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पञ्चालानां निवासो जनपदः-पञ्चालाः। पञ्चालानामपत्यम्-पाञ्चालः। इक्ष्वाकूणां निवासो जनपदः-इक्ष्वाकवः। इक्ष्वाकूणामपत्यम्-ऐक्ष्वाकः। विदेहानां निवासो जनपदः-विदेहाः। विदेहानामपत्यम्-वैदेहः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठीसमर्थ (क्षत्रियात्) क्षत्रियवाची (जनपदशब्दात्) जनपद शब्द से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-पञ्चालानां निवासो जनपदः-पञ्चालाः। पञ्चालानामपत्यम्-पाञ्चालः। पञ्चाल नामक क्षत्रियों का निवास जनपद 'पञ्चालाः' कहाता है। पञ्चाल नामक क्षत्रियों का पुत्र-'पाञ्चालः' कहाता है। इक्ष्वाकूणां निवासो जनपदः-इक्ष्वाकवः। इक्ष्वाकूणामपत्यम्-ऐक्ष्वाकः। इक्ष्वाकु नामक क्षत्रियों का निवास जनपद 'इक्ष्वाकवः' कहाता है। इक्ष्वाकु क्षत्रियों का पुत्र-'ऐक्ष्वाक' कहाता है। विदेहानां निवासो जनपदः-विदेहाः। विदेहानामपत्यम्-वैदेहः। विदेह नामक क्षत्रियों का निवास जनपद 'विदेहाः' कहाता है। विदेह क्षत्रियों का पुत्र-'वैदेहः' कहाता है।

सिद्धि-(१) पाञ्चालः। पञ्चाल+ङस्+अण्। पञ्चाल+०। पञ्चाल+अञ्। पाञ्चाल्+अ। पाञ्चाल+सु। पाञ्चालः।

यहां षष्ठीसमर्थ क्षत्रियवाची 'पञ्चाल' शब्द से 'तस्य निवासः' (४।२।६८) से निवास अर्थ में 'अण्' प्रत्यय और 'जनपदे लुप्' (४।२।८०) से उसका लोप होता है।

'पञ्चाल' नामक क्षत्रियों के निवास से उनका जनपद (प्रदेश) भी 'पञ्चाल' कहाता है। क्षत्रियवाची 'पञ्चाल' जनपद शब्द से इस सूत्र से अपत्य अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

*(२) ऐक्ष्वाक:। यहां **'दाण्डिनायनहास्तिनायन०'** (६।४।१७४) से 'इक्ष्वाकु' शब्द के 'उकार' का लोप निपातित है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**वैदेह:** आदि।*

अञ्–

(२) साल्वेयगान्धारिभ्यां च।१६७।

प०वि०-साल्वेय-गान्धारिभ्याम् ५।२ च अव्ययपदम्।

स०-साल्वेयश्च गान्धारिश्च तौ-साल्वेयगान्धारी, ताभ्याम्-साल्वेयगान्धारिभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, अञ्, जनपदशब्दात्, क्षत्रियात् इति चानुवर्तते।

अन्वय:-तस्य क्षत्रियाभ्यां जनपदशब्दाभ्यां साल्वेयगान्धारिभ्यां च अपत्यम् अञ्।

अर्थ:-तस्य इति षष्ठीसमर्थाभ्यां क्षत्रियवाचिभ्यां जनपदशब्दाभ्यां साल्वेयगान्धारिभ्यां प्रातिपदिकाभ्यामपि अपत्यमित्यस्मिन्नर्थेऽञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(साल्वेय:) साल्वेयानामपत्यम्-साल्वेय:। **(गान्धारि:)** गान्धारीणामपत्यम्-गान्धार:।

***आर्यभाषा:** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (क्षत्रियात्) क्षत्रियवाची (जनपदशब्दात्) जनपद शब्द (साल्वेयगान्धारिभ्याम्) साल्वेय और गान्धारि प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(साल्वेय) साल्वेयानामपत्यम्-साल्वेय:।** साल्वेय नामक क्षत्रियों का निवास जनपद 'साल्वेय' कहाता है। साल्वेयों के पुत्र को 'साल्वेय' कहते हैं। **(गान्धारि:) गान्धारीणामपत्यम्-गान्धार:।** गान्धारि नामक क्षत्रियों का निवास जनपद 'गान्धारि' कहाता है। गान्धारि के पुत्र को 'गान्धार' कहते हैं।*

***सिद्धि-(१) साल्वेय:।** साल्वेय+ङस्+अञ्। साल्वेय्+अ। साल्वेय+सु। साल्वेय:।*

*यहां षष्ठीसमर्थ, क्षत्रियवाची, जनपद शब्द 'साल्वेय' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। यहां **'जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्'** (४।१।१६६) से 'अञ्' प्रत्यय*

सिद्ध ही था किन्तु ये वृद्धसंज्ञक शब्द होने से ***'वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ्'*** *(४।१।१६९) से 'ञ्यङ्' प्रत्यय प्राप्त था। उसका यह पूर्व प्रतिषेध है।*

(२) गान्धारः। गान्धारि+ङस्+अञ्। गान्धार्+अ। गान्धार+सु। गान्धारः। पूर्ववत्।

विशेष- *(१) साल्वेय जनपद, साल्व जनपद की एक शाखा थी। साल्व जनपद वर्तमान अलवर से उत्तरी बीकानेर तक का फैला हुआ प्रदेश था।*

(२) गान्धारि यह गन्धार जनपद का पुराना नाम है। गन्धार जनपद कुनड़ (काश्कर) नदी से तक्षशिला तक फैला हुआ था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ६२)।

अण्–

(१) द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण्।१६८।

प०वि०-द्व्यच्-मगध-कलिङ्ग-सूरमसात् ५।१ अण् १।१।

स०-द्वावचौ यस्मिन् सः-द्व्यच्। द्व्यच् च मगधश्च कलिङ्गश्च सूरमसश्च एतेषां समाहारः-द्व्यच्मगधकलिङ्गसूरमसम्, तस्मात्-द्व्यच्मगधकलिङ्गसूरमसात् (बहुव्रीहिगर्भितसमाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, जनपदशब्दात्, क्षत्रियाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य क्षत्रियाद् जनपदशब्दाद् द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसाद् अपत्यम् अण्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः क्षत्रियवाचिभ्यो जनपदशब्देभ्यो द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसेभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्यमित्यस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(द्व्यच्)** अङ्गानामपत्यम्-आङ्गः। बङ्गानामपत्यम्-बाङ्गः। पुण्ड्राणामपत्यम्-पौण्ड्रः। सुह्मानामपत्याम्-सौह्मः। **(मगधः)** मगधानामपत्यम्-मागधः। **(कलिङ्गः)** कलिङ्गानामपत्यम्-कालिङ्गः। **(सूरमसः)** सूरमसानामपत्यम्-सौरमसः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (क्षत्रियात्) क्षत्रियवाची (जनपदशब्दात्) जनपद शब्द (द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसात्) दो अचोंवाले शब्द, मगध, कलिङ्ग और सूरमस प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(द्व्यच्) ***अङ्गानामपत्यम्-आङ्गः।*** *अङ्ग नामक क्षत्रियों का पुत्र-**आङ्ग**।* ***बङ्गानामपत्यम्-बाङ्गः।*** *बङ्ग नामक क्षत्रियों का पुत्र-बाङ्ग।* ***पुण्ड्राणामपत्यम्-पौण्ड्रः।***

*पुण्ड्र नामक क्षत्रियों का पुत्र-पौण्ड्र। **सुह्मानामपत्याम्-सौह्मः।** सुह्म नामक क्षत्रियों का पुत्र-सौह्म। **(मगध) मगधानामपत्यम्-मागधः।** मगध नामक क्षत्रियों का पुत्र-मागध। **(कलिङ्ग) कलिङ्गानामपत्यम्-कालिङ्गः।** कलिङ्ग नामक क्षत्रियों का पुत्र-कालिङ्ग। **(सूरमस) सूरमसानामपत्यम्-सौरमसः।** सूरमस नामक क्षत्रियों का पुत्र-सौरमस।*

सिद्धि-आङ्गः। अङ्ग+ङस्+अण्। आङ्ग्+अ। आङ्गः।

*यहां क्षत्रियवाची **जनपद** शब्द अङ्ग प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचमादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-'बाङ्गः' आदि।*

***विशेष-(१) अङ्गः। यह** एक जनपद तथा उनके निवासियों का नाम है। यह देश बिहार के भागलपुर नगर के आसपास है। **बैद्यनाथ** देवघर से लेकर इसकी सीमा मानी गई है। (शब्दार्थ-कौस्तुभ)*

(२) बङ्ग, पुण्ड्र, सुह्म ये भारतीय प्राचीन जनपदों के नाम हैं, इनके निवासी क्षत्रिय भी इन्हीं नामों से कहे जाते हैं। सुह्म-एक प्राचीन जनपद, रोढ़ देश। वहां का निवासी। एक यवन जाति। (शब्दार्थ-कौस्तुभ)

***(३) मगध।** गंगा के दक्षिण का प्रदेश मगध जनपद था, जहां राजतन्त्र शासन था। (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)*

***(४) कलिङ्ग।** कलिङ्ग पाणिनि के समय में जनपद राज्य था, किन्तु सोलह महाजनपदों की सूची में उसकी गिनती नहीं है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)। 'प्राचीन भारत का एक जनपद। वहां का निवासी। वाममार्ग में इसकी सीमा का उल्लेख इस प्रकार पाया जाता है-*

जगन्नाथात्समारभ्य कृष्णतीरान्तगः प्रिये।
कलिङ्गदेशः सम्प्रोक्तो वाममार्गपरायणः।।' (शब्दार्थ-कौस्तुभ)

***(५) सूरमस।** यह नाम केवल अष्टाध्यायी में आया है। ज्ञात होता है कि असम प्रान्त में प्रसिद्ध सूरमा नदी की दून और पर्वत-उपत्यका का प्राचीन नाम सूरमस था। (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)।*

ञ्यङ्-

(१) वृद्धेत्कोसलाजादाञ्यङ्।१६६।

प०वि०-वृद्ध-इत्-कोसल-अजादात् ५।१ ञ्यङ् १।१।

स०-वृद्धं च इच्च कोसलश्च अजादश्च एतेषां समाहारः-वृद्धेत्कोसलाजादम्, तस्मात्-वृद्धेत्कोसलाजादात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, जनपदशब्दात्, क्षत्रियाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य क्षत्रियाद् जनपदशब्दाद् वृद्धेत्कोसलाजादाद् अपत्यं ञ्यङ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् क्षत्रियवाचिनो जनपदशब्दाद् वृद्धसंज्ञकाद् इकारान्तात्, कोसलाद् अजादाच्च प्रातिपदिकाद् अपत्य-मित्यस्मिन्नर्थे ञ्यङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**वृद्धम्**) आम्बष्ठानामपत्यम्-आम्बष्ठ्यः। सौवीराणामपत्यम्-सौवीर्यः। (**इत्**) अवन्तीनामपत्यम्-आवन्त्यः। कुन्तीनामपत्यम्-कौन्त्यः। (**कोसलः**) कोसलानामपत्यम्-कौसल्यः। (**अजादः**) अजादानामपत्यम्-आजाद्यः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (क्षत्रियात्) क्षत्रियवाची (जनपदशब्दात्) जनपद शब्द (वृद्धेत्कोसलाजादात्) वृद्धसंज्ञक, इकारान्त, कोसल और अजाद प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (ञ्यङ्) ञ्यङ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(वृद्ध) ***आम्बष्ठानामपत्यम्-आम्बष्ठ्यः।*** *आम्बष्ठ नामक क्षत्रियों का पुत्र-आम्बष्ठ्य।* ***सौवीरानामपत्यम्-सौवीर्यः।*** *सौवीर नामक क्षत्रियों का पुत्र-सौवीर्य। (इत्)* ***अवन्तीनामपत्यम्-आवन्त्यः।*** *अवन्ति नामक क्षत्रियों का पुत्र-आवन्त्य।* ***कुन्तीनामपत्यम्-कौन्त्यः।*** *कुन्ति नामक क्षत्रियों का पुत्र-कौन्त्यः। (कोसल)* ***कोसलानामपत्यम्-कौसल्यः।*** *कोसल नामक क्षत्रियों का पुत्र-कौसल्य। (अजाद)* ***अजादानामपत्यम्-आजाद्यः।*** *अजाद नामक क्षत्रियों का पुत्र-आजाद्य।*

सिद्धि-आम्बष्ठ्यः। *अम्बष्ठ+आम्+ञ्यङ्। आम्बष्ठ्+य। आम्बष्ठ्य+सु। आम्बष्ठ्यः।*

*यहां क्षत्रियवाची जनपद शब्द 'आम्बष्ठ' प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'ञ्यङ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**सौवीर्य** आदि।*

विशेष-(१) ***अम्बष्ठ।*** *यह जनपद राजाधीन था और इसके निवासी आम्बष्ठ्य कहलाते थे। महाभारत के अनुसार आम्बष्ठ कौरवों की ओर से लड़े थे। उनकी गिनती औदीच्यों में की गई है। ये अत्यन्त वीर थे और चनाब नदी के निचले भाग में बसे हुये थे (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)।*

(२) ***सौवीर।*** *वर्तमानकाल में सिन्धु प्रान्त या सिंध नद के निचले कांठे का नाम सौवीर जनपद था। इसकी राजधानी रोरुन (संस्कृत-रौरुक) वर्तमान रोड़ी है। (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)।*

*(३) **कुन्ति।** महाभारत के अनुसार कुन्ति, अवन्ति जनपद का पड़ोसी था। उस राज्य में से अश्व नदी बहती थी जो सम्भवतः चम्बल की शाखा कुनारी नदी थी (वनपर्व ३०८/७ बृहत् संहिता १०।१५)। सहदेव ने अपनी दक्षिण की दिग्विजय में कुन्ति देश को जीता था। यमुना और चंबल के कांठे में प्राचीन कुन्ति राष्ट्र (वर्तमान ग्वालियर) राज्य था जो अब भी कोतवार कहलाता है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)।*

*(४) **अवन्ति।** यह मध्य भारत का प्रसिद्ध जनपद था, जिसकी राजधानी उज्जयिनी थी (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)।*

*(५) **कोसल।** यह राजाधीन जनपद बुद्धकालीन षोडश महाजनपदों में गिना जाता था। पाणिनि ने उससे सम्बन्धित सरयू और इक्ष्वाकु का भी उल्लेख किया है (६।४।१७४) (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)।*

*(६) **अजाद।** इस जनपद का नाम केवल अष्टाध्यायी में मिलता है। नाम से ज्ञात होता है कि यह प्रदेश बकरियों के लिये प्रसिद्ध रहा होगा (अजा+दः)। इटावा का प्रदेश आज तक जमनापारी बकरियों के लिये प्रसिद्ध है। सम्भव है यही 'अजाद' हो (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)।*

ण्यः—

(१) कुरुनादिभ्यो ण्यः।१७०।

प०वि०–कुरु-नादिभ्यः ५।३ ण्यः १।१।

स०–न आदिर्येषां ते–नादयः। कुरुश्च नादयश्च ते–कुरुनादयः, तेभ्यः–कुरुनादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–तस्य, अपत्यम्, जनपदशब्दात्, क्षत्रियाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य, क्षत्रियेभ्यो जनपदशब्देभ्यः कुरु-नादिभ्योऽपत्यं ण्यः।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः क्षत्रियवाचिभ्यः जनपदशब्देभ्यः कुरु-शब्दात् नकारादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्योऽत्यमित्यस्मिन्नर्थे ण्यः प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(कुरुः)** कुरूणामपत्यम्–कौरव्यः। **(नकारादिः)** निषधानामपत्यम्–नैषध्यः। निपथानामपत्यम्–नैपथ्यः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठीसमर्थ (क्षत्रियात्) क्षत्रियवाची (जनपदशब्दात्) जनपद शब्द (कुरुनादिभ्यः) कुरु शब्द और नकारादि प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (ण्यः) ण्य प्रत्यय होता है।*

उदा०-(कुरु) कुरूणामपत्यम्-कौरव्यः । कुरु नामक क्षत्रियों का पुत्र-कौरव्य। (नकारादिः) निषधानामपत्यम्-नैषध्यः । निषध नामक क्षत्रियों का पुत्र-नैषध्य। निपथानामपत्यम्-नैपथ्यः । निपथ नामक क्षत्रियों का पुत्र-नैपथ्य।

सिद्धि-कौरव्यः । कुरु+आम्+ण्य । कौरो+य । कौरव्+य । कौरव्य+सु । कौरव्यः ।

यहां षष्ठीसमर्थ क्षत्रियवाची, जनपद शब्द 'कुरु' प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'ण्य' प्रत्यय है। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि, 'ओर्गुणः' (६।४।१४६) से अंग को गुण और 'वान्तोयि प्रत्यये' (६।१।७६) से वान्त (अव्) आदेश होता है। ऐसे ही-नैषध्यः आदि।

विशेष-(१) कुरु। कुरु राष्ट्र, कुरुक्षेत्र और कुरुजांगल ये तीन इलाके एक-दूसरे से सटे हुये थे। थानेश्वर-हस्तिनापुर-हिसार अथवा सरस्वती-यमुना-गंगा के बीच का प्रदेश, इन तीन भौगोलिक भागों में बंटा हुआ था। गंगा, यमुना के बीच में लगभग मेरठ कमिश्नरी का इलाका असली कुरु-राष्ट्र था। इसकी राजधानी हस्तिनापुर थी (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)।

(२) निषध। एक प्राचीन देश जहां के राजा नल थे (शब्दार्थ कौस्तुभ)।

(३) निपथ। एक प्राचीन जनपद का नाम है।

इञ्-

(१) साल्वावयवप्रत्यग्रथकलकूटाश्मकादिञ् ।१७१।

प०वि०-साल्वावयव-प्रत्यग्रथ-कलकूट-अश्मकात् ५।१ इञ् १।१।

स०-साल्वानामवयवा इति साल्वावयवाः। साल्वावयवाश्च प्रत्यग्रथश्च कलकूटश्च अश्मकश्च एतेषां समाहारः-साल्वावयव०अश्मकम्, तस्मात्-साल्वावयव०अश्मकात् (षष्ठीतत्पुरुषगर्भितः समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, क्षत्रियाद् जनपदशब्दाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य क्षत्रियाद् जनपदशब्दात् साल्वायवप्रत्यग्रथकालकूटाश्मकाद् अपत्यम् इञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः क्षत्रियवाचिभ्यो जनपदशब्देभ्यः साल्वावयववाचिभ्यः प्रत्यग्रथकलकूटाश्मकेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्योऽपत्यमित्यस्मिन्नर्थे इञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(साल्वावयवाः) उदुम्बराणामपत्यम्-औदुम्बरिः। तिलखलानामपत्यम्-तैलखलिः। मद्रकाराणामपत्यम्-माद्रकारिः। युगन्धराणामपत्यम्-

यौगन्धरिः । भुलिङ्गानामपत्यम्-भौलिङ्गिः । **(प्रत्यग्रथः)** प्रत्यग्रथानामपत्यम्-प्रात्यग्रथिः । **(कलकूटः)** कलकूटानामपत्यम्-कालकूटिः । **(अश्मकः)** अश्मकानामपत्यम्-आश्मकिः ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (क्षत्रियात्) क्षत्रियवाची (जनपदशब्दात्) जनपदशब्द (साल्वावयव०अश्मकात्) साल्व के अवयववाची, प्रत्यग्रथ, कलकूट और अश्मक प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (इञ्) इञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(साल्व-अवयव) **उदुम्बराणामपत्यम्-औदुम्बरिः।** उदुम्बर नामक क्षत्रियों का पुत्र-औदुम्बरि। **विलखलानामपत्यम्-तैलखलिः।** तिलखल नामक क्षत्रियों का पुत्र-तैलखलि। **मद्रकाराणामपत्यम्-माद्रकारिः।** मद्रकार नामक क्षत्रियों का पुत्र-माद्रकारि। **युगन्धराणामपत्यम्-यौगन्धरिः।** युगन्धर नागक क्षत्रियों का पुत्र-यौगन्धरि। **भुलिङ्गानामपत्यम्-भौलिङ्गिः।** भूलिङ्ग नामक क्षत्रियों का पुत्र-भौलिङ्गि। **(प्रत्यग्रथ) प्रत्यग्रथानामपत्यम्-प्रात्यग्रथिः।** प्रत्यग्रथ नामक क्षत्रियों का पुत्र-प्रात्यग्रथि। **(कलकूट) कलकूटानामपत्यम्-कालकूटिः।** कलकूट नामक क्षत्रियों का पुत्र-कालकूटि। **(अश्मक) अश्मकानामपत्यम्-आश्मकिः।** अश्मक नामक क्षत्रियों का पुत्र-आश्मकिः।*

*सिद्धि-**औदुम्बरिः।** उदुम्बर+आम्+इञ्। औदुम्बर्+इ। औदुम्बरि+सु। औदुम्बरिः।*

यहां षष्ठीसमर्थ क्षत्रियवाची, जनपद शब्द 'उदुम्बर' प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'इञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही- 'तैलखलिः' आदि।

*विशेष-(१) **साल्वावयव**-साल्व जनपद के अवयवों के सम्बन्ध में काशिकाकार पं० जयादित्य ने एक प्राचीन श्लोक उद्धृत किया है-*

उदुम्बरास्तिलखला मद्रकारा युगन्धराः।
भूलिङ्गा शरदण्डाश्च साल्वायवसंज्ञिताः।।

अर्थः-उदुम्बर, तिलखल, मद्रकार, युगन्धर, भूलिङ्ग और शरदण्ड ये साल्वावयव के राजतन्त्र के अन्तर्गत छः रजवाड़े थे।

*(१) **उदुम्बर**-व्यास के उत्तर रावी के दक्षिण की संकरी घाटी में होकर त्रिगर्त के प्रवेश-द्वार (वर्तमान गुरदासपुर) में उदुम्बरों का राज्य था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)।*

*(२) **तिलखल**-व्यास नदी के दक्षिण प्रदेश (जिला होशियारपुर) में जहां आज भी तिलों की खेती का प्रधान क्षेत्र है, तिलखल राज्य का स्थान ज्ञात होता है। तिलखल का अर्थ हुआ तिलों से भरे हुये खलिहानों का देश (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)।*

*(३) **मद्रकार**-मद्रकार का अर्थ है मद्रों के सैनिकों द्वारा प्रतिष्ठापित राज्य। मद्र राजकुमारी सावित्री और साल्व राजकुमार सत्यवान के विवाह द्वारा मद्रों और साल्वों का घनिष्ठ सम्बन्ध हुआ।*

अष्टाध्यायी में मद्र और भद्र दोनों पर्यायवाची शब्द हैं (२.३.७३/५।४।६७) मद्रकार का ही दूसरा नाम भद्रकार ज्ञात होता है। सम्भव है घग्घर के तट पर बीकानेर के उत्तर-पूर्वी कोने में स्थित भद्र नामक स्थान मद्रकारों की प्राचीन राजधानी रही हो (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)।

*(४) **युगन्धर**-युगन्धर कहीं यमुना का तटवर्ती (राज्य) था। यह राज्य सम्भवतः अम्बाला जिले में सरस्वती से यमुना तक फैला हुआ था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)। जगाधरी युगन्धर का अपभ्रंश ज्ञात होता है।*

*(५) **भूलिङ्ग**-तोलेमी ने लिखा है कि अरावली के उत्तर-पश्चिम में बोलिंगाई जाति रहती थी। इनकी पहचान भूलिङ्गों से हो सकती है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)।*

*(६) **प्रत्यग्रथ**-मध्यकालीन कोशों के अनुसार पंचाल का ही दूसरा नाम प्रत्यग्रथ था, जिसकी राजधानी अहिच्छत्रा थी। प्रत्यग्रथ जनपद में बहनेवाली नदी रथस्था (वर्तमान रामगंगा) थी। (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)।*

*(७) **कलकूट**-कालकूट ठीक टोंस (तमसा) और यमुना के प्रदेश (देहरादून, कालसी) में पड़ता है। यह यमुना की उपरली धारा का यामुन प्रदेश था। अथर्ववेद में हिमालय पर उत्पन्न होनेवाले यामुन अंजन का उल्लेख है (अथर्व० ४।९।१०)। अंजन के कारण यामुन पर्वत का नाम कालकूट या काला पहाड़ होना स्वाभाविक था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)।*

*(८) **अश्मक**-अश्मक जनपद की राजधानी अन्य ग्रन्थों के अनुसार प्रतिष्ठान (गोदावरी के किनारे आधुनिक पैठण) थी। इससे गोदावरी के सह्याद्रि पर्वत-शृंखला तक अश्मक जनपद का विस्तार ज्ञात होता है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)।*

तद्राजसंज्ञा—

(१) ते तद्राजाः।१७२।

प०वि०-ते १।३ तद्राजाः १।३।

अनु०-जनपदशब्दात्, क्षत्रियाद् अञ् इति चानुवर्तते।

अर्थः-'**जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्**' (४।१।१६६) इत्यतः प्रभृति ये प्रत्यया विहितास्ते तद्राजसंज्ञका भवन्ति।

उदा०-पाञ्चालः, पाञ्चालौ, पञ्चालाः। यहां '**जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्**' (४।१।१६६) से अपत्य अर्थ में तद्राज संज्ञक अञ् प्रत्यय है। **बहुवचन की विवक्षा में 'तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्'** (२।४।६२)

से तद्राजसंज्ञक 'अञ्' प्रत्यय का लुक् हो जाता है। ऐसे ही **'अङ्गाः'** आदि।

तद्राजस्य लुक्–

(२) कम्बोजाल्लुक्।१७३।

प०वि०-कम्बोजात् ५।१ लुक् १।१।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, जनपदशब्दात्, क्षत्रियात्, अञ्, तद्राजस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य क्षत्रियाद् जनपदशब्दात् कम्बोजाद् अपत्यं तद्राजस्य अञ् लुक्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् क्षत्रियवाचिनो जनपदशब्दात् कम्बोजात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे विहितस्य तद्राजसंज्ञकस्य अञ् प्रत्ययस्य लुग् भवति।

उदा०-कम्बोजानामपत्यम्-कम्बोजः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (क्षत्रियात्) क्षत्रियवाची (जनपदशब्दात्) जनपद-शब्द (कम्बोजात्) कम्बोज प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में विहित (तद्राजस्य) तद्राजसंज्ञक (अञ्) अञ् प्रत्यय का (लुक्) लुक् होता है।*

*उदा०-**कम्बोजानामपत्यम्-कम्बोजः।** कम्बोज नामक क्षत्रियों का पुत्र-कम्बोज।*

*सिद्धि-**कम्बोजः।** कम्बोज+आम्+अञ्। कम्बोज+०। कम्बोज+सु। कम्बोजः।*

यहां षष्ठीसमर्थ, क्षत्रियवाची, जनपद शब्द 'कम्बोज' प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में विहित तद्राजसंज्ञक 'अञ्' प्रत्यय का इस सूत्र से लुक् होता है।

*विशेष-**कम्बोज**-हिन्दुकुश के उत्तर-पूर्व में कम्बोज, उत्तर-पश्चिम में बाल्हीक, दक्षिण-पूर्व में गन्धार और दक्षिण-पश्चिम में कपिश था। आधुनिक 'पामीर' और 'बदख्शाँ' का सम्मिलित प्राचीन नाम 'कम्बोज' जनपद था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)।*

तद्राजस्य लुक्–

(३) स्त्रियामवन्तिकुन्तिकुरुभ्यश्च।१७४।

प०वि०-स्त्रियाम् ७।१ अवन्ति-कुन्ति-कुरुभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-अवन्तिश्च कुन्तिश्च कुरुश्च ते-अवन्तिकुन्तिकुरवः, **तेभ्यः**-अवन्तिकुन्तिकुरुभ्यः **(इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।**

अनु०-तस्य, अपत्यम्, जनपदशब्दात्, क्षत्रियात्, तद्राजस्य लुक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य क्षत्रियेभ्यो जनपदशब्देभ्योऽवन्तिकुन्तिकुरुभ्यश्च अपत्यं तद्राजस्य लुक् स्त्रियाम्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः क्षत्रियवाचिभ्यो जनपद-शब्देभ्योऽवन्तिकुन्तिकुरुभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपि अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे विहितस्य तद्राजसंज्ञकस्य प्रत्ययस्य लुग् भवति, स्त्रियामभिधेयायाम्।

उदा०-(**अवन्तिः**) अवन्तीनामपत्यं स्त्री-अवन्ती। (**कुन्तिः**) कुन्तीनामपत्यं स्त्री-कुन्ती। (**कुरुः**) कुरूणामपत्यं स्त्री-कुरूः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठीसमर्थ (क्षत्रियात्) क्षत्रियवाची (जनपदशब्दात्) जनपद-शब्द (अवन्तिकुन्तिकुरुभ्यः) अवन्ति, कुन्ति, कुरु प्रातिपदिकों से (च) भी विहित (तद्राजस्य) तद्राज-संज्ञक प्रत्यय का (लुक्) लुक् होता है (स्त्रियाम्) यदि वहां स्त्री-अपत्य अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-**(अवन्ति) अवन्तीनामपत्यं स्त्री-अवन्ती।** अवन्ति नामक क्षत्रियों की पुत्र-अवन्ती। **(कुन्ति) कुन्तीनामपत्यं स्त्री-कुन्ती।** कुन्ति नामक क्षत्रियों की पुत्री-कुन्ती। **(कुरु) कुरूणामपत्यं स्त्री-कुरूः।** कुरु नामक क्षत्रियों की पुत्री-कुरू।*

*सिद्धि-**(१) अवन्ती।** अवन्ति+आम्+ञ्यङ्। अवन्ति+०। अवन्ति+ङीष्। अवन्त्+ई। अवन्ती+सु। अवन्ती।*

*यहां षष्ठीसमर्थ, क्षत्रियवाची, जनपद शब्द 'अवन्ति' प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में '**वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ्**' (४।१।१६९) से विहित तद्राजसंज्ञक 'ञ्यङ्' प्रत्यय का स्त्री-अपत्य की विवक्षा में इस सूत्र से 'लुक्' होता है। तत्पश्चात् '**इतो मनुष्यजातेः**' (४।१।६५) से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीष्' प्रत्यय होता है।*

*(२) **कुन्ती।** कुन्ति+आम्+ञ्यङ्। कुन्ति+०। कुन्ति+ङीष्। कुन्ती+सु। कुन्ती। पूर्ववत्।*

*(३) **कुरूः।** कुरु+आम्+ण्य। कुरु+०। कुरु+ऊङ्। कुरु+ऊ। कुरू+सु। कुरूः।*

*यहां षष्ठीसमर्थ, क्षत्रियवाची जनपद शब्द 'कुरु' प्रातिपदिक से अपत्यार्थ में '**कुरुनादिभ्यो ण्यः**' (४।१।१७०) से विहित तद्राजसंज्ञक 'ण्य' प्रत्यय का स्त्री-अपत्य की विवक्षा में इस सूत्र से 'लुक्' होता है। तत्पश्चात् '**ऊङुतः**' (४।१।६६) से स्त्रीलिङ्ग में 'ऊङ्' प्रत्यय होता है।*

***विशेष**-अवन्ति, कुन्ति और कुरु नामक जनपदों का परिचय सूत्रांक (४।१।१६९) तथा (४।१।१७०) के प्रवचन में देख लेवें।*

तद्राजस्य लुक्–

(४) अतश्च।१७५।

प०वि०–अत: ६।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–तस्य, अपत्यम्, जनपदशब्दात्, क्षत्रियात्, तद्राजस्य, लुक्, स्त्रियाम् इति चानुवर्तते।

अन्वय:–तस्य क्षत्रियाद् जनपदशब्दाद् अपत्यं तद्राजस्य अतश्च लुक् स्त्रियाम्।

अर्थ:–तस्य इति षष्ठीसमर्थात् क्षत्रियवाचिनो जनपदशब्दात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे विहितस्य तद्राजसंज्ञकस्याऽकारप्रत्ययस्यापि लुग् भवति, स्त्रियामभिधेयायाम्।

उदा०–सूरसेनानामपत्यं स्त्री–सूरसेनी। मद्राणामपत्यं स्त्री–मद्री। दरदामपत्यं स्त्री–दरत्।

आर्यभाषा: *अर्थ–(तस्य) षष्ठी-समर्थ (क्षत्रियात्) क्षत्रियवाची (जनपदशब्दात्) जनपद-शब्द प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में विहित (तद्राजस्य) तद्राजसंज्ञक (अत:) अकार प्रत्यय का (च) भी (लुक्) होता है (स्त्रियाम्) यदि वहां स्त्री-अपत्य अभिधेय हो।*

*उदा०–**सूरसेनानामपत्यं स्त्री–सूरसेनी।** सूरसेन नामक क्षत्रियों की पुत्री-सूरसेनी। **मद्राणामपत्यं स्त्री–मद्री।** मद्र नामक क्षत्रियों की पुत्री-मद्री। **दरदामपत्यं स्त्री–दरत्।** दरत् नामक क्षत्रियों की पुत्री-दरत्।*

सिद्धि–(१) सूरसेनी। *सूरसेन+आम्+अञ्। सूरसेन+ङीष्। सूरसेन्+ई। सूरसेनी+सु। सूरसेनी।*

*यहां षष्ठी-समर्थ क्षत्रियवाची जनपद शब्द सूरसेन प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में **'जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्'** (४।१।१६६) से 'अञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से स्त्री-अपत्य की विवक्षा में उस अ-प्रत्यय (अञ्) का लुक् होता है। तत्पश्चात् **'जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्'** (४।१।६३) से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीष्' प्रत्यय होता है।*

*(२) **मद्री।** मद्र+अण्। मद्र+०। मद्र+ङीष्। मद्र्+ई। मद्री+सु। मद्री।*

यहां 'द्व्यञ्मगध०' (४।१।१६६) से द्व्यच्-लक्षण 'अण्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) दरत्। दरत्+अण्। दरत्+०। दरत्।

यहां 'द्वयज्मगध०' (४।१।१६६) से द्वयच्-लक्षण 'अण्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

विशेष-(१) सूरसेन-भारतीय प्राचीन जनपद का नाम है।

(२) मद्र-मद्र जनपद प्राचीन बाहीक का उत्तरी भाग था। इसकी राजधानी शाकल (वर्तमान स्यालकोट) थी जो आपगा (वर्तमान अयक) नदी पर स्थित है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)।

(३) दरद्-कम्बोज (पामीर) के ठीक दक्षिण हुंजा और गिलगित का प्रदेश प्राचीन 'दरद्' जनपद था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)।

तद्राजस्य लुक्प्रतिषेधः--

(५) न प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः।१७६।

प०वि०-न अव्ययपदम्, प्राच्य-भर्गादि-यौधेयादिभ्यः ५।३।

स०-भर्ग आदिर्येषां ते भर्गादयः, यौधेय आदिर्येषां ते-यौधेयादयः, प्राच्याश्च भर्गादयश्च यौधेयादयश्च ते-प्राच्यभर्गादियौधेयादयः, तेभ्यः प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, जनपदशब्दात्, क्षत्रियात्, तद्राजस्य, लुक्, स्त्रियाम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य क्षत्रियेभ्यो जनपदशब्देभ्यो प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्योऽपत्यं तद्राजस्य लुङ् न स्त्रियाम्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः क्षत्रियवाचिभ्यो जनपदशब्देभ्यः प्राच्यभर्गादि-यौधेयादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्यमित्यस्मिन्नर्थे विहितस्य तद्राजसंज्ञकस्य प्रत्ययस्य लुङ् न भवति, स्त्रियामभिधेयायाम्।

उदा०-**(प्राच्यः)** पञ्चालानामपत्यं स्त्री-पाञ्चाली। विदेहानामपत्यं स्त्री-वैदेही। अङ्गानामपत्यं स्त्री-आङ्गी। बङ्गानामपत्यं स्त्री-बाङ्गी। मगधानामपत्यं स्त्री-मागधी। **(भर्गादिः)** भर्गाणामपत्यं स्त्री-भार्गी। करूषाणामपत्यं स्त्री-कारूषी। केकयानामपत्यं स्त्री-कैकेयी। **(यौधेयादिः)** यौधेयानामपत्यं स्त्री-यौधेयी। शौभ्रेयाणामपत्यं स्त्री-शौभ्रेयी। शौक्रेयाणामपत्यं स्त्री-शौक्रेयी।

भर्ग। करूष। केकय। कश्मीर। साल्व। सुस्थाल। उरस। कौरव्य। इति भर्गादयः।। यौधेय। शौभ्रेय। शौक्रेय। ग्रावाणेय। वार्तेय। धार्तेय। त्रिगर्त। भरत। उशीनर। इति यौधेयादयः।।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तस्य) षष्ठीसमर्थ (क्षत्रियात्) क्षत्रियवाची (जनपदशब्दात्) जनपद-शब्द (प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः) प्राच्य, भर्गादि और यौधेय आदि प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में विहित (तद्राजस्य) तद्राज-संज्ञक प्रत्यय का (लुक्) लुक् (न) नहीं होता है (स्त्रियाम्) यदि वहां स्त्री-अपत्य अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-(प्राच्यः) **पञ्चालानामपत्यं स्त्री-पाञ्चाली।** पञ्चाल नामक क्षत्रियों की पुत्री-पाञ्चाली। **विदेहानामपत्यं स्त्री-वैदेही।** विदेह नामक क्षत्रियों की पुत्री-वैदेही। **अङ्गानामपत्यं स्त्री-आङ्गी।** अङ्ग नामक क्षत्रियों की पुत्री-आङ्गी। **वङ्गानामपत्यं स्त्री-वाङ्गी।** वङ्ग नामक क्षत्रियों की पुत्री-वाङ्गी। **मगधानामपत्यं स्त्री-मागधी।** मगध नामक क्षत्रियों की पुत्री-मागधी। **(भर्गादिः) भर्गाणामपत्यं स्त्री-भार्गी।** भर्ग नामक क्षत्रियों की पुत्री-भार्गी। **करूषाणामपत्यं स्त्री-कारूषी।** करूष नामक क्षत्रियों की पुत्री-कारूषी। **केकयानामपत्यं स्त्री-कैकेयी।** केकय नामक क्षत्रियों की पुत्री-कैकेयी। **(यौधेयादिः) यौधेयानामपत्यं स्त्री-यौधेयी।** यौधेय नामक क्षत्रियों की पुत्री-यौधेयी। **शौभ्रेयाणामपत्यं स्त्री-शौभ्रेयी।** शौभ्रेय नामक क्षत्रियों की पुत्री-शौभ्रेयी। **शौक्रेयाणामपत्यं स्त्री-शौक्रेयी।** शौक्रेय नामक क्षत्रियों की पुत्री-शौक्रेयी।*

***सिद्धि-पाञ्चाली।** पञ्चाल+आम्+अञ्। पाञ्चाल्+अ। पाञ्चाल। पाञ्चाल+ङीप्। पाञ्चाल्+ई। पाञ्चाली+सु। पाञ्चाली।*

*यहां षाष्ठीसमर्थ क्षत्रियवाची जनपद शब्द 'पञ्चाल' प्रातिपदिक से **'जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्'** (४।१।१६६) से 'अञ्' प्रत्यय है। **'अतश्च'** (४।१।१७५) से इस अ-प्रत्यय का लुक् प्राप्त था। इस सूत्र से स्त्री-अपत्य की विवक्षा में लुक् का प्रतिषेध किया गया है। ऐसे ही-**वैदेही** आदि।*

***विशेष**-पञ्चाल, विदेह, अङ्ग, वङ्ग और मगध ये भारतवर्ष के प्राचीन प्राच्य क्षत्रिय जनपद हैं। इनका परिचय निम्नलिखित है--*

*(१) **पञ्चाल**-यमुना और गंगा के मध्य का भू-भाग। राजा द्रुपद के समय में यह दक्षिण में चर्मण्वती (चम्बल) के तट से उत्तर में हरद्वार तक फैला हुआ था (शब्दार्थ कौस्तुभ)।*

*(२) **विदेह**-मगध के उत्तर-पूर्व स्थित देश का नाम। इसकी राजधानी मिथिलापुरी थी जिसे जनकपुर भी कहते हैं (शब्दार्थ कौस्तुभ)।*

*(३) **अङ्ग**-श्री गंगा के दाहिने तट पर स्थित प्राचीन एक प्रसिद्ध राज्य। इस राज्य की राजधानी का नाम चम्पा नगरी थी। चम्पा का दूसरा नाम अनंगपुरी भी था।*

यह चम्पा नगरी आधुनिक भागलपुर नगर के समीप बिहार प्रान्त में थी (शब्दार्थ कौस्तुभ)।

(४) बङ्ग-इसे समतट भी कहते हैं। पूर्वी बंगाल का नाम। किसी समय इसमें टिपरा और गारो भी शामिल थे (शब्दार्थ कौस्तुभ)।

(५) मगध-बिहार प्रान्त में प्राचीनकाल में मगध राज्य की पश्चिमी सीमा सोन-नद था। इसकी प्राचीन राजधानी का नाम गिरिव्रज या राजगृह था। इसकी दूसरी राजधानी पाटलिपुत्र में थी। पिछले प्राचीन साहित्य में इसी का दूसरा नाम कीकट देश लिखा मिलता है (शब्दार्थ कौस्तुभ)।

(६) भर्ग-भर्गात् त्रैगर्ते (४।१।१११) के अनुसार त्रिगर्त देश में 'भर्ग' एक गोत्र का नाम था। सूत्रांक ४।१।१७८ में भर्ग जनपद है। वह एक राज्य था अथवा गण-शासन यह अष्टाध्यायी से स्पष्ट नहीं होता. किन्तु बौद्ध साहित्य में 'भग्ग' एक संघ था, जिसकी राजधानी शिशुमारगिरि थी (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)।

(७) यौधेय-महाभारत के अनुसार बहुधान्यक प्रदेश में रोहीतक (रोहतक) इनकी राजधानी थी। सुनेत (सुनेत्र) यौधेयों का पूरा केन्द्र था जहां उनकी मुद्रायें मिली हैं। (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)। यौधेय जनपद एक गणराज्य था, एक राज्य नहीं। गुरुप्रवर भगवान्देव आचार्य ने **'यौधेयगण के मुद्राङ्क'** आदि उच्चकोटि के प्रामाणिक ग्रन्थ लिखे हैं जो गुरुकुल झज्जर (झज्जर) से प्रकाशित हुये हैं।

इति अपत्यार्थप्रत्ययप्रकरणम्।

इति पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने
चतुर्थाध्यायस्य प्रथमः पादः समाप्तः।।

चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयः पादः

रक्तार्थप्रत्ययविधिः

अण्–

(१) तेन रक्तं रागात्।१।

प०वि०–तेन ३।१ रक्तम् १।१ रागात् ५।१।

कृद्वृत्तिः०रज्यतेऽनेनेतिरागः, तस्मात्–रागात् (करणे कारके घञ्प्रत्ययः)।

अनु०–'प्राग्दीव्यतोऽण्' इत्यनुवर्तते।

अर्थः–तेन–इति तृतीयासमर्थाद् रागविशेषवाचिनः प्रातिपदिकाद् रक्तमित्यस्मिन्नर्थे प्राग्दीव्यतीयोऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०–कषायेण रक्तं वस्त्रम्–काषायम्। मञ्जिष्ठया रक्तं वस्त्रम्–माञ्जिष्ठम्। कुसुम्भेन रक्तं वस्त्रम्–कौसुम्भम्।

आर्यभाषाः *अर्थ–(तेन) तृतीया–समर्थ (रागात्) रंग–विशेषवाची प्रातिपदिक से (रक्तम्) रंगा हुआ अर्थ में (प्राग्दीव्यतः) प्राग्दीव्यतीय (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०–**कषायेण रक्तं वस्त्रम्–काषायम्।** कषाय रंग से रंगा हुआ कपड़ा–काषाय। कषाय=गेरुवा (लाल रंग)। **माञ्जिष्ठया रक्तं वस्त्रम्–माञ्जिष्ठम्।** मजीठ से रंगा हुआ कपड़ा–माञ्जिष्ठ। **कुसुम्भेन रक्तं वस्त्रम्–कौसुम्भम्।** कुसुम्भ रंग से रंगा हुआ कपड़ा–कौसुम्भ। कुसुम्भ=केसर।*

सिद्धि–काषायम्। *कषाय+टा+अण्। काषाय्+अ। काषाय+सु। काषायम्।*

*यहां तृतीया–समर्थ रागविशेषवाची 'कषाय' शब्द से रक्त अर्थ में **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से यथाविहित प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** ७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही–**माञ्जिष्ठम्, कौसुम्भम्।***

ठक्–

(२) लाक्षारोचनाट्ठक्।२।

प०वि०–लाक्षा-रोचनात् ५।१ ठक् १।१।

स०–लाक्षा च रोचना च एतयोः समाहारः-लाक्षारोचनम्, तस्मात्-लाक्षारोचनात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–तेन, रक्तम्, रागाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तेन रागात् लाक्षारोचनाभ्यां रक्तं ठक्।

अर्थः–तेन-इति तृतीयासमर्थाभ्यां रागविशेषवाचिभ्यां लाक्षारोचनाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां रक्तमित्यस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(लाक्षा)** लाक्षया रक्तं वस्त्रम्-लाक्षिकम्। **(रोचना)** रोचनया रक्तं वस्त्रम्-रौचनिकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (रागात्) रंगविशेषवाची (लाक्षारोचनाभ्याम्) लाक्षा और रोचना प्रातिपदिकों से (रक्तम्) रंगा हुआ अर्थ में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(लाक्षा) लाक्षया रक्तं वस्त्रम्-लाक्षिकम्। लाख रंग से रंगा हुआ कपड़ा-लाक्षिक। (रोचना) रोचनया रक्तं वस्त्रम्-रौचनिकम्। रोचना रंग से रंगा हुआ कपड़ा-रौचनिकम्। रोचना=अनारी रंग।

*सिद्धि-**लाक्षिकम्।** लाक्षा+टा+ठक्। लाक्ष्+इक। लाक्षिक+सु। लाक्षिकम्।*

*यहां तृतीया-समर्थ रागविशेषवाची 'लाक्षा' शब्द से रक्त अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। **'ठस्येकः'** (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, **'किति च'** (७।२।११८) से सूत्रों की पर्जन्यवत् प्रवृत्ति से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही-**रौचनिकम्।***

युक्तार्थप्रत्ययप्रकरणम्

अण्–

(१) नक्षत्रेण युक्तः कालः।३।

प०वि०–नक्षत्रेण ३।१ युक्तः १।१ कालः १।१।

अनु०–**'प्राग्दीव्यतोऽण्'** इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन नक्षत्रेण युक्तः कालः प्राग्दीव्यतोऽण्।

अर्थः-तेन इति-तृतीयासमर्थाद् नक्षत्रविशेषवाचिनः प्रातिपदिकाद् युक्त इत्यस्मिन्नर्थे प्राग्दीव्यतीयोऽण् प्रत्ययो भवति, योऽसौ युक्तः कालश्चेत् स भवति।

उदा०-पुष्येण युक्तः काल इति-पौषी रात्रिः, पौषमहः। मघया नक्षत्रेण युक्तः काल इति-माघी रात्रिः, माघमहः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तेन) तृतीया-समर्थ (नक्षत्रेण) नक्षत्रवाची प्रातिपदिक से (युक्तः) जुड़ा हुआ अर्थ में (प्राग्दीव्यतः) प्राग्दीव्यतीय (अण्) अण् प्रत्यय होता है (कालः) जो युक्त है यदि वह काल हो।*

*उदा०-**पुष्येण युक्तः काल इति-पौषी रात्रिः।** पुष्य नक्षत्र से युक्त काल-पौषी रात्रि। **पौषमहः।** पुष्य नक्षत्र से युक्त-पौष दिन। **मघया नक्षत्रेण युक्तः काल इति-माघी रात्रिः, माघमहः।** मघा नक्षत्र से युक्त काल-माघी रात्रि। **माघमहः**-मघा नक्षत्र से युक्त-माघ दिन।*

सिद्धि-पौषी। *पुष्य+टा+अण्। पुष्य्+अ। पौष्0+अ। पौष+ङीप्। पौषी+सु। पौषी।*

*यहां नक्षत्रवाची 'पुष्य' शब्द से युक्त (काल) अर्थ में इस सूत्र से प्राग्दीव्यतीय अण् प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। **'सूर्यतिष्यागस्त्यमत्स्यानां य उपधायाः'** (६।४।१४९) पर विद्यमान **वा०-'तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि यलोपः'** से 'पुष्य' के 'य्' का लोप होता है। तत्पश्चात् अण् प्रत्ययान्त 'पौष' शब्द से **'टिड्ढाणञ्'** (४।१।१५) से स्त्रीलिङ्ग की विवक्षा में ङीप् प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**पौषमहः, माघी रात्रिः, माघमहः।***

विशेष-*(१) क्या काल पुष्य आदि नक्षत्रों से कैसे युक्त होता है? जब चन्द्रमा पुष्य आदि नक्षत्रों के समीपस्थ होता है तब ये पुष्य आदि नक्षत्र काल से युक्त कहे जाते हैं। उस अवस्था में ही 'पुष्य' आदि नक्षत्रवाची शब्दों से इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय का विधान किया गया है।*

*(२) **नक्षत्र**-अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशीर्ष, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषज्, पूर्वभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती ये २७ नक्षत्र हैं।*

प्रत्ययस्य लुप्–

(२) लुबविशेषे।४।

प०वि०–लुप् १।१ अविशेषे ७।१।

स०–न विशेष इति अविशेषः, तस्मिन्–अविशेषे (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–प्राग्दीव्यतोऽण्, तेन, नक्षत्रेण, युक्तः, काल इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तेन नक्षत्रेण युक्तः कालः प्राग्दीव्यतोऽण् लुप्, अविशेषे।

अर्थः–तेन-इति तृतीयासमर्थाद् नक्षत्रवाचिनः प्रातिपदिकाद् युक्त इत्यस्मिन्नर्थे पूर्वसूत्रेण विहितस्य प्राग्दीव्यतीयस्याण्-प्रत्ययस्य लुब् भवति, योऽसौ युक्तः कालश्चेत् स भवति, कालाविशेषेऽभिधेये।

उदा०–पुष्येण युक्तः कालः–अद्य पुष्यः। कृत्तिकया युक्तः कालः–अद्य कृत्तिका।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (नक्षत्रेण) नक्षत्रवाची प्रातिपदिक से (युक्तः) जुड़ा हुआ अर्थ में पूर्व सूत्र से विहित (प्राग्दीव्यतः) प्राग्दीव्यतीय (अण्) अण् प्रत्यय का (लुप्) लोप होता है (कालः) जो युक्त है यदि वह काल हो (अविशेषे) किन्तु वहां कालविशेष अर्थ अभिधेय न हो।*

*उदा०-**पुष्येण युक्तः कालः-अद्य पुष्यः।** पुष्य नक्षत्र से युक्त काल-आज 'पुष्य' नक्षत्र है। **कृत्तिकया युक्तः कालः-अद्य कृत्तिका।** कृत्तिका नक्षत्र से युक्त काल-आज 'कृत्तिका' नक्षत्र है।*

*सिद्धि-**अद्य पुष्यः।** पुष्य+टा+अण्। पुष्य+०। पुष्य+सु। पुष्यः।*

*यहां नक्षत्रवाची 'पुष्य' शब्द से युक्त अर्थ में विहित प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय का, रात्रि आदि कालविशेष की अविवक्षा में इस सूत्र से लोप होता है। ऐसे ही-**अद्य कृत्तिका।***

प्रत्ययस्य लुप्–

(३) संज्ञायां श्रवणाश्वत्थाभ्याम्।५।

प०वि०–संज्ञायाम् ७।१ श्रवण-अश्वत्थाभ्याम् ५।२।

स०–श्रवणश्च अश्वत्थश्च तौ–श्रवणाश्वत्थौ, ताभ्याम्–श्रवणाश्वत्थाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-प्राग्दीव्यतोऽण्, तेन नक्षत्रेण, युक्तः, कालः, लुप् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन नक्षत्रेण श्रवणाश्वत्थाभ्यां युक्तः कालः प्राग्दीव्यतोऽण् लुप् संज्ञायाम्।

अर्थः-तेन-इति तृतीयासमर्थाभ्यां नक्षत्रवाचिभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां युक्त इत्यस्मिन्नर्थे विहितस्य प्राग्दीव्यतीयस्याण्-प्रत्ययस्य लुब् भवति, योऽसौ युक्तः कालश्चेत् स भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-श्रवणेन युक्तः कालः-श्रवणा रात्रिः। अश्वत्थेन युक्तः कालः-अश्वत्थो मुहूर्त्तः। अश्वत्थः=अश्विनी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (नक्षत्रेण) नक्षत्रवाची (श्रवणाश्वत्थाभ्याम्) श्रवण और अश्वत्थ प्रातिपदिकों से (युक्तः) जुड़ा हुआ अर्थ में (प्राग्दीव्यतः) प्राग्दीव्यतीय (अण्) अण् प्रत्यय का (लुप्) लोप होता है (कालः) जो युक्त है यदि वह काल हो और (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।*

*उदा०-**श्रवणेन युक्तः कालः-श्रवणा रात्रिः।** श्रवण नक्षत्र से युक्त-श्रवणा रात्रि विशेष। **अश्वत्थेन युक्तः कालः-अश्वत्थो मुहूर्त्तः।** अश्वत्थ=अश्विनी नक्षत्र से युक्त-अश्वत्थ चराचर मुहूर्त्त (छः नक्षत्रों की संज्ञाविशेष)।*

*सिद्धि-**श्रवणा।** श्रवण+टा+अण्। श्रवण+०। श्रवण+टाप्। श्रवणा+सु। श्रवणा।*

*यहां नक्षत्रवाची 'श्रवण' शब्द से युक्त (काल) अर्थ में विहित प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय का संज्ञा अर्थ में इस सूत्र से लुप् होता है। **'लुबविशेषे'** (४।२।४) से अविशेष अर्थ में प्रत्यय का लुप् कहा गया था, यहां विशेष अर्थ में लुप् नहीं होता है, अतः यह कथन किया गया है। 'अण्' प्रत्यय के लुप् होने पर स्त्रीलिङ्ग की विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**अश्वत्थो मुहूर्त्तः।***

छः-

(४) द्वन्द्वाच्छः।६।

प०वि०-द्वन्द्वात् ५।१ छः १।१।

अनु०-तेन, नक्षत्रेण, युक्तः, काल इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन नक्षत्रेण द्वन्द्वाद् युक्तश्छः कालः।

अर्थः-तेन-इति तृतीयासमर्थाद् नक्षत्रद्वन्द्वात् प्रातिपदिकाद् युक्त इत्यस्मिन्नर्थे छः प्रत्ययो भवति, योऽसौ युक्तः कालश्चेत् स भवति, विशेषे चाऽविशेषे च।

उदा०-राधानुराधाभ्यां युक्तः कालः-राधानुराधीया रात्रिः। अविशेषे-अद्य राधानुराधीयम्। तिष्यपुनर्वसुभ्यां युक्तः कालः-तिष्यपुनर्वसवीयमहः। अविशेषे-अद्य तिष्यपुनर्वसवीयम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (नक्षत्रेण) नक्षत्रवाची (द्वन्द्वात्) द्वन्द्वसमास रूप प्रातिपदिक से (युक्तः) जुड़ा हुआ अर्थ में (छः) छ प्रत्यय होता है (कालः) जो युक्त है, यदि वह काल हो।*

*उदा०-**राधानुराधाभ्यां युक्तः कालः-राधानुराधीया रात्रिः।** राधा और अनुराधा नक्षत्रों से युक्त काल-राधानुराधीया रात्रि। अविशेष में-**अद्य राधानुराधीयम्।** आज राधानुराधीय नक्षत्र है। **तिष्यपुनर्वसुभ्यां युक्तः कालः-तिष्यपुनर्वसवीयमहः।** तिष्य और पुनर्वसु नक्षत्रों से युक्त काल-तिष्यपुनर्वसवीय दिवस। अविशेष में-**अद्य तिष्यपुनर्वसवीयम्।** आज तिष्यपुनर्वसु नक्षत्र है।*

*सिद्धि-(१) **राधानुराधीया।** राधानुराध+टा+छ। राधानुराध्+ईय। राधानुराधीयम्+सु। राधानुराधीयम्।*

*यहां नक्षत्रवाची द्वन्द्वसमास में 'राधानुराधा' शब्द से इस सूत्र से छ प्रत्यय होता है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

*(२) **तिष्यपुनर्वसवीयम्।** तिष्यपुनर्वसु+टा+छ। तिष्यपुनर्वसो+ईय। तिष्यपुनर्वसवीय+सु। तिष्यपुनर्वसवीयम्।*

*यहां **'ओर्गुणः'** (६।४।१४६) से अंग को गुण और **'एचोऽयवायवः'** (६।१।७५) से 'अव्' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

***विशेष**-(१) **'राधानुराधीयम्'** में 'राधा' नक्षत्र विशाखा नक्षत्र का वाचक है। विशाखा नामक दो नक्षत्र हैं। एक का नाम राधा और दूसरे का नाम अनुराधा है।*

*(२) **'तिष्यपुनर्वसु'**-तिष्य एक नक्षत्र है और पुनर्वसु दो नक्षत्र हैं। इनके द्वन्द्वसमास में बहुवचन की प्राप्ति में **'तिष्यपुनर्वस्वोर्नक्षत्रद्वन्द्वे बहुवचनस्य द्विवचनं नित्यम्'** (१।२।६३) से नित्य द्विवचन होता है।*

दृष्टार्थप्रत्ययविधिः

अण्–

(१) दृष्टं साम।७।

प०वि०–दृष्टम् १।१ साम १।१।

अनु०–तेन, प्राग्दीव्यतोऽण् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तेन प्रातिपदिकाद् दृष्टं प्राग्दीव्यतोऽण् साम।

अर्थः–तेन इति तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् दृष्टमित्यस्मिन्नर्थे प्राग्दीव्यतीयोऽण् प्रत्ययो भवति, यद् दृष्टं साम चेत् तद् भवति।

उदा०–क्रुञ्चेन दृष्टम्-क्रौञ्चं साम। वसिष्ठेन दृष्टम्-वासिष्ठं साम। विश्वामित्रेण दृष्टम्-वैश्वामित्रं साम।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से (दृष्टम्) प्रत्यक्ष किया अर्थ में (प्राग्दीव्यतः) प्राग्दीव्यतीय (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**क्रुञ्चेन दृष्टम्-क्रौञ्चं साम।** क्रुञ्च ऋषि के द्वारा प्रत्यक्ष किया गया-क्रौञ्च सामगान। **वसिष्ठेन दृष्टम्-वासिष्ठं साम।** वसिष्ठ ऋषि के द्वारा प्रत्यक्ष किया गया-वासिष्ठ सामगान। **विश्वामित्रेण दृष्टम्-वैश्वामित्रं साम।** विश्वामित्र ऋषि के द्वारा प्रत्यक्ष किया गया-वैश्वामित्र सामगान।*

*सिद्धि-**क्रौञ्चम्।** क्रुञ्च+टा+अण्। क्रौञ्च्+अ। क्रौञ्च+सु। क्रौञ्चम्।*

*यहां 'क्रुञ्च' प्रातिपदिक से दृष्ट (साम) अर्थ में इस सूत्र से प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**वासिष्ठम्, वैश्वामित्रम्।***

विशेष-*यहां काशिकाकार पं० जयादित्य ने 'कलेर्ढक्' वार्तिक को पाणिनीय सूत्र मानकर व्याख्या की है। यह पाणिनीय सूत्र न होने से उसका यहां 'प्रवचन' नहीं किया गया है।*

ड्यत्+ड्यः–

(२) वामदेवाड् ड्यड्ड्यौ।८।

प०वि०–वामदेवात् ५।१ ड्यत्-ड्यौ १।२।

स०–ड्यच्च ड्यश्च तौ-ड्यड्ड्यौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–तेन, दृष्टम्, साम इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन वामदेवाद्दृष्टं ड्यड्ड्यौ साम।

अर्थः-तेन-इति तृतीयासमर्थाद् वामदेवात् प्रातिपदिकाद् दृष्टमित्यस्मिन्नर्थे ड्यड्ड्यौ प्रत्ययौ भवतः, यद् दृष्टं साम चेत् तद् भवति।

उदा०-वामदेवेन दृष्टम्-वामदेव्यं साम (ड्यत्)। वामदेव्यं साम वा (ड्यः)।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (वामदेवात्) वामदेव प्रातिपदिक से (दृष्टम्) प्रत्यक्ष अर्थ में (ड्यड्ड्यौ) ड्यत् और ड्य प्रत्यय होते हैं (साम) जो प्रत्यक्ष किया है यदि वह साम हो।

__उदा०-वामदेवेन दृष्टम्-वामदेव्यं साम (ड्यत्)। वामदेव्यं साम (ड्यः)।__ वामदेव ऋषि के द्वारा प्रत्यक्ष किया गया-वामदेव्य सामगान।

__सिद्धि-वामदेव्य।__ वामदेव+टा+ड्यत्। वामदेव+य। वामदेव्+य। वामदेव्य+सु। वामदेव्यम्।

यहां 'वामदेव' शब्द से दृष्ट (साम) अर्थ में इस सूत्र से 'ड्यत्' प्रत्यय है। प्रत्यय के डित् होने से __'वा०-डित्यभस्यापि टेर्लोपः'__ (६।४।१४३) से वामदेव शब्द के टि-भाग (अ) का लोप होता है। 'ड्यत्' प्रत्यय के तित् होने से तित स्वरित होता है और ड्य-प्रत्यय के पक्ष में 'आद्युदात्तश्च' (३।१।३) से 'वामदेव्यम्' पद अन्तोदात्त होता है।

विशेष--वामदेव्यम्--

१ २ ३ १२ २ २ ३ २ ३ १ ३ २ १ २
ओं भूर्भुवः स्वः। कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा।
२ ३ १ २ ३ २
कया शचिष्ठया वृता।। १।।

१ २ ३ १ २ २ २ ३ १ २ ३ १ २
ओं भूर्भुवः स्वः। कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः।
१ २ २ ३ २ ३ १ २
दृढा चिदारुजे वसु।। २।।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
ओं भूर्भुवः स्वः। अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम्।
३ १ ३ ३ १ २
शतं भवास्यूतये।। ३।।

१ २ ४ २ ४र ५ १
महावामदेव्यम्–काऽ५या। नश्चा३ इत्रा३ आभुवात्। ऊ।
२ ३१२ २ १ २ २२ १ २
ती सदावृधः सखा। औ३होहाइ। कया २३ शचाइ।
३ २ २ १ ५- १ २
ष्ठयौहो३। हुम्मा२। वा२र्तो३ऽ५हाइ।। (१)।।

३ २ ४ २ ४ ५ १ २२ १ २
काऽ५स्त्वा। सत्यो३मा३दानाम्। मा। हिष्ठो मात्सादन्धः।
२ २२ १ २ ३२२ १ ५-
सा। औ३होहाइ। दृढा २३ चिदा। रुजौहो३। हुम्मा२।
१ २
वाऽ३सो३ऽ५ हायि।। (२)।।

३ २ ४ २ ४ ५ १ २२ १ २२
आऽ५भी। षु णा३ः सा३खीनाम्। आ। विता जरायितॄ।
१ २ २ १ २ ३२२
णाम्। औ२३ हो हायि। शता २३ म्भवा। सियौहो३।
१ ५ - १ २
हुम्मा२। ताऽ२ यो३ऽ५हायि।।३।।

साम० उत्तरार्चिके अध्याये १। खं० ४। मं० १।२।३।।
(महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत संस्कारविधि के सामान्यप्रकरण से उद्धृत)।

परिवृतार्थप्रत्ययविधिः

अण्–

(१) परिवृतो रथः।६।

प०वि०–परिवृतः १।१ रथः १।१।

अनु०–प्राग्दीव्यतोऽण्, तेन इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तेन प्रातिपदिकात् परिवृतः प्राग्दीव्यतोऽण् रथः।

अर्थः–तेन–इति तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् परिवृत इत्यस्मिन्नर्थे प्राग्दीव्यतीयोऽण् प्रत्ययो भवति, योऽसौ परिवृतो रथश्चेत् स भवति।

उदा०–वस्त्रेण परिवृतः–वास्त्रो रथः। कम्बलेन परिवृतः–काम्बलो रथः। चर्मणा परिवृतः–चार्मणो रथः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से (परिवृतः) आच्छादित अर्थ में (प्राग्दीव्यतः) प्राग्दीव्यतीय (अण्) अण् प्रत्यय होता है (रथः) जो आच्छादित किया है यदि वह रथ हो।*

*उदा०-**वस्त्रेण परिवृतः-वास्त्रो रथः।** वस्त्र से ढका हुआ (मंढा हुआ)-वास्त्ररथ। **कम्बलेन परिवृतः-काम्बलो रथः।** कम्बल से ढका हुआ-काम्बलरथ। **चर्मणा परिवृतः-चार्मणो रथः।** चाम से ढका हुआ-चार्मण रथ।*

*सिद्धि-**वास्त्रः।** वस्त्र+टा+अण्। वास्त्र्+अ। वास्त्र+सु। वास्त्रः।*

*यहां 'वस्त्र' शब्द से परिवृत (रथ) अर्थ में इस सूत्र से प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**काम्बलः, चार्मणः।***

इनिः-

(२) पाण्डुकम्बलादिनिः।१०।

प०वि०-पाण्डुकम्बलात् ५।१ इनिः १।१।

अनु०-तेन परिवृतः, रथ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन पाण्डुकम्बलात् परिवृत इनी रथः।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् पाण्डुकम्बलात् प्रातिपदिकात् परिवृत इत्यस्मिन्नर्थे इनिः प्रत्ययो भवति, योऽसौ परिवृतो रथश्चेत् स भवति।

उदा०-पाण्डुकम्बलेन परिवृतः-पाण्डुकम्बली रथः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (पाण्डुकम्बलात्) पाण्डुकम्बल प्रातिपदिक से (परिवृतः) आच्छादित अर्थ में (इनिः) इनि प्रत्यय होता है (रथः) जो आच्छादित किया गया है यदि वह रथ हो।*

*उदा०-**पाण्डुकम्बलेन परिवृतः-पाण्डुकम्बली रथः।** पीले कम्बल से आच्छादित (मंढा हुआ)-पाण्डुकम्बली रथ।*

*सिद्धि-**पाण्डुकम्बली।** पाण्डुकम्बल+टा+इनि। पाण्डुकम्बल्+इन्। पाण्डुकम्बलिन्+सु। पाण्डुकम्बली।*

*यहां 'पाण्डुकम्बल' शब्द से परिवृत अर्थ में इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय है। **'सौ च'** (६।४।१३) से नकारान्त अंग की उपधा को दीर्घ, **'हल्ङ्याब्भ्यो०'** (६।१।६६) से 'सु' का लोप और **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से नकार का लोप होता है।*

विशेष-वेस्सन्तर जातक में लिखा है कि पाण्डुकम्बल गन्धार देश में बनाये जाते थे और बीरबहूटी के जैसे चटकीले व लाल रंग के होते थे। जातक की टीका के अनुसार वे कम्बल सेना के काम के लिये गन्धार देश से अन्यत्र ले जाये जाते थे। (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० १५४)।

अञ्–

(३) द्वैपवैयाघ्रादञ्।११।

प०वि०–द्वैप-वैयाघ्रात् ५।१ अञ् १।१।

तद्धितवृत्तिः- द्वीपिव्याघ्रशब्दाभ्याम् **'प्राणिरजतादिभ्योऽञ्'** (४।३।१५२) इति विकारार्थेऽञ् प्रत्ययः। **'भस्य टेर्लोपः'** (७।१।८८) इति द्वीपिनष्टेर्लोपो भवति।

स०–द्वैपश्च वैयाघ्रश्च एतयोः समाहारः-द्वैपवैयाघ्रम्, तस्मात्-द्वैपवैयाघ्रात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–तेन, परिवृतः, रथ इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तेन द्वैपवैयाघ्राभ्यां परिवृतोऽञ् रथः।

अर्थः–तेन इति तृतीयासमर्थाभ्यां द्वैपवैयाघ्राभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां परिवृत इत्यस्मिन्नर्थेऽञ् प्रत्ययो भवति, योऽसौ परिवृतो रथश्चेत् स भवति।

उदा०–(द्वैपः) द्वैपेन परिवृतः-द्वैपो रथः। **(वैयाघ्रः)** वैयाघ्रेण परिवृतः-वैयाघ्रो रथः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (द्वैपवैयाघ्राभ्याम्) द्वैप और वैयाघ्र प्रातिपदिकों से (परिवृतः) आच्छादित अर्थ में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है (रथः) जो आच्छादित किया है यदि वह रथ हो।*

*उदा०-(द्वैप) **द्वैपेन परिवृतः-द्वैपो रथः।** गज चर्म से परिवृत (मंढा हुआ)-द्वैप रथ। (वैयाघ्र) **वैयाघ्रेण परिवृतः-वैयाघ्रो रथः।** व्याघ्र चर्म से परिवृत (मंढा हुआ)-वैयाघ्र रथ।*

*सिद्धि-**द्वैपः।** द्वैप+टा+अञ्। द्वैप्+अ। द्वैप+सु। द्वैपः।*

*यहां द्वैप' शब्द से परिवृत अर्थ में इस सूत्र में 'अञ्' प्रत्यय है। पर्जन्यवत् सूत्र प्रवृत्ति होने से **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**वैयाघ्रः।***

***विशेष**-यहां प्रथम द्वीपिन् तथा व्याघ्र शब्द से **'प्राणिरजतादिभ्योऽञ्'** (४।३।१५२) से विकार अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय है। द्वीपी का विकार द्वैप और व्याघ्र का विकार वैयाघ्र कहाता है। यहां रथ-परिवृत के प्रकरणवश द्वैप का अर्थ गजचर्म और वैयाघ्र का अर्थ व्याघ्र चर्म अर्थ ग्रहण किया जाता है।*

अण् (निपातनम्)–

(१) कौमारापूर्ववचने।१२।

प०वि०–कौमार १।१ (सु-लुक्) अपूर्ववचने ७।१।

स०–न पूर्व इति अपूर्वः, अपूर्वस्य वचनमिति अपूर्ववचनम्, तस्मिन्–अपूर्ववचने (नञ्गर्भितषष्ठीतत्पुरुषः)। अत्र पाणिग्रहणस्यापूर्ववचनं वेदितव्यम्। उभयतः स्त्रिया अपूर्वत्वे निपातनमेतत्।

अन्वयः–अपूर्ववचने कौमारोऽण्।

अर्थः–अपूर्ववचने द्योत्ये कौमारशब्दोऽण् प्रत्ययान्तो निपात्यते।

उदा०–अपूर्वपतिं कुमारीं पतिरुपपन्न इति कौमारः पतिः। अथवा-अपूर्वपतिः कुमारी पतिमुपन्नेति कौमारी भार्या।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपूर्ववचने) अपूर्वता के कथन में (कौमारः) कौमार शब्द (अण्) अण् प्रत्ययान्त निपातित है।*

*उदा०-**अपूर्वपतिं कुमारीं पतिरुपपन्न इति कौमारः पतिः।** अपूर्वपतिवाली कुमारी को पति प्राप्त होगया वह 'कौमारः' पति कहाता है। **अथवा-अपूर्वपतिः कुमारी पतिमुपन्नेति कौमारी भार्या।** अपूर्वपति कुमारी पति को प्राप्त होगई वह 'कौमारी' भार्या कहाती है।*

सिद्धि-(१) कौमारः। कुमारी+अम्+अण्। कौमार्+अ। कौमार+सु। कौमारः।

यहां द्वितीया-समर्थ 'कुमारी' शब्द से पाणिग्रहण के अपूर्ववचन में अर्थात् अपूर्वपति कुमारी जिस पति को प्राप्त हुई है वह 'कौमार' पति कहाता है।

*(२) **कौमारी।** कुमारी+सु+अण्। कौमार्+अ। कौमार+ङीप्। कौमारी+सु। कौमारी।*

यहां प्रथमा-समर्थ 'कुमारी' शब्द से पाणिग्रहण के अपूर्ववचन में अर्थात् जो अपूर्वपति कुमारी पति को प्राप्त होगई वह 'कौमारी' भार्या कहाती है।

यहां कुमारी को पति प्राप्त करे अथवा कुमारी पति को प्राप्त करे दोनों अवस्थाओं में 'कुमारी' शब्द से 'अण्' प्रत्यय निपातित है। स्त्रीत्व-विवक्षा में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

उद्धृतार्थप्रत्ययविधिः

अण्–

(१) तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः।१३।

प०वि०–तत्र अव्ययपदम्, उद्धृतम् १।१ अमत्रेभ्यः ५।३। अमत्रम्=पात्रम्।

अनु०-'प्राग्दीव्यतोऽण्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तत्र अमत्रेभ्य उद्धृतं प्राग्दीव्यतोऽण्।

अर्थः-तत्र-इति सप्तमीसमर्थेभ्योऽमत्रवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्य उद्धृतमित्यस्मिन्नर्थे प्राग्दीव्यतीयोऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-शरावेषूद्धृतः-शाराव ओदनः। मल्लिकेषूद्धृतः- माल्लिक ओदनः। कर्परिषूद्धृतः-कार्पर ओदनः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (अमत्रेभ्यः) पात्रविशेषवाची प्रातिपदिकों से (उद्धृतः) निकाला हुआ अर्थ में (प्राग्दीव्यतः) प्राग्दीव्यतीय (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-शरावेषूद्धृतः-**शाराव ओदनः।** शराव नामक पात्रों में निकाला हुआ-शाराव चावल। शराव=सकोरा। **मल्लिकेषूद्धृतः- माल्लिक ओदनः।** मल्लिक नामक पात्रों में निकाला हुआ-माल्लिक चावल। मल्लिक=हंसाकार पात्र। **कर्परिषूद्धृतः-कार्पर ओदनः।** कर्पर नामक पात्रों में निकाला हुआ-कार्पर चावल। कर्पर=कड़ाही, कड़ाह।*

*सिद्धि-**शारावः।** शराव+सुप्+अण्। शाराव्+अ। शाराव+सु। शारावः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'शराव' शब्द से उद्धृत अर्थ में इस सूत्र से प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**माल्लिकः, कार्परः।***

***विशेष**-यहां 'उद्धृत' शब्द का अर्थ पकाने के बाद निकालकर रखा हुआ पदार्थ है। काशिकाकार पं० जयादित्य ने उच्छिष्ट अर्थ किया है। जिसका अर्थ भोजन के बाद शुद्ध बचा हुआ पदार्थ है, झूठा अर्थ नहीं।*

शयितृ-अर्थप्रत्ययविधिः

अण्–

(१) स्थण्डिलाच्छयितरि व्रते।१४।

प०वि०-स्थण्डिलात् ५।१ शयितरि ७।१ व्रते ७।१।

अनु०-प्राग्दीव्यतोऽण्, तत्र इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र स्थण्डिलात् शयितरि अण् व्रते।

अर्थः-तत्र-इति सप्तमी-समर्थात् स्थण्डिलात् प्रातिपदिकात् शयितरि (कर्तरि) अर्थे प्राग्दीव्यतीयोऽण् प्रत्ययो भवति, व्रते गम्यमाने।

उदा०-स्थण्डिले शयितुं व्रतं यस्य सः-स्थाण्डिलो ब्रह्मचारी।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (स्थण्डिलात्) स्थण्डिल प्रातिपदिक से (शयितरि) शयन करनेवाला अर्थ में (प्राग्दीव्यतः) प्राग्दीव्यतीय (अण्) अण् प्रत्यय होता है (व्रते) यदि वहां व्रत=शास्त्रनियम अर्थ की प्रतीति हो।

उदा०-__स्थण्डिले शयितुं व्रतं यस्य सः-स्थाण्डिलो ब्रह्मचारी।__ स्थण्डिल पर शयन करना जिसका व्रत है वह-स्थाण्डिल ब्रह्मचारी। स्थण्डिल=यज्ञमण्डप, ज़मीन।

__सिद्धि-स्थाण्डिलः।__ स्थण्डिल+ङि+अण्। स्थाण्डिल्+अ। स्थाण्डिल+सु। स्थाण्डिलः।

यहां सप्तमी-समर्थ 'स्थण्डिल' शब्द से शयिता अर्थ में तथा व्रत अर्थ की प्रतीति में इस सूत्र से प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

संस्कृतार्थप्रत्ययविधिः

अण्–

(१) संस्कृतं भक्षाः।१५।

प०वि०-संस्कृतम् १।१ भक्षाः १।३।

अनु०-प्रातिपदिकात्, तत्र, प्राग्दीव्यतोऽण् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र प्रातिपदिकात् संस्कृतं प्राग्दीव्यतोऽण् भक्षाः।

अर्थः-तत्र-इति सप्तमीसमर्थात् प्रातिपदिकात् संस्कृतमित्यस्मिन्नर्थे प्राग्दीव्यतीयोऽण् प्रत्ययो भवति, यत् संस्कृतं भक्षाश्चेत् ता भवन्ति।

उदा०-भ्राष्ट्रे संस्कृता भक्षाः-भ्राष्ट्रा अपूपाः। कलशे संस्कृता भक्षाः-कालशा ओदनाः। कुम्भे संस्कृता भक्षाः-कौम्भा ओदनाः।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक से (संस्कृतम्) पका हुआ अर्थ में (प्राग्दीव्यतः) प्राग्दीव्यतीय (अण्) अण् प्रत्यय होता है (भक्षाः) जो पकाया हो वह यदि भक्षा=भोजन हो।

उदा०-__भ्राष्ट्रे संस्कृता भक्षाः-भ्राष्ट्रा अपूपाः।__ भ्राष्ट्र=दाने भूनने का पात्र-कड़ाही में पकाये हुये भक्षा=भोजन-भ्राष्ट्र मालपूवे। __कलशे संस्कृता भक्षाः-कालशा ओदनाः।__ कलश=घड़े में पकाये हुये भक्ष=भोजन-कालश-चावल। कलश=३४ सेर का एक पात्र। __कुम्भे संस्कृता भक्षाः-कौम्भा ओदनाः।__ कुम्भ=घड़े में पकाये हुये भक्षा=भोजन-कौम्भ चावल। कुम्भ=५ मण का एक पात्र।

__सिद्धि-भ्राष्ट्राः।__ भ्राष्ट्र+ङि+अण्। भ्राष्ट्र+अ। भ्राष्ट्र+जस्। भ्राष्ट्राः।

*यहां सप्तमी-समर्थ 'भ्राष्ट्र' शब्द से संस्कृत (भक्ष) पकाने अर्थ में इस सूत्र से प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**कालशाः, कौम्भाः।***

***विशेष**-'भक्षाः' यहां 'भक्ष अदने' (भ्वा०प०) धातु से '**गुरोश्च हलः**' (३।३।१०३) से भाव अर्थ में स्त्रीलिङ्ग में 'अ' प्रत्यय है। भक्षा=खाना।*

यत्-

(२) शूलोखाद् यत्।१६।

प०वि०-शूलोखात् ५।१ यत् १।१।

स०-शूलं च उखा च एतयोः समाहारः-शूलोखम्, तस्मात्-शूलोखात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्र, संस्कृतम्, भक्षा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र शूलोखात् संस्कृतं यद् भक्षाः।

अर्थः-तत्र-इति सप्तमी-समर्थाभ्यां शूलोखाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां संस्कृतमित्यस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति, यत् संस्कृतं भक्षाश्चेत् ता भवन्ति।

उदा०-(**शूलम्**) शूले संस्कृतम्-शूल्यं मांसम्। (**उखा**) उखायां संस्कृतम्-उख्यं क्षीरम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्र) सप्तमी समर्थ (शूलोखात्) शूल और उखा प्रातिपदिक से (संस्कृतम्) पकाये हुये अर्थ में (यत्) यत् प्रत्यय होता है (भक्षाः) जो पकाया हो वह यदि भक्षा=भोजन हो।*

*उदा०-**(शूलम्) शूले संस्कृतम्-शूल्यं मांसम्।** शूल में पकाया हुआ-शूल्य मांस। शूल=कबाब भूनने की लोहे की सींक, जिस पर लपेटकर कबाब (मांस) भूना जाता है। **(उखा) उखायां संस्कृतम्-उख्यं क्षीरम्।** उखा=बटलोई (डिगची) में उबाला हुआ दूध।*

***सिद्धि-शूल्यम्।** शूल+ङि+यत्। शूल्+य। शूल्य+सु। शूल्यम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'शूल' शब्द से संस्कृत अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**उख्यम्।***

ठक्-

(३) दध्नष्ठक्।१७।

प०वि०-दध्नः ५।१ ठक् १।१।

अनु०-तत्र, संस्कृतम्, भक्षा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र दध्नः संस्कृतं ठक् भक्षाः।

अर्थः-तत्र-इति सप्तमी-समर्थाद् दध्नः प्रातिपदिकात् संस्कृत-मित्यस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति, यत् संस्कृतं भक्षाश्चेत् ता भवन्ति।

उदा०-दधनि संस्कृतम्-दाधिकं लवणादिकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (दध्नः) दधि शब्द से (संस्कृतम्) गुणाधान करने अर्थ में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है (भक्षाः) जो गुणाधायक हो वह यदि भक्षा=भोजन हो।*

*उदा०-**दधनि संस्कृतम्-दाधिकं लवणादिकम्।** दधि=दही में गुणाधान करनेवाला-दाधिक लवण आदि।*

*सिद्धि-**दाधिकम्।** दधि+ङि+ठक्। दाध्+इक। दाधिक+सु। दाधिकम्।*

यहां सप्तमी-समर्थ 'दधि' शब्द से संस्कृत अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। 'ठस्येकः' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। 'किति च' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि होती है।

विशेष-*यहां 'संस्कृतम्' शब्द का अर्थ प्रकरणवश गुणाधान करना है, पकाना नहीं। दधि=दही में गुणाधान करनेवाले लवण आदि 'दाधिक' कहाते हैं। जहां दधि के द्वारा ओदन आदि में गुणाधान होता है वहां 'संस्कृतम्' (४।४।३) से प्राग्वहतीय ठक् प्रत्यय होता है।*

ठक्-विकल्पः-

(४) उदश्वितोऽन्यतरस्याम्।१८।

प०वि०-उदश्वितः ५।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०-तत्र, संस्कृतम्, भक्षा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र उदश्वितः संस्कृतम् अन्यतरस्यां ठक् भक्षाः।

अर्थः-तत्र-इति सप्तमी-समर्थाद् उदश्वितः प्रातिपदिकात् संस्कृत-मित्यस्मिन्नर्थे विकल्पेन ठक् प्रत्ययो भवति, यत् संस्कृतं भक्षाश्चेत् ता भवन्ति।

उदा०-उदश्विति संस्कृतम्-औदश्वित्कम्, औदश्वित्तं वा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (उदश्वितः) उदश्वित् प्रातिपदिक से (संस्कृतम्) गुणाधान अर्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है (भक्षाः) जो गुणाधायक हो यदि वह भक्षा=भोजन हो।*

*उदा०-उदश्विति संस्कृतम्-**औदश्वित्कम्, औदश्वितं वा।** उदश्वित्=लस्सी में गुणाधान करनेवाला-औदश्वित्क अथवा औदश्वित लवणभास्कर चूर्ण आदि।*

***सिद्धि-(१) औदश्वित्कम्।** उदश्वित्+ङि+ठक्। औदश्वित्+क। औदश्वितक+सु। औदोश्वित्कम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'उदश्वित्' शब्द से संस्कृत अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। '**इसुसुक्तान्तात् कः**' (७।३।५१) से 'ठ्' के स्थान में 'क्' आदेश होता है; इक् नहीं। '**किति च**' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि होती है।*

*(२) **औदश्वितम्।** उदश्वित्+ङि+अण्। औदश्वित्+अ। औदश्वित+सु। औदश्वितम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'उदश्वित्' शब्द से संस्कृत अर्थ में विकल्प पक्ष में '**प्राग्दीव्यतोऽण्**' (४।१।८१) से प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय होता है। '**तद्धितेष्वचामादेः**' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है।*

***विशेष**-दधि का अर्थ दही, तक्र का अर्थ मथी हुई दही (अध-बिलोई दही) और उदश्वित् का अर्थ उद=जल से श्वित्=बढाई हुई दही=लस्सी अर्थ होता है।*

ढञ्-

(५) क्षीराड्ढञ्।१६।

प०वि०-क्षीरात् ५।१ ढञ् १।१।

अनु०-तत्र, संस्कृतम्, भक्षा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र क्षीरात् संस्कृतं ढञ् भक्षाः।

अर्थः-तत्र-इति सप्तमीसमर्थात् क्षीरात् प्रातिपदिकात् संस्कृतमित्यस्मिन्नर्थे ढञ् प्रत्ययो भवति, यत् संस्कृतं भक्षाश्चेत् ता भवन्ति।

उदा०-क्षीरे संस्कृतम्-क्षैरेयी यवागूः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (क्षीरात्) क्षीर प्रातिपदिक से (संस्कृतम्) **पकाया** हुआ अर्थ में (ढञ्) ढञ् प्रत्यय होता है (भक्षाः) जो पकाया गया हो यदि वह **भक्षा**=भोजन हो।*

*उदा०-क्षीरे **संस्कृतम्-क्षैरेयी यवागूः।** क्षीर=दूध में पकाई हुई-क्षैरेयी यवागू। **यवागू**=जौ अथवा चावल का मांड।*

सिद्धि-क्षैरेयी।** क्षीर+ङि+ढञ्। क्षैर्+एय। क्षैरेय। क्षैरेय+ङीप्। क्षैरेयी+सु। **क्षैरेयी।

*यहां सप्तमी-समर्थ 'क्षीर' शब्द से संस्कृत अर्थ में इस सूत्र से 'ढञ्' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश होता है। स्त्रीत्व की विवक्षा में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है।*

अस्मिन् (पौर्णमासी) अर्थप्रत्ययविधिः

अण्–

(१) साऽस्मिन् पौर्णमासीति।२०।

प०वि०–सा १।१ अस्मिन् ७।१ पौर्णमासी १।१ इति अव्ययपदम्।

अनु०–प्रातिपदिकात्, प्राग्दीव्यतोऽण् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–सा प्रातिपदिकाद् अस्मिन् प्राग्दीव्यतोऽण् पौर्णमासी इति।

अर्थः–सा इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्मिन्निति सप्तम्यर्थे प्राग्दीव्यतीयोऽण् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं पौर्णमासी इति चेत् सा भवति। इतिकरणं संज्ञार्थम्।

उदा०–पौषी पौर्णमासी अस्मिन्-पौषो मासः, पौषोऽर्धमासः, पौषः संवत्सरः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(सा) प्रथमा-समर्थ (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक से (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (प्राग्दीव्यतः) प्राग्दीव्यतीय (अण्) अण् प्रत्यय होता है (पौर्णमासी) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह पौर्णमासी (इति) संज्ञाविशेष हो।*

*उदा०–**पौषी पौर्णमासी अस्मिन्-पौषो मासः।** पौषी पौर्णमासी है इसमें इसलिये यह-पौष मास है। **पौषोऽर्धमासः।** पौष अर्धमास (पक्ष) है। **पौषः संवत्सरः।** पौष वर्ष है।*

***सिद्धि-पौषः।** पौषी+सु+अण्। पौष्+अ। पौष+सु। पौषः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'पौषी' शब्द से 'अस्मिन्' इस सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में इस सूत्र से प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के ईकार का लोप और **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से पर्जन्यवत् सूत्रप्रवृत्ति होने से अंग को आदिवृद्धि होती है। यहां 'इतिकरण' संज्ञाविशेष के लिये है। अतः यह मास, अर्धमास और संवत्सर की संज्ञा है।*

***विशेष**–पौर्णमासी–यहां **'पूर्णो मासो यस्यां तिथाविति-पूर्णमासः। पूर्णमासस्येयमिति-पौर्णमासी।'** जिस तिथि को मास पूर्ण होता है उस तिथि का नाम पौर्णमासी है। यहां इसी निपातन से अथवा **'तस्येदम्'** (४।३।१२०) से 'अण्' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'टिड्ढाणञ्०'** (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है।*

अथवा-पूर्णो मा इति पूर्णमाः, पूर्णमास इयमिति पौर्णमासी। मा इति चन्द्रः। 'पूर्णमाः' शब्द का अर्थ पूर्ण चन्द्र है। पूर्ण चन्द्र की जो तिथि है उसे पौर्णमासी कहते हैं।

ठक्–

(२) आग्रहायण्यश्वत्थाट्ठक्।२१।

प०वि०–आग्रहायणी-अश्वत्थात् ५।१ ठक् १।१।

स०–आग्रहायणी च अश्वत्था च एतयोः समाहारः–आग्रहायण्यश्वत्थम्, तस्मात्–आग्रहायण्यश्वत्थात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–सा, अस्मिन्, पौर्णमासी, इति, इति चानुवर्तते।

अन्वयः–सा आग्रहायण्यश्वत्थाभ्याम् अस्मिन् ठक् पौर्णमासी इति।

अर्थः–सा-इति प्रथमासमर्थाभ्याम् आग्रहायण्यश्वत्थाभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अस्मिन्निति सप्तम्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं पौर्णमासी इति चेत् सा भवति।

उदा०–**(आग्रहायणी)** आग्रहायणी पौर्णमासी अस्मिन्–आग्रहायणिको मासः, आग्रहायणिकोऽर्धमासः, आग्रहायणिकः संवत्सरः। **(अश्वत्था)** अश्वत्था पौर्णमासी अस्मिन्-आश्वत्थिको मासः, आश्वत्थिकोऽर्धमासः, आश्वत्थिकः संवत्सरः।

आर्यभाषाः ***अर्थ***-*(सा) प्रथमा-समर्थ (आग्रहायण्यश्वत्थाभ्याम्) आग्रहायणी और अश्वत्था प्रातिपदिकों से (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है (पौर्णमासी) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह पौर्णमासी (इति) संज्ञाविशेष हो।*

*उदा०–**(आग्रहायणी) आग्रहायणी पौर्णमासी अस्मिन्–आग्रहायणिको मासः।** आग्रहायणी पौर्णमासी इसमें है यह-आग्रहायण मास। अग्रहायण=मृगशीर्ष नक्षत्र। आग्रहायणी=मार्गशीर्ष मास की पौर्णमासी। आग्रहायण मास=मार्गशीर्ष मास (अगहन मास)। **आग्रहायणिकोऽर्धमासः।** आग्रहायणी पौर्णमासीवाला अर्धमास (पक्ष)। **आग्रहायणिकः संवत्सरः।** आग्रहायणी पौर्णमासीवाला वर्ष। **(अश्वत्था) अश्वत्था पौर्णमासी अस्मिन्–आश्वत्थिको मासः।** अश्वत्था पौर्णमासीवाला आश्वत्थिक मास। **आश्वत्थिकोऽर्धमासः।** अश्वत्था पौर्णमासीवाला-अर्धमास (पक्ष)। **आश्वत्थिकः संवत्सरः।** अश्वत्था पौर्णमासीवाला-आश्वत्थिक वर्ष। अश्वत्थ=अश्विनी नक्षत्र। अश्वत्था पौर्णमासी=आश्विन मास की पौर्णमासी।*

सिद्धि-आग्रहायणिक। आग्रहायणी+सु+ठक्। आग्रहायण्+इक् आग्रहायणिक+सु। आग्रहायणिकः।

*यहां प्रथमा-समर्थ 'आग्रहायणी' शब्द से 'अस्मिन्' इस सप्तमी अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। '**ठस्येकः**' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के ईकार का लोप होता है। '**तद्धितेष्वचामादेः**' (७।२।११७) से पर्जन्यवत् सूत्रप्रवृत्ति होने से अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**आश्वत्थिकः।***

***विशेष**-अश्वत्था-'**लुबविशेषे**' (४।२।४) से अविशेष काल की विवक्षा में प्रत्यय का लुप् होता है किन्तु यहां सूत्रोक्त निपातन से पौर्णमासी काल की विशेष विवक्षा में 'अण्' प्रत्यय का लुप् होता है-**अश्वत्थेन युक्ता पौर्णमासी-अश्वत्था।** अश्वत्थ=अश्विनी नक्षत्र।*

ठक्-अण्-

(३) विभाषा फाल्गुनीश्रवणाकार्तिकीचैत्रीभ्यः।२२।

प०वि०-विभाषा १।१ फाल्गुनी-श्रवणा-कार्तिकी-चैत्रीभ्यः ५।३।

स०-फाल्गुनी च श्रवणा च कार्तिकी च चैत्री च ताः-फाल्गुनी०चैत्र्यः, ताभ्यः-फाल्गुनी०चैत्रीभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-सा, अस्मिन्, पौर्णमासी, इति, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सा फाल्गुनीश्रवणाकार्तिकीचैत्रीभ्योऽस्मिन् विभाषा ठक् पौर्णमासी इति।

अर्थः-सा-इति प्रथमासमर्थेभ्यः फाल्गुनीश्रवणाकार्तिकीचैत्रीभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्मिन्निति सप्तम्यर्थे विकल्पेन ठक् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं पौर्णमासी इति चेत् सा भवति।

उदा०-(फाल्गुनी) फाल्गुनी पौर्णमासी अस्मिन् सः-फाल्गुनिकः, फाल्गुनो वा मासः। **(श्रवणा)** श्रवणा पौर्णमासी अस्मिन् सः-श्रावणिकः, श्रावणो वा मासः। **(कार्तिकी)** कार्तिकी पौर्णमासी अस्मिन् सः-कार्तिकिकः, कार्तिको वा मासः। **(चैत्री)** चैत्री पौर्णमासी अस्मिन् सः-चैत्रिकः, चैत्रो वा मासः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सा) प्रथमा-समर्थ (फाल्गुनी०चैत्रीभ्यः) फाल्गुनी, श्रवणा, कार्तिकी, चैत्री प्रातिपदिकों से (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (विभाषा) विकल्प से (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है (पौर्णमासी) जो प्रथमा समर्थ है यदि वह पौर्णमासी (इति) संज्ञा- विशेष हो।*

उदा०- ***(फाल्गुनी) फाल्गुनी पौर्णमासी अस्मिन् सः-फाल्गुनिकः, फाल्गुनो वा मासः।*** *फाल्गुन पौर्णमासीवाला-फाल्गुनिक, वा फाल्गुन मास।* ***(श्रवणा) श्रवणा पौर्णमासी अस्मिन् सः-श्रावणिकः, श्रावणो वा मासः।*** *श्रवणा पौर्णमासीवाला-श्रावणिक वा श्रावण मास।* ***(कार्तिकी) कार्तिकी पौर्णमासी अस्मिन् सः-कार्तिकिकः, कार्तिको वा मासः।*** *कार्तिकी पौर्णमासीवाला-कार्तिकिक वा कार्तिक मास।* ***(चैत्री) चैत्री पौर्णमासी अस्मिन् सः-चैत्रिकः, चैत्रो वा मासः।*** *चैत्री पौर्णमासीवाला-चैत्रिक वा चैत्र मास।*

सिद्धि-(१) फाल्गुनिकः। *फाल्गुनी+सु+ठक्। फाल्गुन्+इक। फाल्गुनिक+सु। फाल्गुनिकः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'फाल्गुनी' शब्द से सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। '**ठस्येकः**' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश होता है। '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के ईकार का लोप और '**किति च**' (७।२।११७) से पर्जन्यवत् सूत्रप्रवृत्ति होने से अंग को आदिवृद्धि होती है।*

(२) फाल्गुनः। *फाल्गुनी+सु। अण्। फाल्गुन्+अ। फाल्गुन+सु। फाल्गुनः।*

*यहां पूर्ववत् फाल्गुनी शब्द से विकल्प पक्ष में '**प्राग्दीव्यतोऽण्**' (४।१।८३) से अण् प्रत्यय होता है। पूर्ववत् ईकार का लोप और '**तद्धितेष्वचामादेः**' (७।२।११७) से पर्जन्यवत् सूत्रप्रवृत्ति होने से अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**श्रावणिकः, श्रावणः। कार्तिकिकः, कार्तिकः। चैत्रिकः, चैत्रः।***

नक्षत्रपौर्णमासविवरणम्

	नक्षत्रम्	पौर्णमासी	मासः
१.	चित्रा	चैत्री	चैत्रिकः चैत्रः।
२.	विशाखा	वैशाखी	वैशाखः।
३.	ज्येष्ठा	ज्यैष्ठी	ज्यैष्ठः।
४.	आषाढा	आषाढी	आषाढः।
५.	श्रवण	श्रवणा	श्रावणिकः, श्रावणः।
६.	भाद्रपदा	भाद्रपदी	भाद्रपदः।
७.	अश्विनी	आश्विनी	आश्विनः।
	(अश्वत्थ)	(अश्वत्था)	(आश्वत्थिकः)

	नक्षत्रम्	पौर्णमासी	मासः
८.	कृत्तिका	कार्त्तिकी	कार्तिकिकः, कार्तिकः।
९.	मार्गशीर्ष	मार्गशीर्षी	मार्गशीर्षः।
	(आग्रहायण)	(आग्रहायणी)	(आग्रहायणिकः)
१०.	पूषन्	पौषी	पौषः।
११.	मघा	माघी	माघः।
१२.	फल्गुनी	फाल्गुनी	फाल्गुनिकः, फाल्गुनः।

अस्य(देवता)अर्थप्रत्ययप्रकरणम्

अण्–

(१) साऽस्य देवता।२३।

प०वि०–सा १।१ अस्य ६।१ देवता १।१।

अनु०–प्रातिपदिकात्, प्राग्दीव्यतः प्रत्यय इति चानुवर्तते।

अन्वयः–सा प्रातिपदिकात् अस्य प्राग्दीव्यतः प्रत्ययो देवता।

अर्थः–सा-इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे प्राग्दीव्यतीयो यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं देवता चेत् सा भवति।

उदा०–इन्द्रो देवताऽस्य-ऐन्द्रं हविः। अदितिर्देवताऽस्य-आदित्यं हविः। बृहस्पतिर्देवताऽस्य-बार्हस्पत्यं हविः। प्रजापतिर्देवताऽस्य-प्राजपत्यं हविः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(सा) प्रथमा-समर्थ (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (प्राग्दीव्यतः) प्राग्दीव्यतीय (प्रत्ययः) यथाविहित प्रत्यय होता है (देवता) जो प्रथमासमर्थ है यदि वह देवता हो।*

*उदा०–**इन्द्रो देवताऽस्य**-ऐन्द्रं हविः। इन्द्र देवता है इसका यह-ऐन्द्र हवि (आहुति)। **अदितिर्देवताऽस्य-आदित्यं हविः।** अदिति देवता है इसका यह-आदित्य हवि। **बृहस्पतिर्देवताऽस्य-बार्हस्पत्यं हविः।** बृहस्पति देवता है इसका यह-बार्हस्पत्य हवि। **प्रजापतिर्देवताऽस्य-प्राजपत्यं हविः।** प्रजापति देवता है इसका यह-प्राजापत्य हवि।*

*सिद्धि-(१) **ऐन्द्रम्।** इन्द्र+सु+अण्। ऐन्द्+अ। ऐन्द्र+सु। ऐन्द्रम्।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, देवतावाची 'इन्द्र' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से '**प्राग्दीव्यतोऽण्**' (४।१।८३) से प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय है। '**तद्धितेष्वचामादेः**' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है।*

(२) **आदित्यम्।** अदिति+सु+ण्य। आदित्+य। आदित्य+सु। आदित्यम्।

यहां 'अदिति' शब्द से **'दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः'** (४।१।८५) से प्राग्दीव्यतीय 'ण्य' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'बृहस्पति' शब्द से-**बार्हस्पत्यम्।** 'प्रजापति' शब्द से-**प्राजापत्यम्।**

विशेष-(१) **देवता।** देव+सु+तल्। देवत+टाप्। देवता+सु। देवता।

यहां देव शब्द से **'देवात् तल्'** (५।४।२७) से स्वार्थ में तल् प्रत्यय होता है। **'तलन्तः'** (लिङ्गानुशासन १।१७) से तल् प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं। अतः **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। संस्कृत भाषा में 'देवता' शब्द स्त्रीलिङ्ग है।

(२) यहां देवता शब्द से मन्त्र का प्रतिपाद्य विषय लिया गया है। इस विषय में निरुक्तकार ने दैवत-काण्ड (७।१) में कहा है- **'यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तद्दैवतः स मन्त्रो भवति'** अर्थात् जिस कामना को लेकर ऋषि जिस देवता की स्तुति करते हैं वह उस देवतावाला मन्त्र कहाता है। ऋक्सर्वानुक्रमणी में कहा है- **'या तेनोच्यते सा देवता'** अर्थात् मन्त्र के द्वारा जो कहा गया, वह उस मन्त्र का देवता होता है। इन दोनों वचनों के आधार पर मन्त्र के प्रतिपाद्य विषय को 'देवता' कहते हैं।

"ये देवता चेतन-अचेतन भेद से दो प्रकार के होते हैं। चेतन में आत्मा, परमात्मा लिये जायेंगे तथा अचेतन में भौतिक पदार्थ लिये जाते हैं, अर्थात् जब अग्नि, इन्द्र, वायु आदि देवतावाची शब्द अध्यात्म-प्रक्रिया में अन्वित होते हैं तब ये देवता आत्मा, परमात्मा के वाचक होते हैं। जब ये आधिदैविक प्रक्रिया में होते हैं, तब ये अचेतन देवों के वाचक होते हैं।" (पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु-अष्टाध्यायीभाष्य प्रथमावृत्ति ४।२।२४०)।

आहुति-मन्त्र

(१) **ओम् इन्द्राय स्वाहा। इदमिन्द्राय-इदन्न मम।**

(२) **ओम् अदित्यै स्वाहा। इदमदित्यै-इदन्न मम।**

(३) **ओं बृहस्पतये स्वाहा। इदं बृहस्पतये-इदन्न मम।**

(४) **ओं प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये-इदन्न मम।**

परमात्मा के गुणों का स्मरण करते हुये उपरिलिखित प्रकार के मन्त्रों से यज्ञ में हवि (आहुति) प्रदान की जाती है।

अण् (इत्-आदेशः)-

(२) कस्येत्।२४।

प०वि०-कस्य ६।१ इत् १।१।

अनु०-प्राग्दीव्यतीयोऽण् सा, अस्य, देवता इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सा कस्य अस्य प्राग्दीव्यतीयोऽण् देवता।

अर्थः-सा-इति प्रथमा-समर्थात् क-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे प्राग्दीव्यतीयोऽण् प्रत्ययो भवति, इकारश्चान्तादेशो भवति, यत् प्रथमा-समर्थं देवता चेत् सा भवति।

उदा०-को देवताऽस्य-कायं हविः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सा) प्रथमा-समर्थ (कस्य) 'क' प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठीविभक्ति के अर्थ में (प्राग्दीव्यतः) प्राग्दीव्यतीय (अण्) अण् प्रत्यय होता है (इत्) और इकार अन्तादेश होता है (देवता) जो प्रथमासमर्थ है यदि वह देवता हो।*

*उदा०-**को देवताऽस्य-कायं हविः।** 'क' देवता है इसका यह-काय हवि। क=प्रजापति।*

*सिद्धि-**कायम्।** क+सु+अण्। क्इ+अ। कै+अ। काय्+अ। काय+सु। कायम्।*

*यहां प्रथमा समर्थ देवतावाची 'क' शब्द से षष्ठीविभक्ति के अर्थ में इस सूत्र से प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय और 'क' शब्द के अन्त्य अ-वर्ण को इकार-आदेश होता है। **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से अंग को वृद्धि और **'एचोऽयवायवः'** (६।१।७५) से 'आय्' आदेश होता है।*

विशेष-*(१) देवतावाची 'क' शब्द प्रजापति अर्थ का वाचक है। प्रजापति=प्रजा का पालक परमेश्वर।*

(२) आहुति मन्त्र-ओं काय स्वाहा। इदं काय-इदन्न मम।

घन्-

(३) शुक्राद् घन्।२५।

प०वि०-शुक्रात् ५।१ घन् १।१।

अनु०-सा, अस्य, देवता इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सा शुक्राद् अस्य घन् देवता।

अर्थः-सा इति प्रथमासमर्थात् शुक्रात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे घन् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं देवता चेत् सा भवति।

उदा०-शुक्रो देवताऽस्य-शुक्रियं हविः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सा) प्रथमा-समर्थ (शुक्रात्) शुक्र प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी विभक्ति के अर्थ में (घन्) घन् प्रत्यय होता है (देवता) जो प्रथमासमर्थ है यदि वह देवता हो।*

उदा०-शुक्रो देवताऽस्य-शुक्रियं हविः । शुक्र है देवता इसका यह-शुक्रिय हवि। शुक्र=सर्वशक्तिमान् परमेश्वर।

*सिद्धि-**शुक्रियम्** । शुक्र+सु+घन्। शुक्+इय। शुक्रिय+सु। शुक्रियम्।*

यहां प्रथमा-समर्थ, देवतावाची 'शुक्र' शब्द से षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में इस सूत्र से 'घन्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश होता है।

आहुति मन्त्र-ओं शुक्राय स्वाहा। इदं शुक्राय-इदन्न मम।

घः–

(३) अपोनप्त्रपांनप्तृभ्यां घः।२६।

प०वि०-अपोनप्तृ-अपांनप्तृभ्याम् ५।२ घः १।१।

स०-अपोनप्तृ च अपांनप्तृ च तौ-अपोनप्त्रपांनप्त्रौ, ताभ्याम्-अपोनप्त्रपांनप्तृभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-सा, अस्य, देवता इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सा अपोनप्तृ-अपांनप्तृभ्याम् अस्य घो देवता।

अर्थः-सा-इति प्रथमासमर्थाभ्याम् अपोनप्तृ-अपांनप्तृभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अस्येति षष्ठ्यर्थे घः प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं देवता चेत् सा भवति।

उदा०-अपोनप्तृ देवताऽस्य-अपोनप्त्रियं हविः । अपांनपात् देवताऽस्य-अपांनप्त्रियं हविः ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(सा) प्रथमा-समर्थ (अपोनप्तृ-अपांनप्तृभ्याम्) अपोनप्तृ, अपांनप्तृ प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठीविभक्ति के अर्थ में (घः) घ प्रत्यय होता है (देवता) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह देवता हो तो।*

*उदा०-**अपोनप्तृ** देवताऽस्य-**अपोनप्त्रियं** हविः। अपोनप्तृ देवता है इसका यह-अपोनप्त्रिय हवि। **अपांनपात्** देवताऽस्य-**अपांनप्त्रियं** हविः। अपांनपात् देवता है इसका यह-अपांनप्त्रिय हवि।*

*सिद्धि-**अपोनप्त्रियम्**। अपोनप्तृ+सु+घ। अपोनप्तृ+इय। अपोनप्त्रिय+सु। अपोनप्त्रियम्।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, देवतावाची 'अपोनप्तृ' शब्द से इस सूत्र से 'घ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश और **'इको यणचि'** (६।१।७४) से ऋ-वर्ण को यण् (र्) आदेश होता है। 'अपोनप्त्' शब्द तकारान्त है, इसी सूत्र से प्रत्यय-सन्नियोग में उसे ऋकारान्त निपातित किया गया है। ऐसे ही-**अपांनप्त्रियम्**।*

विशेष–*(१) अपोनप्तृ, अपांनपातृ शब्द अग्निदेवता के वाचक हैं। जल से संघर्षण पैदा होता है और उससे विद्युत् उत्पन्न होती है। अतः जल का पोता होने से विद्युत् 'अपांनपात्' कहाता है।*

*(२) अत्र पदमञ्जर्यां हरदत्तमिश्रः प्राह–एवं च–**अपोनपातेऽनुब्रूहि, अपांनपातेऽनुब्रूहि, अपोनपातं यज, अपांनपातं यजेति सम्प्रैषः। वेदे तु–'अपोनप्त्रे स्वाहा' इति छान्दसः प्रयोगः।***

छः–

(४) छ च।२७।

प०वि०–छ १।१ (सु–लुक्) च अव्ययपदम्।

अनु०–सा, अस्य, देवता, अपोनप्तृ–अपांनपातृभ्यामिति चानुवर्तते।

अन्वयः–सा अपोनप्तृ–अपांनपातृभ्याम् अस्य छश्च देवता।

अर्थः–सा इति प्रथमासमर्थाभ्याम् अपोनप्तृ–अपांनपातृभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अस्येति षष्ठ्यर्थे छः प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं देवता चेत् सा भवति।

उदा०–अपोनप्तृ देवताऽस्य–अपोनप्त्रीयं हविः। अपांनपात् देवतास्य–अपानपात्रीयं हविः।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(सा) प्रथमा–समर्थ (अपोनप्तृ–अपांनपातृभ्याम्) अपोनप्तृ, अपांनपातृ प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठीविभक्ति के अर्थ में (छः) छ प्रत्यय (च) भी होता है (देवता) जो प्रथमा–समर्थ है यदि वह देवता हो।*

*उदा०–**अपोनप्तृ** देवताऽस्य–**अपोनप्त्रीयं** हविः। अपोनप्तृ देवता है इसका यह–अपोनप्त्रीय हवि। **अपांनपातृ** देवतास्य–**अपानपात्रीयं** हविः। अपांनपात् देवता है इसका यह–अपांनपात्रीय हवि।*

*सिद्धि–अपोनप्त्रीयम् और अपांनपात्रीयम् पदों की सिद्धि पूर्ववत् है **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' प्रत्यय के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है। पदों का अर्थ पूर्ववत् है।*

घः+अण्–

(५) महेन्द्राद् घाणौ च।२८।

प०वि०–महेन्द्रात् ५।१ घाणौ १।२ च अव्ययपदम्।

स०–घश्च अण् च तौ घाणौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-सा, अस्य, देवता, छ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सा महेन्द्राद् अस्य घाणौ छश्च देवता।

अर्थः-सा इति प्रथमासमर्थाद् महेन्द्रात् प्रातिपदिकाद् अस्य इति षष्ठ्यर्थे घाणौ छश्च प्रत्यया भवन्ति, यत् प्रथमासमर्थं देवता चेत् सा भवति।

उदा०-(घः) महेन्द्रो देवताऽस्य-महेन्द्रियं हविः। (**अण्**) महेन्द्रो देवताऽस्य-माहेन्द्रं हविः। (**छः**) महेन्द्रो देवताऽस्य-महेन्द्रीयं हविः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सा) प्रथमासमर्थ (महेन्द्रात्) महेन्द्र प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठीविभक्ति के अर्थ में (घाणौ) घ, अण् (च) और (छः) छ प्रत्यय होते हैं (देवता) जो प्रथमासमर्थ है यदि वह देवता हो।*

*उदा०-(घ) **महेन्द्रो देवताऽस्य-महेन्द्रियं हविः।** महेन्द्र देवता है इसका यह-महेन्द्रिय हवि। (अण्) **महेन्द्रो देवताऽस्य-माहेन्द्रं हविः।** महेन्द्र देवता है इसका यह-माहेन्द्र हवि। (छ) **महेन्द्रो देवताऽस्य-महेन्द्रीयं हविः।** महेन्द्र है देवता इसका यह-महेन्द्रीय हवि।*

*सिद्धि-(१) **महेन्द्रियम्।** यहां प्रथमा-समर्थ, देवतावाची 'महेन्द्र' प्रातिपदिक से इस सूत्र से 'घ' प्रत्यय होता है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश होता है।*

*(२) **माहेन्द्रम्।** यहां पूर्वोक्त 'महेन्द्र' प्रातिपदिक से इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है।*

*(३) **महेन्द्रीयम्।** यहां पूर्वोक्त 'महेन्द्र' प्रातिपदिक से इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है।*

ट्यण्-

(६) सोमाद् ट्यण्।२६।

प०वि०-सोमात् ५।१ ट्यण् १।१।

अनु०-सा, अस्य, देवता इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सा सोमाद् अस्य ट्यण् देवता।

अर्थः-सा इति प्रथमासमर्थात् सोमात् प्रातिपदिकाद् अस्य इति षष्ठ्यर्थे ट्यण् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं देवता चेत् सा भवति।

उदा०-सोमो देवताऽस्य-सौम्यं हविः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सा) प्रथमा-समर्थ (सोमात्) सोम प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठीविभक्ति के अर्थ में (ट्यण्) ट्यण् प्रत्यय होता है (देवता) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह देवता हो।*

*उदा०-**सोमो देवताऽस्य-सौम्यं हविः।** सोम देवता है इसका यह-सौम्य हवि।*

सिद्धि-सौम्यम्। *यहां प्रथमा-समर्थ, देवतावाची 'सोम' प्रातिपदिक से इस सूत्र से 'ट्यण्' प्रत्यय है। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि होती है। 'ट्यण्' प्रत्यय में टकार **'टिड्ढाणञ्०'** (४।१।१५) से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय के लिये और णकार अनुबन्ध आदिवृद्धि के लिये है।*

यत्–

(७) वाय्वृतुपित्रुषसो यत्।३०।

प०वि०-वायु-ऋतु-पितृ-उषसः ५।१ यत् १।१।

स०-वायुश्च ऋतुश्च पिता च उषाश्च एतेषां समाहारः-वाय्वृतुपित्रुषः, तस्मात्-वाय्वृतुपित्रुषसः (समाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः-सा वाय्वृतुपित्रुषसोऽस्य यद् देवता।

अर्थः-सा इति प्रथमासमर्थेभ्यो वायु-ऋतु-पितृ-उषोभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्य इति षष्ठ्यर्थे यत् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं देवता चेत् सा भवति।

उदा०-(वायुः) वायुर्देवताऽस्य-वायव्यं हविः। **(ऋतुः)** ऋतुर्देवताऽस्य-ऋतव्यं हविः। **(पिता)** पिता देवताऽस्य-पित्र्यं हविः। **(उषा)** उषा देवताऽस्य-उषस्यं हविः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सा) प्रथमा-समर्थ (वाय्वृतुपित्रुषसः) वायु, ऋतु, पितृ, उषस् प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठीविभक्ति के अर्थ में (यत्) यत् प्रत्यय होता है (देवता) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह देवता हो।*

*उदा०-(वायु) **वायुर्देवताऽस्य-वायव्यं हविः।** वायु है देवता इसका यह-वायव्य हवि। (ऋतु) **ऋतुर्देवताऽस्य-ऋतव्यं हविः।** ऋतु है देवता इसका यह-ऋतव्य हवि। (पिता) **पिता देवताऽस्य-पित्र्यं हविः।** पिता है देवता इसका यह-पित्र्य हवि। (उषा) **उषा देवताऽस्य-उषस्यं हविः।** उषा है देवता इसका यह-उषस्य हवि।*

सिद्धि-(१) वायव्यम्। *वायु+सु+यत्। वायो+य। वायव्य+सु। वायव्यम्।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, देवतावाची 'वायु' प्रातिपदिक से इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। **'ओर्गुणः'** (६।४।१४६) से अंग को गुण और **'वान्तो यि प्रत्यये'** (६।१।७६) से 'अव्' आदेश होता है। ऐसे ही 'ऋतु' शब्द से-**ऋतव्यम्।***

*(२) **पित्र्यम्।** पितृ+सु+यत्। पितृरीङ्+य। पितृरी+य। पितृर्+य। पित्र्य+सु। पित्र्यम्।*

*यहां पूर्ववत् 'पितृ' प्रातिपदिक से इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। **'रीङ् ऋतः'** (७।४।२७) से अंग को रीङ् आदेश और **'यस्येति च'** (६।४।१०८) से अंग के ईकार का लोप होता है। ऐसे ही 'उषस्' शब्द से-**उषस्यम्।***

छः+यत्–

(८) द्यावापृथिवीशुनासीरमरुत्वदग्नीषोमवास्तोष्पतिगृहमेधाच्छ च।३१।

प०वि०-द्यावापृथिवी-शुनासीर-मरुत्वद्-अग्नीषोम-वास्तोष्पति-गृहमेधात् ५।१ छ १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्।

स०-द्यौश्च पृथिवी च ते द्यावापृथिव्यौ। शुनश्च सीरश्च तौ शुनासीरौ। अग्निश्च सोमश्च तौ अग्नीषोमौ। वास्तुनः पतिरिति वास्तोष्पतिः। द्यावापृथिव्यौ च शुनासीरौ च मरुत्वाँश्च अग्नीषोमौ च वास्तोष्पतिश्च गृहमेधश्च एतेषां समाहारः-द्यावापृथिवी०गृहमेधम्, तस्मात्-द्यावापृथिवी०गृहमेधात् (इतरेतरयोगद्वन्द्वषष्ठीतत्पुरुषगर्भितः समाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः-सा द्यावापृथिवी०गृहमेधाद् अस्य छो यच्च देवता।

अर्थः-सा इति प्रथमासमर्थेभ्यो द्यावापृथिवीशुनासीरमरुत्वदग्नीषोमवास्तोष्पतिगृहमेधेभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्य इति षष्ठ्यर्थे छो यच्च प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं देवता चेत् सा भवति।

उदा०-(द्यावापृथिव्यौ) द्यावापृथिव्यौ देवते अस्य-द्यावापृथिवीयं हविः (छः)। द्यावापृथिव्यं हविः (यत्)। **(शुनासीरौ)** शुनासीरौ देवते अस्य-शुनासीरीयं हविः (छः)। शुनासीर्यं हविः (यत्)। **(मरुत्वान्)** मरुत्वान् देवताऽस्य-मरुत्वतीयं हविः (छः)। मरुत्वत्यं हविः (यत्)। **(अग्नीषोमौ) अग्निषोमौ देवताऽस्य-अग्नीषोमीयं हविः** (छः)। अग्निषोम्यं

हविः (यत्)। **(वास्तोष्पतिः)** वास्तोष्पतिर्देवताऽस्य-वास्तोष्पतीयं हविः (छः)। वास्तोष्पत्यं हविः (यत्)। **(गृहमेधः)** गृहमेधो देवताऽस्य-गृहमेधीयं हविः (छः) गृहमेध्यं हविः (यत्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सा) प्रथमा-समर्थ (द्यावापृथिवी०गृहमेधात्) द्यावापृथिवी, शुनासीर, मरुत्वान्, अग्नीषोम, वास्तोष्पति, गृहमेध प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (छः) छ (च) और (यत्) यत् प्रत्यय होते हैं (देवता) जो प्रथमासमर्थ है यदि वह देवता हो।*

उदा०-संस्कृत भाग में देख लेवें। अर्थ इस प्रकार है-(द्यावापृथिवी) द्यौ और पृथिवी इसके देवता हैं यह-द्यावापृथिवीय अथवा द्यावापृथिव्य हवि। (शुनासीर) शुन और सीर इसके देवता हैं यह-शुनासीरीय अथवा शुनासीर्य हवि। शुन=वायु। सीर=आदित्य। (मरुत्वान्) मरुत्वान् इसका देवता है यह-मरुत्वतीय अथवा मरुत्वत्य हवि। मरुत्वान्=इन्द्र। (अग्नीषोम) अग्नि और सोम इसके देवता हैं यह-अग्नीषोमीय अथवा अग्निषोम्य हवि। (वास्तोष्पति) वास्तोष्पति इसके देवता हैं यह-वास्तोष्पतीय अथवा वास्तोष्पत्य हवि। वास्तोष्पति=घर की रक्षा करनेवाला शुद्ध वायु। (गृहमेध) गृहमेध इसका देवता है यह-गृहमेधीय अथवा गृहमेध्य हवि। गृहमेध=ब्रह्मयज्ञ आदि पांच महायज्ञ करनेवाला गृहस्थ।

*सिद्धि-(१) **द्यावापृथिवीयम्।** यहां प्रथमा-समर्थ, देवतावाची 'द्यावापृथिवी' **प्रातिपदिक** से इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में **'ईय्'** आदेश होता है।*

*(२) **द्यावापृथिव्यम्।** यहां पूर्वोक्त 'द्यावापृथिवी' शब्द से इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के ईकार का लोप होता है।*

*(३) **'शुनासीरीय'** आदि पदों की सिद्धि पूर्ववत् है।*

ढक्-

(६) अग्नेर्ढक्।३२।

प०वि०-अग्नेः ५।१ ढक् १।१।

अनु०-सा, अस्य, देवता इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सा अग्नेरस्य ढक् देवता।

अर्थः-सा इति प्रथमासमर्थाद् **अग्नि-शब्दात्** प्रातिपदिकाद् अस्य इति षष्ठ्यर्थे ढक् प्रत्ययो भवति, **यत् प्रथमासमर्थं** देवता चेत् सा भवति।

उदा०-अग्निर्देवताऽस्य-आग्नेयो मन्त्रः। तद्यथा-अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम् (ऋ० १।१।१)।

आर्यभाषाः अर्थ-*(सा) प्रथमा-समर्थ (अग्नेः) अग्नि प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (ढक्) ढक् प्रत्यय होता है (देवता) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह देवता हो।*

*उदा०-**अग्निर्देवताऽस्य-आग्नेयो मन्त्रः।** अग्नि देवता है इसका यह-आग्नेय मन्त्र।*

***सिद्धि-आग्नेयम्।** अग्नि+सु+ढक्। आग्न्+एय। आग्नेय+सु। आग्नेयम्।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, देवतावाची 'अग्नि' प्रातिपदिक से इस सूत्र से 'ढक्' प्रत्यय है। प्रत्यय के कित् होने से **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि होती है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग का इकार-लोप होता है।*

(१०) कालेभ्यो भववत्।३३।

प०वि०-कालेभ्यः ५।३ भववत् अव्ययपदम्। भवे इव भववत् **'तत्र तस्येव'** (५।१।११५) इति सप्तम्यर्थे वतिः प्रत्ययः।

अनु०-सा, अस्य, देवता इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सा कालेभ्योऽस्य भववद् देवता।

अर्थः-सा इति प्रथमासमर्थेभ्यः कालविशेषवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्य इति षष्ठ्यर्थे भववत् प्रत्यया भवन्ति, यत् प्रथमासमर्थं देवता चेत् सा भवति।

'कालेभ्यः' इति बहुवचननिर्देशात् कालविशेषवाचिनो मासादयो गृह्यन्ते। 'भववत्' इत्यस्यायमर्थः-**'कालाट्ठञ्'** (४।३।११) इत्यस्मिन् प्रकरणे कालविशेषवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो ये प्रत्यया विहितास्ते **'साऽस्य देवता'** इत्यस्मिन्नर्थेऽपि भवन्ति।

उदा०-मासो देवताऽस्य-मासिकम्। अर्धमासो देवताऽस्य-आर्धमासिकम्। संवत्सरो देवताऽस्य-सांवत्सरिकम्। वसन्तो देवताऽस्य-वासन्तम्। प्रावृड् देवताऽस्य-प्रावृषेण्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सा) प्रथमा-समर्थ (कालेभ्यः) कालविशेषवाची प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठीविभक्ति के अर्थ में (भववत्) 'भव' अर्थ के समान प्रत्यय होते हैं (देवता) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह देवता हो।*

*'कालेभ्यः' इस बहुवचन-निर्देश से कालविशेषवाची 'मास' आदि प्रातिपदिकों का ग्रहण किया जाता है। 'भववत्' का यह अर्थ है कि **'कालाट्ठञ्'** (४।३।११) इस प्रकरण में कालविशेषवाची प्रातिपदिकों से जो प्रत्यय विधान किये गये हैं, वे **'साऽस्य देवता'** इस अर्थ में भी होते हैं।*

*उदा०-**मासो देवताऽस्य-मासिकम्।** मास इसका देवता है यह-मासिक। **अर्धमासो देवताऽस्य-आर्धमासिकम्।** अर्धमास (पक्ष) इसका देवता है यह-आर्धमासिक। **संवत्सरो देवताऽस्य-सांवत्सरिकम्।** संवत्सर=वर्ष इसका देवता है यह-सांवत्सरिक। **वसन्तो देवताऽस्य-वासन्तम्।** वसन्त इसका देवता है यह-वासन्त। **प्रावृड् देवताऽस्य-प्रावृषेण्यम्।** प्रावृट्=वर्षा ऋतु इसका देवता है यह-प्रावृषेण्य।*

सिद्धि-(१) मासिकम्। *मास+सु+ठञ्। मास्+इक। मासिक+सु। मासिकम्।*

यहां प्रथमा-समर्थ, कालविशेषवाची 'मास' शब्द से 'कालाट्ठञ्' (४।३।११) से विहित ठञ् प्रत्यय इस सूत्र से देवता अर्थ में है। 'ठस्येकः' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश होता है।

*(२) **आर्धमासिकम्।** 'अर्धमास' शब्द से पूर्ववत्।*

*(३) **सांवत्सरिकम्।** 'संवत्सर' शब्द से पूर्ववत्।*

*(४) **वासन्तम्।** 'वसन्त' शब्द से **'सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्'** (४।३।१६) से 'अण्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है।*

*(५) **प्रावृषेण्यम्।** 'प्रावृट्' शब्द से **'प्रावृष एण्यः'** (४।३।१७) से 'एण्य' प्रत्यय है।*

ठञ्-

(११) महाराजप्रोष्ठपदाट्ठञ्।३४।

प०वि०-महाराज-प्रोष्ठपदात् ५।१ ठञ् १।१।

स०-महाराजश्च प्रोष्ठपदे च एतयोः समाहारः-महाराजप्रोष्ठपदम्, तस्मात्-महाराजप्रोष्ठपदात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः-सा महाराजप्रोष्ठपदादस्य, ठञ् देवता।

अर्थः-सा इति प्रथमासमर्थाभ्यां महाराज-प्रोष्ठपदाभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अस्य इति षष्ठ्यर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं देवता चेत् सा भवति।

उदा०-(**महाराज:**) महाराजो देवताऽस्य-माहाराजिकम्। (**प्रोष्ठपदे**) प्रोष्ठपदे देवते अस्य-प्रौष्ठपदिकम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(सा) प्रथमा-समर्थ (महाराज-प्रोष्ठपदात्) महाराज और प्रोष्ठपदा प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठीविभक्ति के अर्थ में (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है (देवता) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह देवता हो।*

*उदा०-(महाराज:) **महाराजो देवताऽस्य-माहाराजिकम्।** महाराज=वैश्रवण (कुबेर) है देवता इसका यह-माहाराजिक। (प्रोष्ठपदे) **देवते अस्य-प्रौष्ठपदिकम्।** प्रौष्ठपदा=भाद्रपदा, पूर्व भाद्रपदा और उत्तर भाद्रपदा नक्षत्र हैं देवता इसके यह-प्रौष्ठपदिक।*

सिद्धि-माहाराजिकम्। *महाराज+सु+ठञ्। माहाराज्+इक। माहाराजिक+सु। माहाराजिकम्।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, देवतावाची 'महाराज' प्रातिपदिक से इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। **'ठस्येक:'** (७।३।५२) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश होता है। **'तद्धितेष्वचामादे:'** (७।१।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही 'प्रौष्ठपदा' शब्द से-**प्रौष्ठपदिकम्।***

विशेष-*प्रोष्ठपदा नक्षत्र पूर्व-प्रोष्ठपदा और उत्तर-प्रोष्ठपदा भेद से दो प्रकार का है। इसे पूर्व-भाद्रपदा और उत्तर भाद्रपदा भी कहते हैं। **'फाल्गुनीप्रोष्ठपदानां च नक्षत्रे'** (१।२।६०) से 'प्रोष्ठपदा' के द्विवचन में विकल्प से बहुवचन होता है।*

निपातनम्—

(१२) पितृव्यमातुलमातामहपितामहा:।३५।

प०वि०-पितृव्य-मातुल-मातामह-पितामहा: १।३।

स०-पितृव्यश्च मातुलश्च मातामहश्च पितामहश्च ते-पितृव्य-मातुलमातामहपितामहा: (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अर्थ:-पितृव्यमातुलमातामहपितामहा: शब्दा निपात्यन्ते। समर्थ-विभक्ति:, प्रत्यय:, प्रत्ययार्थ:, अनुबन्धश्चेति सर्वं निपातनाद् वेदितव्यम्।

उदा०-(**पितृव्य:**) पितुर्भ्राता-पितृव्य:। (**मातुल:**) मातुर्भ्राता-मातुल:। (**मातामह:**) मातु: पिता-मातामह:। (**पितामह:**) पितु: पिता-पितामह:।

आर्यभाषाः *अर्थ-(पितृव्य०) पितृव्य, मातुल, मातामह, पितामह शब्द निपातित किये जाते हैं। इनमें समर्थ-विभक्ति, प्रत्यय, प्रत्यय का अर्थ और अनुबन्ध सब निपातन से ही जानना चाहिये।*

उदा०-(पितृव्यः) पितुर्भ्राता-पितृव्यः। पिता का भाई-चाचा। (मातुलः) मातुर्भ्राता-मातुलः। माता का भाई-मामा। (मातामहः) मातुः पिता-मातामहः। माता का पिता-नाना। (पितामहः) पितुः पिता-पितामहः। पिता का पिता-दादा।

सिद्धि-(१) पितृव्यः। पितृ+ङस्+व्यत्। पितृ+व्यत्। पितृव्य+सु। पितृव्यः।

यहां 'पितृ' शब्द से षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में 'व्यत्' प्रत्यय है।

(२) मातुलः। मातृ+ङस्+डुलच्। मात्+उल। मातुल+सु। मातुलः।

यहां 'मातृ' शब्द से षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में 'डुलच्' प्रत्यय निपातित है। प्रत्यय के डित् होने से 'वा०-डित्यभस्यापि टेर्लोपः' (६।४।१४३) से 'मातृ' के टि-भाग (ऋ) का लोप होता है।

(३) मातामहः। मातृ+ङस्+डामहच्। मात्+आमह। मातामह+सु। मातामहः।

यहां 'मातृ' शब्द से षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में 'डामहच्' प्रत्यय है। प्रत्यय के डित् होने से 'मातृ' शब्द का पूर्ववत् टि-लोप होता है।

(४) पितामहः। पितृ+ङस्+डामहच्। पित्+आमह। पितामह+सु। पितामहः। सब कार्य पूर्ववत् है।

***विशेष**- 'डामहच्' प्रत्यय को षित् मानकर स्त्रीत्व-विवक्षा में '**षिद्गौरादिभ्यश्च**' (४।१।४१) से ङीष् प्रत्यय होता है-मातामही-नानी। पितामही-दादी।*

।। इति देवतार्थप्रत्ययप्रकरणम्।।

समूहार्थप्रत्ययप्रकरणम्

यथाविहितं प्रत्ययः-

(१) तस्य समूहः।३६।

प०वि०-तस्य ६।१ समूहः १।१।

अन्वयः-तस्य षष्ठीसमर्थात् समूहो यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकात् समूह इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति।

उदा०-काकानां समूहः-काकम्। शुकानां समूहः-शौकम्। बकानां समूहः-बाकम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक से (समूहः) समूह अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**काकानां समूहः-काकम्।** कौवों का समूह-काक। **शुकानां समूहः-शौकम्।** तोतों का समूह-**शौक**। **बकानां समूहः-बाकम्।** बगुलों का समूह-बाक।*

***सिद्धि-काकम्।** काक+आम्+अण्। काक्+अ। काक+सु। काकम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'काक' शब्द से समूह अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया **है**। **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से यहां यथाविहित प्रत्यय 'अण्' है। 'अण्' प्रत्यय के णित् होने से **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) **अंग के** अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**शौकम्, बाकम्।***

अण्–

(२) भिक्षादिभ्योऽण्।३७।

प०वि०-भिक्षा-आदिभ्यः ५।३ अण् १।१।

स०-भिक्षा आदिर्येषां ते-भिक्षादयः, तेभ्यः-भिक्षादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तस्य, समूह इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य भिक्षादिभ्यः समूहोऽण्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो भिक्षादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः समूह इत्यस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-भिक्षाणां समूहो भैक्षम्। गर्भिणीनां समूहो गार्भिणम्। युवतीनां समूहो यौवतम्।

भिक्षा। गर्भिणी। क्षेत्र। करीष। अङ्गार। चर्मिन्। धर्मिन्। चर्मन्। धर्मन्। सहस्र। युवति। पदाति। पद्धति। अथर्वन्। अर्वन्। दक्षिण। भूत। विषय। श्रोत्र। वृक्षादिभ्यः खण्डः।। वृक्षखण्डः। वृक्ष। तरु। पादप। इति भिक्षादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (भिक्षादिभ्यः) भिक्षा-आदि प्रातिपदिकों से (समूहः) समूह अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**भिक्षाणां समूहो भैक्षम्।** शिष्यों के द्वारा आचार्य के लिये लाई हुई भिक्षाओं का समूह-भैक्ष। **गर्भिणीनां समूहो गार्भिणम्।** गर्भिणी नारियों का समूह-गार्भिण। **युवतीनां समूहो यौवतम्।** युवति जनों का समूह-यौवत।*

*सिद्धि-(१) **भैक्षम्**। भिक्षा+आम्+अण्। भैक्ष्+अ। भैक्ष+सु। भैक्षम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'भिक्षा' शब्द से समूह अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। '**तद्धितेष्वचामादेः**' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है।*

*(२) **गार्भिणम्**। गर्भिणी+आम्+अण्। गर्भिन्+अ। गार्भिन्+अ। गार्भिण+सु। गार्भिणम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'गर्भिणी' शब्द से समूह अर्थ में इस सूत्र से अण् प्रत्यय है। वा०- '**भस्याढे तद्धिते०**' (६।३।३५) से पुंवद्भाव होने से ङीप् प्रत्यय की निवृत्ति होती है तत्पश्चात् अण् प्रत्यय परे होने पर '**इनण्यनपत्ये**' (६।४।१६४) से प्रकृतिभाव होने से '**नस्तद्धिते**' (६।४।१४४) से टि-भाग (इन्) का लोप नहीं होता है।*

*(३) **यौवतम्**। युवति+आम्+अण्। युवति+अ। यौवत्+अ। यौवत+सु। यौवतम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'युवति' शब्द से समूह अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के इकार का लोप होता है। 'युवति' शब्द भिक्षादिगण में पढ़ा है अतः उसे वा०- '**भस्याढे तद्धिते०**' (६।३।३५) से पुंवद्भाव (युवन्) नहीं होता है।*

वुञ्-

(३) गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्यराजपुत्रवत्समनुष्याजाद् वुञ्।३८।

प०वि०- गोत्र-उक्ष-उष्ट्र-उरभ्र-राज-राजन्य-राजपुत्र-वत्स-मनुष्य-अजात् ५।१ वुञ् १।१।

स०-गोत्रं च उक्षा च उष्ट्रश्च उरभ्रश्च राजा च राजन्यश्च राजपुत्रश्च वत्सश्च मनुष्यश्च अजश्च एतेषां समाहारः-गोत्र०अजम्, तस्मात्-गोत्र०अजात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, समूह इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य गोत्र०अजात् समूहो वुञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो गोत्रादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः समूह इत्यस्मिन्नर्थे वुञ् प्रत्ययो भवति।

अपत्याधिकारादन्यत्र लौकिकं गोत्रं गृह्यतेऽपत्यमात्रम्, न तु '**अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्**' (४।१।१६२) इति पारिभाषिकं गोत्रम्।

उदा०-(**गोत्रम्**) औपगवानां समूह औपगवकम्। कापटवानां समूहः कापटवकम्। (**उक्षा**) उक्ष्णां समूह औक्षकम्। (**उष्ट्रः**) उष्ट्राणां समूह औष्ट्रकम्। (**उरभ्रः**) उरभ्राणां समूह औरभ्रकम्। (**राजा**) राज्ञां समूहो राजकम्। (**राजन्यः**) राजन्यानां समूहो राजन्यकम्। (**राजपुत्रः**) राजपुत्राणां समूहो राजपुत्रकम्। (**वत्सः**) वत्सानां समूहो वात्सकम्। (**मनुष्यः**) मनुष्याणां समूहो मानुष्यकम्। (**अजः**) अजानां समूह आजकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (गोत्र०अजात्) गोत्र, उक्षा, उष्ट्र, उरभ्र, राजा, राजन्य, राजपुत्र, वत्स, मनुष्य, अज प्रातिपदिकों से (समूहः) समूह अर्थ में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है।*

अपत्य-अधिकार से अन्यत्र लौकिक गोत्र (अपत्यमात्र) का ग्रहण किया जाता है ***'अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्'*** *(४।१।१६२) इस पारिभाषिक गोत्र का नहीं।*

उदा०-संस्कृत भाग में देख लेवें। अर्थ इस प्रकार है-(गोत्र) उपगु के पुत्रों का समूह-औपगवक। कपटु के पुत्रों का समूह-कापटवक। (उक्षा) बैलों का समूह-औक्षक। (उरभ्र) मेष=भेड़ों का समूह-औरभ्रक। (राजा) राजाओं का समूह-राजक। (राजन्य) क्षत्रियों का समूह-राजन्यक। (राजपुत्र) राजपुत्रों का समूह-राजपुत्रक। (वत्स) बछड़ों का समूह-वात्सक। (मनुष्य) मनुष्यों का समूह-मानुष्यक। (अज) बकरों का समूह-आजक।

सिद्धि-(१) ***औपगवकम्।*** *औपगव+आम्+वुञ्। औपगव+अक। औपगवक+सु। औपगवकम्।*

यहां षष्ठीसमर्थ, लौकिक गोत्रवाची 'औपगव' शब्द से इस सूत्र से समूह अर्थ में 'वुञ्' प्रत्यय है। ***'युवोरनाकौ'*** *(७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है।* ***'तद्धितेष्वचामादेः'*** *(७।२।११७) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि होती है।*

(२) ***औक्षकम्।*** *उक्षन्+आम्+वुञ्। उक्षन्+अक। औक्ष्+अक। औक्षक+सु। औक्षकम्।*

यहां षष्ठीसमर्थ 'उक्षन्' शब्द से समूह अर्थ में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। ***'नस्तद्धिते'*** *(६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही* ***'औष्ट्रकम्'*** *आदि पद सिद्ध करें।*

यञ्+वुञ्–

(४) केदाराद् यञ् च।३६।

प०वि०-केदारात् ५।१ यञ् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-तस्य, समूह, वुञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य केदारात् समूहो यञ् वुञ् च।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् केदारात् प्रातिपदिकात् समूह इत्यस्मिन्नर्थे यञ् वुञ् च प्रत्ययो भवति।

उदा०-(यञ्) केदाराणां समूहः-कैदार्यम्। **(वुञ्)** केदाराणां समूहः-कैदारकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (केदारात्) केदार प्रातिपदिक से (समूहः) समूह अर्थ में (यञ्) यञ् (च) और (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-(यञ्) **केदाराणां समूहः-कैदार्यम्।** पानी भरे खेतों अथवा चारागाहों का समूह-कैदार्य। (वुञ्) **केदाराणां समूहः-कैदारकम्।** केदारों का समूह-कैदारक।*

सिद्धि-(१) कैदार्यम्। *केदार+ङस्+यञ्। कैदार्+य। कैदार्य+सु। कैदार्यम्।*

यहां षष्ठीसमर्थ 'केदार' शब्द से समूह अर्थ में इस सूत्र से 'यञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

(२) कैदारकम्। *यहां षष्ठी-समर्थ 'केदार' शब्द से समूह अर्थ में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

ठञ्—

(५) ठञ् कवचिनश्च।४०।

प०वि०-ठक् १।१ कवचिनः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-तस्य, समूहः, केदाराद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य कवचिनः केदाराच्च समूहष्ठञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् कवचिनः केदाराच्च प्रातिपदिकात् समूह इत्यस्मिन्नर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-कवचिनां समूहः कावचिकम्। केदाराणां समूहः कैदारिकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (कवचिनः) कवचिन् (च) और (केदारात्) केदार प्रातिपदिक से (समूहः) समूह अर्थ में (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**कवचिनां समूहः कावचिकम्।** कवचधारी (जिरहबख्तरवाले) जनों का समूह-कावचिक। **केदाराणां समूहः कैदारिकम्।** केदार=पानी के भरे खेतों अथवा चरागाहों का समूह-कैदारिक।*

सिद्धि-कावचिकम्। *कवचिन्+आम्+ठञ्। कावच्+इक। कावचिक+सु। कावचिकम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'कवचिन्' शब्द से समूह अर्थ में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। 'ठस्येकः' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश होता है। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। 'नस्तद्धिते' (६।४।११४) से अंग के टि-भाग (इन्) का लोप होता है। ऐसे ही 'केदार' शब्द से-**कैदारिकम्।***

यन्–

(६) ब्राह्मणमाणववाडवाद् यन्।४१।

प०वि०–ब्राह्मण-माणव-वाडवात् ५।१ यन् १।१।

स०–ब्राह्मणश्च माणवश्च वाडवश्च एतेषां समाहारो ब्राह्मणमाणववाडवम्, तस्मात्-ब्राह्मणमाणववाडवात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः–तस्य ब्राह्मणमाणववाडवात् समूहो यन्।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो ब्राह्मणमाणववाडवेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः समूह इत्यस्मिन्नर्थे यन् प्रत्ययो भवति।

उदा०–(ब्राह्मणः) ब्राह्मणानां समूहो ब्राह्मण्यम्। **(माणवः)** माणवानां समूहो माणव्यम्। **(वाडवः)** वाडवानां समूहो वाडव्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अस्य) षष्ठी-समर्थ (ब्राह्मणमाणववाडवात्) ब्राह्मण, माणव, वाडव प्रातिपदिकों से (समूहः) समूह अर्थ में (यन्) **यन्** प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(ब्राह्मण) ब्राह्मणानां **समूहो ब्राह्मण्यम्।** ब्राह्मणों का समूह-ब्राह्मण्य। (माणव) माणवानां समूहो **माणव्यम्।** माणव-छोकरों अथवा बोनों का समूह-माणवक। (वाडव) वाडवानां समूहो **वाडव्यम्।** वाडव=घोड़ों का समूह=वाडव्य।*

*सिद्धि-**ब्राह्मण्यम्।** ब्राह्मण+आम्+यन्। ब्राह्मण्+य। ब्राह्मण्य+सु। ब्राह्मण्यम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'ब्राह्मण' शब्द से समूह अर्थ में इस सूत्र से 'यन्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। 'यन्' प्रत्यय के 'नित्' होने से **'ञ्नित्यादिनित्यम्'** (६।१।१९१) से आद्युदात्त स्वर होता है-**ब्राह्मण्यम्।** ऐसे ही-**माणव्यम्, वाडव्यम्।***

तल्–

(७) ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल्।४२।

प०वि०–ग्राम-जन-बन्धुभ्यः ५।३ तल् १।१।

स०–ग्रामश्च जनश्च बन्धुश्च ते-ग्रामजनबन्धवः, तेभ्यः-ग्रामजनबन्धुभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, समूह इति चानुवर्त्तते।

अन्वयः-तस्य ग्रामजनबन्धुभ्यः समूहस्तल्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो ग्रामजनबन्धुभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः समूह इत्यस्मिन्नर्थे तल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**ग्रामः**) ग्रामाणां समूहो ग्रामता। (**जनः**) जनानां समूहो जनता। (**बन्धुः**) बन्धूनां समूहो बन्धुता।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (ग्रामजनबन्धुभ्यः) ग्राम, जन, बन्धु प्रातिपदिकों से (समूहः) समूह अर्थ में (तल्) तल् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(ग्राम) **ग्रामाणां समूहो ग्रामता।** ग्रामों का समूह-ग्रामता। (जन) **जनानां समूहो जनता।** जनों का समूह-जनता। (बन्धु) **बन्धूनां समूहो बन्धुता।** बन्धुओं का समूह-बन्धुता।*

सिद्धि-ग्रामता। *ग्राम+आम्+तल्। ग्रामत+टाप्। ग्रामता+सु। ग्रामता।*

*यहां 'ग्राम' शब्द से समूह अर्थ में इस सूत्र से 'तल्' प्रत्यय है। **'तलन्तः'** (लि०स्त्री० २६) से तल् प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग में होते हैं। अतः स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**जनता, बन्धुता।***

अञ्-

(८) अनुदात्तादेरञ्।४३।

प०वि०-अनुदात्तेः ५।१ अञ् १।१।

स०-अनुदात्त आदिर्यस्य सः-अनुदात्तादिः, तस्मात्-अनुदात्तादेः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तस्य, समूह इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य अनुदात्तादेः समूहोऽञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् अनुदात्तादेः प्रातिपदिकात् समूह इत्यस्मिन्नर्थेऽञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-कपोतानां समूहः कापोतम्। मयूराणां समूहो मायूरम्। तित्तिरीणां समूहस्तैत्तिरम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (अनुदात्तादेः) अनुदात्त आदि प्रातिपदिक से (समूहः) समूह अर्थ में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-कपोतानां **समूहः कापोतम्।** कबूतरों का समूह-कापोत। **मयूराणां समूहो मायूरम्।** मोरों का समूह-मायूर। **तित्तिरीणां समूहस्तैत्तिरम्।** तीतरों का समूह-तैत्तिर।*

*सिद्धि-**कापोतम्।** कपोत+आम्+अञ्। कापोत्+अ। कापोत+सु। कापोतम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, अनुदात्तादि 'कपोत' शब्द से समूह अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**मायूरम्, तैत्तिरम्।***

***विशेष**-कपोत और मयूर शब्द **'लघावन्ते द्वयोर्बह्वषो गुरुः'** (फिट्० २।१९) से मध्योदात्त हैं-कपोतः। मयूरः। ये मध्योदात्त होने से अनुदात्तादि हैं। **'कृगॄशॄ०'** (उणा० ४।१४३) यहां बहुवचन पाठ से 'तॄ' धातु से 'इ' प्रत्यय और वह कित् है। सन्वत् कार्य और अभ्यास को 'तुक्' आगम होता है। प्रत्यय-स्वर से **'तित्तिरिः'** शब्द अन्तोदात्त है, अन्तोदात्त होने से अनुदात्तादि है।*

अञ्-

(६) खण्डिकादिभ्यश्च।४४।

प०वि०-खण्डिका-आदिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-खण्डिका आदिर्येषां ते-खण्डिकादयः, तेभ्यः-खण्डिकादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तस्य, समूह इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य खण्डिकादिभ्यः समूहोऽञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः खण्डिकादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः समूह इत्यस्मिन्नर्थेऽञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-खण्डिकानां समूहः खाण्डिकम्। वडवानां समूहो वाडवम्।

खण्डिका। वडवा।। क्षुद्रकमालवात्सेनासंज्ञायाम्। भिक्षुक। शुक। उलूक। श्वन्। युग। अहन्। वरत्रा। हलबन्ध। इति खण्डिकादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (खण्डिकादिभ्यः) खण्डिका आदि प्रातिपदिकों से (च) भी (समूहः) समूह अर्थ में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**खण्डिकानां समूहः खाण्डिकम्।** खण्डिकाओं का समूह-खाण्डिक। खण्डिका=खांडा। **वडवानां समूहो वाडवम्।** वडवा=घोड़ियों का समूह-वाडव।*

*सिद्धि-**खाण्डिकम्।** खण्डिका+आम्+अञ्। खाण्डिक्+अ। खाण्डिक+सु। खाण्डिकम्।*

*यहां षष्ठीसमर्थ 'खण्डिका' शब्द से समूह अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**वाडवम्।***

धर्मवत्–

(१०) चरणेभ्यो धर्मवत्।४५।

प०वि०–चरणेभ्यः ५।३ धर्मवत् १।१। धर्मे इव इति धर्मवत् **'तत्र तस्येव'** (५।१।११५) इति सप्तम्यर्थे वतिः प्रत्ययः।

अनु०–तस्य, समूह इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य चरणेभ्यः समूहो धर्मवत्।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यश्चरणविशेषवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः समूह इत्यस्मिन्नर्थे धर्मवत् प्रत्यया भवन्ति।

'चरणेभ्यः' इति बहुवचननिर्देशाच्चरणविशेषवाचिनः कठादयः शब्दा गृह्यन्ते। **'गोत्रचरणाद् वुञ्'** (४।३।१२६) इत्यारभ्य प्रत्यया वक्ष्यन्ते। तत्रेदमुच्यते-'चरणाद् धर्माम्नाययोः' इति। तेनात्र 'धर्मवत्' इत्यतिदेशः (तुल्यताविधानम्) क्रियते।

उदा०–कठानां समूहः काठकम्। कालापानां समूहः कालापकम्। छन्दोगानां समूहश्छान्दोग्यम्। औक्थिकानां समूह औक्थिक्यम्। आथर्वणिकानां समूह आथर्वणम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (चरणेभ्यः) चरण-विशेषवाची प्रातिपदिकों से (समूहः) समूह अर्थ में (धर्मवत्) धर्म-अर्थ के समान प्रत्यय होते हैं। धर्म-अर्थ में जो प्रत्यय कहे गये हैं वे चरण-विशेषवाची शब्दों से समूह अर्थ में होते हैं।*

*यहां 'चरणेभ्यः' इस बहुवचन-निर्देश से चरण-विशेषवाची 'कठ' आदि शब्दों का ग्रहण किया जाता है। 'गोत्रचरणाद् वुञ्' (४।३।१२६) यहां से लेकर प्रत्ययों का कथन किया जायेगा। वहां यह कहा गया है कि **वा०- 'चरणाद् धर्माम्नययोरिष्यते'** (४।१।१२६) अर्थात् चरणविशेषवाची शब्दों से धर्म और आम्नाय अर्थ में 'वुञ्' प्रत्यय अभीष्ट है। वहां चरणविशेषवाची शब्दों से जो धर्म अर्थ में प्रत्यय कहे गये हैं वे इस सूत्र से समूह अर्थ में विधान किये गये हैं।*

***उदा०–कठानां समूहः काठकम्।** कठों का समूह-काठक। **कालापानां समूहः कालापकम्।** कलापों का समूह-कालापक। **छन्दोगानां समूहश्छान्दोग्यम्।** छन्दोगों का*

*समूह-छान्दोग्य। **औक्थिकानां समूह औक्थिक्यम्।** औक्थिकों का समूह-औक्थिक। **आथर्वणिकानां समूह आथर्वणम्।** आथर्वणिकों का समूह-आथर्वण।*

***सिद्धि-(१) काठकम्।** कठ+आम्+वुञ्। काठ्+अक। काठक+सु। काठकम्।*

*यहां षष्ठीसमर्थ, चरणविशेषवाची 'कठ' शब्द से प्रथम **'गोत्रचरणाद् वुञ्'** (४।३।१२६) से धर्म अर्थ में 'वुञ्' प्रत्यय का विधान किया गया है। इस सूत्र से चरणविशेषवाची शब्दों से समूह अर्थ में 'धर्मवत्' प्रत्ययों का विधान किया गया है, अतः यहां धर्मवत् 'वुञ्' प्रत्यय होता है।*

*(२) **छान्दोग्यम्।** छन्दोग+आम्+ञ्य। छान्दोग्+य। छान्दोग्य+सु। छान्दोग्यम्।*

*यहां 'छन्दोग' शब्द से **'छन्दोगौक्थिकयाज्ञिकबह्वृचनटाञ्ञ्यः'** (४।३।१२९) से 'ञ्य' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**औक्थिक्यम्।***

*(३) **आथर्वणम्।** आथर्वणिक+आम्+अण्। आथर्वण्+अ। आथर्वण+सु। आथर्वणम्।*

*यहां 'आथर्वणिक' शब्द से **'आथर्वणिकस्येकलोपश्च'** (काशिका-४।३।१३३) से अण् प्रत्यय और 'इक' का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

***विशेष**-चरण शब्द वैदिक शाखा के आदि-प्रवर्तक का वाचक है। उस शाखा के अध्येताओं को भी उसी नाम से कहा जाता है।*

ठक्-

(११) अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्।४६।

प०वि०-अचित-हस्ति-धेनोः ५।१ ठक् १।१।

स०-न विद्यते चित्तं यस्मिँस्तत्-अचित्तम्। अचित्तं च हस्ती च धेनुश्च एतेषां समाहारः-अचित्तहस्तिधेनुः, तस्मात्-अचित्तहस्तिधेनोः (बहुव्रीहिगर्भितः समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, समूह इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य अचित्तहस्तिधेनोः समूहष्ठक्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् अचित्तवाचिनः प्रातिपदिकाद् हस्तिधेनुभ्यां च प्रातिपदिकाभ्यां समूह इत्यस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(अचितम्) अपूपानां समूह आपूपिकम्। शष्कुलीनां समूहः **शाष्कुलिकम्। (हस्ती)** हस्तिनां समूहो हास्तिकम्। **(धेनुः)** धेनूनां समूहो **धैनुकम्।**

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (अचित्तहस्तिधेनोः) अचित्त (जड़) वाची प्रातिपदिक तथा हस्ती और धेनु प्रातिपदिकों से (समूहः) समूह अर्थ में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(अचित्तम्) **अपूपानां समूह आपूपिकम्।** अपूप=पूड़ों का समूह-आपूपिक **शष्कुलीनां समूहः शाष्कुलिकम्।** शष्कुली=पूरियों का समूह-शाष्कुलिक। (हस्ती) **हस्तिनां समूहो हास्तिकम्।** हाथियों का समूह-हास्तिक। (धेनुः) **धेनूनां समूहो धैनुकम्।** दुधारू गायों का समूह-धैनुक।*

सिद्धि-(१) आपूपिकम्। *अपूप+आम्+ठक्। आपूप्+इक। आपूपिक+सु। आपूपिकम्।*

*यहां षष्ठीसमर्थ, अचित्त (जड़) वाची 'अपूप' शब्द से समूह अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। **'ठस्येकः'** (७।३।५०) से 'ठ्' स्थान में 'इक्' आदेश और **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**शाष्कुलिकम्।***

*(२) **हास्तिकम्।** हस्तिन्+आम्+ठक्। हास्त्+इक। हास्तिक+सु। हास्तिकम्।*

*यहां 'हस्तिन्' शब्द से 'ठक्' प्रत्यय और **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से हस्तिन् के टि-भाग (इन्) का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **धैनुकम्।** धेनु+आम्+ठक्। धैनु+क। धैनुक+सु। धैनुकम्।*

*यहां 'धेनु' शब्द से 'ठक्' प्रत्यय और **'इसुसुक्तान्तात् कः'** (७।३।५१) से 'ठ्' के स्थान में 'क्' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

यञ्+छः-

(१२) केशाश्वाभ्यां यञ्छावन्यतरस्याम्।४७।

प०वि०-केश-अश्वाभ्याम् ५।२ यञ्छौ १।२ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-केशश्च अश्वश्च तौ केशाश्वौ, ताभ्याम्-**केशाश्वाभ्याम्** (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। यञ् च छश्च तौ-यञ्छौ **(इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।**

अनु०-तस्य, समूह इति चानुवतति।

अन्वयः-तस्य केशाश्वाभ्यां समूहोऽन्यतरस्यां यञ्छौ।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां समूह इत्यस्मिन्नर्थे यथासंख्यं विकल्पेन यञ्छौ प्रत्ययौ भवतः, पक्षे च यथाप्राप्तं प्रत्ययो भवति।

उदा०-(केश:) केशानां समूह: कैश्यम्, कैशिकं वा। **(अश्व:)** अश्वानां समूहोऽश्वीयम्, आश्वं वा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (केशाश्वाभ्याम्) केश और अश्व प्रातिपदिकों से (समूह:) समूह अर्थ में यथासंख्य (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (यञ्छौ) यञ् और छ प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-(केश) ***केशानां समूह: कैश्यम्, कैशिकं वा।*** *केश=बालों का समूह-कैश्य वा कैशिक। (अश्व)* ***अश्वानां समूहोऽश्वीयम्, आश्वं वा।*** *अश्व=घोड़ों का समूह-अश्वीय वा आश्व।*

सिद्धि-(१) ***कैश्यम्।*** *केश+आम्+यञ्। कैश्+य। कैश्य+सु। कैश्यम्।*

यहां षष्ठीसमर्थ 'केश' शब्द से समूह अर्थ में इस सूत्र से 'यञ्' प्रत्यय है। ***'तद्धितेष्वचामादे:'*** *(७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और* ***'यस्येति च'*** *(६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

(२) ***कैशिकम्।*** *यहां 'केश' शब्द से* ***'अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्'*** *(४।२।४७) से अचित्त लक्षण 'ठक्' प्रत्यय है।* ***'किति च'*** *(७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि होती है।*

(३) ***अश्वीयम्।*** *अश्व+आम्+छ। अश्व्+ईय। अश्वीय+सु। अश्वीयम्।*

यहां षष्ठीसमर्थ 'अश्व' शब्द से समूह अर्थ में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। ***'आयनेय०'*** *(७।१।२) से छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है।*

(४) ***आश्वम्।*** *यहां षष्ठीसमर्थ 'अश्व' शब्द से* ***'प्राग्दीव्यतोऽण्'*** *(४।१।८३) से उत्सर्ग 'अण्' प्रत्यय होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अकार का लोप होता है।*

यः—

(१३) पाशादिभ्यो यः।४८।

प०वि०-पाश-आदिभ्य: ५।३ य: १।१।

स०-पाश आदिर्येषां ते पाशादय:, तेभ्य: पाशादिभ्य: (बहुव्रीहि:)।

अनु०-तस्य, समूह इति चानुवर्तते।

अन्वय:-तस्य पाशादिभ्य: समूहो य:।

अर्थ:-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्य: पाशादिभ्य: प्रातिपदिकेभ्य: समूह इत्यस्मिन्नर्थे य: प्रत्ययो भवति।

उदा०-पाशानां समूह: पाश्या। तृणानां समूहस्तृण्या। वातानां समूहो वात्या।

पाश। तृण। धूम। वात। अङ्गार। पोत। बालक। पिटक। पाटक। शकट। हल। नड। वन। पाटलका। गल। इति पाशादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (पाशादिभ्यः) पाश आदि प्रातिपदिकों से (समूहः) समूह अर्थ में (यः) य प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**पाशानां समूहः पाश्या।** पाश-बेड़ियों का समूह-पाश्या। **तृणानां समूहस्तृण्या।** तिनकों का समूह-तृण्या। **वातानां समूहो वात्या।** वात=हवाओं का समूह-वात्या। आंधी।*

सिद्धि-पाश्या। *पाश+आम्+य। पाश्+य। पाश्य+टाप्। पाश्य+आ। पाश्या+सु। पाश्या।*

*यहां षष्ठीसमर्थ 'पाश' शब्द से समूह अर्थ में इस सूत्र से 'यः' प्रत्यय है। **'यप्रत्ययान्तं स्वभावतः स्त्रीलिङ्गम्'** (पदमञ्जरी)। य-प्रत्ययान्त शब्द स्वभावतः स्त्रीलिङ्ग होता है। यहां स्त्रीत्व की विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-तृण्या, वात्या आदि।*

यः—

(१४) खलगोरथात्।४६।

प०वि०-खल-गो-रथात् ५।१।

स०-खलश्च गौश्च रथश्च एतेषां समाहारः खलगोरथम्, तस्मात्-खलगोरथात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, समूह इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य खलगोरथात् समूहो यः।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः खलगोरथेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः समूह इत्यस्मिन्नर्थे यः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(खलः) खलानां समूहः खल्या। **(गौः)** गवां समूहो गव्या। **(रथः)** रथानां समूहो रथ्या।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (खलगोरथात्) खल, गौ, रथ प्रातिपदिकों से (समूहः) समूह अर्थ में (यः) य प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(खल) **खलानां समूहः खल्या।** खल=दुष्टों अथवा खलिहानों का समूह-खल्या। (गौ) **गवां समूहो गव्या।** गौओं का समूह-गव्या। (रथ) **रथानां समूहो रथ्या।** रथों का समूह-रथ्या।*

इनिः+त्रः+कट्यच्–

(१५) इनित्रकट्यचश्च ।५०।

प०वि०-इनि-त्र-कट्यच: १ ।३ च अव्ययपदम् ।

स०-इनिश्च त्रश्च कट्यच् च ते-इनित्रकट्यच: (इतरेतरयोगद्वन्द्वः) ।

अनु०-तस्य, समूह:, खलगोरथाद् इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-तस्य खलगोरथात् समूह इनित्रकट्यचश्च ।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः खलगोरथेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः समूह इत्यस्मिन्नर्थे यथासंख्यम् इनित्रकट्यचश्च प्रत्यया भवन्ति ।

उदा०-**(खलः)** खलानां समूहः खलिनी । **(गौः)** गवां समूहो गोत्रा । **(रथः)** रथानां समूहो रथकट्या ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (खलगोरथात्) खल, गो, रथ प्रातिपदिकों से (समूहः) समूह अर्थ में यथासंख्य (इनित्रकट्यचः) इनि, त्र, कट्यच् प्रत्यय (च) भी होते हैं।*

उदा०-(खल) ***खलानां समूहः खलिनी।*** *खल=दुष्टों अथवा खलिहानों का समूह-खलिनी। (गौ)* ***गवां समूहो गोत्रा।*** *गायों का समूह-गोत्रा। (रथ)* ***रथानां समूहो रथकट्या।*** *रथों का समूह-रथकट्या।*

सिद्धि-(१) खलिनी। *खल+आम्+इनि। खल्+इन्। खलिन्+ङीप्। खलिनी+सु। खलिनी।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'खल' शब्द से समूह अर्थ में इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय हैं। ***'एतेऽपि प्रत्ययाः स्वभावतः स्त्रियामेव'*** *(पदमञ्जरी)। ये 'इनि' आदि प्रत्यय भी स्वभावतः स्त्रीलिङ्ग में ही होते हैं। अतः यहां स्त्रीत्व-विवक्षा में* ***'ऋन्नेभ्यो ङीप्'*** *(४।१।५) से ङीप् प्रत्यय होता है।*

(२) गोत्रा। *गो+आम्+त्र। गोत्र+टाप्। गोत्रा+सु। गोत्रा।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'गो' शब्द से समूह अर्थ में 'त्र' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में ***'अजाद्यतष्टाप्'*** *(४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है।*

(३) रथकट्या। *रथ+आम्+कट्यच्। रथकट्य+टाप्। रथकट्या+सु। रथकट्या।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'रथ' शब्द से समूह अर्थ में इस सूत्र से 'कट्यच्' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में पूर्ववत् 'टाप्' प्रत्यय होता है।

विषयार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः--

(१) विषयो देशे।५१।

प०वि०-विषयः १।१ देशे ७।१।

अनु०-तस्य इत्यनुवर्तते, समूह इति निवृत्तम्।

अन्वयः-तस्य षष्ठीसमर्थाद् विषयो यथाविहितं प्रत्ययो देशे।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् विषय इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, योऽसौ विषयो देशश्चेत् स भवति।

विषयशब्दोऽयं बह्वर्थः। क्वचिद् ग्रामसमुदाये वर्तते-विषयो लब्ध इति। क्वचिन्दिन्द्रियग्राह्ये वर्तते-चक्षुर्विषयो रूपमिति। क्वचिदत्यन्तशीलिते ज्ञेये वर्तते-देवदत्तस्य विषयो व्याकरणमिति। तत्र ग्रामसमुदायप्रतिपत्त्यर्थं सूत्रे देशग्रहणं क्रियते।

उदा०-शिबीनां विषयो देशः शैबः। उष्ट्राणां विषयो देश औष्ट्रः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तस्य) षष्ठी-समर्थ प्रातिपदिक से (विषयः) विषय अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (देशे) जो विषय है यदि वह देश हो।*

विषय शब्द बहु-अर्थक है। कहीं ग्राम-समुदाय अर्थ में है- ***'विषयो लब्धः'*** *अपना देश प्राप्त होगया। कहीं इन्द्रिय-ग्राह्य अर्थ में है-* ***'चक्षुर्विषयो रूपम्'*** *चक्षु का विषय रूप है। कहीं अत्यन्त अभ्यस्त ज्ञेय अर्थ में है-* ***'देवदत्तस्य विषयो व्याकरणम्'*** *देवदत्त का अत्यन्त अभ्यस्त व्याकरणशास्त्र है। उनमें से देश=ग्राम-समुदाय अर्थ का ग्रहण करने के लिये सूत्र में 'देशे' पद का पाठ किया गया है।*

उदा०- ***शिबीनां विषयो देशः शैबः।*** *शिबि=राजा उशीनर के पुत्र तथा ययाति के दौहित्र का देश-शैब।* ***उष्ट्राणां विषयो देशः औष्ट्रः।*** *ऊंटों का देश-औष्ट्र, रेगिस्तान।*

सिद्धि-शैबः। *शिबि+आम्+अण्। शैब्+अ। शैब+सु। शैबः।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'शिबि' शब्द से विषय (देश) अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है। यहां ***'प्राग्दीव्यतोऽण्'*** *(४।१।८३) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय है।* ***'तद्धितेष्वचामादेः'*** *(७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और* ***'यस्येति च'*** *(६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही 'उष्ट्र' शब्द से-* ***औष्ट्रः।***

वुञ्–

(२) राजन्यादिभ्यो वुञ्।५२।

प०वि०–राजन्य-आदिभ्य: ५।३ वुञ् १।१।

स०–राजन्य आदिर्येषां ते–राजन्यादय:, तेभ्य:–राजन्यादिभ्य: (बहुव्रीहि:)।

अनु०–तस्य, विषय:, देशे इति चानुवर्तते।

अन्वय:–तस्य राजन्यादिभ्यो विषयो वुञ् देशे।

अर्थ:–तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो राजन्यादिभ्य: प्रातिपदिकेभ्यो विषय इत्यस्मिन्नर्थे वुञ् प्रत्ययो भवति, योऽसौ विषयो देशश्चेत् स भवति।

उदा०–राजन्यानां विषयो देशो राजन्यक:। देवयानानां विषयो देशो दैवयानक:।

राजन्य। देवयान। शालङ्कायन। जालन्धरायण। आत्मकामेय। अम्बरीषपुत्र। वसाति। वैल्वान। शैलूष। उदुम्बुर। बैल्वबल। आर्जुनायन। संप्रिय। दाक्षि। ऊर्णनाभ। आप्रीत। अव्रीड। वैतिल। वात्रक। इति राजन्यादय:। आकृतिगणोऽयम्।

आर्यभाषा: *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (राजन्यादिभ्य:) राजन्य आदि प्रातिपदिकों से (विषय:) विषय अर्थ में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है (देशे) जो विषय है यदि वह देश हो।*

*उदा०-**राजन्यानां विषयो देशो राजन्यक:।** राजन्य=क्षत्रियों का देश-राजन्यक। **देवयानानां विषयो देशो दैवयानक:।** देवयानजनों का देश–दैवयानक।*

सिद्धि-राजन्यक:। राजन्य+आम्+वुञ्। राजन्य्+अक। राजन्यक+सु। राजन्यक:।

*यहां षष्ठीसमर्थ 'राजन्य' शब्द से विषय (देश) अर्थ में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है। **'तद्धितेष्वचामादे:'** (७।२।११७) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही 'देवयान' शब्द से-**दैवयानक:।***

विधल्+भक्तल्–

(३) भौरिक्याद्यैषुकार्यादिभ्यो विधल्भक्तलौ।५३।

प०वि०–भौरिक्यादि-ऐषुकार्यादिभ्य: ५।३ विधल्-भक्तलौ १।२।

स०-भौरिकिरादिर्येषां ते-भौरिक्यादयः। ऐषुकारिरादिर्येषां ते-ऐषुकार्यादयः। भौरिक्यादयश्च ऐषुकार्यादयश्च ते-भौरिक्याद्यैषुकार्यादयः, तेभ्यः-भौरिक्याद्यैषुकार्यादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। विधल् च भक्तल् च तौ-विधल्भक्तलौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, विषयः, देशे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य भौरिक्याद्यैषुकार्यादिभ्यो विषयो विधल्भक्तलौ देशे।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो भौरिक्यादिभ्य ऐषुकार्यादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो विषय इत्यस्मिन्नर्थे यथासंख्यं विधल्भक्तलौ प्रत्ययौ भवतः, योऽसौ विषयो देशश्चेत् स भवति।

उदा०-**(भौरिक्यादिः)** भौरिकीणां विषयो देशो भौरिकिविधः। वैपेयानां विषयो देशो वैपेयविधः। **(ऐषुकार्यादिः)** ऐषुकारीणां विषयो देश ऐषुकारिभक्तः। सारस्यायनानां विषयो देशः सारस्यायनभक्तः।

भौरिकि। भौलिकि। वैपेय। चैटयत। काणेय। वाणिजक। कालिज। वालिज्यक। शैकयत। वैकयत। इति भौरिक्यादयः।।

ऐषुकारि। सारस्यायन। चान्द्रायण। द्व्याक्षायण। त्र्यायण। औडायन। जौडायन। खाडायन। सौवीर। दासमित्रि। दासमित्रायण। शौद्रायण। दाक्षायण। शयण्ड। ताक्ष्यायिण। शौभ्रायण। सायण्डि। शौण्डि। वैश्वमाणव। वैश्वधेनव। नद। तुण्डदेव। अलायत। औलालायत। शौण्ड। शयाण्ड। वैश्वदेव। इत्यैषुकार्य्यादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (भौरिक्यादि-ऐषुकार्यादिभ्यः) भौरिकि आदि और ऐषुकारि आदि प्रातिपदिकों से (विषयः) विषय अर्थ में यथासंख्य (विधल्भक्तलौ) विधल् और भक्तल् प्रत्यय होते हैं (देशे) जो विषय है यदि वह देश हो।*

*उदा०-(भौरिक्यादिः) **भौरिकीणां विषयो देशो भौरिकिविधः।** भौरिकि जनों का देश-भौरिकिविध। **वैपेयानां विषयो देशो वैपेयविधः।** वैपायन जनों का देश-वैपायनविध। (ऐषुकार्यादिः) **ऐषुकारीणां विषयो देश ऐषुकारिभक्तः।** ऐषुकारि जनों का देश-ऐषुकारिभक्त। **सारस्यायनानां विषयो देशः सारस्यायनभक्तः।** सारस्यायन जनों का देश-सारस्यायभक्त।*

सिद्धि-भौरिकिविधः। *भौरिकि+आम्+विधल्। भौरिकिविध+सु। भौरिकिविधः।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'भौरिकि' शब्द से विषय (देश) अर्थ में इस सूत्र से 'विधल्' प्रत्यय है। ऐसे ही-वैपायनविधः, ऐषुकारिभक्तः, सारस्यायनभक्तः।

__विशेष__-(१) वैजयन्ती कोश (पृष्ठ ३७) के अनुसार बंगाल का समतट (दक्षिणी बंगाल) प्रदेश 'भौरिक' कहलाता था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृष्ठ ७६)।

(२) कुरु जनपद में इसुकार या इषुकार नामक समृद्ध, सुन्दर और स्फीत नगर था (भण्डारकर लेखसूची, संख्या ३२९) उसी प्रकार हिसार का प्राचीन नाम 'ऐषुकारि' ज्ञात होता है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृष्ठ ८६)।

अस्य (प्रगाथस्य) अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः-

(१) सोऽस्यादिरितिच्छन्दसः प्रगाथेषु।५४।

प०वि०-सः १।१ अस्य ६।१ आदिः ५।१ इति अव्ययपदम्, छन्दसः ६।१ प्रगाथेषु ७।३।

अन्वयः-स प्रथमासमर्थाद् अस्य यथाविहितम्, यत् प्रथमासमर्थं छन्दस आदिरिति, यदस्येति प्रगाथश्चेत्।

अर्थः-स इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्य इति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं छन्दस आदिरिति भवति, यच्च अस्य इति निर्दिष्टं प्रगाथश्चेत् स भवति। इतिकरणो विवक्षार्थः।

प्रगाथशब्दः क्रियानिमित्तकः, क्वचिदेव मन्त्रविशेषे वर्तते। यत्र द्वे ऋचौ प्रग्रथनेन तिस्रः क्रियन्ते स प्रग्रथनात् प्रकर्षगानाद् वा प्रगाथ इति कथ्यते।

उदा०-पङ्क्तिश्छन्द आदिरस्य प्रगाथस्य इति-पाङ्क्तः प्रगाथः। अनुष्टुप् छन्द आदिरस्य प्रगाथस्य इति-आनुष्टुभः प्रगाथः। जगती छन्द आदिरस्य प्रगाथस्य इति-जागतः प्रगाथः।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(सः) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी विभक्ति के अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (छन्दस आदिः) जो प्रथमा विभक्ति से निर्दिष्ट पद है यदि वह छन्द का आदि हो (प्रगाथेषु) जो 'अस्य' षष्ठी-विभक्ति का अर्थ कहा है यदि वह प्रगाथ हो (इति) __इतिकरण__ विवक्षा के लिये हैं, जहां ऐसी विवक्षा होती है, वहीं यह प्रत्यय विधि की जाती है, सर्वत्र नहीं।

जहां दो ऋचाओं के प्रग्रथन (गूंथन) से तीन ऋचाएं बनाई जाती हैं, उसे 'प्रगाथ' कहते हैं। प्रकृष्ट गान के कारण भी इसे 'प्रगाथ' कहा जाता है।

*उदा०-पङ्क्तिश्छन्द **आदिरस्य प्रगाथस्य** इति-**पाङ्क्तः** प्रगाथः। पंक्ति छन्द है आदि में इस प्रगाथ के यह-पाङ्क्त प्रगाथ। अनुष्टुप् छन्द **आदिरस्य प्रगाथस्य** इति-**आनुष्टुभः** प्रगाथः। अनुष्टुप् छन्द आदि में है इस प्रगाथ के यह-आनुष्टुभ प्रगाथ। जगती छन्द **आदिरस्य प्रगाथस्य** इति-**जागतः** प्रगाथः। जगती छन्द आदि में है इसके यह-जागत प्रगाथ।*

*सिद्धि-**पाङ्क्तः**। पङ्क्ति+सु+अण्। पङ्क्त्+अ। पाङ्क्त+सु। पाङ्क्तः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, छन्दोवाची 'पङ्क्ति' शब्द से षष्ठी-विभक्ति (प्रगाथ) के अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है। 'प्राग्दीव्यतोऽण्' (४।१।८३) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय है। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-**आनुष्टुभः**, **जागतः**।*

अस्य (संग्रामस्य) अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः-

(१) संग्रामे प्रयोजनयोद्धृभ्यः।५५।

प०वि०-संग्रामे ७।१ प्रयोजन-योद्धृभ्यः ५।३।

स०-प्रयोजनं च योद्धारश्च ते-प्रयोजनयोद्धारः, तेभ्यः-प्रयोजन-योद्धृभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-स, अस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-स प्रयोजनयोद्धृभ्योऽस्य यथाविहितं प्रत्ययः संग्रामे।

अर्थः-स इति प्रथमासमर्थेभ्यः प्रयोजनवाचिभ्यो योद्धृवाचिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्योऽस्य इति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, संग्रामेऽभिधेये।

उदा०-(**प्रयोजनम्**) भद्रा प्रयोजनम् अस्य संग्रामस्य इति भाद्रः संग्रामः। सुभद्रा प्रयोजनम् अस्य संग्रामस्य इति सौभद्रः संग्रामः। गौरिमित्री प्रयोजनम् अस्य संग्रामस्य इति गौरिमित्रः संग्रामः। (**योद्धारः**) अहिमाला योद्धारोऽस्य संग्रामस्य इति आहिमालः संग्रामः। स्यन्दनाश्वा योद्धारोऽस्य संग्रामस्य इति स्यान्दनाश्वः संग्रामः। भरता योद्धारोऽस्य इति भारतः संग्रामः।

__आर्यभाषाः__ __अर्थ__-(सः) प्रथमा-समर्थ (प्रयोजनयोद्धृभ्यः) प्रयोजनवाची और योद्धृवाची प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (संग्रामे) यदि वहां संग्राम अर्थ वाच्य हो।

उदा०-(प्रयोजन) __भद्रा प्रयोजनम् अस्य संग्रामस्य इति भाद्रः संग्रामः।__ भद्रा कन्या को प्राप्त करना इसका प्रयोजन है यह-भाद्र संग्राम। __सुभद्रा प्रयोजनम् अस्य संग्रामस्य इति सौभद्रः संग्रामः।__ सुभद्रा कन्या को प्राप्त इसका प्रयोजन है यह-सौभद्र संग्राम। __गौरिमित्री प्रयोजनम् अस्य संग्रामस्य इति गौरिमित्रः संग्रामः।__ गौरिमित्री कन्या को प्राप्त करना इसका प्रयोजन है वह-गौरिमित्र संग्राम। (योद्धा) __अहिमाला योद्धारोऽस्य संग्रामस्य इति आहिमालः संग्रामः।__ अहिमाल नामक योद्धा है इसके यह-अहिमाल संग्राम। __स्यन्दनाश्वा योद्धारोऽस्य संग्रामस्य इति स्यान्दनाश्वः संग्रामः।__ रथ-घोड़े योद्धा हैं इसके यह-स्यान्दनाश्व संग्राम। __भरता योद्धारोऽस्य इति भारतः संग्रामः।__ भरत लोग योद्धा हैं इसके वह-भारत संग्रामः (महाभारत युद्ध)।

__सिद्धि-भाद्रः।__ भद्रा+सु+अण्। भाद्र्+अ। भाद्र+सु। भाद्रः।

यहां प्रथमा-समर्थ 'भद्रा' शब्द से षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में तथा संग्राम अभिधेय में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है। यहां __'प्राग्दीव्यतोऽण्'__ (४।१।८३) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय है। __'तद्धितेष्वचामादेः'__ (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और __'यस्येति च'__ (६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही-__सौभद्रः__ आदि।

अस्याम् (क्रीडायाम्) अर्थप्रत्ययविधिः

णः—

(१) तदस्यां प्रहरणमिति क्रीडायां णः।५६।

प०वि०-तद् १।१ अस्याम् ७।१ प्रहरणम् १।१ इति अव्ययपदम्, क्रीडायाम् ७।१ णः १।१।

अन्वयः-तदिति प्रथमा-समर्थाद् अस्यां णः, यत् तदिति प्रहरणमिति चेत्, यदस्यामिति क्रीडा चेत्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्यामिति सप्तम्यर्थे णः प्रत्ययो भवति, यत् तदिति निर्दिष्टं प्रहरणमिति चेत्, यच्चास्यामिति निर्दिष्टं क्रीडा चेत् सा भवति। इतिकरणो विवक्षार्थः।

उदा०-दण्डः प्रहरणम् अस्यां सा-दाण्डा क्रीडा। मुष्टिः प्रहरणम् अस्यां सा-मौष्टा क्रीडा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तद्) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्याम्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (णः) ण प्रत्यय होता है (प्रहरणम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह प्रहरण हो (क्रीडायाम्) और जो सप्तमी-अर्थ है यदि वह क्रीडा हो (इति) इति-करण विवक्षा के लिये है, जहां ऐसी विवक्षा होती है वहीं यह प्रत्ययविधि की जाती है; सर्वत्र नहीं।*

*उदा०-दण्डः प्रहरणम् अस्यां सा-दाण्डा क्रीडा। इसमें दण्ड प्रहार होता है यह दाण्डा क्रीडा (पट्टे का खेल)। **मुष्टिः प्रहरणम् अस्यां सा-मौष्टा क्रीडा।** इसमें मुष्टि प्रहार होता है यह-मौष्टा क्रीडा (जुडो-कराटे)।*

सिद्धि-दाण्डा। *दण्ड+सु+ण। दाण्ड्+अ। दाण्ड+टाप्। दाण्डा+सु। दाण्डा।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, प्रहरणवाची 'दण्ड' शब्द से सप्तमी-विभक्ति (क्रीडा) के अर्थ में इस सूत्र से 'ण' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। ऐसी-मौष्टा क्रीडा।*

अस्याम् (क्रियायाम्) अर्थप्रत्ययविधिः

ञः-

(१) घञः साऽस्यां क्रियेति ञः।५७।

प०वि०-घञः ६।१ सा १।१ अस्याम् ७।१ क्रिया १।१ इति अव्ययपदम्, ञः १।१।

अन्वयः-सा इति प्रथमासमर्थाद् घञोऽस्यां ञः, यत् प्रथमासमर्थं क्रिया इति।

अर्थः-सा इति प्रथमासमर्थाद् घञन्तात् प्रातिपदिकाद् अस्यामिति सप्तम्यर्थे ञः प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं क्रियेति चेद् भवति। इति करणो विवक्षार्थः।

उदा०-श्येनपातोऽस्यां क्रियायां वर्तते सा-श्येनम्पाता क्रिया। तैलपातोऽस्यां क्रियायां वर्तते सा-तैलम्पाता क्रिया।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सा) प्रथमा-समर्थ (घञः) घञ्-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से (अस्याम्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (ञः) ञ प्रत्यय होता है (क्रिया) जो सप्तमी-अर्थ है यदि वह क्रिया हो (इति) इतिकरण विवक्षा के लिये है। जहां ऐसी विवक्षा होती वहीं यह प्रत्यय विधि होती है, सर्वत्र नहीं।*

*उदा०-**श्येनपातोऽस्यां क्रियायां वर्तते सा-श्येनम्पाता क्रिया।** इस क्रिया में श्येन (बाज) पक्षी का पतन होता है यह-श्येनम्पाता क्रिया। श्येन पक्षी के पतन के समान क्रिया*

*का शीघ्र करना। **तैलपातोऽस्यां क्रियायां वर्तते सा-तैलम्पाता क्रिया।** इस क्रिया में तैल का पतन होता है वह-तैलम्पाता क्रिया। तैल डालने के समान क्रिया का धीरे-धीरे करना।*

*सिद्धि-**श्येनम्पाता।** श्येन्+पत्+घञ्। श्येन+पात्+अ। श्येनम्पात+सु+ञ। श्येन+मुम्+पात्+अ। श्येन+म्+पात्+अ। श्येनम्पात+टाप्। श्येनम्पाता+सु। श्येनम्पाता।*

*यहां प्रथम 'श्येन' उपपद **'पतॢ गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से **'भावे'** (३।३।१८) से भाव अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय होता है। तत्पश्चात् प्रथमा-समर्थ घञन्त 'श्येनपात' शब्द से सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में इस सूत्र से 'ञ' प्रत्यय है। **'श्येनतिलस्य पाते ञ:'** (६।३।८) से 'मुम्' आगम होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**तैलम्पाता क्रिया।***

अधीते-वेद-अर्थप्रत्ययप्रकरणम्

यथाविहितं प्रत्ययः–

(१) तदधीते तद् वेद।५८।

प०वि०-तद् २।१ अधीते क्रियापदम्, तद् २।१ वेद क्रियापदम्।

अन्वयः-तद् द्वितीयासमर्थाद् अधीते, वेद यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अधीते, वेद इत्येतयोरर्थयोर्यथाविहितं प्रत्ययो भवति।

उदा०-व्याकरणमधीते वेद वा वैयाकरणः। छन्दोऽधीते वेद वा छान्दसः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तद्) द्वितीया-समर्थ प्रातिपदिक से (अधीते, वेद) पढ़ता है वा जानता है अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**व्याकरणमधीते वेद वा वैयाकरणः।** जो व्याकरण पढ़ता है वा जानता है वह-वैयाकरण। **छन्दोऽधीते वेद वा छान्दसः।** जो छन्दःशास्त्र पढ़ता है वा जानता है वह-छान्दस।*

*सिद्धि-(१) **वैयाकरणः।** व्याकरण+अम्+अण्। व्ऐयाकरण+अ। वैयाकरण+सु। वैयाकरणः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'व्याकरण' शब्द से अधीते, वेद इन दो अर्थों में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है। अतः **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय है। **'न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्'** (७।३।३) से प्राप्त आदिवृद्धि का प्रतिषेध और 'य्' से पूर्व 'ऐ' का आगम होता है।*

(२) छान्दसः। यहां द्वितीया-समर्थ 'छान्दस्' शब्द से पूर्ववत् यथाविहित 'अण्' प्रत्यय है। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है।

*विशेष-अधीते और वेद इन दोनों अर्थों का निर्देश क्यों किया गया है ? इस विषय में महाभाष्य में लिखा है- **'किमर्थमिमावुभावर्थौ निर्दिश्येते, न योऽधीते वेत्त्यसौ, यस्तु वेत्त्यधीतेऽप्यसौ। नैतयोरावश्यकः समावेशः। भवति हि कश्चित् सम्पाठं पठति, न च वेत्ति, कश्चिच्च वेत्ति न च सम्पाठं पठति'** (महा० ४।२।५९)। अर्थ-अधीते, वेद इन दोनों का निर्देश क्यों किया है ? क्या ऐसा नहीं है कि जो पढ़ता है वह जानता है और जो जानता है वह पढ़ता भी है ? इन दोनों का समावेश नहीं है क्योंकि ऐसा होता है कि कोई ठीक-ठीक पढ़ता है किन्तु उसे समझता नहीं है और कोई समझता तो है किन्तु उसे ठीक-ठीक पढ़ता नहीं है। अतः यहां जो ठीक-ठीक पढ़ता है उसके लिये **'अधीते'** और जो उसे समझता है उसके लिये 'वेद' पद का निर्देश किया गया है।*

ठक्-

(२) क्रतूक्थादिसूत्रान्ताट् ठक्।५६।

प०वि०-क्रतु-उक्थादि-सूत्रान्तात् ५।१ ठक् १।१।

स०-उक्थ आदिर्येषां ते उक्थादयः, सूत्रमन्ते येषां ते-सूत्रान्ताः। क्रतवश्च उक्थादयश्च सूत्रान्ताश्च एतेषां समाहारः-क्रतूक्थादिसूत्रान्तम्, तस्मात्-क्रतूक्थादिसूत्रान्तात् (बहुव्रीहिगर्भितसमाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तदधीते, तद्वेद इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्-क्रतूक्थादिसूत्रान्ताद् अधीते, वेद ठक्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थेभ्यः क्रतुविशेषवाचिभ्य उक्थादिभ्यः सूत्रान्तेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्योऽधीते, वेद इत्येतयोरर्थयोष्ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(क्रतुः) अग्निष्टोममधीते वेद वा आग्निष्टोमिकः। वाजपेयमधीते वेद वा वाजपेयिकः। **(उक्थादिः)** उक्थमधीते वेद वा औक्थिकः। लोकायतमधीते वेद वा लौकायतिकः। **(सूत्रान्तः)** वार्तिकसूत्रमधीते वेद वा वार्तिकसूत्रिकः। संग्रहसूत्रमधीते वेद वा सांग्रहसूत्रिकः।

उक्थ। लोकायत। न्याय। निमित्त। पुनरुक्त। निरुक्त। यज्ञ। चर्चा। धर्म। क्रमेतर। श्लक्षण। संहिता। पद। क्रम। संघात। वृत्ति।

संग्रह। गुणागुण। आयुर्वेद। द्विपदी-ज्योतिषि। अनुपद। अनुकल्प। अनुगुण। इत्युक्थादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तद्) द्वितीया-समर्थ (क्रतूक्थादिसूत्रान्तात्) क्रतु= यज्ञविशेषवाची, उक्थ आदि और सूत्रान्त प्रातिपदिकों से (अधीते, वेद) पढ़ता है वा जानता है अर्थ में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(क्रतुः) **अग्निष्टोममधीते वेद वा आग्निष्टोमिकः।** अग्निष्टोम नामक यज्ञविशेष को जो पढ़ता है वा जानता है वह-आग्निष्टोमिक। **वाजपेयमधीते वेद वा वाजपेयिकः।** वाजपेय नामक यज्ञविशेष को जो पढ़ता है वा जानता है वह-वाजपेयिक। (उक्थादिः) **उक्थमधीते वेद वा औक्थिकः।** उक्थ=सामलक्षणसम्बन्धी प्रातिशाख्य को जो पढ़ता है वा जानता है वह-औक्थिक। **लोकायतमधीते वेद वा लौकायतिकः।** लोकायत दर्शन को जो पढ़ता है वा जानता है वह-लौकायतिक। लोकायत=जो इस लोक के अतिरिक्त दूसरे लोक को नहीं मानता है अर्थात् चार्वाक-दर्शन को माननेवाला, नास्तिक। (सूत्रान्तः) **वार्तिकसूत्रमधीते वेद वा वार्तिकसूत्रिकः।** वार्तिकसूत्र को जो पढ़ता है वा जानता है वह-वार्तिकसूत्रिक। **संग्रहसूत्रमधीते वेद वा सांग्रहसूत्रिकः।** संग्रहसूत्र को जो पढ़ता है वा जानता है वह-सांग्रहसूत्रिक।*

*सिद्धि-**आग्निष्टोमिकः।** अग्निष्टोम+अम्+ठक्। अग्निष्टोम्+इक। आग्निष्टोमिक+सु। आग्निष्टोमिकः।*

*यहां द्वितीयासमर्थ, यज्ञविशेषवाची 'अग्निष्टोम' शब्द से अधीते, वेद अर्थ में इस सूत्र से ठक् प्रत्यय है। '**ठस्येकः**' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश होता है और '**किति च**' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**वाजपेयिकः** आदि।*

***विशेष**-उक्थ-भाष्य के आधार पर कैयट का कथन है कि सामवेद के एक लक्षण ग्रन्थ का नाम 'उक्थ' था। ऋग्वेद की उन ऋचाओं का चुनाव 'होता' (ऋत्विक्) द्वारा किसी एक विशेष अवसर पर होता था, शस्त्र कहलाता है। ऐसे ही उद्गाता द्वारा गेय सामों के संग्रह को 'उक्थ' कहते थे। उक्थों का निश्चय सामवेदीय चरणों की परिषदों का कर्त्तव्य था। उसके लिये जिस ग्रन्थ का निर्माण हुआ वह 'उक्थ' हुआ और उसे पढ़नेवाले लोग 'औक्थिक' कहे गये (पा०का० भारतवर्ष पृ० ३२८)।*

वुन्-

(३) क्रमादिभ्यो वुन्।६०।

प०वि०-क्रमादिभ्यः ५।३ वुन् १।१।

स०-क्रम आदिर्येषां ते-क्रमादयः, तेभ्यः-क्रमादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तदधीते, तद्वेद इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् क्रमादिभ्योऽधीते वेद वुन्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थेभ्यः क्रमादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽधीते, वेद इत्येतयोरर्थयोर्वुन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-क्रममधीते वेद वा क्रमकः। पदपाठमधीते वेद वा पदकः।

क्रम। पद। शिक्षा। मीमांसा। सामन्। इति क्रमादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तद्) द्वितीयासमर्थ (क्रमादिभ्यः) क्रम आदि प्रातिपदिकों से (अधीते, वेद) पढ़ता है वा जानता है अर्थ में (वुन्) वुन् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**क्रममधीते वेद वा क्रमकः।** वेद के क्रमपाठ को जो पढ़ता है वा जानता है वह-क्रमक। **पदपाठमधीते वेद वा पदकः।** वेद के पदपाठ को जो पढ़ता है वह जानता है वह-पदक।*

*सिद्धि-**क्रमकः।** क्रम+अम्+वुन्। क्रम्+अक। क्रमक+सु। क्रमकः।*

यहां द्वितीया-समर्थ 'क्रम' शब्द से अधीते, वेद अर्थ में इस सूत्र से 'वुन्' प्रत्यय है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है।

विशेष-*मन्त्रसंहिता के पदच्छेद को 'पदपाठ' कहते हैं और दो-दो पदों को क्रमशः मिलाकर जो पाठ किया जाता है वह 'क्रमपाठ' कहाता है। इसका एक उदाहरण यह है-*

संहितापाठ- *अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।*
होतारं रत्नधातमम्। (ऋ० १।१।१)।

पदपाठ- *अग्निम्। ईळे। पुरोऽहितम्। यज्ञस्य। देवम्। ऋत्विजम्। होतारम्। रत्नधातमम्।*

क्रमपाठ- *अग्निमीळे। ईळेपुरःऽहितम्। पुरःऽहितं यज्ञस्य। यज्ञस्य देवम्। देवम् ऋत्विजम्। ऋत्विजं होतारम्। होतारं रत्नधातमम्।*

इनिः-

(४) अनुब्राह्मणादिनिः।६१।

प०वि०-अनुब्राह्मणात् ५।१ इनिः १।१।

अनु०-तदधीते, तद्वेद इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् अनुब्राह्मणाद् अधीते वेद इनिः।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थाद् अनुब्राह्मणात् प्रातिपदिकादधीते, वेद इत्येतयोरर्थयोरिनिः प्रत्ययो भवति।

उदा०-अनुब्राह्मणमधीते वेद वा अनुब्राह्मणी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तद्) द्वितीया-समर्थ (अनुब्राह्मणात्) अनुब्राह्मण प्रातिपदिक से (अधीते, वेद) पढ़ता है वा जानता है अर्थ में (इनिः) इनि प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**अनुब्राह्मणमधीते वेद वा अनुब्राह्मणी।** जो अनुब्राह्मण नामक ग्रन्थविशेष को पढ़ता है वा जानता है वह अनुब्राह्मणी। अनुब्राह्मण=ब्राह्मण के सदृश ग्रन्थ।*

*सिद्धि-**अनुब्राह्मणी।** अनुब्राह्मण+अम्+इनि। अनुब्राह्मण्+इन्। अब्राह्मणिन्+सु। अनुब्राह्मणीन्+०। अनुब्राह्मणी।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'अनुब्राह्मण' शब्द से अधीते, वेद अर्थ में इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय है। **'सौ च'** (६।४।१३) से नकारान्त अंग की उपधा को दीर्घ, **'हल्ङ्याब्भ्यो०'** (६।१।६६) से सु-लोप और **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से नकार का लोप होता है।*

ठक्-

(५) वसन्तादिभ्यष्ठक्।६२।

प०वि०-वसन्तादिभ्यः ५।३ ठक् १।१।

स०-वसन्त आदिर्येषां ते-वसन्तादयः, तेभ्यः-वसन्तादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तदधीते, तद् वेद इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् वसन्तादिभ्योऽधीते, वेद ठक्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थेभ्यो वसन्तादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽधीते, वेद इत्येतयोरर्थयोष्ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-वसन्तसहचरितोऽयं ग्रन्थो वसन्तः, तमधीते वेद वा वासन्तिकः। वर्षामधीते वेद वा वार्षिकः।

वसन्तः। वर्षा। शरद्। हेमन्त। शिशिर। प्रथम। गुण। चरम। अनुगुण। अपर्वन्। अथर्वन् इति वसन्तादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तद्) द्वितीया-समर्थ (वसन्तादिभ्यः) वसन्त आदि प्रातिपदिकों से (अधीते, वेद) पढ़ता है वा जानता है अर्थ में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**वसन्तमधीते वेद वा वासन्तिकः ।** जिसमें वसन्त ऋतु का वर्णन है अथवा जो वसन्त ऋतु में पठनीय ग्रन्थ है जो उसको पढ़ता है वा जानता है वह-वासन्तिक। **वर्षामधीते वेद वा वार्षिकः ।** जिसमें वर्षाऋतु का वर्णन है अथवा जो वर्षाऋतु में पठनीय है जो उस ग्रन्थ को पढ़ता है वा जानता है वह-वार्षिक।*

प्रत्ययस्य लुक्–

(६) प्रोक्ताल्लुक् ।६३।

प०वि०-प्रोक्तात् ५।१ लुक् १।१।

अनु०-तदधीते, तद्वेद इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् प्रोक्तादधीते, वेद प्रत्ययस्य लुक्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थात् प्रोक्तप्रत्ययान्तात् प्रातिपदिकादधीते, वेद इत्येतयोरर्थयोर्विहितस्य प्रत्ययस्य लुग् भवति।

उदा०-पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयम्, तमधीते वेद वा पाणिनीयः । अपिशलिना प्रोक्तमापिशलम्, तमधीते वेद वाऽऽपिशलः ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तद्) द्वितीया-समर्थ (प्रोक्तात्) प्रोक्त-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से (अधीते, वेद) पढ़ता है वा जानता है अर्थ में विहित प्रत्यय का (लुक्) लोप होता है।*

*उदा०-**पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयम्, तमधीते वेद वा पाणिनीयः ।** पाणिनि के द्वारा प्रोक्त ग्रन्थ पाणिनीय कहाता है, जो उसे पढ़ता है वा जानता है वह-पाणिनीय। **अपिशलिना प्रोक्तमापिशलम्, तमधीते वेद वाऽऽपिशलः ।** अपिशलि के द्वारा प्रोक्त ग्रन्थ आपिशल कहाता है, जो उसे पढ़ता है वा जानता है वह आपिशल।*

*सिद्धि-(१) **पाणिनीयः ।** पाणिनि+टा+छ। पाणिन्+ईय। पाणिनीय+अम्+अण्। पाणिनीय+०। पाणिनीय+सु। पाणिनीयः।*

*यहां प्रथम तृतीयासमर्थ 'पाणिनि' शब्द से **'तेन प्रोक्तम्'** (४।३।१०१) से प्रोक्त अर्थ में यथाविहित 'वृद्धाच्छः' (४।२।११३) से 'छ' प्रत्यय होता है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है। प्रोक्तप्रत्ययान्त 'पाणिनीय' शब्द से **'तदधीते तद्वेद'** (४।२।५८) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय होता है। इस सूत्र से उस यथाविहित प्रत्यय का लुक् हो जाता है।*

*(२) **आपिशलः ।** अपिशल+टा+अण्। आपिशल्+अ। आपिशल+अम्+अण्। आपिशल+०। आपिशल+सु। आपिशलम्।*

यहां प्रथम तृतीयासमर्थ 'अपिशलि' शब्द से ***'इञश्च'*** *(४।२।१११) से प्रोक्त अर्थ में 'अण्' प्रत्यय होता है।* ***'तद्धितेष्वचामादेः'*** *(७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और* ***'यस्येति च'*** *(६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। तत्पश्चात् प्रोक्त-प्रत्ययान्त 'आपिशल' शब्द से* ***'तदधीते तद्वेद'*** *(४।२।५८) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय होता है। इस सूत्र से उस प्रत्यय का लुक् हो जाता है।*

प्रत्ययस्य लुक्–

(७) सूत्राच्च कोपधात्।६४।

प०वि०–सूत्रात् ५।१ च अव्ययपदम्, कोपधात् ५।१।

स०–क उपधायां यस्य सः-कोपधः, तस्मात्-कोपधात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०–तदधीते, तद्वेद, लुक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत् सूत्राच्च कोपधाद् अधीते, वेद प्रत्ययस्य लुक्।

अर्थः–तद् इति द्वितीयासमर्थात् सूत्रवाचिनः ककारोपधात् प्रातिपदिकादधीते, वेद इत्येतयोरर्थयोर्विहितस्य प्रत्ययस्य लुग् भवति।

उदा०–अष्टावध्यायाः परिमाणमस्य-अष्टकम् (पाणिनीयं सूत्रम्)। अष्टकमधीयते विदुर्वा-अष्टकाः। दशाध्यायाः परिमाणमस्य-दशकम् (वैयाघ्रपदीयं सूत्रम्)। दशकमधीयते विदुर्वा-दशकाः। त्रयोऽध्यायाः परिमाणमस्य त्रिकम् (काशकृत्स्नं सूत्रम्) त्रिकमधीयते विदुर्वा-त्रिकाः।

आर्यभाषाः अर्थ- *(तद्) द्वितीया-समर्थ (सूत्रात्) सूत्रवाची (कोपधात्) ककार-उपधावाले प्रातिप्रदिक से (च) भी (अधीते, वेद) पढ़ता है, जानता है अर्थ में विहित प्रत्यय का (लुक्) लोप होता है।*

उदा०– ***अष्टावध्यायाः परिमाणमस्य-अष्टकम् (पाणिनीयं सूत्रम्)। अष्टकमधीयते विदुर्वा-अष्टकाः।*** *आठ अध्याय हैं परिमाण इसका यह अष्टक (पाणिनीय सूत्र)। अष्टक को जो पढ़ते हैं या जानते हैं वे-'अष्टकाः'।* ***दशाध्यायाः परिमाणमस्य-दशकम् (वैयाघ्रपदीयं सूत्रम्)। दशकमधीयते विदुर्वा-दशकाः।*** *दश अध्याय इसका परिमाण है यह दशक (वैयाघ्रपदीय सूत्र) दशक को जो पढ़ते हैं वा जानते हैं वे-'दशकाः'।* ***त्रयोऽध्यायाः परिमाणमस्य त्रिकम् (काशकृत्स्नं सूत्रम्) त्रिकमधीयते विदुर्वा-त्रिकाः।*** *तीन अध्याय हैं परिमाण इसके यह-त्रिक (काशकृत्स्न सूत्र) जो त्रिक को पढ़ते हैं वा जानते हैं वे-'त्रिकाः'।*

सिद्धि-अष्टकाः। *अष्ट+जस्+कन्। अष्ट+क। अष्टक+अण्। अष्टक+०। अष्टक+जस्। अष्टकाः।*

यहां प्रथम प्रथमा-समर्थ 'अष्ट' शब्द से 'संख्याया अतिशदन्तायाः कन्' (५।१।२२) से परिमाण अर्थ में कन् प्रत्यय है। तत्पश्चात् द्वितीया-समर्थ, सूत्रवाची, ककारोपध 'अष्टक' शब्द से 'तदधीते तद् वेद' (४।२।५९) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय होता है, उसका इस सूत्र से लुक् हो जाता है। ऐसे ही-दशकाः, त्रिकाः।

तद्विषयत्वम्–

(८) छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि।६५।

प०वि०–छन्दोब्राह्मणानि १।३ च अव्ययपदम्, तद्विषयाणि १।३।

स०–छन्दांसि च ब्राह्मणानि च तानि छन्दोब्राह्मणानि (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। स (अधीते, वेद) विषयो येषां तानि तद्विषयाणि (बहुव्रीहिः)।

अनु०–प्रोक्ताद् इत्यनुवर्तते।

अर्थः–तद् इति द्वितीयासमर्थानि प्रोक्तप्रत्ययान्तानि छन्दोवाचीनि ब्राह्मणवाचीनि च शब्दरूपाणि, तद्विषयाणि=अधीते, वेद इत्यर्थविषयाणि भवन्ति। अन्यत्राभावकानि भवन्तीत्यर्थः।

विषयशब्दोऽयं बह्वर्थः। तद्विषयाणीत्यत्रान्यत्राभावेऽर्थे वर्तते। तद्यथा-मत्स्यानां विषयो जलमिति जलादन्यत्र तेषामभाव इत्यर्थः, तथा-प्रोक्त प्रत्ययान्तानि छन्दोब्राह्मणानि अधीते-वेदार्थविषयाणि, ततोऽन्यत्रा भावकानीत्यर्थः।

उदा०–**(छन्दांसि)** कठेन प्रोक्तं कठः। कठमधीते वेद वा कठः। मोदेन प्रोक्तं मौदः। मौदमधीते वेद वा मौदः। पिप्पलादेन प्रोक्तं पैप्लादः। पैप्लादमधीते वेद वा पैप्लादः। ऋचाभेन प्रोक्तम्-आर्चाभी। आर्चाभिनमधीते वेद वाऽऽर्चाभी। वाजसनेयेन प्रोक्तं वाजसनेयी। वाजसनेयिनमधीते वेद वा वाजसनेयी। **(ब्राह्मणानि)** ताण्ड्येन प्रोक्तं ताण्डी। ताण्डिनमधीते वेद वा ताण्डी। भाल्लविना प्रोक्तं भाल्लवी। भाल्लविनमधीते वेद वा भाल्लवी। शाट्यायनेन प्रोक्तं शाट्यायनी। शाट्यायनिमधीते वेद वा शाट्यायनी। ऐतरेयेण प्रोक्तम्-ऐतरेयी। ऐतरेयिणमधीते वेद वा ऐतरेयी।

आर्यभाषाः अर्थ-(तद्) द्वितीया-समर्थ (प्रोक्तात्) प्रोक्त-प्रत्ययान्त (**छन्दो**ब्राह्मणानि) छन्दोवाची और ब्राह्मणवाची शब्द (च) भी (तद्विषयाणि) अधीते, वेद **अर्थ**-विषयक होते हैं। अन्य अर्थ में इनका अभाव होता है।

विषय शब्द बहु-अर्थक है। '**तद्विषयाणि**' यहां विषय शब्द अन्यत्र-अभाव अर्थ में है। जैसे-मछलियों का विषय जल है अर्थात् जल से अन्यत्र उनका अभाव है। वैसे प्रोक्तप्रत्ययान्त, छन्दोवाची और ब्राह्मणवाची शब्दों का अधीते, वेद विषय है। इससे अन्य अर्थ में इनका अभाव होता है।

उदा०-संस्कृत भाग में देख लेवें। अर्थ इस प्रकार है-(**छन्द**) कठ के द्वारा **प्रोक्त**-कठ। जो कठसंहिता को पढ़ता है वा जानता है वह-कठ। मोद के द्वारा प्रोक्त-मौद। जो मौदसंहिता को पढ़ता है वा जानता है वह-मौद। पिप्लाद के द्वारा प्रोक्त-पैप्लाद। जो पैप्लाद संहिता को पढ़ता है वा जानता है वह पैप्लाद। ऋचाभ के द्वारा प्रोक्त-आर्चाभी। जो आर्चाभी संहिता को पढ़ता है वा जानता है वह-आर्चाभी। वाजसनेय के द्वारा प्रोक्त-वाजसनेयी। जो वाजसनेयी संहिता को पढ़ता है वा जानता है वह-वाजसनेयी। (**ब्राह्मण**) ताण्ड्य के द्वारा प्रोक्त-ताण्डी। जो ताण्डी ब्राह्मण को पढ़ता है वा जानता है वह-ताण्डी। भाल्लवि के द्वारा प्रोक्त-भाल्लवी। जो भाल्लवी ब्राह्मण को पढ़ता है वा जानता है वह-भाल्लवी। शाट्यायन के द्वारा प्रोक्त-शाट्यायनी। जो शाट्यायनी ब्राह्मण को पढ़ता है वा जानता है वह शाट्यायनी। ऐतरेय के द्वारा प्रोक्त-ऐतरेयी। जो ऐतरेयी ब्राह्मण को पढ़ता है वा जानता है वह-ऐतरेयी।

सिद्धि-(१) कठः। कठ+टा+णिनि। कठ+०। कठ+अण्। कठ+०। कठ+सु। कठः।

यहां तृतीया-समर्थ 'कठ' शब्द से '**कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च**' (४।३।१०४) से प्रोक्त अर्थ में 'णिनि' प्रत्यय होता है किन्तु '**कठचरकाल्लुक्**' (४।३।१०७) से उसका लोप हो जाता है। तत्पश्चात् प्रोक्त-प्रत्ययान्त द्वितीया-समर्थ 'कठ' शब्द से इस सूत्र से तदविषयता होकर '**तदधीते तद्वेद**' (७।२।११७) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय होता है और '**प्रोक्ताल्लुक्**' (४।२।६३) से उस 'अण्' प्रत्यय का भी लोप हो जाता है।

(२) मौदः। मोद+टा+अण्। मौद्+अ। मौद+अण्। मौद+०। मौद+सु। मौदः।

यहां 'मोद' शब्द से प्रोक्त अर्थ में '**कलापिनोऽण्**' (४।३।१०८) से अण् प्रत्यय होता है। तत्पश्चात् प्रोक्त-प्रत्ययान्त 'मौद' शब्द से पूर्ववत् 'अण्' प्रत्यय और उसका लोप होता है।

(३) आर्चाभी। ऋचाभ+टा+णिनि। आर्चाभ्+इन्। आचाभिन्+अम्+अण्। आर्चाभिन्+०। आर्चाभिन्+सु। आर्चाभी।

यहां 'ऋचाभ' शब्द से 'कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च' (४।३।१०४) से प्रोक्त अर्थ में 'णिनि' प्रत्यय और तत्पश्चात् प्रोक्त-प्रत्ययान्त 'आर्चाभी' शब्द से पूर्ववत् 'अण्' प्रत्यय और उसका लोप होता है।

(४) **वाजसनेयी।** वाजसनेय+टा+णिनि। वाजसनेय+इन्। वाजसनेयिन्+अम्+अण्। वाजसनेयिन्+०। वाजसनेयिन्+सु। वाजसनेयी।

यहां 'वाजसनेय' शब्द से प्रोक्त अर्थ में **'शौनकादिभ्यश्छन्दसि'** (४।३।१०६) से णिनि प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(५) **ताण्डी।** ताण्ड्य+टा+णिनि। ताण्ड्य+इन्। ताण्ड्+इन्। ताण्डिन्+अम्+अण्। ताण्डिन्+०। ताण्डिन्+सु। ताण्डी।

यहां गर्गादि यजन्त तृतीयासमर्थ, 'ताण्ड्य' शब्द से **'पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु'** (४।३।१०५) से णिनि प्रत्यय है। **'आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति'** (६।४।१५५) से यकार का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(६) **भाल्लवी।** भाल्लवि+टा+णिनि। भाल्लव्+इन्। भाल्लविन्+अम्+अण्। भाल्लविन्+०। भाल्लविन्+सु। भाल्लवी।

यहां इञ्-प्रत्ययान्त 'भाल्लवि' शब्द से पूर्ववत् **णिनि** प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(७) **शाट्यायनी।** शट+ङस्+यञ्। शाट्+य। शाट्य+अम्+फक्। शाट्य्+आयन। शाट्यायन+टा+णिनि। शाट्यायन्+इन्। शाट्यायिन्+अम्+अण्। शाट्यायिन्+०। शाट्यायिन्+सु। शाट्यायनी।

यहां प्रथम 'शाट्य' शब्द से **'गर्गादिभ्यो यञ्'** (४।१।१०५) से 'यञ्' प्रत्यय, यजन्त 'शाट्य' शब्द से **'यञिञोश्च'** (४।१।१०१) से फक् प्रत्यय और उससे प्रोक्त अर्थ में पूर्ववत् णिनि प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(८) **ऐतरेयी।** इतर+ङस्+ढक्। ऐतर्+एय। ऐतरेय+टा+णिनि। ऐतरेय+इन्। ऐतरेयिन्+अम्+अण्। ऐतरेयिन्+०। ऐतरेयिन्+सु। ऐतरेयी।

यहां प्रथम 'इतर' शब्द से **'शुभ्रादिभ्यश्च'** (४।१।१२३) से 'ढक्' प्रत्यय, तत्पश्चात् ढगन्त 'ऐतरेय' शब्द से प्रोक्त अर्थ में पूर्ववत् 'णिनि' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

विशेष– **'छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि'** (४।२।६६) यह पाणिनीय सूत्र है। इससे भी स्पष्ट विहित होता है कि वेद मन्त्रभाग और ब्राह्मण व्याख्या भाग है (सत्यार्थप्रकाश समु० ७)।

चातुरर्थिकप्रत्ययप्रकरणम्

(१) अस्मिन्नर्थः–

(१) तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि।६६।

प०वि०–तद् १।१ अस्मिन् ७।१ अस्ति क्रियापदम्, इति अव्ययपदम्, देशे ७।१ तन्नाम्नि ७।१।

स०–तद् नाम यस्य सः–तन्नामा, तस्मिन्–तन्नाम्नि (बहुव्रीहिः)।

अन्वयः–तदिति प्रथमासमर्थाद् अस्मिन्नस्ति यथाविहितं प्रत्ययस्तन्नाम्नि देशे।

अर्थः–तद् इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्मिन्निति सप्तम्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत्, यच्चास्मिन्निति निर्दिष्टं देशश्चेत् तन्नामा भवति। इतिकरणो विवक्षार्थः।

उदा०–उदुम्बरा अस्मिन् देशे सन्तीति औदुम्बरो देशः। बल्वजा अस्मिन् देशे सन्तीति बाल्वजो देशः। पर्वता अस्मिन् देशे सन्तीति पार्वतो देशः।

आर्यभाषाः *अर्थ–(तद्) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो (देशे तन्नाम्नि) और जो 'अस्मिन्' अर्थ है यदि वह तन्नामक देश हो। (इति) इतिकरण विवक्षा के लिये है अर्थात् जहां प्रकृति और प्रत्यय के समुदाय से किसी देश का कथन किया जाता हो तो वहां यह प्रत्ययविधि होती है; अन्यथा नहीं।*

*उदा०–**उदुम्बरा अस्मिन् देशे सन्तीति औदुम्बरो देशः।** जिस देश में उदुम्बर=गूलर है, वह औदुम्बर देश। **बल्वजा अस्मिन् देशे सन्तीति बाल्वजो देशः।** बल्वज नामक घास जिस देश में है वह–बाल्वज देश। **पर्वता अस्मिन् देशे सन्तीति पार्वतो देशः।** पहाड़ जिस देश में हैं वह–पार्वत देश।*

सिद्धि–औदुम्बरः। *उदुम्बर+जस्+अण्। औदुम्बर्+अ। औदुम्बर+सु। औदुम्बरः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'उदुम्बर' शब्द से सप्तमी विभक्ति के अर्थ में तथा तन्नामक देश अभिधेय में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है। अतः **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय होता है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही–**बाल्वजः, पार्वतः।***

(२) **निर्वृत्तार्थः**--

(२) तेन निर्वृत्तम्।६७।

प०वि०-तेन ३।१ निर्वृत्तम् १।१।

अनु०-देशे, तन्नाम्नि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन तृतीयासमर्थाद् निर्वृत्तं यथाविहितं प्रत्ययस्तन्नाम्नि देशे।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् निर्वृत्तमित्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, तन्नाम्नि देशेऽभिधेये।

उदा०-**(हेतौ)** सहस्रेण निर्वृत्ता साहस्री परिखा। **(कर्तरि)** कुशाम्बेन निर्वृत्ता कौशाम्बी नगरी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से (निर्वृत्तम्) बनवाना अर्थ में यथाविहितं प्रत्यय होता है (तन्नाम्नि देशे) यदि वहां तन्नामक देश अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-**(हेतु) सहस्रेण निर्वृत्ता साहस्री परिखा।** हजार कार्षापणों से बनवाई गई खाई-साहस्री। **(कर्ता) कुशाम्बेन निर्वृत्ता कौशाम्बी नगरी।** कुशाम्ब नामक पुरुष के द्वारा बनवाई गई नगरी-कौशाम्बी।*

*सिद्धि-**साहस्री।** सहस्र+अण्। साहस्र्+अ। साहस्र+ङीप्। साहस्री+सु। साहस्री।*

*यहां हेतुवाची तृतीयासमर्थ सहस्र शब्द से निर्वृत्त अर्थ में यथाविहित 'अण्' प्रत्यय है। स्त्रीत्व विवक्षा में **'टिड्ढाणञ्०'** (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है। ऐसे ही-कर्तृवाची 'कुशाम्ब' शब्द से-**कौशाम्बी।***

विशेष-कौशाम्बी-*वत्स देश की राजधानी का प्राचीन नाम। प्रयाग नगर से तीन मील दक्षिण-पश्चिम की ओर यह 'कौसम' नामक स्थान पर थी (शब्दार्थ कौस्तुभ पृ० १३८४)।*

(३) **निवासार्थः**--

(३) तस्य निवासः।६८।

प०वि०-तस्य ६।१ निवासः १।१।

अनु०-देशे, तन्नाम्नि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य षष्ठीसमर्थाद् निवासो यथाविहितं प्रत्ययस्तन्नाम्नि देशे।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् निवास इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, तन्नाम्नि देशेऽभिधेये।

उदा०-ऋजुनावां निवासो देशः-आर्जुनावो देशः। शिबीनां निवासो देशः-शैबो देशः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ प्रातिपदिक से (निवासः) निवास अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (तन्नाम्नि देशे) यदि वहां तन्नामक देश अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-**ऋजुनावां निवासो देशः-आर्जुनावो देशः।** ऋजुनौ नामक लोगों का निवास देश-आर्जुनाव देश। ऋजुनौ=सुखद नौकावाला। **शिबीनां निवासो देशः-शैबो देशः।** शिबि जनों का निवास देश-शैब देश। शिबि=राजा उशीनर के पुत्र तथा ययाति के दौहित्र एक प्रसिद्ध धार्मिक राजा का नाम।*

*सिद्धि-**आर्जुनावः।** ऋजुनौ+आम्+अण्। आर्जनाव्+अ। आर्जनाव+सु। आर्जनावः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'ऋजुनौ' शब्द से निवास अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित पूर्ववत् 'अण्' प्रत्यय है। '**तद्धितेष्वचामादेः**' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और '**एचोऽयवायावः**' (७।१।७५) से 'आव्' आदेश होता है। ऐसे ही 'शिबि' शब्द से-**शैबः।***

(४) अदूरभवार्थः-

(४) अदूरभवश्च।६६।

प०वि०-अदूरभवः १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-देशे, तन्नाम्नि, तस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य षष्ठीसमर्थाद् अदूरभवश्च यथाविहितं प्रत्ययस्तन्नाम्नि देशे।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् अदूरभव इत्यस्मिन्नर्थेऽपि यथाविहितं प्रत्ययो भवति, तन्नाम्नि देशेऽभिधेये।

उदा०-विदिशाया अदूरभवं नगरम्-वैदिशं नगरम्। हिमवतोऽदूरभवं नगरम्-हैमवतं नगरम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ प्रातिपदिक से (अदूरभवः) समीप अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (तन्नाम्नि देशे) यदि वहां तन्नामक देश अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-**विदिशाया अदूरभवं नगरम्-वैदिशं नगरम्।** विदिशा नामक नगर के समीप जो नगर है वह-वैदिश नगर। मध्यदेशवर्ती दशार्ण नामक देश के अन्तर्गत एक*

*नगर का नाम विदिशा था। उसका वर्तमान नाम 'भेलसा' है। जो विदिशा का ही अपभ्रंश है। हिमवतोऽदूरभवं **नगरम्-हैमवतं नगरम्।** हिमालय के समीप नगर-हैमवत नगर।*

***सिद्धि-वैदिशम्।** विदिशा+ङस्+अण्। वैदिश्+अ। वैदिश+सु। वैदिशम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'विदिशा' शब्द से अदूरभव (समीप) अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही 'हिमवत्' शब्द से-**हैमवतम्।***

अञ्–

(५) ओरञ्।७०।

प०वि०–ओः ५।१ अञ् १।१।

अनु०–अस्मिन्नादयश्चत्वारोऽर्थाः, देशे, तन्नाम्नि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् ओरस्मिन्नादिषु अञ् तन्नाम्नि देशे।

अर्थः–यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् उकारान्तात् प्रातिपदिकाद् अस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु अञ् प्रत्ययो भवति, तन्नाम्नि देशेऽभिधेये।

उदा०–अरडवोऽस्मिन् सन्तीति-आर्डवो देशः। कक्षतवोऽस्मिन् सन्तीति-काक्षतवो देशः। कर्कटेलवोऽस्मिन् सन्तीति-कार्कटेलवो देशः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (ओः) उकारान्त प्रातिपदिक से (अस्मिन्०) अस्मिन् आदि चार अर्थों में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है (तन्नाम्नि देशे) यदि वहां तन्नामक देश अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-**अरडवोऽस्मिन् सन्तीति-आर्डवो देशः।** अरडु नामक क्षत्रियविशेष इसमें रहते हैं यह-आर्डव देश । **कक्षतवोऽस्मिन् सन्तीति-काक्षतवो देशः।** कक्षतु नामक लोग इसमें हैं यह-काक्षतव देव। **कर्कटेलवोऽस्मिन् सन्तीति-कार्कटेलवो देशः।** कर्कटेलु नामक लोग इसमें हैं यह-कार्कटेलव देश।*

***सिद्धि-आरडवः।** अरडु+जस्+अञ्। आरडो+अ। आरडव+सु। आरडवः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, उकारान्त 'अरडु' शब्द से 'अस्मिन्' अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि, **'ओर्गुणः'** (६।४।१४६) से अंग को गुण और **'एचोऽयवायावः'** (६।१।७५) से 'अव्' आदेश होता है। ऐसे कक्षतु और कर्कटेलु शब्दों से-**काक्षतवः, कार्कटेलवः।***

अञ्–

(६) मतोश्च बह्वजङ्गात्।७१।

प०वि०–मतो: ५।१ च अव्ययपदम्, बहु–अच्–अङ्गात् ५।१।

स०–बहवोऽचो यस्मिन् स:-बह्वच्, बह्वच् अङ्गं यस्य स:-बह्वजङ्ग:, तस्मात्–बह्वजङ्गात् (बहुव्रीहि:)।

अनु०–अस्मिन्नादिषु, देशे तन्नाम्नि, अञ् इति चानुवर्तते।

अन्वय:–यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् बह्वचो मतुबन्तात् प्रातिपदिकाद् अस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु अञ् प्रत्ययो भवति, तन्नाम्नि देशेऽभिधेये।

उदा०–इषुका अस्यां सन्तीति इषुकावती नदी। इषुकावत्या अदूरभवं नगरम्-ऐषुकावतं नगरम्। सिध्रका अस्मिन् सन्तीति सिध्रकावद् वनम्। सिध्रकावतोऽदूरभवं नगरम्-सैध्रकावतं नगरम्।

आर्यभाषा: *अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (बह्वच:) बहुत अच्वाले (मतो:) मतुप्-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से (च) भी (अस्मिन्०) अस्मिन् आदि चार अर्थों में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है (तन्नाम्नि देशे) यदि वहां तन्नामक देश अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०–**इषुका अस्यां सन्तीति इषुकावती नदी। इषुकावत्या अदूरभवं नगरम्-ऐषुकावतं नगरम्।** इषुका=सरकण्डे इसमें हैं यह-इषुकावती नदी। इषुकावती के समीप जो नगर है वह ऐषुकावत नगर। **सिध्रका अस्मिन् सन्तीति सिध्रकावद् वनम्। सिध्रकावतोऽदूरभवं नगरम्-सैध्रकावतं नगरम्।** सिध्रक नामक **वृक्षविशेष** हैं इसमें यह-सिध्रकावत् वन। सिध्रकावत् वन के समीप जो नगर है वह-**सैध्रकावत** नगर।*

सिद्धि-ऐषुकावतम्। *इषुका+जस्+मतुप्। इषुका+**वत्**। इषुकावत्+ङीप्। इषुकावती+ङस्+अण्। ऐषुकावत्+अ। ऐषुकावत+सु। ऐषुकावतम्।*

*यहां प्रथम 'इषुका' शब्द से '**तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्**' (५।२।९४) से मतुप् प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में 'उगितश्च' (४।१६) से ङीप् प्रत्यय होता है। षष्ठी-समर्थ, बहुत अचोंवाले, मतुबन्त 'इषुकावती' शब्द से चातुरर्थिक 'अदूरभव' अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। '**तद्धितेष्वचामादे:**' (७।१।११७) से अंग को आदिवृद्धि और '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के ईकार का लोप होता है। ऐसे ही-**सैध्रकावतम्।***

अञ्–

(७) बह्वच: कूपेषु।७२।

प०वि०–बह्वच: ५।१ कूपेषु ७।३।

स०-बहवोऽचो यस्मिन् सः बह्वच्, तस्मात्-बह्वचः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अस्मिन्नादिषु, अञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् बह्वचोऽस्मिन्नादिषु अञ् कूपेषु।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् बह्वचः प्रातिपदिकाद् अस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु अञ् प्रत्ययो भवति, कूपेष्वभिधेयेषु।

उदा०-दीर्घवरत्रेण निर्वृत्तः कूपः-दैर्घवरत्रः कूपः। कपिलवरत्रेण निर्वृत्तः कूपः-कापिलवरत्रः कूपः।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (बह्वचः) बहुत अचोंवाले प्रातिपदिक से (अस्मिन्०) अस्मिन् आदि चार अर्थों में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है (कूपेषु) यदि वहां कूप=कूआ अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-**दीर्घवरत्रेण निर्वृत्तः कूपः-दैर्घवरत्रः कूपः।** दीर्घवरत्र नामक पुरुष के द्वारा बनवाया गया कूआ-दैर्घवरत्र कूआ। दीर्घवरत्र=लम्बा तसमा धारण करनेवाला पुरुष। वरत्र=तसमा। **कपिलवरत्रेण निर्वृत्तः कूपः-कापिलवरत्रः कूपः।** कपिलवरत्र नामक पुरुष के द्वारा बनवाया हुआ कूआ-कापिलवरत्र कूआ। कपिलवरत्र=भूरे रंग का वस्त्र धारण करनेवाला पुरुष।*

सिद्धि-दैर्घवरत्रः। *दीर्घवरत्र+अञ्। दैर्घवरत्र्+अ। दैर्घवरत्र+सु। दैर्घवरत्रः।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'दीर्घवरत्र' शब्द से 'निर्वृत्त' अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् आदिवृद्धि और 'अकार' का लोप होता है। ऐसे ही-**कापिलवरत्रः।***

अञ्-

(८) उदक् च विपाशः।७३।

प०वि०-उदक् १।१ च अव्ययपदम्, विपाशः ५।१।

अनु०-अस्मिन्नादिषु, अञ्, कूपेषु इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव० प्रातिपदिकाद् अस्मिन्नादिषु अञ् विपाश उदक् च कूपेषु।

अर्थः-यथासंभवविभक्तिसमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु अञ् प्रत्ययो भवति, विपाट उत्तरे कूले च ये कूपास्तेष्वभिधेयेषु

उदा०-दत्तेन निर्वृत्तः कूपः-दात्तो कूपः। गुप्तेन निर्वृत्तः कूपः-गौप्तः कूपः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्मिन्०) अस्मिन् आदि चार अर्थों में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है (च) और यदि वहां (विपाशः) विपाट् नदी के (उदक्) उत्तरदेशीय (कूपेषु) कूएं अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-दत्तेन **निर्वृत्तः** कूपः-दात्तः कूपः। दत्त नामक पुरुष के द्वारा बनवाया गया कूआ-दात्त कूआ। गुप्तेन **निर्वृत्तः** कूपः-गौप्तः कूपः। गुप्त नामक पुरुष के द्वारा बनवाया गया कूआ-गौप्त कूआ।*

***सिद्धि**-दात्तः। दत्त+टा+अञ्। दात्+अ। दात्त+सु। दात्तः।*

यहां तृतीया-समर्थ 'दत्त' शब्द से निर्वृत्त अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही गुप्त शब्द से-गौप्तः।

***विशेष**-पंजाब की 'व्यास' नदी का प्राचीन नाम विपाट् अथवा विपाशा है। विपाशा शब्द का अपभ्रंश व्यास है।*

अञ्-

(६) सङ्कलादिभ्यश्च ।७४।

प०वि०-सङ्कलादिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-सङ्कल आदिर्येषां ते सङ्कलादयः, तेभ्यः-सङ्कलादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-कूपेषु इति निवृत्तम्, अस्मिन्नादिषु इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव० सङ्कलादिभ्यश्चास्मिन् अञ्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्यः सङ्कलादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो-ऽस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु अञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-सङ्कलेन निर्वृत्तः साङ्कलः। पुष्कलेन निर्वृत्तः पौष्कलः। यथासम्भवमर्थसम्बन्धः कर्त्तव्यः।

संकल। पुष्कल। उद्वय। उडुप। उत्पुट। कुम्भ। विधान। सुदक्ष। सुदत्त। सुभूत। सुनेत्र। सुपिङ्गल। सिकता। पूतीकी। पूलास। कूलास। पलाश। निवेश। गवेश। गम्भीर। इतर। शर्मन्। अहन्। लोमन्। वेमन्। वरुण। बहुल। सद्योज। अभिषिक्त। गोभृत्। राजभृत्। गृह। भृत। भल्ल। भाल। (वृत्) इति संकलादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (सङ्कलादिभ्यः) संकल आदि प्रातिपदिकों से (च) भी (अस्मिन्०) अस्मिन् आदि चार अर्थों में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**सङ्कलेन निर्वृत्तः साङ्कलः।** सङ्कल नामक पुरुष के द्वारा बनवाया गया सांकल-(आश्रम आदि)। **पुष्कलेन निर्वृत्तः पौष्कलः।** पुष्कल नामक पुरुष के द्वारा बनवाया गया पौष्कल (विद्यालय आदि)। यथासम्भव अर्थ-सम्बन्ध करें।*

*सिद्धि-**साङ्कलः।** सङ्कल+टा+अञ्। साङ्कल्+अ। साङ्कल+सु। साङ्कलः।*

यहां तृतीया-समर्थ 'संकल' शब्द से 'निर्वृत्त' अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के 'अकार' का लोप होता है।

अञ्-

(१०) स्त्रीषु सौवीरसाल्वप्राक्षु।७५।

प०वि०-स्त्रीषु ७।३ सौवीर-साल्व-प्राक्षु ७।३।

स०-सौवीरश्च साल्वश्च प्राक् च ते-सौवीरसाल्वप्राञ्चः, तेषु-सौवीरसाल्वप्राक्षु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अस्मिन्नादिषु, देशे, तन्नाम्नि, अञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव० प्रातिपदिकाद् अस्मिन्नादिषु अञ् स्त्रीषु सौवीरसाल्वप्राक्षु तन्नामसु देशेषु।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु अञ् प्रत्ययो भवति, स्त्रीलिङ्गेषु सौवीरसाल्वप्राक्षु तन्नामकेषु देशेष्वभिधेयेषु।

उदा०-(सौवीरः) दत्तामित्रेण निर्वृता नगरी-दात्तामित्री नगरी। **(साल्वः)** विधूमाग्निना निर्वृत्ता नगरी-वैधूमाग्नी नगरी। **(प्राक्)** ककन्देन निर्वृत्ता नगरी-काकन्दी नगरी। मकन्देन निर्वृत्ता नगरी-माकन्दी नगरी। मणिचरेण निर्वृत्ता नगरी-माणिचरी नगरी। जरुषेण निर्वृत्ता नगरी-जारुषी नगरी।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्मिन्०) अस्मिन् आदि चार अर्थों में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है (स्त्रीषु सौवीरसाल्वप्राक्षु) यदि वहां स्त्रीलिङ्ग सौवीर, साल्व और प्राक्सम्बन्धी (तन्नाम्नि) तन्नामक (देशे) देश अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-संस्कृत भाग में देख लेवें। अर्थ इस प्रकार है-(सौवीर) दत्तामित्र के द्वारा बनवाई गई नगरी-दात्तामित्री नगरी। (साल्व) विधूमाग्नि के द्वारा बनवाई गई नगरी-वैधूमाग्नी नगरी। (प्राक्) ककन्द के द्वारा बनवाई गई नगरी-काकन्दी नगरी। मकन्द के द्वारा बनवाई गई नगरी-माकन्दी नगरी। मणिचर के द्वारा बनवाई गई नगरी-माणिचरी नगरी। जरुष के द्वारा बनवाई गई नगरी-जारुषी नगरी।

*सिद्धि-**दात्तामित्री।** दत्तामित्र+टा+अञ्। दात्तामित्र्+अ। दात्तामित्र+ङीप्। दात्तामित्री+सु। दात्तामित्री।*

*यहां तृतीया-समर्थ, सौवीर देशवाची 'दत्तामित्र' शब्द से निर्वृत्त अर्थ में इस सूत्र से अञ् प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में '**टिड्ढाणञ्०**' (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**वैधूमाग्नी** आदि शब्द सिद्ध करें।*

***विशेष**-(१) अलवर से उत्तरी बीकानेर तक फैला हुआ प्रदेश प्राचीन 'साल्व' प्रतीत होता है (पाणिनि कालीन भारतवर्ष पृ० ७१)।*

(२) इस समय जो सिन्ध प्रान्त है उसका पुराना नाम 'सौवीर' था (पाणिनि कालीन भारतवर्ष पृ० ५०)।

अण्-

(११) सुवास्त्वादिभ्योऽण्।७६।

प०वि०-सुवास्त्वादिभ्यः ५।३ अण् १।१।

स०-सुवास्तुरादिर्येषां ते-सुवास्त्वादयः, तेभ्यः-सुस्वास्त्वादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अस्मिन्नादिषु, देशे तन्नाम्नि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव० सुवास्त्वादिभ्योऽस्मिन्नादिषु अण् तन्नाम्नि देशे।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्यः सुवास्त्वादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो-ऽस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु अण् प्रत्ययो भवति, तन्नाम्नि देशेऽभिधेये।

उदा०-सुवास्तोरदूरभवं सौवास्तवं नगरम्। वर्णोरदूरभवं वार्णवं नगरम्।

सुवास्तु। वर्णु। भण्डु। खण्डु। कण्डु। सेचालिन्। कर्पूरन्। शिखण्डिन्। गर्त्त। कर्कश। शटीकर्ण। कृष्ण। कर्क। कर्कन्धूमती। गोह्य। गाहि। अहिसक्थ। (वृत्) इति सुवास्त्वादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (सुवास्त्वादिभ्यः) सुवास्तु आदि प्रातिपदिकों से (अस्मिन्०) अस्मिन् आदि चार अर्थों में (अण्) अण् प्रत्यय होता है (तन्नाम्नि देशे) यदि वहां तन्नामक देश अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-सुवास्तोरदूरभवं **नगरम्-सौवास्तवम्।** सुवास्तु के समीप जो नगर है वह-सौवास्तव नगर। **वर्णोरदूरभवं नगरम्-वार्णवं नगरम्।** वर्णु के समीप जो नगर है वह-वार्णव नगर।*

*सिद्धि-**सौवास्तवम्।** सुवास्तु+ङस्+अण्। सौवास्तव्+अ। सौवास्तव+सु। सौवास्तवम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'सुवास्तु' शब्द से 'अदूरभव' अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि, **'ओर्गुणः'** (६।४।१४६) से गुण और **'एचोऽयवायावः'** (६।१।७५) से 'अव्' आदेश होता है। ऐसे ही 'वर्णु' शब्द से-**वार्णवम्।***

विशेष-*(१) सुवास्तु वैदिक काल की नदी थी, यह आजकल की स्वात है। इसकी पच्छिमी शाखा गौरी नदी (पंजकोरा) है। इन दोनों के बीच में उड्डियान था जो गंधार देश का एक भाग माना जाता था। यहीं स्वात की घाटी में प्राचीनकाल से आज तक एक विशेष प्रकार के कम्बल बुने जाते थे। पाणिनि ने पाण्डुकम्बल नाम से उनका उल्लेख (४।२।११) किया है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ५०)।*

(२) वर्णु-सिन्धु की पच्छिमी सहायक नदी कुर्रम के किनारे, निचले हिस्से में बन्नू की दून (घाटी) थी। इसका वैदिक नाम 'क्रुमु' था। इसका ऊपरी पहाड़ी प्रदेश आज भी कुर्रम कहाता है और निचला मैदानी भाग बन्नू। पाणिनि ने इसी को वर्णु नद के नाम से प्रसिद्ध 'वर्णु' देश कहा है (४।२।१०३)। सुवास्त्वादिगण के अनुसार वर्णु के पास का प्रदेश 'वार्णव' कहलाता था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० १५१)।

अण्-

(१२) रोणी।७७।

प०वि०-रोणी (लुप्तपञ्चमी)।

अनु०-अस्मिन्नादिषु, देशे, तन्नाम्नि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव० रोण्याः अस्मिन्नादिषु अण् देशे तन्नाम्नि।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् रोणीशब्दात् रोण्यन्ताच्च प्रातिपदिकाद् अस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु अण् प्रत्ययो भवति, तन्नाम्नि देशेऽभिधेये।

उदा०-रोण्या अदूरभवो देशः-रौणो देशः। अजकरोण्या अदूरभवो देशः-आजकरोणो देशः। सिंहिकरोण्या अदूरभवो देशः-सैंहिकरोणो देशः।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (रोणी) रोणी शब्द से और रोण्यन्त प्रातिपदिक से (अस्मिन्०) अस्मिन् आदि चार अर्थों में (अण्) अण् प्रत्यय होता है (तन्नाम्नि देश) यदि वहां तन्नामक देश अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-**रोण्या अदूरभवो देशः-रौणो** देशः। रोणी के समीप का देश-रौण देश। **अजकरोण्या अदूरभवो** देशः-**आजकरोणः।** अजकरोणी के समीप का देश-आजकरोण देश। **सिंहिकरोण्या अदूरभवो** देशः-**सैंहिकरोणो** देशः। सिंहिकरोणी के समीप का देश-सैंहिकरोण।*

सिद्धि-रौणः। *रोणी+ङस्+अण्। रौण्+अ। रौण+सु। रौणः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'रोणी' शब्द से 'अदूरभव' अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के ईकार का लोप होता है। ऐसे ही अजकरोणी और सिंहिकरोणी शब्दों से-**आजकरोणः, सैंहिकरोणः।***

विशेष- *(१) यहां 'रोणी' शब्द का सूत्र में अविभक्तिक पाठ किया गया है। इससे केवल रोणी शब्द से तथा रोण्यन्त प्रातिपदिक से भी प्रत्यय की उत्पत्ति होती है।*

(२) रोणी-सम्भवतः रोड़ी (हिसार) जो शैरीषक (आधुनिक सिरसा) के पास है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ८६)।

अण्-

(१३) कोपधाच्च।७८।

प०वि०-कोपधात् ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-क उपधायां यस्य सः-कोपधः, तस्मात्-कोपधात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अस्मिन्नादिषु, देशे, तन्नाम्नि, अण् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव० कोपधाच्च अस्मिन्नादिषु अण् तनाम्नि देशे।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् ककारोपधाच्च प्रातिपदिकाद् अस्मिन्नादिष्वर्थेषु अण् प्रत्ययो भवति, तन्नाम्नि देशेऽभिधेये।

उदा०-कर्णच्छिद्रिकया निर्वृत्तः कूपः-कार्णच्छिद्रिकः कूपः। कर्णवेष्टकेन निर्वृत्तः-कार्णवेष्टकः। कृकवाकुना निर्वृत्तम्-कार्कवाकवम्। त्रिशङ्कुना निर्वृत्तम्-त्रैशङ्कवम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (कोपधात्) ककार उपधावाले प्रातिपदिक से (अस्मिन्०) अस्मिन् आदि चार अर्थों में (अण्) अण् प्रत्यय होता है (तन्नाम्नि देशे) यदि वहां तन्नामक देश अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-**कर्णच्छिद्रिकया निर्वृत्तः कूपः-कार्णच्छिद्रिकः।** कर्णच्छिद्रिका नामक नारी के द्वारा बनवाया हुआ कूआ-कार्णच्छिद्रिक कूआ। **कर्णवेष्टकेन निर्वृत्तः-कार्णवेष्टकः।** कर्णवेष्टक द्वारा बनवाया हुआ-कार्णवेष्टक। **कृकवाकुना निर्वृत्तम्-कार्कवाकवम्।** कृकवाकु के द्वारा बनवाया गया नगर-कार्कवाकव। **त्रिशङ्कुना निर्वृत्तम्-त्रैशङ्कवम्।** त्रिशंकु के द्वारा बनवाया गया-त्रैशङ्कव नगर।*

सिद्धि-कार्णच्छिद्रिकः। *कर्णच्छिद्रिक+टा+अण्। कार्णच्छिद्रिक्+अ। कार्णच्छिद्रिक+सु। कार्णच्छिद्रिकः।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'कर्णच्छिद्रिका' शब्द से निर्वृत्त अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही- **'कार्णवेष्टकः'** आदि।*

वुञादयः-

(१४) वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्ण्ययफक्फिञिञ्ञ्यकक्ठकोऽरीहणकृशाश्वर्श्यकुमुदकाशतृणप्रेक्षाश्मसखिसंकाशबलपक्षकर्णसुतङ्गमप्रगदिन्वराहकुमुदादिभ्यः।७६।

प०वि०- वुञ्-छण्-क-ठच्-इल-स-इनि-र-ढञ्-ण्य-य-फक्-फिञ्-इञ्-ञ्य-कक्-ठकः १।३ अरीहण-कृशाश्व-ऋश्य-कुमुद-काश-तृण-प्रेक्ष-अश्म-सखि-संकाश-बल-पक्ष-कर्ण-सुतङ्गम-प्रगदिन्-वराह-कुमुदादिभ्यः ५।३।

स०-वुञ् च छण् च कश्च ठच् च इलश्च सश्च इनिश्च रश्च ढञ् च ण्यश्च यश्च फक् च फिञ् च इञ् च ञ्यश्च कक् च ठक् च ते-वुञ्०ठकः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। अरीहणश्च कृशाश्वश्च ऋश्यश्च कुमुदश्च काशश्च तृणं च प्रेक्षा च अश्मा च सखा च संकाशश्च बलं च पक्षश्च कर्णश्च सुतङ्गमश्च प्रगदी च वराहश्च कुमुदं च तानि-अरीहण०कुमुदानि, अहरीहण०कुमुदानि आदौ येषां ते-अरीहण०कुमुदादयः, तेभ्यः अरीहण०कुमुदादिभ्यः (इतरेतरयोगगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-अस्मिन्नादिषु देशे तन्नाम्नि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०अरीहण०कुमुदादिभ्योऽस्मिन्नादिषु, वुञ्०ठको देशे तन्नाम्नि।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्योऽरीहण-कृशाश्च-ऋश्य-कुमुद-काश-तृण-प्रेक्षा-अश्म-सखि-संकाश-बल-पक्ष-कर्ण-सुतङ्गम-प्रगदिन्-वराह-कुमुदादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु यथासंख्यं वुञ्-छण्-क-ठच्-इल-स-इनि-र-ढञ्-ण्य-य-फक्-फिञ्-ञ्य-कक्-ठकः प्रत्यया भवन्ति, तन्नाम्नि देशेऽभिधेये। उदाहरणम्-

	गणः	प्रत्ययः	उदा०	अर्थः
१.	अरीहरणादिः	वुञ्	आरीहणकम्। द्रौघणकम्।	अरीहरण के द्वारा बनवाया हुआ।
२.	कृशाश्वादिः	छण्	कार्शाश्वीयः। आरिष्टीयः।	कृशाश्व का निवास।
३.	ऋश्यादिः	कः	ऋश्यकः। न्यग्रोधकः।	ऋश्य का निवास।
४.	कुमुदादिः	ठच्	कुमुदिकम्। शर्करिकम्।	कुमुद के द्वारा बनवाया हुआ।
५.	काशादिः	इलः	काशिलम्। वाशिलम्।	काश के द्वारा बनवाया हुआ।
६.	तृणादिः	शः	तृणशम्। नडशम्।	तृणों का देश।
७.	प्रेक्षादिः	इनिः	प्रेक्षी। हलकी।	प्रेक्षा का देश।
८.	अश्मादिः	रः	अश्मरः। यूषरः।	पत्थर से बनवाया हुआ।
९.	सख्यादिः	ढञ्	साखेयम्। साखिदत्तेयम्।	सखाजनों का देश।
१०.	संकाशादिः	ण्यः	सांकाश्यम्। काम्पिल्यम्।	सांकाश्य के द्वारा बनवाया हुआ।
११.	बलादिः	यः	बल्यम्। कुल्यम्।	बल के द्वारा बनवाया हुआ।
१२.	पक्षादिः	फक्	पाक्षायणः। तौषायणः।	पक्षों का निवास।
१३.	कर्णादिः	फिञ्	कार्णायनिः। तैसिष्ठायनिः।	कर्ण का निवास।
१४.	सुतङ्गमादिः	इञ्	सौतङ्गमिः। मौनचित्तिः।	सुतंगम का निवास।
१५.	प्रगदिन्नादिः	ञ्यः	प्रागद्यम्। मागद्यम्।	प्रगदी के द्वारा बनवाया हुआ।
१६.	वराहादिः	कक्	बाराहकम्। पालाशकम्।	बराह के द्वारा बनवाया हुआ।
१७.	कुमुदादिः	ठक्	कौमुदिकम्। गैमथिकम्।	कुमुद के द्वारा बनवाया हुआ।

(१) अरीहण। द्रुघण। खदिर। सार। भगल। उलन्द। सांपरायण। क्रौष्ट्रायण। भास्त्रायण। मैत्रायण। त्रैगर्त्तायिन। रायस्पोष। विपथ। उद्दण्ड। उदञ्चन। खाडायन। खण्ड। वीरण। काशकृत्स्न। जाम्बवन्त। शिंशपा। किरण। रैवत। वैल्व। वैमतायन। मैमतायण। सौसायन। शाण्डिल्यायन। शिरीष। बधिर। वैगर्त्तायिण। गोमतायण। सौमतायण। खाण्डायण। विपाश। सुयज्ञ। जम्बु। सुशर्म्म। इत्यरीहणादयः।।

(२) कृशाश्व। अरिष्ट। अरीश्व। वेश्मन्। विशाल। रोमक। शबल। कूट। रोमन्। वर्वर। सुकर। सूकर। प्रतर। सदृश। पुरग। सुख। धूम। अजिन। विनता। वनिता। कुविद्यास। अरुस्। अवयास। अयावस्। मौद्गल्य। इति कृशाश्वादयः।।

(३) ऋश्य। न्यग्रोध। शिरा। निलीन। निवास। निधान। निवात। निबद्ध। विबद्ध। परिगूढ। उत्तराश्मन्। स्थूलबाहु। खदिर। शर्क्करा। अनडुह्। परिवंश। वेणु। वीरण। खण्ड। परिवृत्त। कर्दम। अंशु। इति ऋश्यादयः।।

(४) कुमुद। शर्करा। न्यग्रोध। उत्कट। इत्कट। गर्त्त। बीज। अश्वत्थ। वल्वज। परिवाप। शिरीष। यवाष। कूप। विकङ्कत। कङ्टक। संकट। पलाश। त्रिक। कत। दशग्राम। इति कुमुदादयः।।

(५) काश। वाश। अश्वत्थ। पलाश। पीयूष। विश। विस। तृण। नर। चरण। कर्दम। कर्पूर। कण्टक। गूह। आवास। नड। वन। बधूल। बर्बर। इति काशादयः।।

(६) तृण। नड। वुस। पर्ण। वर्ण। चरण। अर्ण। जन। बल। लव। वन। इति तृणादयः।।

(७) प्रेक्षा। हलका। फलका। बन्धुका। ध्रुवका। क्षिपका। न्यग्रोध। इर्कुट। बुधका। संकट। कूपका। कर्कटा। सुकटा। मङ्कट। सुक। महा। इति प्रेक्षादयः।।

(८) अश्मन्। यूप। रुष। मीन। दर्भ। वृन्द। गुड। खण्ड। नग। शिखा। यूथ। रुष। नद। नख। काट। पाम। इत्यश्मादयः।।

(९) सखि। सखिदत्त। वायुदत्त। गोहित। गोहिल। भल्ल। पाल। चक्रपाल। चक्रवाल। छगल। अशोक। करवीर। सीकर। सकर। सरस। समल। चर्क। वक्रपाल। उसीर। सुरस। रोह। तमाल। कदल। सप्तल। इति सख्यादयः।।

(१०) संकाश। काम्पिल्य। समीर। कश्मर। सेन। सुपथिन्। सक्थच। यूप। अंश। राग। अश्मन्। कूट। मलिन। तीर्थ। अगस्ति। विरत। चिकार। विरह। नासिका। इति संकाशादयः।।

(११) बल। बुल। तुल। डल। डुल। कपल। वन। कुल। इति बलादयः।।

(१२) पक्ष। तुष। अण्ड। कम्बलिक। चित्र। अश्मन्। अतिस्वन्।। पथिन्, पन्थच।। कुम्भ। सरिज। सरिक। सरक। सलक। सरस। समल। रोमन्। लोमन्। हंसका। लोमक। सकण्डक। अस्तिबल। यमल। हस्त। सिंहक। इति पक्षादयः।।

(१३) कर्ण। वसिष्ठ। अलुश। शल। डुपद। अनडुह्य। पाञ्चजन्य। स्थिरा। कुलिस। कुम्भी। जीवन्ती। जित्व। आण्डीवत्। अर्क। लूष। स्फिक्। ज्ञावत्। इति कर्णादयः।।

(१४) सुतङ्गम। मुनिचित्त। विपचित्त। महापुत्र। श्वेत। गडिक। शुक्र। विग्र। वीजवापिन्। श्वन। अर्जुन। अजिर। जीव। इति सुतङ्गमादयः।।

(१५) प्रगदिन्। मगदिन्। शरदिन्। कलिव। खडिव। चूडार। मार्जार। कोविदार। इति प्रगदिन्नादयः।।

(१६) वराह। पलाश। शिरीष। पिनद्ध। स्थूण। विदग्ध। विभग्न। बाहु। खदिर। शर्करा। विनद्ध। निबद्ध। विरुद्ध। मूल। इति वराहादयः।।

(१७) कुमुद। गोमथ। रथकार। दशग्राम। अश्वत्थ। शाल्मली। कुण्डल। मुनिस्थूल। कूट। मुचुकर्ण। कुन्द। मधुकर्ण। शुचिकर्ण। शिरीष। इति कुमुदादयः।।

आर्यभाषाः अर्थ-यथासम्भव-विभक्तिसमर्थ (अरीहण०कुमुदादिभ्यः) अरीहरण, कृशाश्व, ऋश्य, कुमुद, काश, तृण, प्रेक्षा, अश्म, सखि, संकाश, बल, पक्ष, कर्ण, सुतंगम, प्रगदिन्, वराह, कुमुद आदि प्रातिपदिकों से (अस्मिन्०) अस्मिन् आदि चार अर्थों में यथासंख्य (वुञ्०ठकः) वुञ्, छण्, क, ठच्, इल, श, इनि, र, ढञ्, ण्य, य, फक्, फिञ्, इञ्, ञ्य, कक्, ठक् प्रत्यय होते हैं (तन्नाम्नि देशे) यदि वहां तन्नामक देश अर्थ अभिधेय हो।

उदा०-संस्कृत भाग में देख लेवें। सिद्धि इस प्रकार है-

सिद्धि-(१) **आरीहणकम्।** यहां 'अरीहण' शब्द से चातुरर्थिक वुञ् प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश **होता है।** ऐसे ही-**द्रौघणकम्।**

(२) **कृशाश्वीयः।** यहां 'कृशाश्व' शब्द से चातुरर्थिक 'छण्' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में ईय् आदेश और **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**आरिष्टीयः।**

(३) **ऋश्यकः।** यहां 'ऋश्य' शब्द से चातुरर्थिक 'क' प्रत्यय है। 'क' प्रत्यय के तद्धित होने से **'लशक्वतद्धिते'** (१।३।८) से ककार की इत्-संज्ञा न होकर **'तस्य लोपः'** (१।३।९) से लोप नहीं होता है। ऐसे ही-**न्यग्रोधकः।**

(४) **कुमुदिकम्।** यहां 'कुमुद' शब्द से चातुरर्थिक 'ठच्' प्रत्यय है। **'ठस्येकः'** (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश होता है। ऐसे ही-**शर्करिकम्।**

(५) **काशिलम्।** यहां 'काश' शब्द से 'चातुरर्थिक' इल प्रत्यय है। ऐसे ही-**वाशिलम्।**

(६) **तृणशम्।** यहां 'तृण' शब्द से चातुरर्थिक 'श' प्रत्यय है। 'श' के तद्धित होने से **'लशक्वतद्धिते'** (१।३।८) से शकार की इत्संज्ञा न होकर **'तस्य लोपः'** (१।३।९) से लोप नहीं होता है। ऐसे ही-**नडशम्।**

(७) **प्रेक्षी।** यहां 'प्रेक्षा' शब्द से चातुरर्थिक 'इनि' प्रत्यय है। प्रेक्षिन्+सु। प्रेक्षीन्+०। प्रेक्षी। **'सौ च'** (६।४।१३) से नकारान्त अंग की उपधा को दीर्घ, **'हल्ङ्याब्भ्यो०'** (६।१।६६) से सु का लोप और **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से नकार का लोप होता है। ऐसे ही-**हलकी।**

(८) **अश्मरः।** यहां 'अश्मन्' शब्द से चातुरर्थिक 'र' प्रत्यय है। **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से नकार का लोप होता है। ऐसे ही-**यूषरः।**

(९) **साखेयम्।** यहां 'सखि' शब्द से चातुरर्थिक 'ढञ्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश, **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-**साखिदत्तेयम्।**

*(१०) **सांकाश्यम्।** यहां 'संकाश' शब्द से चातुरर्थिक 'ण्य' प्रत्यय है। '**तद्धितेष्वचामादेः**' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**काम्पिल्यम्।***

*(११) **बल्यम्।** यहां 'बल' शब्द से चातुरर्थिक 'य' प्रत्यय है। '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के 'अकार' का लोप होता है। ऐसे ही-**कुल्यम्।***

*(१२) **पाक्षायणः।** यहां 'पक्ष' शब्द से चातुरर्थिक 'फक्' प्रत्यय है। '**आयनेय०**' (७।१।२) से 'फ्' के स्थान में 'आयन्' आदेश और पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**तौषायणः।***

*(१३) **कार्णायनिः।** यहां 'कर्ण' शब्द से चातुरर्थिक 'फिञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'फ्' के स्थान में 'आयन्' आदेश और अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**वासिष्ठायनिः।***

*(१४) **सौतङ्गमिः।** यहां 'सुतङ्गम' शब्द से चातुरर्थिक इञ् प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**मौनचित्तिः।***

*(१५) **प्रगद्यम्।** यहां 'प्रगदिन्' शब्द से चातुरर्थिक 'ञ्य' प्रत्यय है। '**नस्तद्धिते**' (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (इन्) का लोप होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**मागद्यम्।***

*(१६) **वाराहकम्।** यहां 'वराह' शब्द से चातुरर्थिक 'कक्' प्रत्यय है। '**किति च**' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**पालाशकम्।***

*(१७) **कौमुदिकम्।** यहां 'कुमुद' शब्द से चातुरर्थिक 'ठक्' प्रत्यय है। '**ठस्येकः**' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और '**किति च**' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि होती है।*

***विशेष**-इन अरीहण आदि १७ गणों के शब्दों से अस्मिन्, निर्वृत्त, निवास, अदूरभव इन चार अर्थों में 'वुञ्' आदि १७ प्रत्ययों का यथासंख्य विधान किया गया है। यहां कुछ शब्द चेतनवाची और कुछ शब्द अचेतनवाची हैं। अतः उनका यथासम्बन्ध तथा प्रयोग के अनुसार उक्त अर्थों की ऊहा कर लेनी चाहिये।*

प्रत्ययस्य लुप्-

(१५) जनपदे लुप्।८०।

प०वि०-जनपदे ७।१ लुप् १।१।

अनु०-अस्मिन्नादिषु देशे तन्नाम्नि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०प्रातिपदिकाद् अस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु विहितस्य प्रत्ययस्य लुप् जनपदे।

अर्थ:-यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु विहितस्य प्रत्ययस्य लुब् भवति, तन्नाम्नि देशे जनपदेऽभिधेये। ग्रामसमुदायो जनपदः।

उदा०-पञ्चालानां निवासो जनपदः-पञ्चालाः। एवम्-कुरवः, मत्स्याः, अङ्गाः। बङ्गाः, मगधा, सुह्माः, पुण्ड्राः इति।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ* ***प्रातिपदिक से*** *(अस्मिन्०) अस्मिन् आदि चार अर्थों में विहित प्रत्यय का (लुप्) लोप होता* ***है*** ***(तन्नाम्नि*** *देशे) यदि वहां तन्नामिक देश जनपद अर्थ अभिधेय हो। ग्रामों का* ***समुदाय जनपद*** *कहाता है और उस में एक जनविशेष का राज्य होता है।*

*उदा०-**पञ्चालानां निवासो** जनपदः **पञ्चालाः।** पंचाल नामक क्षत्रियों का निवास जनपद 'पञ्चालाः' कहाता है। ऐसे ही-**कुरवः, मत्स्याः, अङ्गाः। बङ्गाः, मगधाः, सुह्माः, पुण्ड्राः।***

सिद्धि-पञ्चालाः। *पञ्चाल+आम्+अण्। पञ्चाल+०। पञ्चाल+जस्। पञ्चालाः।*

यहां क्षत्रियवाची 'पञ्चाल' शब्द से ***'तस्य निवासः'*** *(४।२।६९) से निवास अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। इस सूत्र से उसका लुप् (लोप) हो जाता है।*

विशेष-*(१) पाणिनि मुनि ने* ***'लुब् योगाप्रख्यानात्'*** *(१।२।५४) में लुप्-विधायक सूत्रों का प्रत्याख्यान किया है। इसका विशेष प्रवचन वहां देख लेवें।*

(२) पंचाल-एक प्रसिद्ध भूखण्ड का नाम जो राजेश्वर के मतानुसार यमुना और गंगा के मध्य में है। राजा द्रुपद के समय वह दक्षिण में चर्मण्वती (चम्बल) के तट से उत्तर में हरिद्वार तक फैला हुआ था।

(३) कुरु-दिल्ली और मेरठ का प्रदेश।

(४) मत्स्य-विराट् देश। जयपुर के आस-पास का भूभाग, इसमें अलवर भी शामिल था। इसकी राजधानी का नाम 'बेरात' था जो अब बारट के नाम से प्रसिद्ध है। यह जयपुर से ४० मील उत्तर की ओर है।

(५) अङ्ग-गंगा के दाहिने तट पर अवस्थित प्राचीन एक प्रसिद्ध राज्य। इस राज्य की राजधानी का नाम चम्पा नगरी था। यह चम्पा नगरी आधुनिक भागलपुर नगर के समीप बिहार में थी।

(६) बङ्ग-इसे समतट भी कहते हैं। पूर्वी बंगाल का नाम। किसी समय इसमें टिपरा और गारो भी शामिल थे।

(७) मगध-बिहार प्रान्त में प्राचीनकाल में मगध राज्य की पश्चिमी सीमा सोन नद था। इसकी प्राचीन राजधानी का नाम गिरिव्रज या राजगृह था। पिछले प्राचीन साहित्य में इसी का दूसरा नाम कीकट देश लिखा मिलता है।

(८) सुह्म-बंग देश के पश्चिम का देश। इसकी राजधानी ताम्रलिप्त थी। इसका आधुनिक नाम तामलूक है जो कोसी नदी के दक्षिण तट पर बसा हुआ है (शब्दार्थ कौस्तुभ २।८)।

(९) पुण्ड्र-भारत का एक प्राचीन जनपद।

प्रत्ययस्य लुप्–

(१६) वरणादिभ्यश्च।८१।

प०वि०-वरणादिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-वरणा आदिर्येषां ते-वरणादयः, तेभ्यः-वरणादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अस्मिन्नादिषु, देशे तन्नाम्नि, लुप् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०वरणादिभ्यश्च अस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु प्रत्ययस्य लुप्, तन्नाम्नि देशे।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्यो वरणादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु विहितस्य प्रत्ययस्य लुब् भवति, तन्नाम्नि देशेऽभिधेये।

उदा०-वरणानामदूरभवं नगरम्-वरणाः। शिरीषाणामदूरभवो ग्रामः-शिरीषाः।

वरणाः। पूर्वौ। गोदौ। पूर्वेण गोदौ। अपरेण गोदौ। आलिङ्ग्यायन। पर्णी। शृङ्गी। शल्मलयः। सदाप्वी। वणिकि। वणिक्। जालपद। मथुरा। उज्जयिनी। गया। तक्षशिला। उरशा। आकृत्या। इति वरणादयः। आकृतिगणोऽयम्।।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (वरणादिभ्यः) 'वरणा' आदि प्रातिपदिकों से (च) भी (अस्मिन्०) आदि चार अर्थों में विहित प्रत्यय का (लुप्) लोप होता है, (तन्नाम्नि देशे) यदि वहां तन्नामक देश अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-**वरणानामदूरभवं नगरम्-वरणाः।** वरण (वरना) नामक वृक्षविशेष के समीप का नगर-वरणा। **शिरीषाणामदूरभवो ग्रामः-शिरीषाः।** सिरिस नामक वृक्षों के समीपवर्ती ग्राम-शिरीषा। वर्तमान सिरसा। **रोहितकानामदूरभवं नगरम्-रोहितकम्।** रोहितक (रोहिड़ा) नामक वृक्षों के समीपवर्ती नगर-रोहितक। वर्तमान रोहतक।*

सिद्धि-वरणाः। *यहां बहुवचनान्त 'वरण' शब्द से अदूरभवं अर्थ में विहित 'अण्' प्रत्यय का इस सूत्र से लोप होता है। ऐसे ही-**शिरीषाः, रोहितकम्।***

प्रत्ययस्य लुप्-विकल्पः-

(१७) शर्कराया वा।८२।

प०वि०-शर्करायाः ५।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०-अस्मिन्नादिषु, देशे तन्नाम्नि, लुप् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०शर्कराया अस्मिन्नादिषु प्रत्ययस्य वा लुप् तन्नाम्नि देशे।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् शर्करा-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु विहितस्य प्रत्ययस्य विकल्पेन लुब् भवति, तन्नाम्नि देशेऽभिधेये।

वा ग्रहणं किमर्थं यावता शर्कराशब्दः कुमुदादिषु वराहादिषु च (३।२।८०) पठ्यते, तत्र पाठसामर्थ्यात् प्रत्ययस्य पक्षे श्रवणं भविष्यति ? एवं तर्हि-एतज्ज्ञापयत्याचार्यः शर्कराशब्दादौत्सर्गिकोऽण् भवति, तस्यायं लुब् विकल्प्यते। गणपाठाच्च तयोः श्रवणं भवति, उत्तरसूत्रे च विहितौ ठक्छौ प्रत्ययौ भवतः। तदेवं षड्रूपाणि भवन्ति-

उदा०-शर्करा अस्मिन् देशे सन्तीति-शर्करा (अण्-लुप्)। शार्करः (अण्)। शर्करिकः (ठच्)। शार्करकः (कक्)। शार्करिकः (ठक्)। शर्करीयः (छः)।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (शर्करायाः) शर्करा प्रातिपदिक से (अस्मिन्०) अस्मिन् आदि चार अर्थों में यथाविहित प्रत्यय का (वा) विकल्प से (लुप्) लोप होता है (तन्नाम्नि देशे) यदि वहां तन्नामक देश अर्थ अभिधेय हो।

यहां 'वा' का ग्रहण किसलिये किया है जबकि 'शर्करा' शब्द कुमुदादि और वाराहादि गण (३।२।८०) में पढ़ा है, वहां पाठ होने से विहित प्रत्यय का पक्ष में श्रवण होगा ही। वा-ग्रहण से आचार्य पाणिनि यह ज्ञापित करते हैं कि 'शर्करा' शब्द से जो औत्सर्गिक 'अण्' प्रत्यय होता है उसका यह लुप्-विकल्प है। उक्त गणों में पाठ होने से उन प्रत्ययों का भी श्रवण होता है। उत्तर-सूत्र (३।२।८४) से विहित ठक् और छ दो प्रत्यय भी होते हैं। इस प्रकार निम्नलिखित छः रूप बनते हैं-

*उदा०-**शर्करा अस्मिन् देशे सन्तीति-शर्करा (लुप्)।** शर्करा=रोड़ी (कांकर)। इस देश में है यह-शर्करा (लुप्), शार्कर (अण्), शर्करिक (ठच्), शार्करक (कक्), शार्करिक (ठक्), शर्करीय (छ)। कंकरीला देश।*

सिद्धि-(१) शर्करा। यहां 'शर्करा' शब्द से चातुरर्थिक यथाविहित 'अण्' प्रत्यय का लुप् है।

(२) शार्कर:। यहां 'शर्करा' शब्द से विकल्प पक्ष में चातुरर्थिक यथाविहित 'अण्' प्रत्यय है। 'तद्धितेष्वचामादे:' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है।

(३) शर्करिक:। यहां 'शर्करा' शब्द से 'वुञ्छण्०' (४।२।८०) से कुमुदादीय 'ठच्' प्रत्यय है। 'ठस्येक:' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश होता है।

(४) शार्करक:। यहां 'शर्करा' शब्द से 'वुञ्छण्०' (४।२।८०) से वराहादीय कक् प्रत्यय होता है। 'किति च' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि होती है।

(५) शार्करिक:। यहां 'शर्करा' शब्द से 'ठक्छौ च' (४।२।८४) से ठक् प्रत्यय है। 'ठ्' के स्थान में पूर्ववत् 'इक्' आदेश और पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है।

(६) शर्करीय:। यहां 'शर्करा' शब्द से 'ठक्छौ च' (४।२।८४) से 'छ्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है।

ठक्+छ:-

(१८) ठक्छौ च।८३।

प०वि०-ठक्-छौ १।२ च अव्ययपदम्।

स०-ठक् च छश्च तौ-ठक्छौ (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०-अस्मिन्नादिषु देशे तन्नाम्नि, शर्करायाः इति चानुवर्तते।

अन्वय:-यथासम्भव०शर्कराया अस्मिन्नादिषु ठक्छौ च तन्नाम्नि देशे।

अर्थ:-यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् शर्कराशब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु ठक्छौ प्रत्ययौ च भवत:, तन्नाम्नि देशेऽभिधेये।

उदा०-(ठक्) शर्करा अस्मिन् देशे सन्तीति-शार्करिको देश:। **(छ:)** शर्करीयो देश:।

आर्यभाषा: अर्थ- यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (शर्करायाः) शर्करा प्रातिपदिक से (अस्मिन्०) अस्मिन् आदि चार अर्थों में (ठक्छौ) ठक् और छ प्रत्यय (च) भी होते हैं (तन्नाम्नि देशे) यदि वहां तन्नामक देश अर्थ अभिधेय हो।

उदा०-(ठक्) शर्करा अस्मिन् देशे सन्तीति-शार्करिको देश:। (छ:) शर्करीयो देश:। शर्करा=रोड़ी (कांकर) इसमें है यह-शार्करिक, शर्करीय देश। कंकरीला देश।

सिद्धि- इससे प्रथम सूत्र (४।२।८३) में देख लेवें।

मतुप्–

(१६) नद्यां मतुप्।८४।

प०वि०–नद्याम् ७।१ मतुप् १।१।

अनु०–अस्मिन्नादिषु, देशे तन्नाम्नि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–यथासम्भव०प्रातिपदिकाद् अस्मिन्नादिषु मतुप् तन्नाम्नि देशे नद्याम्।

अर्थः–यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु मतुप् प्रत्ययो भवति, तन्नाम्नि देशे नद्यामभिधेयायाम्।

उदा०–उदुम्बरा अस्यां सन्तीति–उदुम्बरावती नदी। एवम्-मशकावती, वीरणावती, पुष्करावती, इक्षुमती, द्रुमती।

__आर्यभाषाः__ अर्थ–यथासम्भव विभक्ति-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्मिन्०) अस्मिन् आदि चार अर्थों में (मतुप्) मतुप् प्रत्यय होता है (तन्नाम्नि देशे, नद्याम्) यदि वहां तन्नामक देशविशेष नदी अर्थ अभिधेय हो।

*उदा०–**उदुम्बरा अस्यां सन्तीति–उदुम्बरावती नदी।** उदुम्बर=गूलर इसमें हैं यह-उदुम्बरावती नदी। ऐसे ही–**मशकावती।** मच्छरोंवाली नदी। **वीरणावती।** वीरण=उशीर, खसवाली नदी। **पुष्करावती।** पुष्कर=नीलकमलवाली नदी। **इक्षुमती।** इक्षु=ईखवाली नदी। **द्रुमती।** द्रु=वृक्षोंवाली नदी।*

*सिद्धि–**उदुम्बरावती।** उदुम्बर+जस्+मतुप्। उदुम्बर+वत्। उदुम्बरावत्+ङीप्। उदुम्बरावती+सु। उदुम्बरावती।*

*यहां 'उदुम्बर' शब्द से अस्मिन् आदि चार अर्थों में मतुप् प्रत्यय है। '**मादुपधायाश्च०**' (८।२।९) से मतुप् के 'म्' को 'व्' आदेश और '**ढ्गट्दृशवतुषु**' (६।३।८९) से दीर्घ होता है। नदी रूप स्त्रीत्व-विवक्षा में '**उगितश्च**' (४।१।६) से ङीप् प्रत्यय होता है।*

मतुप्–

(२०) मध्वादिभ्यश्च।८५।

प०वि०–मध्वादिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०–मधु आदिर्येषां ते–मध्वादयः, तेभ्यः–मध्वादिभ्यः।

अनु०–अस्मिन्नादिषु, देशे तन्नाम्नि, मतुप् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–यथासम्भव०मध्वादिभ्योऽस्मिन्नादिषु मतुप् तन्नाम्नि देशे।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्यो मध्वादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो-ऽस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु मतुप् प्रत्ययो भवति, तन्नाम्नि देशेऽभिधेये।

उदा०-मधु अस्मिन्नस्तीति मधुमान् देशः। विसान्यस्मिन् सन्तीति-विसवान् देशः, इत्यादिकम्।

मधु। विस। स्थाणु। मुष्टि। हृष्टिं। इक्षु। वेणु। रम्य। ऋक्ष। कर्कन्धु। शमी। किरीर। हिम। किशरा। शर्प्पणा। मरुत्। मरुव। दार्वाघाट। शर। इष्टका। तक्षशिला। शक्ति। आसन्दी। आसुति। शलाका। आमिधी। खडा। वेटा। इति मध्वादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (मध्वादिभ्यः) मधु आदि प्रातिपदिकों से (अस्मिन्०) अस्मिन् आदि चार अर्थों में (मतुप्) मतुप् प्रत्यय होता है (तन्नाम्नि देशे) यदि वहां तन्नामक देश अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-**मधु अस्मिन्नस्तीति मधुमान् देशः।** मधु (शहद) इसमें है यह-मधुमान् देश। **विसान्यस्मिन् सन्तीति-विसवान् देशः।** विसः-कमलनाल-तन्तुओंवाला देश, इत्यादि।*

*सिद्धि-**मधुमान्।** मधु+मतुप्। मधुमत्+सु। मधुमात्+सु। मधुमा+नुम्+त्+सु। मधुमान्। मधुमान्त्+सु। मधुमान्त्+०। मधुमान्त्।*

*यहां मधु शब्द से अस्मिन् आदि चार अर्थों में मतुप् प्रत्यय है। पर और नित्य नुम्-आगम को बाधकर प्रथम '**अत्वसन्तस्य चाधातोः**' (६।४।१४) से अतु-अन्त की उपधा को दीर्घ होता है। तत्पश्चात् '**उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः**' (७।१।७०) से नुम् आगम, '**हल्ङ्याब्भ्यो०**' (६।१।६६) से सु का लोप और '**संयोगान्तस्य लोपः**' (८।२।२३) से तकार का लोप होता है। ऐसे ही-**विसवान्।***

ड्मतुप्-

(२१) कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप्।८६।

प०वि०-कुमुद-नड-वेतसेभ्यः ५।३ ड्मतुप् १।१।

स०-कुमुदश्च नडश्च वेतसश्च ते-कुमुदनडवेतसाः, तेभ्यः-कुमुदनडवेतसेभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अस्मिन्नादिषु, देशे तन्नाम्नि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०कुमुदनडवेतसेभ्योऽस्मिन्नादिषु ड्मतुप्, तन्नाम्नि देशे।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्यः कुमुदनडवेतसेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो-ऽस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु ड्मतुप् प्रत्ययो भवति, तन्नाम्नि देशेऽभिधेये।

उदा०-(**कुमुदः**) कुमुदा अस्मिन् सन्तीति-कुमुद्वान् देशः। (**नडः**) नड्वान् देशः। (**वेतसः**) वेतसवान् देशः।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (कुमुदनडवेतसेभ्यः) कुमुद, नड, वेतस प्रातिपदिकों से (अस्मिन्०) अस्मिन् आदि चार अर्थों में (ड्मतुप्) ड्मतुप् प्रत्यय होता है (तन्नाम्नि देशे) यदि वहां तन्नामक देश अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-**(कुमुद) कुमुदा अस्मिन् सन्तीति-कुमुद्वान्** देशः। कुमुद=सफेद कमल इसमें हैं यह-कुमुद्वान् देश। (नड) **नड्वान्** देशः। नड=सरपतोंवाला देश। **(वेतस) वेतसवान्** देशः। बेतोंवाला देश।*

सिद्धि-कुमुद्वान्। *कुमुद्+जस्+ड्मतुप्। कुमुद्+मत्। कुमुद्+वत्। कुमुद्वत्+सु। कुमुद्वात्+सु। कुमुद्वा+नुम्+त्+सु। कुमुद्वान्त्+०। कुमुद्वान्।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'कुमुद' शब्द से 'अस्मिन्' आदि चार अर्थों में इस सूत्र से 'ड्मतुप्' प्रत्यय होता है। प्रत्यय के डित्त्व-सामर्थ्य से वा०-**'डित्यभस्यापि टेर्लोपः'** (६।४।१४३) से कुमुद के टि-भाग (अ) का लोप होता है। **'झयः'** (५।४।१११) से 'मतुप्' के 'म्' को वकार आदेश होता है। शेष कार्य मधुमान् (४।२।८५) के समान है। ऐसे ही-नड्वान्, वेतस्वान्।*

ड्वलच्-

(२२) नडशादाड् ड्वलच्।८७।

प०वि०-नड्-शादात् ५।१ ड्वलच् १।१।

स०-नडश्च शादश्च एतयोः समाहारः-नडशादम्, तस्मात्-नडशादात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-अस्मिन्नादिषु देशे तन्नाम्नि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०नडशादाभ्याम् अस्मिन्नादिषु ड्वलच् तन्नाम्नि देशे।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाभ्यां नडशादाभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु ड्लवच् प्रत्ययो भवति, तन्नाम्नि देशेऽभिधेये।

उदा०-(**नडः**) नडा अस्मिन् सन्तीति नड्वलो देशः। (**शादः**) शादा अस्मिन् सन्तीति शाद्वलो देशः।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (नडशादात्) नड, शाद प्रातिपदिकों से (अस्मिन्०) अस्मिन् आदि चार अर्थों में (ड्वलच्) ड्वलच् प्रत्यय होता है (तन्नाम्नि देशे) यदि वहां तन्नामक देश अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-(नड) **नडा अस्मिन् सन्तीति नड्वलो देशः।** नड=सरपत इसमें हैं यह-नड्वल देश। (शाद) **शादा अस्मिन् सन्तीति शाद्वलो देशः।** शाद=छोटी घास इसमें हैं यह-शाद्वल देश।*

सिद्धि-नड्वलः। *नड+जस्+ड्वलच्। नड्+वल। नड्वल+सु। नड्वलः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'नड' शब्द से अस्मिन् अर्थ में इस सूत्र से 'ड्वलच्' प्रत्यय है। प्रत्यय के डित् होने से **'वा०-डित्यभस्यापि टेर्लोपः'** (६।४।१४३) से नड के टि-भाग (अ) का लोप हो जाता है। ऐसे ही-**शाद्वलः।***

वलच्-

(२३) शिखाया वलच्।८८।

प०वि०-शिखायाः ५।१ वलच् १।१।

अनु०-अस्मिन्नादिषु, देशे तन्नाम्नि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०शिखाया अस्मिन्नादिषु वलच्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् शिखाशब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु वलच् प्रत्ययो भवति।

मतुप्प्रकरणेऽपि **'दन्तशिखात् संज्ञायाम्'** (५।२।११३) इति शिखाशब्दाद् वलच्प्रत्ययं वक्ष्यति, अतोऽदेशार्थमिदं वचनम्।

उदा०-शिखया निर्वृत्तम्-शिखावलं नगरम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (शिखायाः) शिखा प्रातिपदिक से (अस्मिन्०) अस्मिन् आदि चार अर्थों में (वलच्) वलच् प्रत्यय होता है।*

*मतुप्-प्रत्यय के प्रकरण में **'दन्तशिखात् संज्ञायाम्'** (५।१।११३) से 'शिखा' शब्द से 'वलच्' प्रत्यय का विधान किया जायेगा। अतः यह विधान देश अर्थ में नहीं अपितु निर्वृत्त आदि अर्थों में है।*

*उदा०-**शिखया निर्वृत्तम्-शिखावलं नगरम्।** शिखा नामक नारी के द्वारा बनवाया गया-शिखावल नगर।*

सिद्धि-शिखावलम्। *शिखा+टा+वलच्। शिखावल+सु। शिखावलम्।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'शिखा' शब्द से निर्वृत्त अर्थ में इस सूत्र से **वलच् प्रत्यय है।***

छः–

(२४) उत्करादिभ्यश्छः।८६।

प०वि०–उत्करादिभ्यः ५।३ छः १।१।

स०–उत्कर आदिर्येषां ते–उत्करादयः, तेभ्यः–उत्करादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–अस्मिन्नादिषु, देश तन्नाम्नि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–यथासम्भव०उत्करादिभ्योऽस्मिन्नादिषु छः, तन्नाम्नि देशे।

अर्थः–यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्य उत्करादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु छः प्रत्ययो भवति, तन्नाम्नि देशेऽभिधेये।

उदा०–उत्करोऽस्मिन्नस्तीति–उत्करीयो देशः। सम्फला अस्मिन् सन्तीति–सम्फलीयो देशः, इत्यादिकम्।

उत्कर। संफल। संकर। शफर। पिप्पल। पिप्पलीमूल। अश्मन्। अर्क। पर्ण। सुपर्ण। खलाजिन। इडा। अग्नि। तिक। कितव। आतप। अनेक। पलाश। तृणव। पिचुक। अश्वत्थ। शकाक्षुद्र। भस्त्रा। विशाला। अवरोहित। गर्त्त। शाल। अन्य। जन्या। अजिन। मञ्च। चर्म्मन्। क्रोश। शान्त। खदिर। शर्पणाय। श्यावनाय। नैव। बक। पन्त। वृक्ष। इन्द्रवृक्ष। आर्द्रवृक्ष। अर्जुनवृक्ष। इत्युत्करादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ–यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (उत्करादिभ्यः) उत्कर आदि प्रातिपदिकों से (अस्मिन्०) अस्मिन् आदि चार अर्थों (छः) छ प्रत्यय होता है (तन्नाम्नि देशे) यदि वहां तन्नामक देश अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०–**उत्करोऽस्मिन्नस्तीति–उत्करीयो देशः।** उत्कर=कूड़ा-कर्कट इसमें है वह–उत्करीय देश। **सम्फला अस्मिन् सन्तीति–सम्फलीयो देशः।** सम्फल=मेढे (मेष) इसमें है वह–सम्फलीय देश, इत्यादि।*

*सिद्धि–**उत्करीयः।** उत्कर+जस्+छ। उत्कर्+ईय। उत्करीय+सु। उत्करीयः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'उत्कर' शब्द से 'अस्मिन्' अर्थ में इस सूत्र से 'छ्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है। ऐसे ही–**सम्फलीयः।***

छः (कुक्)–

(२५) नडादीनां कुक् च।९०।

प०वि०–नडादीनाम् ६।३ कुक् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-नड आदिर्येषां ते-नडादयः, तेषाम्-नडादीनाम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अस्मिन्नादिषु, देशे तन्नाम्नि, छ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०नडादिभ्योऽस्मिन्नादिषु छः कुक् च तन्नाम्नि देशे।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्यो नडादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु छः प्रत्ययो भवति, कुक् चागमो भवति, तन्नाम्नि देशेऽभिधेये।

उदा०-नडा अस्मिन् सन्तीति-नडकीयो देशः। प्लक्षकीयो देशः, इत्यादिकम्।

नड। प्लक्ष। विल्व। वेणु। वतस। तृण। इक्षु। काष्ठ। कपोत। कुञ्चाया ह्रस्वत्वं च। तक्षन्नलोपश्च। इति नडादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (नडादीनाम्) नड आदि प्रातिपदिकों से (अस्मिन्०) अस्मिन् आदि चार अर्थों में (छः) छ प्रत्यय होता है (कुक् च) और उन्हें कुक् आगम होता है (तन्नाम्नि देशे) यदि वहां तन्नामक देश अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-**नडा अस्मिन् सन्तीति-नडकीयो देशः।** नड=सरपत (सरकण्डा) यहां हैं यह-नडकीय देश। **प्लक्षकीयो देशः।** प्लक्ष=पिलखण यहां हैं यह-प्लक्षकीय देश।*

*सिद्धि-**नडकीयः।** नड+जस्+छ। नड+कुक्+ईय। नड+क्+ईय। नडकीय+सु। नडकीयः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'नड' शब्द से अस्मिन् अर्थ में इस सूत्र से 'छ्' प्रत्यय और 'नड' शब्द को 'कुक्' आगम है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है। ऐसे ही-**प्लक्षकीयो देशः।***

इति चातुरर्थिकप्रत्ययप्रकरणम्।

पूर्वशेषार्थप्रत्ययप्रकरणम्

शेषार्थ-अधिकारः—

(१) शेषे।६१।

प०वि०-शेषे ७।१ अपत्यादिभ्यश्चतुरर्थपर्यन्तेभ्यो योऽन्योऽर्थः स शेषः।

अर्थः-इतोऽग्रे वक्ष्यमाणाः प्रत्ययाः शेषेष्वर्थेषु भवन्तीत्यधिकारोऽयम्। इतः प्रभृति **'तस्येदम्'** (४।३।१२०) इति यावद् येऽर्थास्तेषु वक्ष्यमाणाः प्रत्यया भवन्तीत्यर्थः।

वक्ष्यति-**'राष्ट्रावारपाराद् घखौ'** (४।३।९३) इति। तत्र राष्ट्रशब्दात् शेषेष्वर्थेषु घः प्रत्ययो भवति। तद्यथा-राष्ट्रे भवो राष्ट्रियः, राष्ट्रादागतो राष्ट्रियः, राष्ट्रस्यायं राष्ट्रियः।

आर्यभाषाः *अर्थ-इससे आगे कहे जानेवाले प्रत्यय (शेषे) शेष अर्थों में होते हैं, यह अधिकार सूत्र है। अर्थात् यहां से लेकर **'तस्येदम्'** (४।३।१२०) तक जो अर्थ हैं उनमें वक्ष्यमाण प्रत्यय होते हैं।*

*जैसे **'राष्ट्रावारपाराद् घखौ'** (४।३।९३) से 'राष्ट्र' शब्द से कहा 'घ' प्रत्यय शेष अर्थों में होता है-**राष्ट्रे भवो राष्ट्रियः।** राष्ट्र में होनेवाला-राष्ट्रिय। **राष्ट्रादागतो राष्ट्रियः।** राष्ट्र से आया हुआ राष्ट्रिय। **राष्ट्रस्यायं राष्ट्रियः।** राष्ट्र का यह-राष्ट्रिय।*

सिद्धि-राष्ट्रियः। *राष्ट्र+ङि+घ। राष्ट्र+इय। राष्ट्रिय+सु। राष्ट्रियः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'राष्ट्र' शब्द से वक्ष्यमाण **'राष्ट्रावारपाराद् घखौ'** (४।२।९३) से 'घ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश होता है।*

घः+खः-

(२) राष्ट्रावारपाराद् घखौ।९२।

प०वि०-राष्ट्र-अवारपारात् ५।१ घ-खौ १।१।

स०-अवारं च पारं च एतयोः समाहारः- अवारपारम्, राष्ट्रं च अवारपारं च एतयोः समाहारः-राष्ट्रावारपारम्, तस्मात्-राष्ट्रावारपारात् (समाहारद्वन्द्वः)। घश्च खश्च तौ-घखौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-शेषे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०राष्ट्रावारपारात् शेषे घखौ।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाभ्यां राष्ट्रवारपाराभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां शेषेष्वर्थेषु यथासंख्यं घखौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-**(घः)** राष्ट्रे भवो राष्ट्रियः। **(खः)** अवारपारे भवोऽवार-पारीणः। **विगृहीतादपीष्यते**-अवारेभवोऽवारीणः। पारे भवः पारीणः। **विपरीताच्चेष्यते**-पारावारे भवः पारावारीणः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-यथासम्भव विभक्ति समर्थ (राष्ट्रावारपारात्) राष्ट्र और अवारपार प्रातिपदिकों से यथासंख्य (घखौ) घ और ख प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-(घ) **राष्ट्रे भवो राष्ट्रियः।** राष्ट्र में होनेवाला राष्ट्रिय। (ख) **अवारपारे भवोऽवारपारीणः।** अवार=निकटवर्ती तट और पार=दूरवर्ती तट पर होनेवाला-अवारपारीण। विगृहीत (असमस्त) अवार और पार शब्दों से भी 'ख' प्रत्यय अभीष्ट है-**अवारे भवोऽवारीणः।** निकटवर्ती तट पर होनेवाला। **पारे भवः पारीणः।** परवर्ती तट पर होनेवाला। विपरीत से भी प्रत्यय अभीष्ट है-**पारावारे भवः पारावारीणः।** पार=परवर्ती तट पर और अवार=निकटवर्ती तट पर होनेवाला।*

*सिद्धि-(१) **राष्ट्रियः।** इसकी सिद्धि पूर्ववत् (४।२।९२) है।*

*(२) **अवारपारीणः।** अवारपार+ङि+ख। अवारपार+ईन। अवारपारीण+सु। अवारपारीणः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'अवारपार' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। '**आयनेय०**' (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश होता है। '**अट्कुप्वाङ्०**' (८।४।२) से णत्व होता है।*

(३) विगृहीत 'अवारपार' शब्द से तथा विपरीत 'पारावार' शब्द से अवारीणः, पारीणः, पारावारीणः पद सिद्ध करें।

***विशेष**-'अवारपारम्' शब्द में '**अल्पाच्तरम्**' (२।२।३४) से अल्पाच्तर 'पार' शब्द का पूर्वनिपात होना चाहिये किन्तु यहां बह्वच् 'अवार' शब्द का पूर्वनिपात किया गया है। इस लक्षण व्यभिचार से विगृहीत 'अवारपार' शब्द से तथा विपरीत 'पारावार' शब्द से भी 'ख'- प्रत्यय का विधान किया जाता है।*

यः+खञ्-

(३) ग्रामाद् यखञौ।६३।

प०वि०-ग्रामात् ५।१ य-खञौ १।२।

स०-यश्च खञ् च तौ-यखञौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-शेषे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव० ग्रामात् शेषे यखञौ।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् ग्रामात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु यखञौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(यः) ग्रामे जातो ग्राम्यः। **(खञ्)** ग्रामे जातो **ग्रामीणः।**

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (ग्रामात्) ग्राम प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (यखञौ) य और खञ् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-(य) **ग्रामे जातो ग्राम्यः।** ग्राम में पैदा हुआ-ग्राम्य। (खञ्) **ग्रामे जातो ग्रामीणः।** ग्राम में पैदा हुआ-ग्रामीण।*

*सिद्धि-(१) **ग्राम्यः।** ग्राम+ङि+य। ग्राम्+य। ग्राम्य+सु। ग्राम्यः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'ग्राम' शब्द से जात आदि शेष अर्थों में इस सूत्र से 'य' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

*(२) **ग्रामीणः।** ग्राम+ङि+खञ्। ग्राम्+ईन। ग्रामीण+सु। ग्रामीणः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'ग्राम' शब्द से जात आदि शेष अर्थों में इस सूत्र से 'खञ्' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश और **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि होती है। **'अट्कुप्वाङ्०'** (८।४।२) से णत्व होता है।*

ढकञ्–

(४) कत्र्यादिभ्यो ढकञ्।।६४।।

प०वि०–कत्र्यादिभ्यः ५।३ ढकञ् १।१।

स०–कत्रिरादिर्येषां ते–कत्र्यादयः, तेभ्यः–कत्र्यादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–शेषे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–यथासम्भ०कत्र्यादिभ्यः शेषे ढकञ्।

अर्थः–यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्यः कत्र्यादिभ्यः, प्रातिपदिकेभ्यः शेषेष्वर्थेषु ढकञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–कत्त्रौ भवः कात्रेयकः। उम्भौ भव औम्भेयकः, इत्यादिकम्।

कत्रि। उम्भि। पुष्कर। पुष्कल। मोदन। कुम्भी। कुण्डिन। नगर। वञ्जी। भक्ति। माहिष्मती। चर्मण्वती। वर्मती। ग्राम। उख्या। कुल्यायाः यलोपश्च। इति कत्र्यादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (कत्र्यादिभ्यः) कत्रि आदि प्रातिपदिकों से (शेषे) शेष अर्थों में (ढकञ्) ढकञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**कत्त्रौ भवः कात्त्रेयकः।** तीन कुत्सित पुरुषों में रहनेवाला-कात्त्रेयक। **उम्भौ भव औम्भेयकः।** उम्भि=कैद में रहनेवाला-औम्भेयक, इत्यादि।*

सिद्धि-कात्त्रेयकः । कत्त्रि+ङि+ढकञ् । कात्त्र्+एय् अक । कात्त्रेयक+सु । कात्त्रेयकः ।

यहां सप्तमी-समर्थ 'कत्त्रि' शब्द से भव-आदि शेष अर्थों में इस सूत्र से 'ढकञ्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश होता है। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-औम्भेयकः ।

***विशेष**-कुत्सितास्त्रय इति 'कत्त्रयः' यहां 'कोः कत् तत्पुरुषेऽचि' (६।३।१००) से इस सूत्रोक्त निपातन से 'कु' के स्थान में 'कत्' आदेश होता है। कत्त्रि=तीन कुत्सित।*

स्वामी विरजानन्द सरस्वती कहा करते थे-"सूत्रक्रम तोड़कर अध्ययन मार्ग बिगाड़नेवाले भट्टोजि आदि प्रथम कुत्सित हैं। उनके ग्रन्थ दूसरे कुत्सित ग्रन्थ हैं। उन ग्रन्थों को पढ़ने-पढ़ानेहारे तीसरे कुत्सित हैं। ये तीनों मिलकर कुत्सितत्रय अथवा 'कत्त्रि' कहाते हैं।"

ढकञ्-

(५) कुलकुक्षिग्रीवाभ्यः श्वास्यलङ्कारेषु।।६५।।

प०वि०-कुल-कुक्षि-ग्रीवाभ्यः ५।३ श्व-असि-अलङ्कारेषु ७।३।

स०-कुलं च कुक्षिश्च ग्रीवा च ताः-कुलकुक्षिग्रीवाः, ताभ्यः-कुलकुक्षिग्रीवाभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। श्वा च असिश्च अलङ्कारश्च ते-श्वास्यलङ्काराः तेषु श्वास्यलङ्कारेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-शेषे, ढकञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०कुलकुक्षिग्रीवाभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः शेषेष्वर्थेषु ढकञ् प्रत्ययो भवति, यथासंख्यं श्वास्यलङ्कारेष्वभिधेयेषु।

उदा०-**(कुलम्)** कुले भवः कौलेयकः श्वा। **(कुक्षिः)** कुक्षौ भवः कौक्षेयकोऽसिः। **(ग्रीवा)** ग्रीवायां भवो ग्रैवेयकोऽलङ्कारः।

***आर्यभाषाः** अर्थ:-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (कुलकुक्षिग्रीवाभ्यः) कुल, कुक्षि, ग्रीवा प्रातिपदिकों से (शेषे) शेष अर्थों में (ढकञ्) ढकञ् प्रत्यय होता है, (श्वास्यलङ्कारेषु) यदि वहां यथासंख्य श्वा=कुत्ता, असि=तलवार, अलङ्कार=जेवर अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-(कुल) कुले भवः कौलेयकः श्वा। कुल=घर में रहनेवाला शिकारी कुत्ता-कौलेयक। (कुक्षि) कुक्षौ भवः कौक्षेयकोऽसिः। कुक्षि=म्यान में रहनेवाली तलवार-कौक्षेयक। (ग्रीवा) ग्रीवायां भवो ग्रैवेयकः। ग्रीवा=गर्दन में रहनेवाला अलङ्कार (जेवर) ग्रैवेयक=हार, कंठी आदि।

सिद्धि-कौलेयकः। कुल+ङि+ढकञ्। कौल+एय् अक। कौलेयक+सु। कौलेयकः।

*यहां सप्तमी-समर्थ 'कुल' शब्द से 'भव' आदि शेष अर्थों में इस सूत्र से 'ढकञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य **'कात्त्रेयकः'** (४।२।९४) के समान है। ऐसे ही-**कौक्षेयकः, ग्रैवेयकः।***

ढक्-

(६) नद्यादिभ्यो ढक्।९६।

प०वि०-नदी-आदिभ्यः ५।३ ढक् १।१।

स०-नदी आदिर्येषां ते-नद्यादयः, तेभ्यः-नद्यादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-शेषे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव० नद्यादिभ्यः शेषे ढक्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्यो नद्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः शेषेष्वर्थेषु ढक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-नद्यां भवं नादेयम्। मह्यां भवं माहेयम्। वाराणस्यां भवं वाराणसेयम्, इत्यादिकम्।

नदी। मही। वाराणसी। श्रावस्ती। कौशाम्बी। नवकौशाम्बी। काशफरी। खादिरी। पूर्वनगरी। पावा। मावा। साल्वा। दार्वा। वासेनकी। वडवाया वृषे। इति नद्यादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (नद्यादिभ्यः) नदी-आदि प्रातिपदिकों से (शेषे) शेष अर्थों में (ढक्) ढक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**नद्यां भवं नादेयम्।** नदी में रहनेवाला-नादेय। **मह्यां भवं माहेयम्।** मही=पृथ्वी पर रहनेवाला-माहेय। **वाराणस्यां भवं वाराणसेयम्।** वाराणसी=बनारस में रहनेवाला-वाराणसेय।*

*सिद्धि-**नादेयम्।** नदी+ङि+ढक्। नाद्+एय्। नादेय+सु। नादेयम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'नदी' शब्द से शेष 'भव' अर्थ में इस सूत्र से 'ढक्' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश होता है। **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के ईकार का लोप होता है। ऐसे ही-**माहेयम्, वाराणसेयम्।***

त्यक्—

(७) दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक्।।६७।।

प०वि०–दक्षिणा-पश्चात्-पुरस: ५।१ त्यक् १।१।

स०–दक्षिणा च पश्चाच्च पुरश्च एतेषां समाहार:-दक्षिणापश्चात्पुर:, तस्मात्–दक्षिणापश्चात्पुरस: (समाहारद्वन्द्व:)।

अनु०–शेषे इत्यनुवर्तते।

अन्वय:–यथासम्भव०दक्षिणापश्चात्पुरस: शेषे त्यक्।

अर्थ:–यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्यो दक्षिणापश्चात्पुरोभ्य: प्रातिपदिकेभ्य: शेषेष्वर्थेषु त्यक् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(दक्षिणा)** दक्षिणा भवो दाक्षिणात्य:। **(पश्चात्)** पश्चाद् भव: पाश्चात्य:। **(पुर:)** पुरो भव: पौरस्त्य:।

आर्यभाषा: *अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (दक्षिणापश्चात्पुरस:) दक्षिणा, पश्चात्, पुरस् प्रातिपदिकों से (शेषे) शेष अर्थों में (त्यक्) त्यक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०–(दक्षिणा) **दक्षिणा भवो दाक्षिणात्य:।** दक्षिण दिशा में होनेवाला-दाक्षिणात्य। (पश्चात्) **पश्चाद् भव: पाश्चात्य:।** पश्चिम दिशा में होनेवाला-पाश्चात्य। (पुर:) **पुरो भव: पौरस्त्य:।** पूर्व दिशा में होनेवाला-पौरस्त्य।*

सिद्धि-दाक्षिणात्य:। *दक्षिण+आच्। दक्षिणा+ङि+त्यक्। दाक्षिण+त्य। दाक्षिणात्य+सु। दाक्षिणात्य:।*

*यहां प्रथम 'दक्षिण' शब्द से '**दक्षिणादाच्**' (५।३।३६) से आच् प्रत्यय होता है। तत्पश्चात् अव्यय 'दक्षिणा' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से त्यक् प्रत्यय है। '**किति च**' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि है।*

*यहां पश्चात् और पुरस् इन अव्यय शब्दों के साहचर्य से आच्-प्रत्ययान्त अव्यय 'दक्षिणा' शब्द का ग्रहण किया जाता है, प्रवीणवाची 'दक्षिणा' शब्द का नहीं। ऐसे ही–**पाश्चात्य:, पौरस्त्य:।***

ष्फक्—

(८) कापिश्या: ष्फक्।६८।

प०वि०–कापिश्या: ५।१ ष्फक् १।१।

अनु०–शेषे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०कापिश्याः शेषे ष्फक्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् कापिशीशब्दात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु ष्फक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-कापिश्यां भवं कापिशायनं मधु। कापिश्यां भवा कापिशायनी द्राक्षा।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (कापिश्याः) कापिशी प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (ष्फक्) ष्फक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**कापिश्यां भवं कापिशायनं मधु।** कापिशी नगरी में होनेवाला-**कापिशायन** मधु (शहद)। **कापिश्यां भवा कापिशायनी द्राक्षा।** कापिशी नगरी में होनेवाली-**कापिशायनी** दाख (अंगूर)।*

सिद्धि-कापिशायनम्। *कापिशी+ङि+ष्फक्। कापिश्+आयन। कापिशायन+सु। कापिशायनम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'कापिशी' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से ष्फक् प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'फ्' के स्थान में 'आयन्' आदेश होता है। **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि होती है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के ईकार का लोप होता है। प्रत्यय के षित् होने से स्त्रीत्व-विवक्षा में **'षिद्गौरादिभ्यश्च'** (४।१।४१) से ङीष् प्रत्यय होता है-**कापिश्यायनी।***

***विशेष**-**कापिशी**-यह नगरी प्राचीनकाल में अति प्रसिद्ध राजधानी थी। काबुल से लगभग ५० मील उत्तर में इसके प्राचीन अवशेष मिले हैं। यहां से प्राप्त एक शिलालेख में इसे 'कापिशा' कहा गया है। आजकल इसका नाम 'बेग्राम' है। (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ४०-४१)।*

अण्+ष्फक्-

(६) रङ्कोरमनुष्येऽण् च।९९।

प०वि०-रङ्कोः ५।१ अमनुष्ये ७।१ अण् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-न मनुष्य इति अमनुष्यः, तस्मिन्-अमनुष्ये (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-शेषे, ष्फक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०रङ्कोः शेषेऽण् ष्फक् चाऽमनुष्ये।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् रङ्कुशब्दात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु अण् ष्फक् च प्रत्ययो भवति, अमनुष्येऽभिधेये।

उदा०-रङ्कोरागतो राङ्कवो गौ: (अण्)। राङ्कवायणो गौ: (ष्फक्)।

आर्यभाषाः अर्थ-*यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (रङ्को:) रङ्कु प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (अण्) अण् (च) और (ष्फक्) ष्फक् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-रङ्कोरागतो राङ्कवो गौ: (अण्)। राङ्कवायणो गौ: (ष्फक्)। रङ्कु नामक जनपद से आया हुआ प्रसिद्ध बैल-राङ्कव वा राङ्कवायण।

सिद्धि-(१) राङ्कव:। रङ्कु+ङसि+अण्। राङ्कवो+अ। राङ्कव+सु। राङ्कव:।

यहां पञ्चमी-समर्थ 'रङ्कु' शब्द से 'आगत:' शेष अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। 'तद्धितेष्वचामादे:' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि, 'ओर्गुण:' (६।४।१४६) से गुण और 'एचोऽयवायाव:' (६।१।७५) से 'अव्' आदेश होता है।

(२) राङ्कवायण:। रङ्कु+ङसि+ष्फक्। राङ्को+आयन। राङ्कवायन+सु। राङ्कवायण:।

यहां पञ्चमी-समर्थ 'रङ्कु' शब्द से पूर्ववत् 'ष्फक्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'फ्' के स्थान में 'आयन्' आदेश होता है। 'अट्कुप्वाङ्०' (८।४।२) से णत्व होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

विशेष-*(१) रंकु जनपद की पहचान निश्चित नहीं। सम्भवत: यह अलकनन्दा और पिंडर के पूर्व का प्रदेश था, जहां मल्ला-जुहार और मल्लादानपुर की भाषा 'रंका' कहाती है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ७०)।*

(२) संस्कृत भाषा में 'गौ:' शब्द पुंलिङ्ग में बैल का वाचक और स्त्रीलिङ्ग में गाय का वाचक होता है। यहां 'गौ:' शब्द बैल का वाचक है।

(३) यहां 'अमनुष्य' कहने से मनुष्य वर्जित बैल आदि प्राणी का ग्रहण किया जाता है।

यत्-

(१०) द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत्।१००।

प०वि०-द्यु-प्राक्-अपाक्-उदक्-प्रतीच: ५।१ यत् १।१।

स०-द्यौश्च प्राक् च अपाक् च उदक् च प्रत्यक् च एतेषां समाहार:-द्युप्रागपागुदक्प्रत्यक्, तस्मात्-द्युप्रागपागुदक्प्रतीच: (समाहारद्वन्द्व:)।

अनु०-शेषे इत्यनुवर्तते।

अन्वय:-यथासम्भव०द्युप्रागपागुदक्प्रतीच: शेषे यत्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्यो द्युप्रागपागुदक्प्रत्यग्भ्यः प्रातिपदिकेभ्यः शेषेष्वर्थेषु यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(दिव्)** दिवि भवं दिव्यम्। **(प्राक्)** प्राचि भवं प्राच्यम्। **(अपाक्)** अपाचि भवम् अपाच्यम्। **(उदक्)** उदीचि भवम् उदीच्यम्। **(प्रत्यक्)** प्रतीचि भवं प्रतीच्यम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (द्युप्रागपागुदक्प्रतीचः) दिव्, प्राक्, अपाक्, उदक्, प्रत्यक् प्रातिपदिकों से (शेषे) शेष अर्थों में (यत्) यत् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(दिव्) दिवि भवं दिव्यम्।** द्युलोक में होनेवाला-दिव्य। **(प्राक्) प्राचि भवं प्राच्यम्।** पूर्व दिशा में होनेवाला-प्राच्य। **(अपाक्) अपाचि भवम् अपाच्यम्।** दक्षिण दिशा में होनेवाला-अपाच्य। **(उदक्) उदीचि भवम् उदीच्यम्।** उत्तर दिशा में होनेवाला-उदीच्य। **(प्रत्यक्) प्रतीचि भवं प्रतीच्यम्।** पश्चिम दिशा में होनेवाला-प्रतीच्यम्।*

*सिद्धि-(१) **दिव्यम्।** दिव्+ङि+यत्। दिव्य+सु। दिव्यम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'दिव्' शब्द से 'भव' शेष अर्थ में इस सूत्र से यत् प्रत्यय है। सूत्र में 'दिव्' शब्द का 'दिव उत्' (६।१।१२७) से विहित उत्त्व-आदेशपूर्वक निर्देश किया गया है-**द्यु।***

*(२) **प्राच्यम्।** प्र+अच्+यत्। प्र+०च्+य। प्रा+च्+य। प्राच्य+सु। प्राच्यम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'प्राच्' शब्द से 'भव' शेष अर्थ में इस सूत्र से यत् प्रत्यय है। 'अचः' (६।४।१३८) से 'अच्' के अकार का लोप और 'चौ' (६।३।१३७) से उपसर्ग को दीर्घ होता है। ऐसे ही-**अपाच्यम्, प्रतीच्यम्।***

*(३) **उदीच्यम्।** उद्+अच्+यत्। उद्+ईच्+य। उदीच्य+सु। उदीच्यम्।*

यहां 'उद ईत्' (६।४।१४०) से 'अच्' के 'अ' को 'ईकार' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

'प्राक्' यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'अञ्चु गतौ' (रुधा०प०) धातु से 'ऋत्विग्दधृक्०' (३।२।५९) से क्विन् प्रत्यय है। 'प्राक्' आदि शब्दों की विशेष सिद्धि वहां देख लेवें।

ठक्-

(११) कन्थायाष्ठक्।१०१।

प०वि०-कन्थायाः ५।१ ठक् १।१।

अनु०-शेषे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०कन्थायाः शेषे ठक्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् कन्थाशब्दात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-कन्थायां भवः कान्थिकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (कन्थायाः) कन्था* ***प्रातिपदिक*** *से (शेषे) शेष अर्थों में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-****कन्थायां भवः कान्थिकः।*** *कन्था=गुदड़ी में रहनेवाला-कान्थिक (तपस्वी)।*

सिद्धि-कान्थिकः। *कन्था+ङि+ठक्। कान्थ्+इक। कान्थिक+सु। कान्थिकः।*

यहां सप्तमी-समर्थ 'कन्था' शब्द से भव शेष अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। ***'ठस्येकः'*** *(७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश,* ***'किति च'*** *(७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और* ***'यस्येति च'*** *(६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है।*

वुक्—

(१२) वर्णौ वुक्।१०२।

प०वि०-वर्णौ ७।१ वुक् १।१।

अनु०-शेषे, कन्थाया इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०वर्णौ कन्थायाः शेषे वुक्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् वर्णौ=वर्णुदेशवाचिनः कन्थाशब्दात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु वुक् प्रत्ययो भवति। वर्णुर्नाम नदः, तत्समीपो देशो वर्णुः।

उदा०-कन्थायां भवः कान्थकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (वर्णौ) वर्णु देशवाची (कन्थायाः) कन्था प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (वुक्) वुक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-****कन्थायां भवः कान्थकः।*** *वर्णु देश की कन्था=गुदड़ी मे रहनेवाला अर्थात् उसे धारण करनेवाला-कान्थक।*

सिद्धि-कान्थकः। *कन्था+ङि+वुक्। कान्थ्+अक। कान्थक+सु। कान्थकः।*

यहां वर्णुदेशवाची 'कन्था' शब्द से 'भव' शेष अर्थ में इस सूत्र से 'वुक्' प्रत्यय है। ***'युवोरनाकौ'*** *(७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश,* ***'किति च'*** *(७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और* ***'यस्येति च'*** *(६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है।*

विशेष–*सिन्धु की पच्छिमी सहायक नदी कुर्रम के किनारे निचले हिस्से में 'बन्नू' की दून है। इसका वैदिक नाम 'क्रमु' था। इसका ऊपरी पहाड़ी प्रदेश आज भी कुर्रम कहलाता है और निचला मैदानी भाग बन्नू। पाणिनि ने इसी को वर्णुनद के नाम से प्रसिद्ध वर्णु देश कहा है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ५१)।*

त्यप्–

(१३) अव्ययात् त्यप्।१०३।

प०वि०–अव्ययात् ५।१ त्यप् १।१।

अनु०–शेषे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–यथासम्भव०अव्ययात् शेषे त्यप्।

अर्थः–यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् अव्ययात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु त्यप् प्रत्ययो भवति।

"अमेहक्वतसित्रेभ्यस्त्यब्विधिर्योऽव्ययात् स्मृतः"।

उदा०–**(अमः)** अमा भवोऽमात्यः। **(इह)** इह भव इहत्यः। **(क्व)** क्व भवः क्वत्यः। **(तसिः)** इतो भव इतस्त्यः। **(त्रः)** तत्र भवस्तत्रत्यः। यत्र भवो यत्रत्यः।

आर्यभाषाः *अर्थ–यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (अव्ययात्) अव्यय-संज्ञक प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (त्यप्) त्यप् प्रत्यय होता है।*

यहां अव्यय से विधान किया गया 'त्यप्' प्रत्यय, अमा, इह, क्व, तसि-प्रत्ययान्त और त्रल्-प्रत्ययान्त शब्दों से किया जाता है।

*उदा०–**(अमा) अमा भवोऽमात्यः।** अमा=समीप में रहनेवाला-अमात्य। **(इह)** इह भव **इहत्यः।** इह=इस जगत् में रहनेवाला-इहत्य। **(क्व)** क्व भवः **क्वत्यः।** क्व=कहां रहनेवाला-क्वत्य। **(तसि) इतो भव इतस्त्यः।** इधर से होनेवाला-इतस्त्य। **(त्रल्)** तत्र **भवस्तत्रत्यः।** वहां होनेवाला-तत्रत्य। यत्र **भवो यत्रत्यः।** जहां होनेवाला-यत्रत्य।*

*सिद्धि-(१) **अमात्यः।** अमा+सु+त्यप्। अमा+त्य। अमात्य+सु। अमात्यः।*

*यहां अव्यय-संज्ञक 'अमा' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'त्यप्' प्रत्यय है। 'अमा' शब्द का स्वरादिगण में पाठ होने से **'स्वरादिनिपातमव्ययम्'** (१।१।३६) से अव्यय संज्ञा है। 'अमा' शब्द समीपार्थक है।*

*(२) **'इहत्यः'** आदि पदों में पूर्ववत् त्यप् प्रत्यय है। 'इह' आदि शब्द तद्धित-प्रत्ययान्त होने से **'तद्धितश्चासर्वविभक्तिः'** (१।१।३७) से इनकी अव्यय-संज्ञा है।*

त्यप्-विकल्पः–

(१४) ऐषमोह्यःश्वसोऽन्यतरस्याम्।१०४।

प०वि०–ऐषमः-ह्यः-श्वसः ५।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०–ऐषमश्च ह्यश्च श्वश्च एतेषां समाहारः-ऐषमोह्यःश्वः, तस्मात्-ऐषमोह्यःश्वसः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–शेषे, त्यप् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–यथासम्भव०ऐषमोह्यःश्वसः शेषेऽन्यतरस्यां त्यप्।

अर्थः–यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्य ऐषमोह्यःश्वोभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः शेषेष्वर्थेषु विकल्पेन त्यप् प्रत्ययो भवति, पक्षे च ट्युट्युलौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०–(**ऐषमः**) ऐषमसि भवम् ऐषमस्त्यम् (त्यप्)। ऐषमस्तनम् (ट्युः+ट्युल्)। (**ह्यः**) ह्यो भवं ह्यस्त्यम् (त्यप्) ह्यस्तनम्। (ट्युः+ट्युल्)। (**श्वः**) श्वो भवं श्वस्त्यम्। श्वस्तनम् (ट्युः+ट्युल्)।

आर्यभाषाः *अर्थ–यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (ऐषमोह्यःश्वसः) ऐषमस्, ह्यस्, श्वस् प्रातिपदिकों से (शेषे) शेष अर्थों में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (त्यप्) त्यप् प्रत्यय होता है और पक्ष में ट्यु और ट्युल् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०–(ऐषमः) **ऐषमसि भवम् ऐषमस्त्यम् (त्यप्)। ऐषमस्तनम् (ट्युः+ट्युल्)।** इस वर्ष में होनेवाला-ऐषमस्त्य वा ऐषमस्तन। (ह्यः) **ह्यो भवं ह्यस्त्यम् (त्यप्)। ह्यस्तनम् (ट्युः+ट्युल्)।** अतीत कल में हुआ-ह्यस्त्य वा ह्यस्तन। (श्वः) **श्वो भवं श्वस्त्यम्। श्वस्तनम् (ट्युः+ट्युल्)।** आगामी कल में होनेवाला-श्वस्त्य वा श्वस्तन।*

*सिद्धि-(१) **ऐषमस्त्यम्।** ऐषमस्+ङि+त्यप्। ऐषमस्+त्य। ऐषमस्त्य+सु। ऐषमस्त्यम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'ऐषमस्' शब्द से 'भव' शेष अर्थ में इस सूत्र से 'त्यप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**ह्यस्त्यम्, श्वस्त्यम्।***

*(२) **ऐषमस्तनम्।** ऐषमस्+ट्यु। ऐषमस्+तुट्+अन। ऐषमस्+त्+अन। ऐषमस्तन+सु। ऐषमस्तनम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'ऐषमस्' शब्द से 'भव' शेष अर्थ में, विकल्प पक्ष में '**सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च**' (४।३।२३) से 'ट्यु' प्रत्यय और उसे 'तुट्'*

*आगम होता है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'यु' के स्थान में 'अन' आदेश होता है। ऐसे ही-**ह्यस्तनम्, श्वस्तनम्।***

विशेष**-ट्यु और ट्युल् प्रत्ययान्त शब्द में स्वर में भिन्नता होती है। 'ट्यु' प्रत्यय 'आद्युदात्तश्च' (३।१।३) से आद्युदात्त होता है-**ऐषमस्तनम्** और ट्युल्-प्रत्ययान्त पद 'लिति' (६।१।१८७) से प्रत्यय से पूर्व अच् उदात्त स्वरवान् होता है-**ऐषमस्तनम्।

अञ्+ञः-

(१५) तीररूप्योत्तरपदादञ्ञौ।१०५।

प०वि०-तीर-रूप्योत्तरपदात् ५।१ अञ्ञौ १।२।

स०-तीरं च रूप्यं च एतयोः समाहारः-तीररूप्यम्,तीररूप्यमुत्तरपदं यस्य तत्-तीररूप्योत्तरपदम्, तस्मात्-तीररूप्योत्तरपदात् (समाहारद्वन्द्व-गर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-शेषे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०तीररूप्योत्तरपदात् शेषेऽञ्ञौ।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् तीरोत्तरपदाद् रूप्योत्तरपदाच्च प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु यथासंख्यम् अञ्-ञौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(**तीरम्**) काकतीरे भवं काकतीरम् (अञ्)। पल्वलतीरे भवं पाल्वलतीरम् (अञ्)। (**रूप्यम्**) वृकरूप्ये भवं वार्करूप्यम् (ञः)। शिवरूप्ये भवं शैवरूप्यम्।

***आर्यभाषाः** **अर्थ**-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (तीररूप्योत्तरपदात्) तीर-उत्तरपद और रूप्य-उत्तरपदवाले प्रातिपदिकों से (शेषे) शेष अर्थों में यथासंख्य (अञ्ञौ) अञ् और ञ प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-(तीर) **काकतीरे भवं काकतीरम् (अञ्)।** काकतीर पर रहनेवाला-काकतीर। **पल्वलतीरे भवं पाल्वलतीरम् (अञ्)।** पल्वल=छोटे तालाब के तट पर रहनेवाला-पाल्वलतीर। (रूप्य) **वृकरूप्ये भवं वार्करूप्यम् (ञः)।** वृक के सिक्के पर होनेवाला चिह्न-वार्करूप्य। **शिवरूप्ये भवं शैवरूप्यम्।** शिव के सिक्के पर होनेवाला चिह्न-शैवरूप्य।*

*सिद्धि-(१) **काकतीरम्।** काकतीर+ङि+अञ्। काकतीर्+अ। काकतीर+सु। काकतीरम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ तीर-उत्तरपदवाले 'काकतीर' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**पाल्वलतीरम्।***

*(२) **वार्करूप्यम्।** वृकरूप+ङि+ञ। वार्करूप्य्+अ। वार्करूप्य+सु। वार्करूप्यम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ, रूप्य-उत्तरपदवाले 'वृकरूप्य' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'ञ' प्रत्यय है।'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**शैवरूप्यम्।***

विशेष**-अञ् और ञ प्रत्यय में विशेषता यह है कि अञ्-प्रत्ययान्त शब्द से स्त्रीलिङ्ग में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है। जैसे-काकतीरी नारी। ञ-प्रत्ययान्त शब्द से स्त्रीत्व-विवक्षा में ङीप् प्रत्यय नहीं अपितु 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। जैसे-**वार्करूप्या, मुद्रा।

ञः-

(१६) दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञः।१०६।

प०वि०-दिक्-पूर्वपदात् ५।१ असंज्ञायाम् ७।१ ञः १।१।

स०-दिक्पूर्वपदं यस्य तत्-दिक्पूर्वपदम्, तस्मात्-दिक्पूर्वपदात् (बहुव्रीहिः)। न संज्ञा इति असंज्ञा, तस्याम्-असंज्ञायाम् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-शेषे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०असंज्ञायां दिक्पूर्वपदात् शेषे ञः।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् असंज्ञाविषयाद् दिक्पूर्वपदात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु ञः प्रत्ययो भवति।

उदा०-पूर्वस्यां शालायां भवः पौर्वशालः। दक्षिणस्यां शालायां भवो दाक्षिणशालः। अपरस्यां शालायां भव आपरशालः।

***आर्यभाषाः** **अर्थ**-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (असंज्ञायाम्) संज्ञाविषय से रहित (दिक्पूर्वपदात्) दिशावाची पूर्वपदवाले प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (ञः) ञ प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**पूर्वस्यां शालायां भवः पौर्वशालः।** पूर्व दिशा की शाला में रहनेवाला-पौर्वशाल। **दक्षिणस्यां शालायां भवो दाक्षिणशालः।** दक्षिण दिशा में रहनेवाला-दाक्षिणशाल। **अपरस्यां शालायां भव अपरशालः।** पश्चिम दिशा की शाला में रहनेवाला-आपरशाल।*

***सिद्धि-पौर्वशालः।** पूर्व+शाला। पूर्वशाला+ङि+ञ। पौर्वशाल्+अ। पौर्वशाल+सु। पौर्वशालः।*

*यहां प्रथम पूर्व और शाला सुबन्तों का **'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च'** (२।१।५१) से तद्धितार्थ में कर्मधारय तत्पुरुष समास होता है। तत्पश्चात् सप्तमी-समर्थ, दिशावाची पूर्वपदवाले 'पूर्वशाला' शब्द से 'भव' शेष अर्थ में इस सूत्र से 'ञ' प्रत्यय होता है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही-**दाक्षिणशालः**, आपरशालः।*

अञ्-

(१७) मद्रेभ्योऽञ्।१०७।

प०वि०-मद्रेभ्यः ५।३ अञ् १।१।

अनु०-शेषे, दिक्पूर्वपदाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०दिक्पूर्वपदेभ्यो मद्रेभ्यः शेषेऽञ्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् दिक्पूर्वपदाद् मद्रशब्दात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु अञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पूर्वमद्रेषु भवः पौर्वमद्रः। अपरमद्रेषु भव आपरमद्रः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (दिक्पूर्वपदात्) दिशावाची पूर्वपदवाले (मद्रेभ्यः) मद्र शब्द से (शेषे) शेष अर्थों में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**पूर्वमद्रेषु भवः पौर्वमद्रः।** पूर्व दिशा के मद्र जनपद में रहनेवाला-पौर्वमद्र। **अपरमद्रेषु भव आपरमद्रः।** पश्चिम दिशा के मद्र में रहनेवाला-आपरमद्र।*

***सिद्धि-पौर्वमद्रः।** पूर्व+मद्र। पूर्वमद्र+सुप्+अञ्। पौर्वमद्र+अ। पौर्वमद्र+सु। पौर्वमद्रः।*

*यहां प्रथम पूर्व और मद्र सुबन्तों का **'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च'** (२।२।५१) से तद्धितार्थ में कर्मधारय समास होता है। तत्पश्चात् सप्तमी-समर्थ, दिशावाची पूर्वपदवाले 'पूर्वमद्र' शब्द से 'भव' शेष अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। **'दिशोऽमद्राणाम्'** (७।३।१३) से जनपदवाची 'मद्र' शब्द की उत्तरपद वृद्धि का प्रतिषेध होने से पूर्ववत् **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**आपरमद्रः।***

***विशेष-**(१) जनपदवाची शब्दों का बहुवचन में प्रयोग किया जाता है अतः **'मद्रेभ्यः'** यहां 'मद्र' शब्द का बहुवचन में निर्देश किया गया है।*

(२) रावी और चनाव नदी के बीच का देश 'मद्र' जनपद कहाता था।

अञ्-

(१८) उदीच्यग्रामाच्च बह्वचोऽन्तोदात्तात्।१०८।

प०वि०-उदीच्य-ग्रामात् ५।१ च अव्ययपदम्, बह्वचः ५।१ अन्तोदात्तात् ५।१।

स०-उदीचि भव उदीच्य: । उदीच्यश्चासौ ग्राम इति उदीच्यग्राम:, तस्मात्-उदीच्यग्रामात् (कर्मधारयतत्पुरुष:) । बहवोऽचो यस्मिँस्तत्-बह्वच्, तस्मात्-बह्वच: (बहुव्रीहि:) । अन्ते उदात्तो यस्य तत्-अन्तोदात्तम्, तस्मात्-अन्तोदात्तात् (बहुव्रीहि:) ।

अनु०-शेषे, अञ् इति चानुवर्तते ।

अन्वय:-यथासम्भव०अन्तोदात्ताद् बह्वच उदीच्यग्रामाच्च शेषेऽञ् ।

अर्थ:-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् अन्तोदात्ताद् बह्वच उदीच्यग्रामवाचिन: प्रातिपदिकाच्च शेषेष्वर्थेषु अञ् प्रत्ययो भवति ।

उदा०-शिवपुरे भवं शैवपुरम् । माण्डवपुरे भवं माण्डवपुरम् ।

आर्यभाषा: ***अर्थ***-*यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (अन्तोदात्तात्) अन्तोदात्त (बह्वच:) बहुत अचोंवाले (उदीच्यग्रामात्) उदीच्य-ग्रामवाची प्रातिपदिक से (च) भी (शेषे) शेष अर्थों में (अच्) अच् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**शिवपुरे भवं शैवपुरम् ।** शिवपुर (काशी) ग्राम में रहनेवाला-शैवपुर। **माण्डवपुरे भवं माण्डवपुरम् ।** माण्डवपुर नामक ग्राम में रहनेवाला-माण्डवपुर।*

सिद्धि-शैवपुरम् । *शिवपुर+ङि+अञ् । शैवपुर्+अ । शैवपुर+सु । शैवपुरम् ।*

*यहां सप्तमी-समर्थ, अन्तोदात्त, बह्वच् उदीच्य-ग्रामवाची 'शिवपुर' शब्द से 'भव' शेष अर्थों में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। '**तद्धितेष्वचामादे:**' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**माण्डवपुरम् ।***

*शिवपुरम् और माण्डवपुरम् शब्द '**समासस्य**' (६।१।२२०) से अन्तोदात्त हैं। इनमें बहुत अच् स्पष्ट है।*

अण्-

(१६) प्रस्थोत्तरपदपलद्यादिकोपधादण् ।१०६।

प०वि०-प्रस्थोत्तरपद-पलद्यादि-कोपधात् ५।१ अण् १।१।

स०-प्रस्थ उत्तरपदं यस्य तत् प्रथस्थोत्तरपदम् । पलदी आदिर्येषां ते-पलद्यादय: । क उपधायां यस्य तत्-कोपधम् । प्रस्थोत्तरपदं च पलद्यादयश्च कोपधं च एतेषां समाहार:-प्रस्थोत्तरपदपलद्यादिकोपधम्, तस्मात् प्रस्थोत्तरपदपलद्यादिकोपधात् (बहुव्रीहिगर्भित-समाहारद्वन्द्व:) ।

अनु०-शेषे इत्यनुवर्तते ।

अन्वयः-यथासम्भव०प्रस्थोत्तरपदपलद्यादिकोपधात् शेषेऽण्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्यः प्रस्थोत्तरपदेभ्यः पलद्यादिभ्यः ककारोपधेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः शेषेष्वर्थेषु अण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(प्रस्थोत्तरपदम्)** माद्रीप्रस्थे भवो माद्रीप्रस्थः। माहकीप्रस्थे भवो माहकीप्रस्थः। **(पलद्यादिः)** पलद्यां भवः पालदः। परिषदि भवः पारिषदः। **(कोपधः)** नीलीनके भवो नैलीनकः। चियातके भवश्चैयातकः।

पलदी। परिषत्। यकृल्लोमन्। रोमक। कालकूट। पटच्चर। वाहीक। कलकीट। मलकीट। कमलकीट। कमलभिदा। कमलकीर। बाहुकीट। नैतकी। परिखा। शूरसेन। गोमती। उदपान। पक्ष। कललकीट। ककलकीकटा। गोष्ठी। नैधिकी। नैकेती। सकृल्लोमन्। इति पलद्यादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (प्रस्थोत्तरपदपलद्यादिकोपधात्) प्रस्थ-उत्तरपदवाले, पलदी आदि तथा ककार-उपधावाले प्रातिपदिकों से (शेष) शेष अर्थों में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(प्रस्थोत्तरपदम्) ***माद्रीप्रस्थे भवो माद्रीप्रस्थः।*** *माद्रीप्रस्थ नामक ग्राम में रहनेवाला-माद्रीप्रस्थ।* ***माहकीप्रस्थे भवो माहकीप्रस्थः।*** *माहकीप्रस्थ नामक ग्राम में रहनेवाला-माहकीप्रस्थ। (पलद्यादि)* ***पलद्यां भवः पालदः।*** *पलदी=झोपड़ियों के ग्राम में रहनेवाला-पालद।* ***परिषदि भवः पारिषदः।*** *परिषद्=विद्वत्सभा में रहनेवाला-पारिषद।* ***(कोपध) नीलीनके भवो नैलीनकः।*** *निलीनक=छिपे हुए स्थान में रहनेवाला-नैलीनक।* ***चियातके भवश्चैयातकः।*** *निश्चित स्थान पर रहनेवाला-चैयातक।*

*सिद्धि-****माद्रीप्रस्थः।*** *यहां सप्तमी-समर्थ, प्रस्थ उत्तरपदवाले 'माद्रीप्रस्थ' शब्द से शेष अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है।* ***'तद्धितेष्वचामादेः'*** *(७।२।११७) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-****माहकीप्रस्थः*** *आदि।*

अण्-

(२०) कण्वादिभ्यो गोत्रे।११०।

प०वि०-कण्व-आदिभ्यः ५।३ गोत्रे ७।१।

स०-कण्व आदिर्येषां ते-कण्वादयः, तेभ्यः-कण्वादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-शेषे, अण् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०गोत्रे कण्वादिभ्यः शेषेऽण्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्यो गोत्रप्रत्ययान्तेभ्यः कण्वादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः शेषेष्वर्थेषु अण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-कण्वस्य गोत्रापत्यं काण्व्यः। काण्व्यस्य छात्राः काण्वाः। गोकक्षस्य गोत्रापत्यं गौकक्ष्यः। गौकक्ष्यस्य छात्रा गौकक्षाः।

कण्वादयः शब्दाः **'गर्गादिभ्यो यञ्'** (४।१।१०५) इत्यत्र गर्गादिषु पठ्यन्ते ते तत एव द्रष्टव्याः।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (गोत्रे) गोत्रप्रत्ययान्त (कण्वादिभ्यः) कण्व आदि प्रातिपदिकों से (शेषे) शेष अर्थों में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**कण्वस्य गोत्रापत्यं काण्व्यः। काण्व्यस्य छात्राः काण्वाः।** कण्व ऋषि का पौत्र-काण्व्य। काण्व्य के शिष्य-काण्व। **गोकक्षस्य गोत्रापत्यं गौकक्ष्यः। गौकक्ष्यस्य छात्रा गौकक्षाः।** गोकक्ष ऋषि का पौत्र-गौकक्ष्य। गौकक्ष्य के शिष्य-गौकक्ष।*

कण्व आदि शब्द गर्गादिगण (४।१।१०५) में पठित हैं, उन्हें वहां से देख लेवें।

सिद्धि-काण्वाः। *कण्व+ङस्+यञ्। काण्व्+य। काण्व्य।। काण्व्य+ङस्+अञ्। काण्व्य्+अ। काण्व्+अ। काण्व+जस्। काण्वाः।*

*यहां प्रथम षष्ठी-समर्थ 'कण्व' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में **'गर्गादिभ्यो यञ्'** (४।१।१०५) से 'यञ्' प्रत्यय होता है। तत्पश्चात् षष्ठी-समर्थ गोत्र प्रत्ययान्त 'काण्व्य' शब्द से शेष अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय होता है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि, **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप और **'आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति'** (६।४।१५१) से अंग के यकार का लोप होता है। ऐसे ही-**गौकक्षाः।***

अण्-

(२१) इञश्च।१११।

प०वि०-इञः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-शेषे, अण्, गोत्रे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०गोत्रे इञश्च शेषेऽण्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् गोत्रापत्येऽर्थे वर्तमानाद् इञ्-प्रत्ययान्तात् प्रातिपदिकाच्च शेषेष्वर्थेषु अण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-दक्षस्य गोत्रापत्यं **दाक्षिः। दाक्षेश्छात्रा** दाक्षाः। **प्लक्षस्य** गोत्रापत्यं प्लाक्षिः। **प्लाक्षेश्छात्राः प्लाक्षाः।**

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (गोत्रे) गोत्रापत्य अर्थ में विद्यमान (इञः) इञ्-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से (च) भी (शेषे) शेष अर्थों में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

उदा०-दक्षस्य गोत्रापत्यं दाक्षिः। दाक्षेश्छात्रा दाक्षाः। दक्ष ऋषि का पौत्र-दाक्षि। दाक्षि के शिष्य-दाक्ष। प्लक्षस्य गोत्रापत्यं प्लाक्षिः। प्लाक्षेश्छात्राः प्लाक्षाः। प्लक्ष ऋषि के पौत्र-प्लाक्षि। प्लाक्षि के शिष्य-प्लाक्ष।

सिद्धि-दाक्षाः। दक्ष+ङस्+इञ्। दाक्ष्+इ। दाक्षि+सु। दाक्षिः। दाक्षि+अण्। दाक्ष्+अ। दाक्ष+जस्। दाक्षाः।

*यहां प्रथम षष्ठी-समर्थ 'दक्ष' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में 'अत इञ्' (४।१।९५) से इञ् प्रत्यय होता है। तत्पश्चात् षष्ठी-समर्थ गोत्र प्रत्ययान्त 'दाक्षि' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से अण् प्रत्यय होता है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-प्लाक्षाः।*

अण्-प्रतिषेधः-

(२२) न द्व्यचः प्राच्यभरतेषु।११२।

प०वि०-न अव्ययपदम्, द्व्यचः ५।१ प्राच्यभरतेषु ७।३।

स०-द्वावचौ यस्मिँस्तत्-द्व्यच्, तस्मात्-द्व्यच् (बहुव्रीहिः)। प्राच्याश्च भरताश्च ते-प्राच्यभरताः, तेषु प्राच्यभरतेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-शेषे, अण्, गोत्रे, इञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०प्राच्यभरतेषु गोत्रेषु द्व्यच् इञः शेषेऽण् न।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् प्राच्यगोत्रे भरतगोत्रे च वर्तमानाद् द्व्यच इञन्तात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु अण् प्रत्ययो न भवति।

उदा०-(प्राच्यगोत्रम्) पिङ्गस्य गोत्रापत्यं पैङ्गिः। पैङ्गेश्छात्राः पैङ्गीयाः। एवम्-प्रौष्ठीयाः, चैदीयाः, पौष्कीयाः। **(भरतगोत्रम्)** काशस्य गोत्रापत्यं काशिः। काशेश्छात्राः काशीयाः। एवम्-पाशीयाः।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (प्राच्यभरतेषु, गोत्रे) प्राच्यगोत्र और भरतगोत्र में विद्यमान (द्व्यचः) दो अचोंवाले (इञः) इञ्-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में **(अण्) अण् प्रत्यय (न) नहीं होता है।***

*उदा०-(प्राच्यगोत्र) पिङ्गस्य **गोत्रापत्यं पैङ्गिः। पैङ्गेश्छात्राः पैङ्गीयाः।** पिङ्ग ऋषि का पौत्र-पैङ्गि। पैङ्गि के शिष्य-पैङ्गीय। ऐसे ही-**प्रौष्ठीय, चैदीय, पौष्कीय।** (भरतगोत्र) काशस्य गोत्रापत्यं **काशिः। काशेश्छात्राः काशीयाः।** काश ऋषि का पौत्र-काशि। काशि के शिष्य-काशीय। ऐसे ही-**पाशीय।***

*सिद्धि-**पैङ्गीयाः।** पिङ्ग+ङस्+इञ्। पैङ्ग्+इ। पैङ्गि।। पैङ्गि+ङस्+छ। पैङ्ग्+ईय। पैङ्गीय+जस्। पैङ्गीयाः।*

*यहां प्रथम षष्ठी-समर्थ प्राच्य गोत्रवाची, दो अचोंवाले 'पिङ्ग' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में 'अत इञ्' (४।१।९५) से इञ् प्रत्यय होता है। तत्पश्चात् गोत्र-प्रत्ययान्त 'पैङ्गि' **शब्द** से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय का प्रतिषेध होने से '**वृद्धाच्छः**' (४।२।११४) से 'छ' प्रत्यय होता है। '**आयनेय०**' (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश और 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-'**प्रौष्ठीयाः**' आदि।*

***विशेष**-(१) भरतगोत्र प्राच्यगोत्र के ही अन्तर्गत है फिर यहां 'भरतगोत्र' के ग्रहण से यह ज्ञापित होता है कि अन्यत्र प्राच्य गोत्र के ग्रहण से भरतगोत्र का ग्रहण नहीं किया जाता है।*

*(२) **प्राच्यभरत**-दक्षिण-पूर्वी पंजाब में-थानेश्वर, कैथल, करनाल, पानीपत का भू-भाग भरत जनपद था। इसी का दूसरा नाम प्राच्यभरत भी था क्योंकि यहीं से देश के उदीच्य और प्राच्य इन दो खण्डों की सीमायें बंट जाती थी (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ४१)।*

छः-

(२३) वृद्धाच्छः।।११३।

प०वि०-वृद्धात् ५।१ छः १।१।

अनु०-'गोत्रे' इति नानुवर्तते, शेषे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०वृद्धात् शेषे छः।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् वृद्धसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु छः प्रत्ययो भवति।

उदा०-गार्ग्यस्य छात्रो गार्गीयः। वात्स्यस्य छात्रो वात्सीयः। शालायां भवः शालीयः। मालायां भवो मालीयः।

आर्यभाषाः अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (वृद्धात्)** वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में **(छः) छ प्रत्यय होता है।

*उदा०-**गार्ग्यस्य छात्रो गार्गीयः।** गार्ग्य ऋषि का शिष्य-गार्गीय। **वात्स्यस्य छात्रो वात्सीयः।** वात्स्य ऋषि का शिष्य-वात्सीय। **शालायां भवः शालीयः।** शाला=घर में रहनेवाला-शालीय (गृहस्थ)। **मालायां भवो मालीयः।** माला में रहनेवाला-मालीय (पुष्प)।*

सिद्धि-गार्गीयः। गार्ग्य+ङस्+छ। गार्ग्य्+ईय। गार्ग्+ईय। गार्गीय+सु। गार्गीयः।

*यहां 'गार्ग्य' शब्द की **'वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम्'** (१।१।७२) से 'वृद्ध' संज्ञा है। वृद्धसंज्ञक 'गार्ग्य' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय' आदेश होता है। **'यस्येति च'** (७।४।१४८) से अंग के अकार का लोप और **'आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति'** (६।४।१५१) से यकार का लोप होता है। ऐसे ही-'वात्सीयः' आदि।*

ठक्+छस्-

(२४) भवतष्ठक्छसौ।११४।

प०वि०-भवतः ५।१ छक्-छसौ १।२।

स०-ठक् च छस् च तौ-ठक्छसौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-शेषे, वृद्धात् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०वृद्धाद् भवतः शेषे ठक्छसौ।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् वृद्धसंज्ञकाद् भवत्-शब्दात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु ठक्छसौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-**(ठक्)** भवतोऽयं भावत्कः। **(छस्)** भवत इदं भवदीयम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (वृद्धात्) वृद्धसंज्ञक (भवतः) भवत् प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (ठक्छसौ) ठक् और छस् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-(ठक्) **भवतोऽयं भावत्कः।** आपका यह-भावत्क। (छस्) **भवत इदं भवदीयम्।** आपका यह-भवदीय।*

सिद्धि-(१) भावत्कः। भवत्+ङस्+ठक्। भावत्+क। भावत्क+सु। भावत्कः।

*यहां षष्ठी-समर्थ, वृद्धसंज्ञक 'भवत्' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। 'इसुसुक्तान्तात्कः' (७।३।५१) से 'ठ्' के स्थान में 'क्' आदेश होता है। **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि होती है। 'भवत्' शब्द का त्यदादिगण में पाठ होने से **'त्यदादीनि च'** (१।१।७३) से इसकी वृद्ध संज्ञा है।*

*(२) **भवदीयः।** भवत्+ङस्+छस्। भवत्+ईय। भवद्+ईय। भवदीय+सु। भवदीयः।*

यहां षष्ठी-समर्थ, वृद्धसंज्ञक 'भवत्' शब्द **से शेष** *अर्थों में इस सूत्र से 'छस्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से छ् के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है। 'छस्' प्रत्यय के सित् होने से 'सिति च' (१।४।१६) से 'भवत्' शब्द की पदसंज्ञा होती है और 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से पदान्त में विद्यमान 'त्' को जश् 'द्' होता है।*

ठञ्+ञिठ:–

(२५) काश्यादिभ्यष्ठञ्ञिठौ।११५।

प०वि०–काशि-आदिभ्य: ५।३ ठञ्-ञिठौ १।२।

स०–काशिरादिर्येषां ते–काश्यादय:, तेभ्य:–काश्यादिभ्य: (बहुव्रीहि:)। ठञ् च ञिठश्च तौ–ठञ्ञिठौ (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०–शेषे, वृद्धात् इति चानुवर्तते।

अन्वय:–यथासम्भव०वृद्धेभ्य: काश्यादिभ्य: शेषे ठञ्ञिठौ।

अर्थ:–यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्यो वृद्धसंज्ञकेभ्य: काश्यादिभ्य: प्रातिपदिकेभ्य: शेषेष्वर्थेषु ठञ्ञिठौ प्रत्ययौ भवत:।

उदा०–(**ठञ्**) काश्यां भवा काशिकी। (**ञिठ:**) काश्यां भवा काशिका। (**ठञ्**) बेद्यां भवा बैदिकी। (**ञिठ:**) बेद्यां भवा बेदिका।

काशि। चेदि। बेदि। संज्ञा। संवाह। अच्युत। मोहमान। शकुलाद। हस्तिकर्षू। कुदामन्। कुनाम।। हिरण्य। करण। गोधाशन। भौरिकि। भौलिङ्गि। अरिन्दम। सर्वमित्र। देवदत्त। साधुमित्र। दासमित्र। दासग्राम। सौधावतान। युवराज। उपराज। सिन्धुमित्र। देवराज।। आपदादि-पूर्वपदान्तात् कालान्तात्।। आपत्कालिकी। आपतकालिका। और्ध्वकालिकी। और्ध्वकालिका। तात्कालिकी। तात्कालिका। इति काशादय:।।

आर्यभाषा: *अर्थ–यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (वृद्धात्) वृद्धसंज्ञक (काश्यादिभ्य:) काशि आदि प्रातिपदिकों से (शेषे) शेष अर्थों में (ठञ्ञिठौ) ठञ् और ञिठ प्रत्यय होते हैं।*

उदा०–(ठञ्) ***काश्यां भवा काशिकी। (ञिठ) काश्यां भवा काशिका।*** *काशि में होनेवाली–काशिकी, काशिका।* ***(ठञ्) बेद्यां भवा बैदिकी। (ञिठ) बेद्यां भवा बैदिका।*** *बेदि में होनेवाली–बैदिकी, बैदिका।*

सिद्धि–(१) काशिकी। *काशि+ङि+ठञ्। काश्+इक। काशिक+ङीप्। काशिक्+ई। काशिकी+सु। काशिकी।*

*यहां सप्तमी-समर्थ, वृद्धसंज्ञक 'काशि' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। 'ठस्येकः' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और '**तद्धितेष्वचामादेः**' (७।२।११५) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि होती है। '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के ईकार का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में की '**टिड्ढाणञ्०**' (४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**वैदिकी।***

*(२) **काशिका।** काशि+ङि+ञिठ। काश्+इक। काशिक+टाप्। काशिक+आ। काशिका+सु। काशिका।*

*यहां सप्तमी-समर्थ, वृद्धसंज्ञक 'काशि' शब्द से पूर्ववत् 'ञिठ' प्रत्यय है। 'ञिठ' प्रत्यय में इकार उच्चारणार्थ है। 'ठ्' के स्थान में पूर्ववत् इक् आदेश तथा पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है। स्त्रीत्व-विवक्षा में '**अजाद्यतष्टाप्**' (४।१।४) से टाप् प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**वैदिका।***

(२) यहां 'वृद्धात्' पद की अनुवृत्ति होने से वृद्धसंज्ञक 'काशि' आदि शब्दों से प्रत्यय का विधान किया गया है किन्तु काश्यादि गण में जो अवृद्धसंज्ञक शब्द पढ़े हैं उनसे वचनप्रामाण्य से प्रत्यय होता है।

ठञ्+ञिठः-

(२६) वाहीकग्रामेभ्यश्च।११६।

प०वि०-वाहीक-ग्रामेभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-वाहीकानां ग्रामा इति वाहीकग्रामाः, तेभ्यः-वाहीकग्रामेभ्यः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-शेषे, वृद्धाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०वृद्धेभ्यो वाहीकग्रामेभ्यश्च शेषे ठञ्ञिठौ।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्यो वृद्धसंज्ञकेभ्यो वाहीकग्रामवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यश्च ठञ्ञिठौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-**(ठञ्)** शाकले भवा शाकलिकी। **(ञिठः)** शाकले भवा शाकलिका। **(ठञ्)** मान्थवे भवा मान्थविकी। **(ञिठः)** मान्थवे भवा मान्थविका।

***आर्यभाषाः** अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (वृद्धात्) वृद्धसंज्ञक (वाहीकग्रामेभ्यः) वाहीक-ग्रामवाची प्रातिपदिकों से (च) भी (ठञ्ञिठौ) ठञ् और ञिठ प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-(ठञ्) **शाकले भवा शाकलिकी।** शाकल नामक वाहीक-ग्राम में रहनेवाली नारी-शाकलिकी। (ञिठ) **शाकले भवा शाकलिका।** शाकल नामक वाहीक-ग्राम में रहनेवाली नारी-शाकलिका। (ठञ्) **मान्थवे भवा मान्थविकी।** मान्थव नामक वाहीक-ग्राम में रहनेवाली नारी-मान्थविकी। (ञिठ) **मान्थवे भवा मान्थविका।** मान्थव नामक वाहीक-ग्राम में रहनेवाली नारी-मान्थविका।*

*सिद्धि-**शाकलिकी।** शाकल+ङि+ठञ्। शाकल्+इक। शाकलिक+ङीप्। शाकलिकी+सु। शाकलिकी।*

यहां सप्तमी-समर्थ, वाहीक-ग्रामवाची 'शाकल' शब्द से इस सूत्र से शेष अर्थों में 'ठञ्' प्रत्यय है। 'ञिठ' प्रत्यय करने पर-शाकलिका। ऐसे ही-मान्थविकी, मान्थविका। शेष कार्य पूर्ववत् है।

***विशेष**-गंधार और वाहीक दोनों मिलकर उदीच्य कहलाते थे। सिन्धु से शतद्रु तक का प्रदेश वाहीक था जिसके अन्तर्गत मद्र, उशीनर और त्रिगर्त ये तीन मुख्य भाग थे (पाणिनिकालीन **भारतवर्ष** पृ० ४२)।*

ठञ्ञिठ-विकल्पः-

(२७) विभाषोशीनरेषु।११७।

प०वि०-विभाषा १।१ उशीनरेषु ७।३।

अनु०-शेषे, वृद्धात्, ठञ्ञिठौ, वाहीकग्रामेभ्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०उशीनरेषु वृद्धेभ्यो वाहीकग्रामेभ्यः शेषे विभाषा ठञ्ञिठौ।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्य उशीनरेषु वर्तमानेभ्यो वृद्धसंज्ञकेभ्यो वाहीकग्रामवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो विकल्पेन ठञ्ञिठौ प्रत्ययौ भवतः, पक्षे च छः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(ठञ्) आह्वजाले भवा आह्वजालिकी। (ञिठः) आह्वजाले भवा आह्वजालिका। (छः) आह्वजाले भवा आह्वजालीया। (ठञ्) सौदर्शनि भवा सौदर्शनिकी। (ञिठः) सौदर्शनिका। (छः) सौदर्शयनीया।

***आर्यभाषाः** अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (उशीनरेषु) उशीनर-भाग में विद्यमान (वृद्धात्) वृद्धसंज्ञक (वाहीकग्रामेभ्यः) वाहीक ग्रामवाची प्रातिपदिकों से (विभाषा) विकल्प से (ठञ्ञिठौ) ठञ् और ञिठ प्रत्यय होते हैं। विकल्प पक्ष में छ प्रत्यय होता है।*

उदा०-(ठञ्) आह्वजाले भवा आह्वजालिकी। (ञिठ) आह्वजालिका। (छ) आह्वजालीया। उशीनर भाग में विद्यमान आह्वजाल नामक वाहीक-ग्राम में रहनेवाली नारी-आह्वजालिकी, आह्वजालिका, आह्वजालीया। (ठञ्) सौदर्शने भवा सौदर्शनिकी। (ञिठ) सौदर्शनिका। (छ) सौदर्शयनीया। उशीनर भाग में विद्यमान सौदर्शन नामक वाहीकग्राम में रहनेवाली नारी-सौदर्शनिकी, सौदर्शनिका, सौदर्शनीया।

सिद्धि-आह्वजालिकी आदि पदों की सिद्धि पूर्ववत् है।

***विशेष**-पाणिनि के अनुसार उशीनर, वाहीक का जनपद था 'विभाषोशीनरेषु' (४।२।११८)। ऐसा ज्ञात होता है कि रावी और चनाब के बीच का भू-भाग जो मद्र के दक्षिण में था, उशीनर प्रदेश कहलाता था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ६७-६८)।*

ठञ्-

(२८) ओर्देशे ठञ्।११८।

प०वि०-ओः ५।१ देशे ७।१ ठञ् १।१।

अनु०-शेषे इत्यनुवर्तते, उत्तरसूत्रे पुनर्वृद्धग्रहणादस्मिन् सूत्रे 'वृद्धात्' इति नानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०देशे ओः शेषे ठञ्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् देशवाचिन उकारान्तात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-निषादकर्ष्वां भवो नैषादकर्षुकः। शबरजम्ब्वां भवः शाबरजम्बुकः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (देशे) देशवाची (ओः) उकारान्त प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**निषादकर्ष्वां भवो नैषादकर्षुकः।** निषादकर्षू नामक देश में रहनेवाला-नैषादकर्षुक। **शबरजम्ब्वां भवः शाबरजम्बुकः।** शम्बरजम्बू नामक देश में रहनेवाला-शाबरजम्बुक।*

*सिद्धि-**नैषादकर्षुकः।** निषादकर्षू+ङि+ठञ्। नैषादकर्षू+क। नैषादकर्षु+क। नैषादकर्षुकः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ देशवाची, ऊकारान्त 'निषादकर्षू' शब्द से शेष अर्थ में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। 'इसुसुक्तान्तात् कः' (७।३।५१) से 'ठ्' के स्थान में 'क्' आदेश होता है और 'केऽणः'(७।४।१३) से अंग को ह्रस्व होता है। ऐसे ही-**शाबरजम्बुकः।***

विशेष–*यहां ठञ् और ञिठ प्रत्यय के प्रकरण में 'ठञ्ञिठौ' पद में से केवल 'ठञ्' प्रत्यय की अनुवृत्ति सम्भव नहीं है, अतः यहां पुनः 'ठञ्' प्रत्यय का ग्रहण किया गया है।*

ठञ्–

(२९) वृद्धात् प्राचाम्।११९।

प०वि०–वृद्धात् ५।१ प्राचाम् ६।३।

अनु०–शेषे, ओः, देशे, ठञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–यथासम्भव०प्राचां देशे वृद्धाद् ओः शेषे ठञ्।

अर्थः–यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् प्राग्देशवाचिनो वृद्धसंज्ञकाद् उकारान्तात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–आढकजम्ब्वां जातः आढकजम्बुकः। शाकजम्ब्वां जातः शाकजम्बुकः। नापितवास्त्वां जातो नापितवास्तुकः।

आर्यभाषाः *अर्थ*–*यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (प्राचां देशे) प्राक्-देशवाची (वृद्धात्) वृद्धसंज्ञक (ओः) उकारान्त प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०–**आढकजम्ब्वां जातः आढकजम्बुकः।** आढकजम्बू नामक प्राग्-देश में उत्पन्न हुआ-आढकजम्बुक। **शाकजम्ब्वां जातः शाकजम्बुकः।** शाकजम्बू नामक प्राग्-देश में उत्पन्न-शाकजम्बुकः। **नापितवास्त्वां जातो नापितवास्तुकः।** नापितवास्तू नामक प्राग्-देश में उत्पन्न-नापितवास्तुक।*

*सिद्धि-**आढकजम्बुकः।** आढकजम्बू+ङि+ठञ्। आढकजम्बू+क। आढकजम्बु+क। आढकजम्बुक+सु। आढकजम्बुकः।*

यहां सप्तमी-समर्थ, प्रागदेशवाची, वृद्धसंज्ञक 'आढकजम्बू' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। 'ठ्' के स्थान में पूर्ववत् 'क्' आदेश और पूर्ववत् अंग को ह्रस्व होता है। ऐसे ही-शाकजम्बुकः, नापितवास्तुकः।

वुञ्–

(३०) धन्वयोपधाद् वुञ्।१२०।

प०वि०–धन्व-योपधात् ५।१ वुञ् १।१।

स०–य उपधायां यस्य तत्-योपधम्। धन्व च योपधं च एतयोः समाहारो धन्वयोपधम्, तस्मात्-धन्वयोपधात् (बहुव्रीहिगर्भितसमाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-शेषे, देशे, वृद्धाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०देशे वृद्धाद् धन्वयोपधात् शेषे वुञ्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् देशवाचिनो वृद्धसंज्ञकाद् धन्वविशेषवाचिनो यकारोपधाच्च प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु वुञ् प्रत्ययो भवति। धन्वशब्दो मरुदेशवाचकः।

उदा०-**(धन्वः)** पारेधन्वनि जातः पारेधन्वकः। ऐरावते जातः ऐरावतकः। **(योपधः)** साङ्काश्ये जातः साङ्काश्यकः। काम्पिल्ये जातः काम्पिल्यकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (देशे) देशवाची (वृद्धात्) वृद्धसंज्ञक (धन्व-योपधात्) धन्वविशेषवाची और यकार-उपधावाले प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है। धन्व=मरुदेश।*

*उदा०-**(धन्व) पारेधन्वनि जातः पारेधन्वकः।** मरु देश के पार उत्पन्न हुआ-पारधन्वक। **ऐरावते जातः ऐरावतकः।** ऐरावत नामक मरुदेश में उत्पन्न हुआ-ऐरावतक। **(योपध) साङ्काश्ये जातः साङ्काश्यकः।** सांकाश्य नामक नगर में उत्पन्न-सांकाश्यक। **काम्पिल्ये जातः काम्पिल्यकः।** कापिल्य नामक नगर में उत्पन्न-काम्पिल्यक।*

*सिद्धि-**पारेधन्वकः।** पारेधन्वन्+ङि+वुञ्। पारेधन्व+अक। पारेधन्वक+सु। पारेधन्वकः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ, धन्व-विशेषवाची 'पारेधन्व' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश और **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। ऐसे ही-**ऐरावतकः, साङ्काश्यकः, काम्पिल्यकः।***

***विशेष-**(१) **पारेधन्न**-अर्थात् मरुभूमि के उस पार का देश। राजस्थान की मरुभूमि या मारवाड़ का प्राचीन नाम धन्व ज्ञात होता है। इस धन्व प्रदेश के पार पच्छिम में आज तक सिंध प्रान्त का पूर्वी भाग 'पारकर' कहाता है जो पारेधन्वक का अपभ्रंश है। (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ५६)।*

*(२) **ऐरावतधन्व**-यह भारतवर्ष की सीमा के उस पार मध्य एशिया का गोबी रेगिस्तान जान पड़ता है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ५६)।*

*(३) **सांकाश्य**-जनक के भाई कुशध्वज की नगरी का नाम। इसका वर्तमान नाम 'संकिश' है (शब्दार्थकौस्तुभ)।*

(४) काम्पिल्य-यह दक्षिण पाञ्चाल की राजधानी का नगर है। अब भी कम्पिला के नाम से प्रसिद्ध है और फर्रुखाबाद जिले का एक कस्बा है। द्रौपदी का जन्म यहीं हुआ था (शब्दार्थकौस्तुभ पृ० १३८३)।

वुञ्–

(३१) प्रस्थपुरवहान्ताच्च।१२१।

प०वि०-प्रस्थ-पुर-वहान्तात् ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-प्रस्थं च पुरं च वहं च एतेषां समाहारः-प्रस्थपुरवहम्, प्रस्थपुरवहमन्ते यस्य तत्-प्रस्थपुरवहान्तम्, तस्मात्-प्रस्थपुरवहान्तात् (समाहारद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-शेषे, देशे, वृद्धाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०देशे वृद्धात् प्रस्थपुरवहान्ताच्च शेषु वुञ्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् देशवाचिनो वृद्धसंज्ञकात् प्रस्थान्तात् पुरान्ताद् वहान्ताच्च प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु वुञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**प्रस्थम्**) मालाप्रस्थे जातो मालाप्रस्थकः। (**पुरम्**) नान्दीपुरे जातो नान्दीपुरकः। कान्तीपुरे जातः कान्तीपुरकः। (**वहम्**) पीलुवहे जातः पैलुवहकः। फल्गुनीवहे जातः फाल्गुनीवहकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (देशे) देशवाची (वृद्धात्) वृद्धसंज्ञक (प्रस्थपुरवहान्तात्) प्रस्थान्त, पुरान्त और वहान्त प्रातिपदिकों से (शेषे) शेष अर्थों में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(प्रस्थ) **मालाप्रस्थे जातो मालाप्रस्थकः।** मालाप्रस्थ नामक देश में उत्पन्न-मालाप्रस्थक। (पुर) **नान्दीपुरे जातो नान्दीपुरकः।** नान्दीपुर नामक देश में उत्पन्न-नान्दीपुरक। **कान्तीपुरे जातः कान्तीपुरकः।** कान्तीपुर नामक देश में उत्पन्न-कान्तीपुरक। (वह) **पीलुवहे जातः पैलुवहकः।** पीलुवह नामक देश में उत्पन्न-पैलुवहक। **फल्गुनीवहे जातः फाल्गुनीवहकः।** फल्गुनीवह नामक देश में उत्पन्न-फाल्गुनीवहक।*

*सिद्धि-**मालाप्रस्थकः।** मालाप्रस्थ+ङि+वुञ्। मालाप्रस्थ्+अक। मालाप्रस्थक+सु। मालाप्रस्थकः।*

यहां देशवाची, वृद्धसंज्ञक 'मालाप्रस्थ' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है।

'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-नान्दीपुरकः आदि।

***विशेष*-फल्गुनीवह-यह आधुनिक फगवाड़े (पंजाब) का नाम प्रतीत होता है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ८०)।**

वुञ्-

(३२) रोपधेतोः प्राचाम्।१२२।

प०वि०-रोपध-ईतोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) प्राचाम् ६।३।

स०-र उपधायां यस्य तत्-रोपधम्। रोपधं च ईच्च तौ-रोपधेतौ, तयोः-रोपधेतोः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-शेषे, देशे, वृद्धाद्, वुञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०प्राचां देशे वृद्धाद् रोपधाद् ईतश्च वुञ्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् प्राग्देशवाचिनो वृद्धसंज्ञकाद् रेफोपधाद् ईकारान्ताच्च प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु वुञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(रोपधम्)** पाटलिपुत्रे जातः पाटलिपुत्रकः। एकचक्रे जातः ऐकचक्रकः। **(ईत्)** काकन्द्यां जातः काकन्दकः। माकन्द्यां जातो माकन्दकः।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (प्राचां देशे) प्राक्-देशवाची (वृद्धात्) वृद्धसंज्ञक (रोपधेतोः) रेफ उपधावान् तथा ईकारान्त प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(रेफोपध) **पाटलिपुत्रे जातः पाटलिपुत्रकः।** पाटलिपुत्र=पटना नगर में उत्पन्न हुआ-पाटलिपुत्रक। **एकचक्रायां जातः ऐकचक्रकः।** एकचक्रा नामक नगरी में उत्पन्न हुआ-ऐकचक्रक। (ईत्) **काकन्द्यां जातः काकन्दकः।** काकन्दी नगरी में उत्पन्न हुआ-काकन्दक। **माकन्द्यां जातो माकन्दकः।** माकन्दी नगरी में उत्पन्न हुआ-माकन्दक।*

*सिद्धि-(१) **पाटलिपुत्रकः।** पाटलिपुत्र+ङि+वुञ्। पाटलिपुत्र्+अक। पाटलिपुत्रक+सु। पाटलिपुत्रकः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ, प्राक्-देशवाची, वृद्धसंज्ञक तथा रेफ-उपधावान् 'पाटलिपुत्र' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से वुञ् प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश और **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि होती है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

(२) ऐकचक्रक: । यहां 'एकचक्रा' शब्द से पूर्ववत् 'वुञ्' प्रत्यय है। 'एङ् प्राचां देशे' (१।१।७४) से 'एकचक्रा' शब्द की वृद्धसंज्ञा होती है। ऐसे ही-काकन्दक:, माकन्दक: ।

विशेष-*(१) पाटलिपुत्र-मगध या दक्षिण बिहार के एक प्रसिद्ध नगर का नाम। यह गंगा और सोन नदी के संगम पर बसाया गया था। इसका दूसरा नाम कुसुमपुर है (शब्दार्थकौस्तुभ पृ० १३८६)।*

(२) एकचक्रा-महाभारत में वर्णित एक प्राचीन नगरी (शब्दार्थकौस्तुभ)।

(३) ककन्द के द्वारा बनवाई गई काकन्दी और मकन्द के द्वारा बनवाई गई नगरी माकन्दी कहाती है।

वुञ्-

(३३) जनपदतदवध्योश्च।१२३।

प०वि०-जनपद-तदवध्यो: ६।२ (पञ्चम्यर्थे) च अव्ययपदम्।

स०-स एव जनपदोऽवधिरिति तदवधि:। जनपदश्च तदवधिश्च तौ-जनपदतदवधी, तयो:-जनपदतदवध्यो: (कर्मधारयगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०-शेषे, देशे, वृद्धाद्, वुञ् इति चानुवर्तते।

अन्वय:-यथासम्भव०वृद्धाज्जनपदात् तदवधेश्च शेषे वुञ्।

अर्थ:-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् वृद्धसंज्ञकाद् जनपदवाचिनस्तदवधि-वाचिनश्च प्रातिपदिकाच्च शेषेष्वर्थेषु वुञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(जनपद:) आभिसारे जात: आभिसारक:। आदर्शे जात: आदर्शक:। **(तदवधि:)** औपुष्टे जात: औपुष्टक:। श्यामायने जात: श्यामायनक:।

आर्यभाषा: *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (वृद्धात्) वृद्धसंज्ञक (जनपदतदवध्यो:) जनपद तथा उसके अवधि=सीमावाची प्रातिपदिक से (च) भी (शेषे) शेष अर्थों में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(जनपद) आभिसारे जात आभिसारक:। आभिसार नामक जनपद में उत्पन्न हुआ-आभिसारक। आदर्शे जात आदर्शक:। आदर्श नामक जनपद में उत्पन्न हुआ-आदर्शक। (तदवधि) औपुष्टे जात औपुष्टक:। औपुष्ट नामक जनपद-सीमा में उत्पन्न हुआ-औपुष्टक। श्यामायने जात: श्यामायनक:। श्यामायन नामक जनपद-सीमा में उत्पन्न हुआ-श्यामायनक।

*सिद्धि-**आभिसारकः**। आभिसार+ङि+वुञ्। आभिसार्+अक। आभिसारक+सु। आभिसारकः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ, वृद्धसंज्ञक, जनपदवाची 'आभिसार' शब्द से शेष अर्थ में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश और 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**आदर्शकः** आदि।*

वुञ्-

(३४) अवृद्धादपि बहुवचनविषयात्।१२४।

प०वि०-अवृद्धात् ५।१ अपि अव्ययपदम्, बहुवचनविषयात् ५।१।

स०-न वृद्धमिति अवृद्धम्, तस्मात्-अवृद्धात् (नञ्तत्पुरुषः)। बहुवचनं विषयो यस्य तद् बहुवचनविषयम्, तस्मात्-बहुवचनविषयात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-शेषे, वृद्धात्, वुञ् जनपदतदवध्योः इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०बहुवचनविषयाद् अवृद्धाद् वृद्धादपि जनपदात् तदवधेश्च शेषे वुञ्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् बहुवचनविषयाद् अवृद्धसंज्ञकाद् वृद्धसंज्ञकादपि जनपदवाचिनस्तदवधिवाचिनश्च प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु वुञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(अवृद्धाज्जनपदात्)** अङ्गेषु जातः आङ्गकः। वङ्गेषु जातो वाङ्गकः। कलिङ्गेषु जातः कालिङ्गकः। हरयाणेषु जातो हारयाणकः। **(वृद्धाज्जनपदात्)** दार्वेषु जातो दार्वकः। जाम्बवेषु जातो जाम्बवकः। अजक्रन्देषु जात आजक्रन्दकः। **(वृद्धाज्जनपदावधेः)** कालञ्जरेषु जातः कालञ्जरकः। **वैकुलिशेषु** जातो वैकुलिशकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (बहुवचनविषयात्) बहुवचन विषयक (अवृद्धात्) अवृद्ध संज्ञक तथा (वृद्धात्) वृद्धसंज्ञक (अपि) भी (जनपदतदवध्योः) जनपदवाची तथा तदवधिवाची प्रातिपदिकों से (शेषे) शेष अर्थों में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(अवृद्ध जनपद) अङ्गेषु** जातः **आङ्गकः।** अङ्ग जनपद में उत्पन्न हुआ-आङ्गक। **वङ्गेषु जातो** वाङ्गकः**।** वङ्ग जनपद में उत्पन्न हुआ-वाङ्गक।*

कलिङ्गेषु जातः कालिङ्गकः। कलिङ्ग जनपद में उत्पन्न हुआ-कालिङ्गक। हरयाणेषु जातो हारयाणकः। हरयाण जनपद में उत्पन्न हुआ-हारयाणक। लोक में बहुवचन में प्रयुक्त है-'हरयाणाः'। (वृद्ध जनपद) दार्वेषु जातो दार्वकः। दार्व जनपद में उत्पन्न हुआ-दार्वक। जाम्बवेषु जातो जाम्बवकः। जाम्बव में उत्पन्न हुआ-जाम्बवक। (अवृद्धजनपदावधिवाची) अजमीढेषु जात आजमीढकः। अजमीढ जनपद-सीमा में उत्पन्न हुआ-आजमीढक। अजक्रन्देषु जात आजक्रन्दकः। अजक्रन्द जनपद-सीमा में उत्पन्न हुआ-आजक्रन्दक। (वृद्धजनपदावधिवाची) कालञ्जरेषु जातः कालञ्जरकः। कालञ्जर जनपद-सीमा में उत्पन्न हुआ-कालञ्जरक। वैकुलिशेषु जातो वैकुलिशकः। वैकुलिश जनपद-सीमा में उत्पन्न हुआ-वैकुलिशक।

सिद्धि-आङ्गकः। अङ्ग+सुप्+वुञ्। आङ्ग्+अक। आङ्गक+सु। आङ्गकः।

यहां सप्तमी-समर्थ, बहुवचन-विषयक, अवृद्धसंज्ञक, जनपदवाची 'अङ्ग' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से वुञ् प्रत्यय है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश और 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-वाङ्गकः आदि।

विशेष-(१) अङ्ग-गंगा के दाहिने तट पर अवस्थित प्राचीन एक प्रसिद्ध राज्य। इस राज्य की राजधानी का नाम चम्पा नगरी था। चम्पा का दूसरा नाम अनंगपुरी भी था। यह चम्पा नगरी आधुनिक भागलपुर नगर के समीप बिहार प्रान्त में थी (शब्दार्थकौस्तुभ पृ० १३८१)।

(२) वङ्ग-इसे समतट भी कहते हैं। पूर्व बंगाल का नाम। किसी समय इसमें टिपरा और गारो भी शामिल थे।

(३) कलिङ्ग-उड़ीसा के दक्षिण की ओर का प्रदेश। यह प्रदेश गोदावरी नदी के उद्गम स्थान तक फैला हुआ था। इस राज्य की प्राचीन राजधानी कलिङ्ग नगर समुद्रतट से कुछ फासले पर थी और सम्भवतः उस स्थान पर थी जहां आधुनिक राजमहेन्द्री नामक नगर है (शब्दार्थकौस्तुभ पृ० १३८२)।

(४) अजमीढ। अजक्रन्द-साल्व जनपद (जयपुर-बीकानेर) के अवयव राज्य (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ७४)।

वुञ्-

(३५) कच्छाग्निवक्त्रगर्त्तोत्तरपदात्।१२५।

प०वि०-कच्छ-अग्नि-वक्त्र-गर्त्तोत्तरपदात् ५।१।

स०-कच्छश्च अग्निश्च वक्त्रं च गर्तश्च ते-कच्छाग्निवक्त्रगर्ताः। कच्छाग्निवक्त्रगर्ता उत्तरपदानि यस्य तत्-कच्छाग्निवक्त्रगर्त्तोत्तरपदम्, तस्मात्-कच्छाग्निवक्त्रगर्त्तोत्तरपदात् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-शेषे, देशे, वृद्धात्, अवृद्धात्, वुञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०देशे वृद्धाद्, अवृद्धात्, कच्छाग्निवक्त्रगर्त्तोत्तर-पदात् शेषे वुञ्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् देशवाचिनो वृद्धसंज्ञकाद् अवृद्धसंज्ञकाच्च कच्छाद्युत्तरपदात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु वुञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**कच्छोत्तरपदम्**) दारुकच्छे भवो दारुकच्छकः। पिप्पलीकच्छे भवः पैपलीकच्छकः। (**अग्न्युत्तरपदम्**) काण्डाग्नौ भवः काण्डाग्नकः। विभुजाग्नौ भवो वैभुजाग्नकः। (**वक्त्रोत्तरपदम्**) इन्द्रवक्त्रे भव ऐन्द्रवक्त्रकः। सिन्धुवक्त्रे भवः सैन्धुवक्त्रकः। (**गर्त्तोत्तरपदम्**) बहुगर्ते भवो बाहुगर्तकः। चक्रगर्ते भवश्चाक्रगर्तकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (देशे) देशवाची (वृद्धात्) वृद्धसंज्ञक तथा (अवृद्धात्) अवृद्धसंज्ञक (कच्छाग्निवक्त्रगर्तोत्तरपदात्) कच्छ, अग्नि, वक्त्र, गर्त उत्तरपदवान् प्रातिपदिकों से (शेषे) शेष अर्थों में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(कच्छ-उत्तरपद) **दारुकच्छे भवो दारुकच्छकः।** दारुकच्छ देश में रहनेवाला-दारुकच्छक। **पिप्पलीकच्छे भवः पैपलीकच्छकः।** पिप्लीकच्छ देश में रहनेवाला-पैप्पलीकच्छक। (अग्नि उत्तरपद) **काण्डाग्नौ भवः काण्डाग्नकः।** काण्डाग्नि देश में रहनेवाला-काण्डाग्नक। **विभुजाग्नौ भवो वैभुजाग्नकः।** विभुजाग्नि देश में रहनेवाला-वैभुजाग्नक। (वक्त्र उत्तरपद) **इन्द्रवक्त्रे भव ऐन्द्रवक्त्रकः।** इन्द्रवक्त्र देश में रहनेवाला-ऐन्द्रवक्त्रक। **सिन्धुवक्त्रे भवः सैन्धुवक्त्रकः।** सिन्धुवक्त्र देश में रहनेवाला-सैन्धुवक्त्रकः। (गर्त्त-उत्तरपद) **बहुगर्ते भवो बाहुगर्तकः।** बहुगर्त देश में रहनेवाला-बाहुगर्तक। **चक्रगर्ते भवश्चाक्रगर्तकः।** चक्रगर्त देश में रहनेवाला-चाक्रगर्तक।*

सिद्धि-दारुकच्छकः। *दारुकच्छ+ङि+वुञ्। दारुकच्छ+अक। दारुकच्छक+सु। दारुकच्छकः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ, देशवाची, वृद्धसंज्ञक, कच्छ-उत्तरपदवान् 'दारुकच्छ' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही- '**पैपलीकच्छः**' आदि।*

विशेष—*(१) दारुकच्छ, पिप्पलीकच्छ। दारुकच्छ काठियावाड़ (दारु=काष्ठ) के समुद्र-तट का प्रदेश और पिप्पलीकच्छ रेवा काँठे का सूरत से बड़ोदा तक का किनारा था, जिसमें पीपला रियासत है और ठीक समुद्र-तट पर भृगुकच्छ (वर्तमान भड़ोंच) है।*

खंभात की खाड़ी के मस्तक पर साबरमती (श्वभ्रमती) की धारा समुद्र में मिली है उसकी दाहिनी ओर का समुद्र-तट दारुकच्छ और बाईं ओर का पिप्पलीकच्छ कहलाता था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ६६-६७)।

(२) विभुजाग्नि, काण्डाग्नि-विभुजाग्नि कच्छ प्रदेश का भुज ज्ञात होता है और काण्डाग्नि कंडला बन्दरगाह के उत्तर-पूर्व में तपता हुआ रेगिस्तान। ये दोनों नाम कच्छ के छोटे रन्न और बड़े रन्न (इरिन) ही हो सकते हैं (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ६७)।

(३) इन्द्रवक्त्र, सिन्धुवक्त्र-सिन्ध प्रान्त का प्रदेश सिन्धुवक्त्र और बलोचिस्तान का प्रदेश इन्द्रवक्त्र कहलाता था। सिन्धुवक्त्र प्रदेश में खेती सिन्ध नदी पर निर्भर थी और इन्द्रवक्त्र में वर्षा पर। पहला प्रदेश नदीमातृक था और दूसरा देवमातृक। सभा-पर्व में इन दोनों प्रदेशों का स्पष्ट वर्णन एक साथ आया है :-

इन्द्रकृष्यैर्वर्तयन्ति धान्यैर्ये च नदीमुखैः।
समुद्रनिष्कुटे जाताः पारेसिन्धु च मानवाः।५१।११।

(पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ७९)

(४) बहुगर्त, चक्रगर्त-ये दोनों पुराने नाम जान पड़ते हैं। बहुगर्त सम्भवतः साबरमती (प्राचीन-श्वभ्रमती) के काठे का नाम था, जिसके नाम का 'श्वभ्र' शब्द गड्ढे का पर्यायवाची है। चक्रगर्त संभवतः प्रभासक्षेत्र में स्थित चक्रतीर्थ की संज्ञा थी (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ८०)।

वुञ्-

(३६) धूमादिभ्यश्च।१२६।

प०वि०-धूम-आदिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-धूम आदिर्येषां ते धूमादयः, तेभ्यः-धूमादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-शेषे, देशे, वुञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०देशे धूमादिभ्यः शेषे वुञ्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्यो देशवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः शेषेष्वर्थेषु वुञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-धूमे जातो धौमकः। खण्डे जातः खाण्डकः।

धूम। खण्ड। खडण्ड। शशादन। आर्जुनाद। दाण्डायनस्थली। माहकस्थली। घोषस्थली। माषस्थली। राजस्थली। राजगृह। **सत्रासाह। भक्षास्थली। भद्रकूल। गर्त्तकूल। आञ्जीकूल। द्व्याहाव। त्र्याहाव। संहीय।**

वर्वर। वर्चगर्त्त। विदेह। आनर्त्त। माठर। पाथेय। घोष। शिष्य। मित्र। बल। आराज्ञी। धार्त्तराज्ञी। अवसात। तीर्थ।। कूलात्सौवीरेषु।। समुद्रान्नावि मनुष्ये च।। कुक्षि। अन्तरीप। द्वीप। अरुण। उज्जयिनी। दक्षिणापथ। साकेत। मानवल्ली। बल्लीसुराज्ञी। इति धूमादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (देशे) देशवाची (धूमादिभ्यः) धूम आदि प्रातिपदिकों से (शेषे) शेष अर्थों में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**धूमे जातो धौमकः।** धूम देश में उत्पन्न हुआ-धौमक। **खण्डे जातः खाण्डकः।** खण्ड देश में उत्पन्न हुआ-खाण्डक।*

*सिद्धि-**धौमकः।** धूम+ङि+वुञ्। धौम्+अक। धौमक+सु। धौमकः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ, देशवाची 'धूम' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**खाण्डकः।***

वुञ्-

(३७) नगरात् कुत्सनप्रावीण्ययोः।१२७।

प०वि०-नगरात् ५।१ कुत्सन-प्रावीण्ययोः ७।२।

स०-प्रवीणस्य भावः प्रावीण्यम्। कुत्सनं च प्रावीण्यं ते कुत्सनप्रावीण्ये, तयोः-कुत्सनप्रावीण्ययोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-शेषे, वुञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०नगरात् शेषे वुञ् कुत्सनप्रावीण्ययोः।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् नगरात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु वुञ् प्रत्ययो भवति, कुत्सने प्रावीण्ये च गम्यमाने।

उदा०-नगरे भवो नागरकः कुत्सितः, प्रवीणो वा।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (नगरात्) नगर प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है (कुत्सनप्रावीण्ययोः) यदि वहां कुत्सन=निन्दा और प्रावीण्य=चतुरता अर्थ प्रकट हो।*

*उदा०-**नगरे भवो नागरकः कुत्सितः, प्रवीणो वा।** नगर में रहनेवाला-नागरक, निन्दित अथवा चतुर। प्रयोग-चौरा हि नागरका भवन्ति, प्रवीणा हि नागरका भवन्ति।*

वुञ्–

(३८) अरण्यान्मनुष्ये।१२८।

प०वि०–अरण्यात् ५।१ मनुष्ये ७।१।

अनु०–शेषे, वुञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–यथासम्भव०अरण्यात् शेषे वुञ् मनुष्ये।

अर्थः–यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् अरण्यात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु वुञ् प्रत्ययो भवति, मनुष्येऽभिधेये।

उदा०–अरण्ये भव आरण्यको मनुष्यः।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (अरण्यात्) अरण्य प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है (मनुष्ये) यदि वहां मनुष्य अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०–अरण्ये भव आरण्यको मनुष्यः। अरण्य=जंगल में रहनेवाला-आरण्यक मनुष्य।

सिद्धि–आरण्यकः। अरण्य+ङि+वुञ्। आरण्य्+अक। आरण्यक+सु। आरण्यकः।

यहां सप्तमी-समर्थ 'अरण्य' शब्द से शेष अर्थ में तथा मनुष्य अभिधेय में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। 'वु' के स्थान में पूर्ववत् 'अक' आदेश तथा अंग को आदिवृद्धि होती है।

वुञ्-विकल्पः–

(३६) विभाषा कुरुयुगन्धराभ्याम्।१२६।

प०वि०–विभाषा १।१ कुरु-युगन्धराभ्याम् ५।२।

स०–कुरुश्च युगन्धरश्च तौ कुरुयुगन्धरौ, ताभ्याम्-कुरुयुगन्धराभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–शेषे, देशे, वुञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–यथासम्भव०देशे कुरुयुगन्धराभ्यां शेषे विभाषा वुञ्।

अर्थः–यथासम्भवविभक्तिसमर्थाभ्यां देशवाचिभ्यां कुरुयुगन्धराभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां शेषेष्वर्थेषु विकल्पेन वुञ् प्रत्ययो भवति, पक्षे च अण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(कुरुः) कुरुषु भवः कौरवकः (वुञ्)। कौरवः (अण्)। (युगन्धरः) युगन्धरेषु भवो यौगन्धरकः (वुञ्)। यौगन्धरः (अण्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (देशे) देशवाची (कुरुयुन्धराभ्याम्) कुरु, युगन्धर प्रातिपदिकों से (शेषे) शेष अर्थों में (विभाषा) विकल्प से (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है, पक्ष में अण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(कुरु) **कुरुषु भवः कौरवकः (वुञ्)। कौरवः (अण्)।** कुरु देश में रहनेवाला-कौरवक वा कौरव। (युगन्धर) **युगन्धरेषु भवो यौगन्धरकः (वुञ्)। यौगन्धरः (अण्)।** युगन्धर (जगाधरी) देश में रहनेवाला-यौगन्धरक वा यौगन्धर।*

*सिद्धि-(१) **कौरवकः।** कुरु+ङि+वुञ्। कौरो+अक। कौरवक+सु। कौरवकः।*

यहां सप्तमी-समर्थ, देशवाची 'कुरु' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। 'ओर्गुणः' (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

*(२) **कौरवः।** कुरु+ङि+अण्। कौरो+अ। कौरव+सु। कौरवः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ, देशवाची शब्द से शेष अर्थों में विकल्प पक्ष में **'कच्छादिभ्यश्च'** (४।२।१३३) से 'अण्' प्रत्यय है।*

*(३) **यौगन्धरकः।** यहां 'युगन्धर' शब्द से पूर्ववत् वुञ् प्रत्यय है।*

*(४) **यौगन्धरः।** यहां 'युगन्धर' शब्द से विकल्प पक्ष में **'प्रागदीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से औत्सर्गिक 'अण्' प्रत्यय है।*

विशेष--*(१) कुरु-दिल्ली और मेरठ का प्रदेश।*

*(२) **युगन्धर**-यह राज्य सम्भवतः अम्बाला जिले में सरस्वती से यमुना तक फैला हुआ था। देहरादून जिले में कालसी के पास जगत ग्राम में प्राप्त लेख से ज्ञात होता है कि वह इलाका युग शैल देश था (युग नाम पहाड़ी प्रदेश) कहलाता था।*

युगेश्वरस्याश्वमेधे युगशैलमहीपतेः।
इष्टका वार्षगण्यस्य नृपतेश्शीलवर्मणः।।

(पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ७३)।

(३) 'युगन्धर' शब्द का अपभ्रंश 'जगाधरी' है।

कन्-

(४०) मद्रवृज्योः कन्।१३०।

प०वि०-मद्र-वृज्योः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) कन् १।१।

स०-मद्रश्च वृजिश्च तौ मद्रवृजी, तयोः-मद्रवृज्योः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-शेषे, देशे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०मद्रवृजिभ्यां शेषे कन्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाभ्यां देशवाचिभ्यां मद्रवृजिभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां शेषेष्वर्थेषु कन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**मद्रः**) मद्रेषु भवो मद्रकः। (**वृजिः**) वृजिषु भवो वृजिकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (देशे) देशवाची (मद्रवृज्योः) मद्र, वृजि प्रातिपदिकों से (शेषे) शेष अर्थों में (कन्) कन् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(मद्र) मद्रेषु भवो** मद्रकः **।** मद्र देश में रहनेवाला-मद्रक। (वृजि) वृजिषु **भवो** वृजिकः **।** वृजि देश में रहनेवाला-वृजिक।*

*सिद्धि-**मद्रकः ।** मद्र+ङि+कन्। मद्र+क। मद्रक+सु। मद्रकः।*

*यहां 'मद्र' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है। ऐसे ही-वृजिकः **।***

***विशेष**—(१) मद्र-मद्र जनपद प्राचीन वाहीक का उत्तरी भाग था। इसकी राजधानी शाकल (वर्तमान-स्यालकोट) थी जो आपगा (वर्तमान-अयक) नदी पर स्थित है। यह छोटी नदी जम्मू की पहाड़ियों से निकलकर स्यालकोट के पास से होती हुई वर्षा ऋतु में चनाब से मिलती है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ६७)।*

(२) वृजि-बिहार प्रान्त में गंगा के उत्तर का प्रदेश वृजि कहलाता था, जहां विदेह लिच्छवियों का राज्य था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ७४)।

अण्—

(४१) कोपधादण्।१३१।

प०वि०-क उपधात् ५।१ अण् १।१।

स०-क उपधायां यस्य तत् कोपधम्, तस्मात्-कोपधात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-शेषे, देशे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०देशे कोपधात् शेषेऽण्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् देशवाचिनः ककारोपधात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु अण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-ऋषिकेषु जात आर्षिकः। महिषिकेषु जातो माहिषिकः। **इक्ष्वाकुषु** जात **ऐक्ष्वाकः**।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (देशे) देशवाची (कोपधात्) ककार-उपधावान् प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**ऋषिकेषु जात आर्षिकः।** ऋषिक देश में उत्पन्न हुआ-आर्षिक। **महिषिकेषु जातो माहिषिकः।** महिषिक देश में उत्पन्न हुआ-माहिषिक। **इक्ष्वाकुषु जात ऐक्ष्वाकः।** इक्ष्वाकु क्षत्रियों के देश में उत्पन्न हुआ-ऐक्ष्वाक।*

*सिद्धि-(१) **आर्षिकः।** ऋषिक+सुप्+अण्। आर्षिक्+अ। आर्षिक+सु। आर्षिकः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ, देशवाची 'ऋषिक' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**माहिषिकः।***

(२) ऐक्ष्वाकः। यहां 'इक्ष्वाकु' शब्द से पूर्ववत् 'अण्' प्रत्यय है। 'दाण्डिनायनहास्तिनायन०' (६।४।१७४) से 'इक्ष्वाकु' शब्द के उकार का लोप निपातित है।

अण्-

(४२) कच्छादिभ्यश्च।१३२।

प०वि०-कच्छ-आदिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-कच्छ आदिर्येषां ते कच्छादयः, तेभ्यः-कच्छादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-शेषे, देशे, अण् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०देशे कच्छादिभ्यश्च शेषेऽण्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्यो देशवाचिभ्यः कच्छादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यश्च शेषेष्वर्थेषु अण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-कच्छे जातः काच्छः। सिन्धौ जातः सैन्धवः। वर्णौ जातो वार्णवः।

कच्छ। सिन्धु। वर्णु। गन्धार। मधुमत्। कम्बोज। कश्मीर। साल्व। कुरु। रङ्कु। अणु। अण्ड। खण्ड। द्वीप। अनूप। अजवाह। विज्ञापक। कुलून। इति कच्छादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (देशे) देशवाची (कच्छादिभ्यः) कच्छ आदि प्रातिपदिकों से (च) भी (शेषे) शेष अर्थों में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**कच्छे जातः काच्छः।** कच्छ देश में उत्पन्न हुआ-काच्छ। **सिन्धौ जातः सैन्धवः।** सिन्धु देश में उत्पन्न हुआ-सैन्धव। **वर्णौ जातो वार्णवः।** वर्णु देश में उत्पन्न हुआ-वार्णव।*

सिद्धि-(१) काच्छः । कच्छ+ङि+अण् । काच्छ्+अ । काच्छ+सु । काच्छः ।

यहां सप्तमी-समर्थ, देशवाची 'कच्छ' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है।

(२) सैन्धवः । यहां 'सिन्धु' शब्द से पूर्ववत् 'अण्' प्रत्यय है। 'ओर्गुणः' (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है। ऐसे ही-वार्णवः ।

***विशेष**-(१) कच्छ-सिन्ध के ठीक दक्षिण में कच्छ जनपद है।*

(२) सिन्धु-सिन्धु नद के पूर्व में सिन्ध सागर दुआब का पुराना नाम सिन्धु था।

(३) वर्णु-सिन्धु की पश्चिमी सहायक नदी कुर्रम के किनारे निचले हिस्से में बन्नू की दून है। इसका वैदिक नाम 'क्रमु' था। इसका ऊपरी पहाड़ी प्रदेश आज भी 'कुर्रम' कहलाता है और निचला मैदानी भाग बन्नू। पाणिनि ने इसी को वर्णु नद के नाम से प्रसिद्ध वर्णु देश कहा है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ६६, ५०, ५१)।

वुञ्-

(४३) मनुष्यतत्स्थयोर्वुञ् ।१३३ ।

प०वि०-मुनष्य-तत्स्थयोः ७।२ वुञ् १।१।

स०-तस्मिन् तिष्ठतीति तत्स्थम्। मनुष्यश्च तत्स्थं च ते मनुष्यतत्स्थे, तयोः-मनुष्यतत्स्थयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-शेषे, देशे, कच्छादिभ्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०देशे कच्छादिभ्यः शेषे वुञ् मनुष्यतत्स्थयोः।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्यो देशवाचिभ्यः कच्छादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः शेषेष्वर्थेषु वुञ् प्रत्ययो भवति, मनुष्ये तत्स्थे चाभिधेये।

उदा०-(मनुष्ये) कच्छे जातः काच्छको मनुष्यः। **(तत्स्थे)** कच्छे जातं काच्छकम्। काच्छकमस्य हसितम्, काच्छकमस्य जल्पितम्। काच्छिका चूडा। **(मनुष्ये)** सिन्धौ जातः सैन्धवको मनुष्यः। **(तत्स्थे)** सिन्धौ जातं सैन्धवकम्। सैन्धवकमस्य हसितम्, सैन्धवकमस्य जल्पितम्। सैन्धविका चूडा।

***आर्यभाषाः** अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (देशे) देशवाची (कच्छादिभ्यः) कच्छ आदि प्रातिपदिकों से (शेषे) शेष अर्थों में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है (मनुष्यतत्स्थयोः) यदि वहां मनुष्य और मनुष्यस्थ क्रिया आदि अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-(मनुष्य) कच्छे जातः **काच्छको मनुष्यः।** कच्छ देश में उत्पन्न हुआ-काच्छक मनुष्य। (तत्स्थ) कच्छे जातं **काच्छकम्। काच्छकमस्य हसितम्।** इस मनुष्य का हंसना काच्छक है अर्थात् कच्छदेशीय मनुष्य जैसा है। **काच्छकमस्य जल्पितम्।** इस मनुष्य का बोलना काच्छक है अर्थात् कच्छदेशीय मनुष्य जैसा है। **काच्छिका चूडा।** इस नारी की चूडा (चुण्डा) काच्छिका है अर्थात् कच्छदेशीय नारी की जैसी है। (मनुष्य) सिन्धौ जातः **सैन्धवको मनुष्यः।** सिन्धु देश में उत्पन्न हुआ-सैन्धवक मनुष्य। (तत्स्थ) सिन्धौ जातं **सैन्धवकम्। सैन्धवकमस्य हसितम्।** उस मनुष्य का हंसना सैन्धवक है अर्थात् सिन्धुदेशीय मनुष्य जैसा है। **सैन्धकमस्य जल्पितम्।** इस मनुष्य का बोलना सैन्धवक है अर्थात् सिन्धुदेशीय मनुष्य जैसा है। **सैन्धविका चूडा।** इस नारी की चूडा सैन्धविका है अर्थात् सिन्धुदेशीय नारी की जैसी है।*

*सिद्धि-(१) **काच्छकः।** कच्छ+ङि+वुञ्। काच्छ्+अक। काच्छक+सु। काच्छकः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ देशवाची कच्छ शब्द से शेष अर्थों में मनुष्य तथा तत्स्थ क्रिया-आदि अभिधेय में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश और **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है।*

*(२) **सैन्धवकः।** यहां 'सिन्धु' शब्द से पूर्ववत् 'वुञ्' प्रत्यय है। **'ओर्गुणः'** (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

वुञ्-

(४४) अपदातौ साल्वात्।१३४।

प०वि-अपदातौ ७।१ साल्वात् ५।१।

स०-न पदातिरिति अपदातिः, तस्मिन्-अपदातौ (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-शेषे, देशे, मनुष्यतत्स्थयोः, वुञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०देशे साल्वात् शेषे वुञ् अपदातौ मनुष्यतत्स्थयोः।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् देशवाचिनः साल्वात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु वुञ् प्रत्ययौ भवति, मनुष्ये पदातिवर्जिते तत्स्थे चाभिधेये।

उदा०-(मनुष्ये) साल्वे जातः साल्वको मनुष्यः। साल्व देश में उत्पन्न हुआ-साल्वक मनुष्य। **(तत्स्थे)** साल्वे जातं साल्वकम्। साल्वकमस्य हसितम्। साल्वकमस्य जल्पितम्। अपदाताविति किम् ? साल्वः पदातिर्गच्छति।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (देशे) देशवाची (साल्वात्) साल्व प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है (अपदातौ, मनुष्यतत्स्थयोः) यदि वहाँ मनुष्य और पैदल चलना को छोड़कर मनुष्यस्थ क्रिया आदि अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०- ***(मनुष्य)*** *साल्वे जातः* ***साल्वको मनुष्यः।*** *साल्व देश में उत्पन्न हुआ-साल्वक मनुष्य।* ***(तत्स्थ)*** *साल्वे जातं* ***साल्वकम्। साल्वकमस्य हसितम्।*** *इस मनुष्य का हंसना साल्वक है अर्थात् साल्वदेशीय मनुष्य जैसा है।* ***साल्वकमस्य जल्पितम्।*** *इस मनुष्य का बोलना साल्वक है अर्थात् साल्वदेशीय मनुष्य जैसा है।*

'अपदाति' का कथन इसलिये है कि यहां 'वुञ्' प्रत्यय न हो- ***साल्वः पदातिर्गच्छति।*** *यह साल्व देश में उत्पन्न हुआ मनुष्य पैदल जा रहा है। यहां साल्व शब्द का कच्छादि गण में पाठ होने से* ***'कच्छादिभ्यश्च'*** *(४।२।१३३) से 'अण्' प्रत्यय होता है।*

सिद्धि- ***साल्वकः।*** *साल्व+ङि+वुञ्। साल्व्+अक। साल्वक+सु। साल्वकः।*

यहां सप्तमी-समर्थ, देशवाची 'साल्व' शब्द से शेष अर्थों में मनुष्य तथा पदाति-वर्जित मनुष्यस्थ क्रिया आदि अभिधेय में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। ***'युवोरनाकौ'*** *(७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश और* ***'तद्धितेष्वचामादेः'*** *(७।२।११७) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि होती है।*

विशेष- *साल्व-जयपुर-बीकानेर प्रदेश का प्राचीन नाम 'साल्व' जनपद है।*

वुञ्-

(४५) गोयवाग्वोश्च।१३५।

प०वि०-गो-यवाग्वोः ७।२ च अव्ययपदम्।

स०-गौश्च यवागूश्च ते **गोयवाग्वौ**, तयोः-गोयवाग्वोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-शेषे, देशे, वुञ्, साल्वात् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०देशे साल्वात् शेषे वुञ् गोयवाग्वोश्च।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् देशवाचिनः साल्वात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु वुञ् प्रत्ययो भवति, गवि यवागवि चार्थेऽभिधेये।

उदा०-**(गौः)** साल्वे जातः साल्वको गौः। **(यवागूः)** साल्वे जाता साल्विका यवागूः।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (देशे) देशवाची (साल्वात्) साल्व प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है (गोयवाग्वोः) यदि वहां गौः=बैल और यवागू=लापसी (राबड़ी) अर्थ (च) भी अभिधेय हो।*

उदा०-(गौ) साल्वे जातः साल्वको गौः। साल्व देश में उत्पन्न गौ=बैल साल्वक। साल्व देश के बैल प्रसिद्ध हैं। (यवागू) साल्वे जाता साल्विका यवागूः। साल्व देश में बनी साल्विका यवागू=लापसी (राबड़ी)। साल्व देश (जयपुर-बीकानेर) की राबड़ी प्रसिद्ध है।

सिद्धि-(१) साल्वकः। इस शब्द की सिद्धि पूर्ववत् है।

(२) साल्विकाः। यहां स्त्रीत्व-विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से टाप् प्रत्यय और 'प्रत्ययस्थात्कात्०' (७।३।४४) से इत्त्व होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

छः--

(४६) गर्त्तोत्तरपदाच्छः।१३६।

प०वि०-गर्त-उत्तरपदात् ५।१ छः १।१।

स०-गर्त उत्तरपदं यस्य तद् गर्त्तोत्तरपदम्, तस्मात्-गर्त्तोत्तरपदात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-शेषे, देशे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०देशे गर्त्तोत्तरपदात् शेषे छः।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् देशवाचिनो गर्त्तोत्तरपदात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु छः प्रत्ययो भवति।

उदा०-वृकगर्त्ते जातो वृकगर्त्तीयः। शृगालगर्त्ते जातः शृगालगर्त्तीयः। श्वाविद्गर्त्ते जातः श्वाविद्गर्त्तीयः।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (देशे) देशवाची (गर्त्तोत्तरपदात्) गर्त्त-उत्तरपदवान् प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (छः) छ प्रत्यय होता है।*

उदा०-वृकगर्त्ते जातो वृकगर्त्तीयः। वाहीक देश (पंजाब) के 'वृकगर्त्त' नामक ग्राम में उत्पन्न हुआ-वृकगर्त्तीय। शृगालगर्त्ते जातः शृगालगर्त्तीयः। वाहीक देश के शृगालगर्त्त नामक ग्राम में उत्पन्न हुआ-शृगालगर्त्तीय। श्वाविद्गर्त्ते जातः श्वाविद्गर्त्तीयः। वाहीक देश के श्वाविद्गर्त्त नामक ग्राम में उत्पन्न हुआ-श्वाविद्गर्त्तीय।

सिद्धि-वृकगर्त्तीयः। वृकगर्त्त+ङि+छ। वृकगर्त्त्+ईय। वृकगर्त्तीय+सु। वृकगर्त्तीयः।

यहां सप्तमी-समर्थ, देशवाची, गर्त्त-उत्तरपदवान् 'वृकगर्त्त' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'छ्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में ईय् आदेश और 'यस्येति च' (२।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-शृगालगर्त्तीयः, श्वाविद्गर्त्तीयः। श्वाविद्=कुत्ते मारनेवाला।

छः–

(४७) गहादिभ्यश्च।१३७।

प०वि०–गह–आदिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०–गह आदिर्येषां ते गहादयः, तेभ्यः–गहादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–शेषे, देशे, छ इति चानुवर्तते।

अन्वयः–यथासम्भव०देशे गहादिभ्यश्च शेषे छः।

अर्थः–यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्यो देशवाचिभ्यो गहादिभ्य प्रातिपदिकेभ्यश्च शेषेष्वर्थेषु छः प्रत्ययो भवति। अत्र देशाधिकारेषु सम्भवापेक्ष देशविशेषणं भवति, न सर्वेषाम्।

उदा०–गहे भवो गहीयः। अन्तःस्थे भवोऽन्तःस्थीयः।

गह। अन्तःस्थ। सम। विषम।। मध्यमध्यमं चाण् चरणे। उत्तम अङ्ग। बङ्ग। मगध। पूर्वपक्ष। अपरपक्ष। अधमशाख। उत्तमशाख। समानशाख। एकग्राम। एकवृक्ष। एकपलाश। इष्वग्र। इष्वनीक। अवस्यन्दी। अवस्कन्द। कामप्रस्थ। खाडायनि। खाण्डायनी। कावेरणि। कामवेरणि। शैशिरि। शौङ्गि। आसुरि। आहिंसि। आमित्रि। व्याडि। बैदजि। भौजि। आढ्यश्वि। आनृशंसि। सौवि। पारकि। अग्निशर्मन्। देवशर्मन्। श्रौति। आरटकि। वाल्मीकि। क्षेमवृद्धिन्। उत्तर। अन्तर।। सुपार्श्वतसोर्लोपः।। जनपरस्य कुक् च।। देवस्य च।। वेणुकादिभ्यश्छण्।। इति गहादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ–यथासम्भव–विभक्ति–समर्थ (देशे) देशवाची (गहादिभ्यः) गह आदि प्रातिपदिकों से (च) भी (शेषे) शेष अर्थों में (छः) छ प्रत्यय होता है।*

*उदा०–गहे **भवो** गहीयः। गहन वन–देश में रहनेवाला–गहीय। **अन्तःस्थे भवोऽन्तःस्थीयः।** अन्तःस्थ वर्णों में होनेवाला–अन्तःस्थीय (य र ल व)।*

*सिद्धि–**गहीयः।** गह+ङि+छ। गह्+ईय। गहीय+सु। गहीयः।*

*यहां सप्तमी–समर्थ, देशवाची 'गह' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'छ्' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है। ऐसे ही–**'अन्तःस्थीयः'** आदि।*

विशेष—*यहां गहादिगण के शब्दों के प्रत्यय-विधि में यथासम्भव देश-अर्थ का सम्बन्ध होता है, सबके साथ नहीं।*

छः—

(४८) प्राचां कटादेः।१३८।

प०वि०-प्राचाम् ६।३ कट-आदेः ५।१।

स०-कट आदिर्यस्य स कटादिः, तस्मात्-कटादेः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-शेषे, देशे, छ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०प्राचां देशे कटादेः शेषे छः।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् प्राग्देशवाचिनः कटादेः प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु छः प्रत्ययो भवति।

उदा०-कटनगरे जातः कटनगरीयः। कटघोषे जातः कटघोषीयः। कटपल्वले जातः कटपल्वलीयः।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (प्राचां देशे) प्राक्देशवाची (कटादेः) कट-आदिमान् प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (छः) छ प्रत्यय होता है।*

*उदा०-कटनगरे जातः **कटनगरीयः**। प्राक्-देशीय कटनगर में उत्पन्न हुआ-कटनगरीय। **कटघोषे जातः कटघोषीयः**। प्राक्-देशीय 'कटघोष' नामक अहीर-गामड़ी में उत्पन्न हुआ-कटघोषीय। **कटपल्वले जातः कटपल्वलीयः**। प्राक्-देशीय कटपल्वल नामक ग्राम में उत्पन्न हुआ-कटपल्वलीय।*

*सिद्धि-**कटनगरीयः**। कटनगर+ङि+छ। कटनगर्+ईय। कटनगरीय+सु। कटनगरीयः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ, प्राक्-देशवाची, कट-आदिमान् 'कटनगर' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'छ्' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**कटघोषीयः**, **कटपल्वलीयः**।*

छः (कः)—

(४६) राज्ञः क च।१३६।

प०वि०-राज्ञः ५।१ (आदेशविषये ६।१) क १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्।

अनु०-शेषे, छ इति चानुवर्तते । 'देशे' इति चार्थासम्भवान्नानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव० राज्ञः शेषे छः कश्च ।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् राज्ञः प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु छः-प्रत्ययो भवति, कश्चान्तादेशो भवति ।

उदा०-राज्ञ इदं राजकीयम् ।

आर्यभाषाः अर्थ-*यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (राज्ञः) राजन् प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (छः) प्रत्यय होता है (च) और राजन् शब्द से अन्त्य न् के स्थान में (कः) क्-आदेश होता है।*

*उदा०-**राज्ञ इदं राजकीयम्।** जो राजा का है यह-राजकीय (सरकारी)।*

*सिद्धि-**राजकीयम्।** राजन्+ङस्+छ। राजन्+ईय। राजक्+ईय। राजकीय+सु। राजकीयम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'राजन्' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'छ्' प्रत्यय और राजन् के अन्त्य 'न्' के स्थान में 'क्' आदेश होता है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है।*

छः-

(५०) वृद्धादकेकान्तखोपधात्।१४०।

प०वि०-वृद्धात् ५।१ अक-इकान्त-खोपधात् ५।१।

स०-अकश्च इकश्च तौ अकेकौ, अकेकावन्ते यस्य तत्-अकेकान्तम्। ख उपधायां यस्य तत् खोपधम्। अकेकान्तं च खोपधं च एतयोः समाहारः-अकेकान्तखोपधम्, तस्मात्-अकेकान्तखोपधात् (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-शेषे, देशे, छ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०देशे वृद्धाद् अकेकान्तखोपधात् शेषे छः ।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् देशवाचिनो वृद्धसंज्ञकाद् अकान्ताद् इकान्तात् खकारोपधाच्च प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु छः प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(अकान्तात्)** आरीहणके जातं आरीहणकीयम्। द्रौघणके जातं द्रौघणकीयम्। **(इकान्तात्)** आश्वपथिके जातं आश्वपथिकीयम्।

शाल्मलिके जातं शाल्मलिकीयम्। **(खोपधात्)** कौटिशिखे जातं कौटिशिखीयम्। आयोमुखे जातं आयोमुखीयम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (देशे) देशवाची (वृद्धात्) वृद्धसंज्ञक (अकेकान्तखोपधात्) अकान्त, इकान्त और खकार उपधावान् प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (छः) छ प्रत्यय होता है।*

उदा०-(अकान्त) आरीहणके जातं ***आरीहणकीयम्।*** *आरीहणक देश में उत्पन्न-आरीहणकीय। द्रौघणके जातं* ***द्रौघणकीयम्।*** *द्रौघणक देश में उत्पन्न-द्रौघणकीय।* ***(इकान्त) आश्वपथिके*** *जातं आश्वपथिकीयम्। आश्वपथिक देश में उत्पन्न-आश्वपथिकीय।* ***शाल्मलिके*** *जातं शाल्मलिकीयम्। शाल्मलिक देश में उत्पन्न-शाल्मलिकीय।* ***(खोपध) कौटिशिखे*** *जातं* ***कौटिशिखीयम्।*** *कौटिशिख देश में उत्पन्न-कौटिशिखीय।* ***आयोमुखे*** *जातं* ***आयोमुखीयम्।*** *आयोमुख देश में उत्पन्न-आयोमुखीय।*

सिद्धि-आरीहणकीयम्। *यहां सप्तमी-समर्थ, देशवाची, वृद्धसंज्ञक अकान्त 'आरीहणक' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है।* ***'आयनेय०'*** *(७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है। ऐसे ही-***द्रौघणकीयम्*** *आदि।*

छः--

(५१) कन्थापलदनगरग्रामह्रदोत्तरपदात्।१४१।

प०वि०-कन्था-पलद-नगर-ग्राम-ह्रदोत्तरपदात् ५।१।

स०-कन्था च पलदं च नगरं च ग्रामश्च ह्रदश्च एतेषां समाहारः कन्था०ह्रदम्, कन्था०ह्रदमुत्तरपदं यस्य तत् कन्थापलदनगरग्रामह्रदोत्तरपदम्, तस्मात्-कन्थापलदनगरग्रामह्रदोत्तरपदात् (समाहारद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-शेषे, देशे, वृद्धात्, छ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०देशे वृद्धात् कन्थापलदनगरग्रामह्रदोत्तरपदात् शेषे छः।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् देशवाचिनो वृद्धसंज्ञकात् कन्था-पलद-नगर-ग्राम-ह्रदोत्तरपदात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु छः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(कन्था) दाक्षिकन्थे जातं दाक्षिकन्थीयम्। माहकिकन्थे जातं माहकिकन्थीयम्। **(पलदम्)** दाक्षिपलदे जातं **दाक्षिपलदीयम्।**

माहकिपलदे जातं माहकिपलदीयम्। **(नगरम्)** दाक्षिनगरे जातं दाक्षिनगरीयम्। माहकिनगरे जातं माहकिनगरीयम्। **(ग्रामः)** दाक्षिग्रामे जातं दाक्षिग्रामीयम्। माहकिग्रामे जातं माहकिग्रामीयम्। **(ह्रदः)** दाक्षिह्रदे जातं दाक्षिह्रदीयम्। माहकिह्रदे जातं माहकिह्रदीयम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (देशे) देशवाची (वृद्धात्) वृद्धसंज्ञक (कन्था०उत्तरपदात्) कन्था, पलद, नगर, ग्राम, ह्रद उत्तरपदवान् प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (छः) छ प्रत्यय होता है।*

उदा०-संस्कृत-भाग में देख लेवें। अर्थ इस प्रकार है-(कन्था) दाक्षिकन्थ देश में उत्पन्न-दाक्षिकन्थीय। माहकिकन्थ देश में उत्पन्न-माहकिकन्थीय। (पलद) दाक्षिपलद देश में उत्पन्न-दाक्षिपलदीय। माहकिपलद में उत्पन्न-माहकिपलदीय। (ग्राम) दाक्षिग्राम में उत्पन्न-दाक्षिग्रामीय। माहकि ग्राम में उत्पन्न-माहकिग्रामीय। (ह्रद) दाक्षिह्रद में उत्पन्न-दाक्षिह्रदीय। गाहकिह्रद गें उत्पन्न-माहकिह्रदीय।

*सिद्धि-दाक्षिकन्थीय। यहां सप्तमी-समर्थ, देशवाची वृद्धसंज्ञक कन्था-उत्तरपदवान् 'दाक्षिकन्थ' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही '**माहकिकन्थीयः**' आदि।*

विशेष--*(१) कन्था-मूल में यह शक भाषा का शब्द था, जिसमें 'कन्थ' का अर्थ नगर होता था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ८०)।*

(२) पलद-अथर्ववेद (९।३।५,७१) के अनुसार पलद का अर्थ फूंस या पयार होता था। इससे ज्ञात होता है कि सरपत के झुंडों के लिए पलद शब्द लोक में प्रचलित था और जो गांव उनके पास बसाये जाते थे उनके नाम में पलद-उत्तरपद का प्रयोग होता था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ८०)।

(३) ह्रद-पानी की नीची दह के पास बसे हुये गांवों के नामों में ह्रद जुड़ता था, जैसे-दाक्षिह्रद (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ८०)।

छः--

(५२) पर्वताच्च।१४२।

प०वि०-पर्वतात् ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-शेषे इत्यनुवर्तते। देशे इति चासम्भवान्न सम्बध्यते।

अन्वयः-यथासम्भव०पर्वताच्च शेषे छः।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् पर्वतात् प्रातिपदिकाच्च **शेषेष्वर्थेषु** छः **प्रत्ययो भवति**।

उदा०-पर्वते भवः पर्वतीयो राजा। पर्वतीयः पुरुषः।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (पर्वतात्) पर्वत प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (छः) छ प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**पर्वते भवः पर्वतीयो राजा।** पर्वत पर रहनेवाला पर्वतीय राजा। **पर्वतीयः पुरुषः।** पर्वत पर रहनेवाला पुरुष।*

*सिद्धि-**पर्वतीय।** यहां सप्तमी-समर्थ 'पर्वत' शब्द से शेष अर्थों में 'छ' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

छ-विकल्पः--

(५३) विभाषाऽमनुष्ये।१४३।

प०वि०-विभाषा १।१ अमनुष्ये ७।१।

स०-न मनुष्य इति अमनुष्यः, तस्मिन्-अमनुष्ये (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-शेषे, छः, पर्वताद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०पर्वतात् शेषे विभाषा छोऽमनुष्ये।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् पर्वतात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु विकल्पेन छः प्रत्ययो भवति, अमनुष्येऽभिधेये। पक्षे च अण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पर्वते जातानि पर्वतीयानि फलानि। पर्वते जातं पर्वतीयमुदकम् (छः)। पार्वतानि फलानि। पार्वतमुदकम् (अण्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (पर्वतात्) पर्वत प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (विभाषा) विकल्प से (छः) छ प्रत्यय होता है (अमनुष्ये) यदि वहां मनुष्य अर्थ अभिधेय न हो। पक्ष में औत्सर्गिक अण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**पर्वते जातानि पर्वतीयानि फलानि।** पर्वत पर उत्पन्न हुये-पर्वतीय फल। **पर्वते जातं पर्वतीयमुदकम्।** पर्वत पर उत्पन्न हुआ-पर्वतीय जल (छः)। **पार्वतानि फलानि।** पर्वत पर उत्पन्न हुये-पार्वत फल। **पार्वतमुदकम्।** पर्वत पर उत्पन्न हुआ-पार्वत जल (अण्)।*

*सिद्धि (१) **पर्वतीयम्।** यहां सप्तमी-समर्थ 'पर्वत' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(२) **पार्वतम्।** यहां सप्तमी-समर्थ 'पर्वत' शब्द से विकल्प पक्ष में **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से औत्सर्गिक अण् प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

*जहां मनुष्य अर्थ अभिधेय होता है वहां पूर्वोक्त 'पर्वताच्च' (४।२।१४३) से छ प्रत्यय ही होता है-**पर्वतीयो मनुष्यः।***

छः-

(५४) कृकणपर्णाद् भारद्वाजे।१४४।

प०वि०-कृकण-पर्णात् ५।१ भारद्वाजे ७।१।

स०-कृकणं च पर्णं च एतयोः समाहारः कृकणपर्णम्, तस्मात्-कृकणपर्णात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-शेषे, देशे, छ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०भारद्वाजे देशे कृकणपर्णात् शेषे छः।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाभ्यां भारद्वाज-देशवाचिभ्यां कृकण-पर्णाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां शेषेष्वर्थेषु छः प्रत्ययो भवति। अत्र देशप्रकरणे भारद्वाजशब्दो देशवाचको गृह्यते न तु गोत्रवाचकः।

उदा०-(कृकणम्) कृकणे जातं कृकणीयम्। **(पर्णः)** पर्णे जातं पर्णीयम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भवविभक्तिसमर्थ (भारद्वाजे देशे) भारद्वाज देशवाची (कृकणपर्णात्) कृकण, पर्ण प्रातिपदिकों से (शेषे) शेष अर्थों में (छः) छ प्रत्यय होता है। यहां देश-प्रकरण में देशवाची 'भारद्वाज' शब्द का ग्रहण किया जाता है; गोत्रवाची का नहीं।*

*उदा०-**(कृकण) कृकणे जातं कृकणीयम्।** भारद्वाज देशीय 'कृकण' नगर में उत्पन्न-कृकणीय। **(पर्ण) पर्णे जातं पर्णीयम्।** भारद्वाज देशीय पर्ण नगर में उत्पन्न-पर्णीय।*

*सिद्धि-**कृकणीयम्।** यहां सप्तमी-समर्थ, भारद्वाज-देशवाची 'कृकण' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**पर्णीयम्।***

***विशेष**-पारजीटर ने भारद्वाज देश की पहचान गढ़वाल प्रदेश से की है (मार्कण्डेय पुराण का अंग्रेजी अनुवाद पृ० ३२०) (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ७०)।*

इति पूर्वशेषार्थप्रत्ययप्रकरणम्।

इति पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने
चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयः पादः समाप्तः।

चतुर्थाध्यायस्य तृतीयः पादः

उत्तरशेषार्थप्रत्ययप्रकरणम्

खञ्+छ-प्रत्ययविकल्पः--

(५५) युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च।१।

प०वि०-युष्मद्-अस्मदोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्, खञ् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-युष्मच्च अस्मच्च तौ युष्मदस्मदौ, तयोः-युष्मदस्मदोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-शेषे, छ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०युष्मदस्मद्भ्यां शेषेऽन्यतरस्यां खञ् छश्च।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाभ्यां युष्मदस्मद्भ्यां प्रातिपदिकाभ्यां शेषेष्वर्थेषु विकल्पेन खञ् छश्च प्रत्ययो भवति, पक्षे चाऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(युस्मद्) युष्मासु जातो यौष्माकीणः (खञ्)। युष्मदीयः (छः)। यौष्माकः (अण्)। **(अस्मद्)** अस्मासु जात आस्माकीनः (खञ्)। अस्मदीयः (छः)। आस्माकः (अण्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (युस्मदस्मदोः) युष्मद्, अस्मद् प्रतिपदिकों से (शेषे) शेष अर्थों में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (खञ्) खञ् (च) और छ प्रत्यय होते हैं और विकल्प पक्ष में औत्सर्गिक अण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(युस्मद्) युष्मासु जातो **यौष्माकीणः** (खञ्)। तुम में उत्पन्न हुआ-यौष्माकीण। **युष्मदीयः** (छः)। तुम में उत्पन्न हुआ-युष्मदीय। **यौष्माकः** (अण्)। तुम में उत्पन्न हुआ-यौष्माक। (अस्मद्) **अस्मासु जात आस्माकीनः** (खञ्)। हम में उत्पन्न हुआ-आस्माकीन। **अस्मदीयः** (छः)। हम में उत्पन्न हुआ-अस्मदीय। **आस्माकः** (अण्)। **हम** में उत्पन्न हुआ-आस्माक।*

*सिद्धि-**यौष्माकीण:** । युष्मद्+सुप्+खञ् । यौष्माक्+ईन । यौष्माकीण+सु । यौष्माकीण: ।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'युष्मद्' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'खञ्' प्रत्यय है। '**तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ**' (४।३।२) से युष्मद् के स्थान में 'युष्माक' आदेश होता है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में ईन् आदेश, '**तद्धितेष्वचामादे:**' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि, '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। '**अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि**' (८।४।२) से णत्व होता है।*

*(२) **युष्मदीय:** । यहां 'युष्मद्' शब्द से शेष अर्थों में 'छ' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **यौष्माक:** । युष्मद्+सुप्+अण् । यौष्माक्+अ । यौष्माक+सु । यौष्माक: ।*

*यहां 'युष्मद्' शब्द से शेष अर्थों में विकल्प पक्ष में '**प्राग्दीव्यतोऽण्**' (४।१।८३) से औत्सर्गिक 'अण्' प्रत्यय है। '**तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ**' (४।३।२) से युष्मद् के स्थान में 'युष्माक' आदेश होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।*

*ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से खञ्, छ और अण्-प्रत्यय करने पर-आस्माकीन:, अस्मदीय:, आस्माक: । खञ् और अण् प्रत्यय में '**तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ**' (४।३।२) से अस्मद् के स्थान में 'अस्माक' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

युष्माक-अस्माकादेशौ-

(५६) तस्मिन्नणि च युष्माकाष्माकौ ।२।

प०वि०-तस्मिन् ७।१ अणि ७।१ च अव्ययपदम्, युष्माक-अस्माकौ १।२।

स०-युष्माकश्च अस्माकश्च तौ-युष्माकास्माकौ (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०-युष्मदस्मदो:, खञ् इति चानुवर्तते।

अन्वय:-तस्मिन्नणि खञि च युष्मदस्मदोर्युष्माकास्माकौ।

अर्थ:-तस्मिन्नणि खञि च प्रत्यये परतो युष्मदस्मदो: स्थाने यथासंख्यं युष्माकास्माकावादेशौ भवत:।

उदा०-(**युस्मद्**) युस्मासु जातो यौष्माक: (अण्)। यौष्माकीण: (खञ्)। (**अस्मद्**) अस्मासु जात आस्माक: (अण्)। आस्माकीन: (खञ्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्मिन्) उस (अणि) अण् प्रत्यय (च) और खञ् प्रत्यय के परे होने पर (युस्मदस्मदोः) युष्मद् और अस्मद् के स्थान में यथासंख्य (युष्माकास्माकौ) युष्माक और अस्माक आदेश होते हैं।*

*उदा०-(युस्मद्) **युस्मासु जातो यौष्माकः (अण्)। यौष्माकीणः (खञ्)।** तुम में उत्पन्न हुआ-यौष्माक, यौष्माकीण। **(अस्मद्) अस्मासु जात आस्माकः (अण्)। आस्माकीनः (खञ्)।** हम में उत्पन्न हुआ-आस्माक, आस्माकीन।*

*सिद्धि-**यौष्माकः, यौष्माकीणः, आस्माकः, आस्माकीनः** इन पदों की सिद्धि पूर्व सूत्र के प्रवचन में देख लेवें।*

तवक-ममकादेशौ—

(५७) तवकममकावेकवचने।३।

प०वि०-तवक-ममकौ १।२ एकवचने ७।१।

स०-तवकश्च ममकश्च तौ तवकममकौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-युष्मदस्मदोः, खञ्, तस्मिन्, अणि च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्मिन्नणि च एकवचने युष्मदस्मदोस्तवकममकौ।

अर्थः-तस्मिन्नणि खञि च प्रत्यये परत एकवचनपरयोर्युष्मदस्मदोः स्थाने यथासंख्यं तवकममकावादेशौ भवतः।

उदा०-(युष्मद्) तव इदं तावकम् (अण्)। तावकीनम् (खञ्)। **(अस्मद्)** मम इदं मामकम् (अण्)। मामकीनम् (खञ्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्मिन्) उस (अणि) अण् (च) और (खञ्) खञ् प्रत्यय के परे होने पर (एकवचने) एकवचन-परक (युष्मदस्मदोः) युष्मद् और अस्मद् के स्थान में यथासंख्य (तवकममकौ) तवक और ममक आदेश होते हैं।*

*उदा०-(युष्मद्) **तव इदं तावकम् (अण्)। तावकीनम् (खञ्)।** तेरा यह-तावक। तेरा यह-तावकीन। **(अस्मद्) मम इदं मामकम् (अण्)। मामकीनम् (खञ्)।** मेरा यह-मामक। मेरा यह-मामकीन।*

*सिद्धि-(१) **तावकम्।** युष्मद्+ङस्+अण्। तावक्+अ। तावक+सु। तावकम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'युष्मद्' शब्द से शेष अर्थों में **'युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च' (४।३।१)** से 'अण्' प्रत्यय करने पर इस सूत्र से एकवचन में 'युष्मद्' के स्थान में 'तवक' आदेश होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।*

(२) तावकीनम्। यहां 'युष्मद्' शब्द से पूर्ववत् 'खञ्' प्रत्यय और 'युष्मद्' के स्थान में इस सूत्र से 'तवक' आदेश है। पूर्ववत् 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के 'अकार' का लोप होता है।

ऐसे ही-'अस्मद्' के स्थान में 'ममक' आदेश होकर-मामकम्, मामकीनम्।

यत्-

(५८) अर्धाद् यत्।४।

प०वि०-अर्धात् ५।१ यत् १।१।

अनु०-शेषे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०अर्धात् शेषे यत्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् अर्धात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-अर्धे भवम् अर्ध्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (अर्धात्) अर्ध प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (यत्) यत् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**अर्धे भवम् अर्ध्यम्।** आधे में रहनेवाला-अर्ध्य।*

*सिद्धि-**अर्ध्यम्।** अर्ध+ङि+यत्। अर्ध्+य। अर्ध्य+सु। अर्ध्यम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'अर्ध' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (७।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

यत्-

(५९) परावराधमोत्तमपूर्वाच्च।५।

प०वि०-पर-अवर-अधम-उत्तमपूर्वात् ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-परश्च अवरश्च अधमश्च उत्तमश्च ते परावराधमोत्तमाः, परावराधरोत्तमाः पूर्वे यस्य तत् परावराधमोत्तमपूर्वम्, तस्मात्-परावराध-मोत्तमपूर्वात् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भित बहुव्रीहिः)।

अनु०-शेषे, अर्धात्, यद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०परावराधमोत्तमपूर्वाच्च अर्धात् शेषे यत्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् पर-अवर-अधम-उत्तमपूर्वाच्च अर्धात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**परः**) परार्धे भवं परार्ध्यम्। (**अवरः**) अवरार्धे भवम् अवरार्ध्यम्। (**अधमः**) अधमार्धे भवम् अधमार्ध्यम्। (**उत्तमः**) उत्तमार्धे भवम् उत्तमार्ध्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (परावराधमोत्तमपूर्वात्) पर, अवर, अधम, उत्तम पूर्वक (अर्धात्) अर्ध प्रातिपदिक से (च) भी (शेषे) शेष अर्थों में (यत्) यत् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(पर) **परार्धे भवं परार्ध्यम्।** परवर्ती अर्ध भाग में रहनेवाला-परार्ध्य। (अवर) **अवरार्धे भवम् अवरार्ध्यम्।** अवरवर्ती अर्धभाग में रहनेवाला-अवरार्ध्य। (**अधम**) **अधमार्धे भवम् अधमार्ध्यम्।** अधोवर्ती अर्धभाग में रहनेवाला-अधमार्ध्य। (**उत्तम**) **उत्तमार्धे भवम् उत्तमार्ध्यम्।** ऊर्ध्ववर्ती अर्धभाग में रहनेवाला उत्तमार्ध्य।*

*सिद्धि-**परार्ध्यम्।** पर+अर्ध+ङि+यत्। परार्ध्+य। परार्ध्य+सु। परार्ध्यम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ पर-पूर्वक 'अर्ध' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**अवरार्ध्यम्** आदि।*

ठञ्+यत्-

(६०) दिक्पूर्वपदाट्ठञ् च।६।

प०वि०-दिक्-पूर्वपदात् ५।१ ठञ् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-दिक्पूर्वपदं यस्य तद् दिक्पूर्वपदम्, तस्मात्-दिक्पूर्वपदात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-शेषे, अर्धात्, यद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०दिक्पूर्वपदाद् अर्धात् शेषे ठञ् यच्च।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् दिक्पूर्वपदाद् अर्धात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु ठञ् यच्च प्रत्ययो भवति।

उदा०-पूर्वार्धे भवं पौर्वार्धिकम् (ठञ्)। पूर्वार्ध्यम् (यत्)। दक्षिणार्धे भवं दाक्षिणार्धिकम् (ठञ्)। दक्षिणार्ध्यम् (यत्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (दिक्पूर्वपदात्) दिशावाची पूर्वपदवान् (अर्धात्) अर्ध प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (ठञ्) ठञ् (च) और (यत्) यत् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-पूर्वार्धे भवं **पौर्वार्धिकम्** (ठञ्)। **पूर्वार्ध्यम्** (यत्)। पूर्व दिशा के अर्धभाग में रहनेवाला-पौर्वार्धिक वा पूर्वार्ध्य। दक्षिणार्धे भवं **दाक्षिणार्धिकम्** (ठञ्)। **दक्षिणार्ध्यम्** (यत्)। दक्षिण दिशा के अर्धभाग में रहनेवाला-दाक्षिणार्धिक वा दक्षिणार्ध्य।*

*सिद्धि-(१) **पौर्वार्धिकम्**। पूर्व+अर्ध+ङि+ठञ्। पौर्वार्ध्+इक। पौर्वार्धिक+सु। पौवार्धिकम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ, दिशावाची पूर्वपदपूर्वक 'अर्ध' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। **'ठस्येकः'** (७।३।५०) से ठ् के स्थान में 'इक्' आदेश होता है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**दाक्षिणार्धिकम्**।*

*(२) **पूर्वार्ध्यम्**। यहां सप्तमी-समर्थ, दिशावाची 'पूर्व' शब्द पूर्वक 'अर्ध' शब्द से पूर्ववत् 'यत्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**दक्षिणार्ध्यम्**।*

अञ्+ठञ्-

(६१) ग्रामजनपदैकदेशादञ्ठञौ।७।

प०वि०-ग्राम-जनपदैकदेशात् ५।१ अञ्-ठञौ १।२।

स०-ग्रामश्च जनपदश्च तौ ग्रामजनपदौ, तयोः-ग्रामजनपदयोः, ग्रामजनपदयोरेकदेश इति ग्रामजनपदैकदेशः, तस्मात्-ग्रामजनपदैकदेशात् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भित षष्ठीतत्पुरुषः)। अञ् च ठञ् च तौ-अञ्ठञौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-शेषे, अर्धात्, दिक्पूर्वपदाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०दिक्पूर्वपदाद् ग्रामजनपदैकदेशाद् अर्धात् शेषेऽञ्ठञौ।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् दिक्पूर्वपदाद् ग्रामैकदेशवाचिनो जनपदैकदेशवाचिनश्चाऽर्धात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु अञ्-ठञौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-इमे खल्वस्माकं ग्रामस्य जनपदस्य वा पौर्वार्धाः (अञ्)। पौर्वार्धिकाः (ठञ्)। दाक्षिणार्धाः (अञ्)। दाक्षिणार्धिकाः (ठञ्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथसम्भव-विभक्ति-समर्थ (दिक्पूर्वपदात्) दिशावाची पूर्वपदवान् (ग्रामजनपदैकदेशात्) ग्राम-एकदेशवाची और जनपद-एकदेशवाची (अर्धात्) अर्ध प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (अञ्ठञौ) अञ् और ठञ् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-**इमे खल्वस्माकं ग्रामस्य जनपदस्य वा पौर्वार्धाः (अञ्)। पौर्वार्धिकाः (ठञ्)।** ये लोग हमारे गांव के वा जनपद=राज्य के पूर्व दिशा के अर्धभाग में रहनेवाले-पौर्वार्ध, पौर्वार्धिक। **दाक्षिणार्धाः (अञ्)। दाक्षिणार्धिकाः (ठञ्)।** ये लोग हमारे गांव के वा जनपद=राज्य की दक्षिण दिशा के अर्धभाग में रहनेवाले-दाक्षिणार्ध, दाक्षिणार्धिक।*

*सिद्धि-(१) **पौर्वार्धाः।** पूर्व+अर्ध+ङि+अञ्। पौर्वार्ध+अ। पौवार्ध+जस्। पौर्वार्धाः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ, दिशावाची पूर्व शब्द पूर्वक, ग्राम वा जनपद के वाचक 'अर्ध' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**दाक्षिणार्धाः।***

*(२) **पौर्वार्धिकाः।** यहां पूर्वोक्त 'पूर्वार्ध' शब्द से पूर्ववत् 'ठञ्' प्रत्यय है। 'ठस्येकः' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश तथा पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**दाक्षिणार्धिकाः।***

मः-

(६२) मध्यान्मः।८।

प०वि०-मध्यात् ५।१ मः १।१।

अनु०-शेषे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०मध्यात् शेषे मः।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् मध्यात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु मः प्रत्ययो भवति।

उदा०-मध्ये भवो मध्यमः।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथसम्भव-विभक्ति-समर्थ (मध्यात्) मध्य प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (मः) म प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**मध्ये भवो मध्यमः।** मध्य में होनेवाला-मध्यम।*

*सिद्धि-**मध्यमः।** मध्य+ङि+म। मध्यम+सु। मध्यमः।*

यहां सप्तमी-समर्थ 'मध्य' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'म' प्रत्यय है।

अः–

(६३) असाम्प्रतिके।६।

प०वि०–अ १।१ (सु–लुक्) साम्प्रतिके ७।१।

अनु०–शेषे, मध्याद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–यथासम्भव०मध्यात् साम्प्रतिके शेषे अः।

अर्थः–यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् मध्यात् प्रातिपदिकात् साम्प्रतिके जातादौ शेषेऽर्थे अः प्रत्ययो भवति। साम्प्रतिकम्=न्याय्यम्, युक्तम्, उचितम्, सममित्युच्यते।

उदा०–मध्ये जातं मध्यम्। नातिदीर्घं नातिह्रस्वं मध्यं काष्ठम्। नात्युत्कृष्टो नात्यवकृष्टो मध्यो वैयाकरणः। मध्या नारी।

आर्यभाषाः *अर्थ–यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (मध्यात्) मध्य प्रातिपदिक से (साम्प्रतिके) उचित (शेषे) जातादि शेष अर्थों में (अः) अ प्रत्यय होता है। साम्प्रतिक शब्द का अर्थ न्याय्य, युक्त, उचित एवं सम है।*

*उदा०–**मध्ये जातं मध्यम्। नातिदीर्घं नातिह्रस्वं मध्यं काष्ठम्।** न बहुत बड़ा और न बहुत छोटा यह मध्य काष्ठ (लकड़ी) है। **नात्युत्कृष्टो नात्यवकृष्टो मध्यो वैयाकरणः।** न बहुत बढ़िया और न बहुत घटिया यह मध्य वैयाकरण है। **मध्या नारी।** न बहुत सुरूप और न बहुत कुरूप यह मध्या नारी है।*

सिद्धि–मध्यम्। *मध्य+ङि+अ। मध्य्+अ। मध्य+सु। मध्यम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'मध्य' शब्द से साम्प्रतिक जातादि शेष अर्थों में इस सूत्र से 'अ' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

यञ्–

(६४) द्वीपादनुसमुद्रं यञ्।१०।

प०वि०–द्वीपात् ५।१ अनुसमुद्रम् अव्ययपदम्, यञ् १।१।

स०–समुद्रं समया इति अनुसमुद्रम्, अनुर्यत्समया (२।१।१५) इत्यव्ययीभावसमासः।

अनु०–शेषे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–यथासम्भव०अनुसमुद्रं द्वीपात् शेषे यञ्।

अर्थ:-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् अनुसमुद्रम्=समुद्रसमीपे वर्तमानाद् द्वीपात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु यञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-द्वीपे जातं द्वैप्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (अनुसमुद्रम्) समुद्र के समीपवर्ती (द्वीपात्) द्वीप प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (यञ्) यञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-द्वीपे जातं **द्वैप्यम्।** समुद्र के समीपवर्ती द्वीप में उत्पन्न हुआ-द्वैप्य।*

सिद्धि-द्वैप्यम्। द्वीप+ङि+यञ्। द्वैप्+य। द्वैप्य+सु। द्वैप्यम्।

*यहां सप्तमी-समर्थ समुद्र के समीपवर्ती 'द्वीप' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'यञ्) प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

विशेषः *'**द्विर्गता आपो यस्मिँस्तद् द्वीपम्**' अर्थात् जिसके दोनों ओर जल हो उसे 'द्वीप' कहते हैं। यहां अनुसमुद्र=समुद्र के समीपवर्ती 'द्वीप' शब्द से 'यञ्' प्रत्यय का विधान किया गया है। समुद्र-समीपता से अन्यत्र 'द्वीप' शब्द से इसका कच्छादिगण में पाठ होने से '**कच्छादिभ्यश्च**' (४।२।१३३) से 'अण्' प्रत्यय होता है। मनुष्य और तत्स्थ की विवक्षा में '**मनुष्यतत्स्थयोर्वुञ्**' (४।२।१३४) से 'वुञ्' प्रत्यय होता है। **द्वीपे भवम् द्वैपम्** (अण्)। **द्वैपको मनुष्यः। द्वैपकमस्य हसितम्** (वुञ्)।*

ठञ्-

(६५) कालाट्ठञ्।११।

प०वि०-कालात् ५।१ ठञ् १।१।

अनु०-शेषे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०कालात् शेषे ठञ्।

अर्थ:-यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् कालविशेषवाचिनः प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-मासे जातं मासिकम्। अर्धमासे जातं आर्धमासिकम्। संवत्सरे जातं सांवत्सरिकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में ठञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-मासे जातं **मासिकम्।** एक मास में उत्पन्न हुआ-मासिक। **अर्धमासे जातं आर्धमासिकम्।** अर्धमास में उत्पन्न हुआ-आर्धमासिक। **संवत्सरे जातं सांवत्सरिकम्।** संवत्सर=एक वर्ष में उत्पन्न हुआ-सांवत्सरिक।*

*सिद्धि-**मासिकम्।** मास+ङि+ठञ्। मास+इक। मासिक+सु। मासिकम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'मास' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। '**ठस्येक:**' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, '**तद्धितेष्वचामादे:**' (७।२।११७) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**आर्धमासिकम्, सांवत्सरिकम्।***

ठञ्-

(६६) श्राद्धे शरदः।१२।

प०वि०-श्राद्धे ७।१ शरद: ५।१।

अनु०-शेषे, कालात्, ठञ् इति चानुवर्तते।

अन्वय:-यथासम्भव०कालात् शरद: शेषे ठञ् श्राद्धे।

अर्थ:-यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् कालविशेषवाचिन: शरद: प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु ठञ् प्रत्ययो भवति, श्राद्धेऽभिधेये।

उदा०-शरदि भवं शारदिकं श्राद्धम्।

***आर्यभाषाः अर्थ-**यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (शरद:) शरद् प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है (श्राद्धे) यदि यहां श्राद्ध-कर्म अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-**शरदि भवं शारदिकं श्राद्धम्।** शरद् ऋतु में होनेवाला-शारदिक श्राद्ध।*

*सिद्धि-**शारदिकम्।** शरद्+ङि+ठञ्। शरद्+इक। शारदिक+सु। शारदिकम्।*

यहां सप्तमी-समर्थ कालविशेषवाची 'शरद्' शब्द से शेष अर्थों में तथा श्राद्ध अभिधेय में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

***विशेषः** (१) '**पितृयज्ञ**' अर्थात् जिसमें देव जो विद्वान्, ऋषि जो पढ़ने-पढ़ानेहारे, पितर जो माता-पिता आदि वृद्ध, ज्ञानी और परमयोगियों की सेवा करनी। पितृयज्ञ के दो भेद हैं:- एक श्राद्ध और दूसरा तर्पण। 'श्राद्ध' अर्थात् 'श्रत्' सत्य का नाम है। '**श्रत्=सत्यं दधाति यया क्रियया सा श्रद्धा, श्रद्धया यत् क्रियते तच्छ्राद्धम्**' जिस क्रिया से सत्य का ग्रहण किया जाये उसको 'श्रद्धा' और जो 'श्रद्धा' से कर्म किया जाये उसका नाम श्राद्ध है। और- '**तृप्यन्ति तर्पयन्ति येन पितॄन् तत् तर्पणम्**' जिस-जिस कर्म से तृप्त अर्थात् विद्यमान माता-पितादि पितर प्रसन्न हों और प्रसन्न किये जायें उसका नाम 'तर्पण' है। परन्तु यह जीवितों के लिए है, मृतकों के लिये नहीं (सत्यार्थप्रकाश समु० ४)।*

(२) आश्विन और कार्तिक मास को 'शरद्' ऋतु कहते हैं।

ठञ्-विकल्पः–

(६७) विभाषा रोगातपयोः।१३।

प०वि०-विभाषा १।१ रोग-आतपयोः ७।२।

स०-रोगश्च आतपश्च तौ रोगातपौ, तयोः-रोगातपयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-शेषे, कालात्, ठञ्, शरदः, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०कालात् शरदः शेषे विभाषा ठञ् रोगातपयोः।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् कालविशेषवाचिनः शरदः प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु विकल्पेन ठञ् प्रत्ययो भवति, रोगे आतपे चार्थेऽभिधेये, पक्षे चाऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-शरदि भवः शारदिको रोगः (ठञ्)। शारदो रोगः (अण्)। शरदि भवः शारदिक आतपः (ठञ्)। शारद आतपः (अण्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (शरदः) शरद् प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (विभाषा) विकल्प से (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है (रोगातपयोः) यदि वहां रोग और आतप अर्थ अभिधेय हो और पक्ष में अण् प्रत्यय होता है।*

उदा०-शरदि भवः शारदिको रोगः (ठञ्)। शारदो रोगः (अण्)। शरद् ऋतु में होनेवाला-शारदिक रोग अथवा शारद रोग। शरदि भवः शारदिक आतपः (ठञ्)। शारद आतपः (अण्)। शरद् ऋतु में होनेवाला-शारदिक आतप (धूप) अथवा शारद आतप।

सिद्धि-(१) शारदिकः। शरद्+ङि+ठञ्। शारद्+इक। शारदिक+सु। शारदिकः।

यहां सप्तमी-समर्थ 'शरद्' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से रोग और आतप अर्थ अभिधेय में 'ठञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(२) शारदः। शरद्+ङि+अण्। शारद्+अ। शारद्+सु। शारदः।

यहां सप्तमी-समर्थ 'शरद्' शब्द से शेष अर्थों में विकल्प पक्ष में 'सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्' (४।३।१६) से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है।

ठञ्-विकल्पः–

(६८) निशाप्रदोषाभ्यां च।१४।

प०वि०-निशा-प्रदोषाभ्याम् ५।२ च अव्ययपदम्।

स०-निशा च प्रदोषश्च तौ निशाप्रदोषौ, ताभ्याम्-निशाप्रदोषाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-शेषे, कालात्, ठञ्, विभाषा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०कालाभ्यां निशाप्रदोषाभ्यां च शेषे विभाषा ठञ्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाभ्यां कालविशेषवाचिभ्यां निशाप्रदोषाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां च शेषेष्वर्थेषु विकल्पेन ठञ् प्रत्ययो भवति, पक्षे चौत्सर्गिकोऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**निशा**) निशायां भवं नैशिकम् (ठञ्)। नैशम् (अण्)। (**प्रदोषः**) प्रदोषे भवं प्रादोषिकम् (ठञ्)। प्रादोषम् (अण्)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (निशाप्रदोषाभ्याम्) निशा, प्रदोष प्रातिपदिकों से (च) भी (शेषे) शेष अर्थों में (विभाषा) विकल्प से (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है और विकल्प पक्ष में औत्सर्गिक अण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(निशा) **निशायां भवं नैशिकम् (ठञ्)। नैशम् (अण्)।** निशा=रात्रि में होनेवाला-नैशिक अथवा नैश। (प्रदोषः) **प्रदोषे भवं प्रादोषिकम् (ठञ्)। प्रादोषम् (अण्)।** प्रदोष=रात्रि के प्रथम पहर में होनेवाला-प्रादोषिक अथवा प्रादोष।*

*सिद्धि-(१) **नैशिकम्।** निशा+ङि+ठञ्। नैश्+इक। नैशिक+सु। नैशिकम्।*

यहां सप्तमी-समर्थ 'निशा' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

*(२) **नैशम्।** निशा+ङि+अण्। नैश्+अ। नैश+सु। नैशम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'निशा' शब्द से विकल्प पक्ष में '**प्रागदीव्यतोऽण्**' (४।१।८३) से औत्सर्गिक 'अण्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**प्रादोषिकम्, प्रादोषम्।***

***विशेषः** दोषा रात्रिः, प्रारम्भो दोषाया इति प्रदोषः (प्रादिसमासः)। **प्रदोषोऽस्तमयादूर्ध्वं घटिकाद्वयमिष्यते** (श०कौ०)। सूर्यास्त के दो घड़ी पश्चात् 'प्रदोष' काल कहाता है।*

ठञ्-विकल्पः (तुट्)-

(६६) श्वसस्तुट् च।१५।

प०वि०-श्वसः ५।१ तुट् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-शेषे, कालात्, विभाषा ठञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासंभव०कालात् श्वसो विभाषा ठञ्, तुट् च।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् कालविशेषवाचिनः श्वसः प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु विकल्पेन ठञ् प्रत्ययो भवति, तस्य च तुडागमो भवति।

'ऐषमोह्यःश्वसोऽन्यतरस्याम्' (४।२।१०४) इति श्वसः प्रातिपदिकाद् विकल्पेन त्यप् प्रत्ययो विहितः। अतः पक्षे त्यप् प्रत्ययो भवति। सोऽपि विकल्पेन विहितोऽतः **'सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च'** (४।३।२३) इति श्वसः प्रातिपदिकस्याव्ययत्वाट् ट्युट्युलौ प्रत्ययावपि भवतः।

उदा०-**(ठञ्)** श्वो भवं शौवस्तिकम्। **(त्यप्)** श्वस्त्यम्। **(ट्युः)** श्वस्तनम्। **(ट्युल्)** श्वस्तनम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (श्वसः) श्वस् प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (विभाषा) विकल्प से (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है।*

'ऐषमोह्यःश्वसोऽन्यतरस्याम्' (४।२।१०४) से 'श्वस्' प्रातिपदिक से विकल्प से 'त्यप्' प्रत्यय का विधान किया गया है अतः विकल्प पक्ष में 'त्यप्' प्रत्यय होता है। वह भी विकल्प से विहित है अतः 'सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च' (४।३।२३) से 'श्वस्' प्रातिपदिक के अव्यय होने से उससे 'ट्यु' और 'ट्युल्' प्रत्यय भी होते हैं।

*उदा०-(ठञ्) **श्वो भवं श्वौवस्तिकम्। (त्यप्) श्वस्त्यम्। (ट्युः) श्वस्तनम्। (ट्युल्) श्वस्तनम्।** आगामी कल होनेवाला-श्वौवस्तिक, श्वस्त्य, श्वस्तन, श्वस्तन।*

*सिद्धि-(१) **श्वौवस्तिकम्।** श्वस्+ङि+ठञ्। श्वस्+इक। श्वौवस्+तुट्+इक। श्वौवस्तिक+सु। श्वौवस्तिकम्।*

यहां सप्तमी-समर्थ कालविशेषवाची 'श्वस्' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय और 'तुट्' आगम है। 'ठस्येकः' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश होता है। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से प्राप्त वृद्धि का 'द्वारादीनां च' (७।३।४) से प्रतिषेध होकर 'व्' से उत्तर ऐच् (औ) आगम होता है।

*(२) **श्वस्त्यम्।** श्वस्+ङि+त्यप्। श्वस्+त्य। श्वस्त्य+सु। श्वस्त्यम्।*

यहां सप्तमी-समर्थ 'श्वस्' शब्द से शेष अर्थों में विकल्प पक्ष में 'ऐषमोह्यःश्वसोऽन्यतरस्याम्' (४।२।१०४) से 'त्यप्' प्रत्यय है।

*(३) **श्वस्तनम्। श्वस्+ङि+ट्यु। श्वस्+तुट्+अन।** श्वस्+त्+अन। श्वसन+सु। श्वस्तनम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'श्वस्' शब्द से शेष अर्थों में विकल्प पक्ष में '**सायंचिरं०**' (४।३।२३) से 'ट्यु' प्रत्यय और उसे 'तुट्' आगम होता है। '**युवोरनाकौ**' (७।१।१) से 'यु' के स्थान में 'अन' होता है। '**आद्युदात्तश्च**' (३।१।१) से 'ट्यु' (अन) प्रत्यय आद्युदात्त है।*

*(४) **श्वस्तनम्।** यहां सप्तमी-समर्थ 'श्वस्' शब्द से विकल्प पक्ष में पूर्ववत् 'ट्युल्' प्रत्यय और उसे 'तुट्' आगम होता है। 'ट्युल्' प्रत्यय के लित् होने से '**लिति**' (४।१।१९०) से प्रत्यय से पूर्ववर्ती अच् उदात्त होता है। इस प्रकार से ये चार रूप बनते हैं।*

अण्–

(७०) सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्।।१६।।

प०वि०–सन्धिवेलादि–ऋतु–नक्षत्रेभ्यः ५।३ अण् १।१।

स०–सन्धिवेला आदिर्येषां ते सन्धिवेलादयः। सन्धिवेलादयश्च ऋतवश्च नक्षत्राणि च तानि सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्राणि, तेभ्यः–सन्धिवेला-द्यृतुनक्षत्रेभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–शेषे, कालाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–यथासम्भव०कालेभ्यः सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्यः शेषेऽण्।

अर्थः–यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्यः कालविशेषवाचिभ्यः सन्धिवेलादिभ्य ऋतुवाचिभ्यो नक्षत्रवाचिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः शेषेष्वर्थेषु अण् प्रत्ययो भवति।

उदा०–(**सन्धिवेलादिः**) सन्धिवेलायां भवं सान्धिवेलम्। सन्ध्यायां भवं सान्ध्यम्। (**ऋतवः**) ग्रीष्मे भवं ग्रैष्मम्। शिशिरे भवं शैशिरम्। (**नक्षत्राणि**) तिष्ये भवं तैषम्। पुष्ये भवं पौषम्।

सन्धिवेला। सन्ध्या। अमावस्या। त्रयोदशी। चतुर्दशी। पञ्चदशी। पौर्णमासी। प्रतिपत्।। संवत्सरात् फलपर्वणोः।। सांवत्सरं फलम्। सांवत्सरं पर्व। इति सन्धिवेलादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ–यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्यः) सन्धिवेलादि, ऋतुवाची और नक्षत्रवाची प्रातिपदिकों से (शेषे) **शेष अर्थों में** (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(सन्धिवेलादि) **सन्धिवेलायां भवं सान्धिवेलम्।** सन्धि-वेला में होनेवाला-सान्धिवेल। **सन्ध्यायां भवं सान्ध्यम्।** सन्ध्याकाल में होनेवाले-सान्ध्य। **(ऋतु) ग्रीष्मे भवं ग्रैष्मम्।** ग्रीष्म ऋतु में होनेवाला-गैष्म। **शिशिरे भवं शैशिरम्।** शिशिर ऋतु में होनेवाला-शैशिर। **(नक्षत्र) तिष्ये भवं तैषम्।** तिष्य नक्षत्र में होनेवाला-तैष। **पुष्ये भवं पौषम्।** पुष्य नक्षत्र में होनेवाला-पौष।*

*सिद्धि-(१) **सान्धिवेलम्।** सन्धिवेला+ङि+अण्। सान्धिवेल+अ। सान्धिवेल+सु। सान्धिवेलम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'सन्धिवेला' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग के आकार को का लोप होता है। ऐसे ही-**सान्ध्यम्, ग्रैष्मम्, शैशिरम्।***

*(२) **तैषम्।** तिष्य+टा+अण्। तिष्य+०। तिष्य+ङि+अण्। तिष्य्+अ। तैष्+अ। तैष+सु। तैषम्।*

*यहां प्रथम नक्षत्रवाची 'तिष्य' शब्द से **'नक्षत्रेण युक्तः कालः'** (४।२।३) से 'अण्' प्रत्यय होता है और उसका **'लुबविशेषे'** (४।२।४) से लुप् हो जाता है। तत्पश्चात् उस 'तिष्य' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अकार का लोप होता है। **वा० 'तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि यलोपः'** (६।४।१४९) से 'य्' का लोप होता है। ऐसे ही-**पौषम्।***

***विशेषः** (१) भारतवर्ष में ये छः ऋतु होती हैं-चैत्र-वैशाख=वसन्त। ज्येष्ठ-आषाढ=ग्रीष्म। श्रावण-भाद्रपद=वर्षा। आश्विन-कार्तिक=शरद्। मार्गशीर्ष-पौष=हेमन्त। माघ-फाल्गुन=शिशिर।*

*(२) २८ नक्षत्रों का विवरण **'फल्गुनीप्रोष्ठपदानां च नक्षत्रे'** (१।२।६०) के प्रवचन में देख लेवें।*

एण्यः-

(७१) प्रावृष एण्यः।१७।

प०वि०-प्रावृषः ५।१ एण्यः १।१।

अनु०-शेषे, कालाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०कालात् प्रावृषः शेषे एण्यः।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् कालविशेषवाचिनः प्रावृषः प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु एण्यः प्रत्ययो भवति।

उदा०-प्रावृषि भवः प्रावृषेण्यो बलाहकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (प्रावृषः) प्रावृट् प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (एण्यः) एण्य प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**प्रावृषि भवः प्रावृषेण्यो बलाहकः।** प्रावृट्=वर्षा ऋतु में होनेवाला-प्रावृषेण्य बादल।*

*सिद्धि-**प्रावृषेण्यः।** प्रावृष्+ङि+एण्यः। प्रावृषेण्य+सु। प्रावृषेण्यः।*

यहां सप्तमी-समर्थ 'प्रावृट्' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'एण्य' प्रत्यय है।

ठक्–

(७२) वर्षाभ्यष्ठक्।१८।

प०वि०-वर्षाभ्यः ५।३ ठक् १।१।

अनु०-शेषे, कालादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०कालाद् वर्षाभ्यः शेषे ठक्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् कालविशेषवाचिनो वर्षाशब्दात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-वर्षासु भवं वार्षिकं वासः। वार्षिकम् अनुलेपनम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (वर्षाभ्यः) वर्षा प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**वर्षासु भवं वार्षिकं वासः।** वर्षा ऋतु में ठीक रहनेवाला-वार्षिक वस्त्र। **वार्षिकम् अनुलेपनम्।** वार्षिक अनुलेपन (तैल आदि शरीर में लगाना)।*

*सिद्धि-**वार्षिकम्।** वर्षा+सुप्+ठक्। वार्ष्+इक। वार्षिक+सु। वार्षिकम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'वर्षा' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। यहां **'कालात् साधुपुष्प्यत्पच्यमानेषु'** (४।३।४३) से कालविशेषवाची 'वर्षा' शब्द से शैषिक साधु-अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय किया गया है। 'ठस्येकः' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और **'किति च'** (७।२।११८) के अंग को आदिवृद्धि होती है।*

विशेषः *(१) वर्षा शब्द से **'कालाट्ठञ्'** (४।३।११) से 'ठञ्' प्रत्यय करने पर भी 'वार्षिक' पद बनता है किन्तु वह **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।१९४) से आद्युदात्त होगा। यह ठक्-प्रत्ययान्त 'वार्षिक' पद **'आद्युदात्तश्च'** (३।१।३) से प्रत्यय को आद्युदात्त होकर मध्योदात्त है-**वार्षिकम्।***

*(२) वर्षा शब्द **'अप्सुमनस्समासिकतावर्षाणां बहुत्वं च'** (लिङ्गा० १।२९) से बहुवचनान्त और स्त्रीलिङ्ग है। अतः इस सूत्र में 'वर्षाभ्यः' पद बहुवचन में प्रयुक्त किया है।*

ठञ्–

(७३) छन्दसि ठञ्।१९।

प०वि०–छन्दसि ७।१ ठञ् १।१।

अनु०–शेषे, कालात्, वर्षाभ्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि यथासम्भव०कालाद् वर्षाभ्यः शेषे ठञ्।

अर्थः–छन्दसि विषये यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् कालविशेषवाचिनो वर्षा-शब्दात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू** (यजु० १४।१५)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (वर्षाभ्यः) वर्षा शब्द से (शेषे) शेष अर्थों में (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०–**नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू** (यजु० १४।१५)। श्रावण और भाद्रपद वार्षिक ऋतु हैं।*

***सिद्धि**–वार्षिकः। वर्षा+सुप्+ठञ्। वार्ष्+इक। वार्षिक+सु। वार्षिकः।*

यहां वेदविषय में सप्तमी-समर्थ 'वर्षा' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (६।१।१९४) से 'वार्षिक' पद का आद्युदात्त स्वर होता है–वार्षिकः।

ठञ्–

(७३) वसन्ताच्च।२०।

प०वि०–वसन्तात् ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–शेषे, कालात्, छन्दसि, ठञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि यथासम्भव०कालाद् वसन्ताच्च शेषे ठञ्।

अर्थः–छन्दसि विषये यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् कालविशेषवाचिनो वसन्तात् प्रातिपदिकाच्च शेषेष्वर्थेषु ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू** (यजु० १३।२५)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (वसन्तात्) वसन्त प्रातिपदिक से (च) भी (शेषे) शेष अर्थों में (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू (यजु० १३।२५)। चैत्र और वैशाख वासन्तिक ऋतु हैं।

सिद्धि-वासन्तिकः। वसन्त+ङि+ठञ्। वासन्त्+इक। वासन्तिक+सु। वासन्तिकः।

यहां वेदविषय में सप्तमी-समर्थ 'वसन्त' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

ठञ्–

(७४) हेमन्ताच्च।२१।

प०वि०–हेमन्तात् ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–शेषे, कालात्, छन्दसि, ठञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि यथासम्भव०कालाद् हेमन्ताच्च शेषे ठञ्।

अर्थः–छन्दसि विषये यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् कालविशेषवाचिनो हेमन्तात् प्रातिपदिकाच्च शेषेष्वर्थेषु ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू (यजु० १४।२७)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (हेमन्तात्) हेमन्त प्रातिपदिक से (च) भी (शेषे) शेष अर्थों में (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू (यजु० १४।२७)। मार्गशीर्ष और पौष हैमन्तिक ऋतु हैं।

सिद्धि-हैमन्तिकः। हेमन्त+ङि+ठञ्। हैमन्त+इक। हैमन्तिक+सु। हैमन्तिकः।

यहां वेदविषय में सप्तमी-समर्थ 'हेमन्त' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

अण्+ठञ्–

(७५) सर्वत्राण् च तलोपश्च।२२।

प०वि०–सर्वत्र अव्ययपदम्, अण् १।१ च अव्ययपदम्, त-लोपः १।१ च अव्ययपदम्।

स०–तस्य लोप इति तलोपः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–शेषे, कालात्, हेमन्तादिति चानुवर्तते।

अन्वयः–सर्वत्र यथासम्भव० कालाद् हेमन्तात् शेषेऽण् च तलोपश्च।

अर्थः-सर्वत्र=छन्दसि भाषायां च विषये यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् कालविशेषवाचिनो हेमन्तात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु अण् च प्रत्ययो भवति, तकारस्य च लोपो भवति।

उदा०-(**अण्**) हेमन्ते साधु **हैमनम्**। हैमनं वासः। हैमनमनुलेपनम्।

सूत्रपाठे-'अण् च' इति चकारात् **'सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्'** (४।३।१६) इति ऋतुवाचकाद् हेमन्तादण् प्रत्ययमिच्छन्ति। तत्र तकारलोपो न भवति। हेमन्ते साधु-हैमन्तम्। अपरे 'सर्वत्र' इति पाठात् भाषायामपि ठञं स्मरन्ति-हैमन्तिकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सर्वत्र) वेद और भाषा में यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालवाची (हिमन्तात्) हेमन्त प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (अण्) अण् प्रत्यय (च) भी होता है (च) और (तलोपः) हेमन्त के तकार का लोप होता है।*

*उदा०-(अण्) हेमन्ते साधु **हैमनम्**। हैमनं वासः। **हैमनमनुलेपनम्**। हेमन्त काल में उपयुक्त-हैमन वस्त्र। हेमन-अनुलोपन (तैल आदि लगाना)।*

*सिद्धि-(१) **हैमनम्**। हेमन्त+ङि+अण्। हैमन्त्+अ। हैमन्+अ। हैमन+सु। हैमनम्।*

यहां सप्तमी-समर्थ हेमन्त' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय और हेमन्त के तकार का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

*(२) **हैमन्तम्**। यहां 'सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्' (४।३।१६) से ऋतुवाची हेमन्त' शब्द से 'अण्' प्रत्यय है। यहां तकार का लोप नहीं होता है।*

*(३) **हैमन्तिकम्**। यहां हेमन्त' शब्द से पूर्ववत् 'ठञ्' प्रत्यय है।*

ट्युः+ट्युल् (तुट्)-

(७६) सायंचिरम्प्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च।२३।।

प०वि०-सायं-चिरं-प्राह्णे-प्रगे-अव्ययेभ्यः ५।३ ट्यु-ट्युलौ १।२ तुट् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-सायं च चिरं च प्राह्णेश्च प्रगेश्च अव्ययं च तानि-सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययानिः, तेभ्यः-सायं चिरम्प्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-शेषे कालादिति चानुवर्तते।

अव्ययः-यथासम्भव०कालेभ्यः सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यः शेषे ट्युट्युलौ तुट् च।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्यः कालविशेषवाचिभ्यः सायंचिरं-प्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः शेषेष्वर्थेषु ट्यु-ट्युलौ प्रत्ययौ भवतस्तयोश्च तुडागमो भवति।

उदा०-**(सायम्)** सायं भवं सायन्तनम्। **(चिरम्)** चिरं भवं चिरन्तनम्। **(प्राह्णे)** प्राह्णे भवं प्राह्णेतनम्। **(प्रगे)** प्रगे भवं प्रगेतनम्। **(अव्ययम्)** दिवा भवं दिवातनम्। दोषा भवं दोषातनम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (सायं०अव्ययेभ्यः) सायम्, चिरम्, प्राह्णे, प्रगे, अव्यय प्रातिपदिकों से (शेषे) शेष अर्थों में (ट्युट्युलौ) ट्यु और ट्युल् प्रत्यय होते हैं (च) और उन्हें (तुट्) तुट् आगम होता है।*

*उदा०-(सायम्) **सायं भवं सायन्तनम्।** सायंकाल होनेवाला-सायंतन। (चिरम्) **चिरं भवं चिरन्तनम्।** चिर=देर में होनेवाला-चिरन्तन। (प्राह्णे) **प्राह्णे भवं प्राह्णेतनम्।** दिन के प्रथम पहर में होनेवाला-प्राह्णेतन। (प्रगे) **प्रगे भवं प्रगेतनम्।** प्रगे=बड़े तड़के (भोर) में होनेवाला-प्रगेतन। (अव्यय) **दिवा भवं दिवातनम्।** दिन में होनेवाला-दिवातन। **दोषा भवं दोषातनम्।** दोषा=रात्रि में होनेवाला-दोषातन।*

सिद्धि-सायंतनम्। *सायम्+ङि+ट्यु। सायम्+तुट्+अन। सायं+त्+अन। सायंतन+सु। सायन्तनम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'सायम्' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'ट्यु' प्रत्यय और उसको 'तुट्' आगम होता है। '**युवोरनाकौ**' (७।१।१) से 'यु' के स्थान में 'अन' आदेश होता है। ऐसे ही '**चिरंतनम्**' आदि।*

विशेषः *यहां '**आद्युदात्तश्च**' (३।१।३) से प्रत्यय का आद्युदात्त स्वर होता है-**सायन्तनम्।** जहां ट्युल् प्रत्यय होता है वहां '**लिति**' (६।१।१९०) से प्रत्यय से पूर्व अच् उदात्त होता है-**सायन्तनम्।** यही ट्यु और ट्युल् प्रत्यय में अन्तर है।*

(२) सायम् और चिरम् शब्द मकरान्त निपातित हैं। प्राह्णे और प्रगे शब्द एकारान्त निपातित हैं।

ट्यु-ट्युल्विकल्पः-

(७७) विभाषा पूर्वाह्णापराह्णाभ्याम्।२४।

प०वि०-विभाषा १।१ पूर्वाह्ण-अपराह्णाभ्याम् ५।२।

स०-पूर्वाह्णश्च अपराह्णश्च तौ पूर्वाह्णापराह्णौ, ताभ्याम्-पूर्वाह्णापराह्णाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-शेषे, ट्युट्युलौ, तुट्, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासभव०कालाभ्यां पूर्वाह्णापराह्णाभ्यां शेषे विभाषा ट्युट्युलौ तुट् च।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाभ्यां कालविशेषवाचिभ्यां पूर्वाह्णापराह्णाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां शेषेष्वर्थेषु विकल्पेन ट्युट्युलौ प्रत्ययौ भवतः, तयोश्च तुडागमो पक्षे च ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(पूर्वाह्णः)** पूर्वाह्णे भवं पूर्वाह्णेतनम् (ट्युः, ट्युल्)। पौर्वाह्णिकम् (ठञ्)। **(अपराह्णः)** अपराह्णे भवं अपराह्णेतनम् (ट्युः, ट्युल्)। आपराह्णिकम् (ठञ्)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (पूर्वाह्णापराभ्याम्) पूर्वाह्ण, अपराह्ण प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (ट्युट्युलौ) ट्यु और ट्युल् प्रत्यय होते हैं (च) और उन्हें (तुट्) तुट् आगम होता है।*

*उदा०-**(पूर्वाह्ण) पूर्वाह्णे भवं पूर्वाह्णेतनम् (ट्युः, ट्युल्)।** दिन के पूर्व भाग में होनेवाला-पूर्वाह्णेतन। **पौर्वाह्णिकम् (ठञ्)।** दिन के पूर्वभाग में होनेवाला-पौर्वाह्णिक। **(अपराह्ण) अपराह्णे भवं अपराह्णेतनम् (ट्युः, ट्युल्)।** दिन के पश्चात् भाग में होनेवाला-अपराह्णेतन। **आपराह्णिकम् (ठञ्)।** दिन के पश्चात् भाग में होनेवाला-आपराह्णिक।*

*सिद्धि-(१) **पूर्वाह्णेतनम्।** पूर्वाह्ण+ङि+ट्यु। पूर्वाह्णे+अन। पूर्वाह्णे+तुट्+अन। पूर्वाह्णे+त्+अन। पूर्वाह्णेतन+सु। पूर्वाह्णेतनम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ कालविशेषवाची 'पूर्वाह्ण' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'ट्यु' प्रत्यय और उसे तुट् आगम होता है। **'घकालतनेषु कालनाम्नः'** (६।३।१७) से सप्तमी-विभक्ति का अलुक् होता है। ऐसे ही-**अपराह्णेतनम्।***

*(२) **पौर्वाह्णिकम्।** यहां सप्तमी-समर्थ 'पूर्वाह्ण' शब्द से शेष अर्थों में विकल्प पक्ष में **'कालाट्ठञ्'** (४।३।११) से 'ठञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**आपराह्णिकम्।***

।। इति उत्तरशेषार्थप्रत्ययप्रकरणम् ।।

जातार्थप्रत्ययप्रकरणम्

यथाविहितं प्रत्ययः-

(१) तत्र जातः।२५।

प०वि०-तत्र सप्तम्यर्थेऽव्ययपदम्, जातः १।१।

अन्वयः-तत्र प्रातिपदिकाज्जातो यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थात् प्रातिपदिकाज्जात इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति।

'प्राग्दीव्यतीयोऽण्' (४।१।८३) इत्याणादयः, **'राष्ट्रेऽवारापाराद् घखौ'** (४।२।९३) इति च घादयः प्रत्यया विहिताः। इतः प्रभृति तेषामर्थाः समर्थविभक्तयश्च विधीयन्ते।

उदा०-स्रुघ्ने जातः स्रौघ्नः। मथुरायां जातो माथुरः। उत्से जातः औत्सः। उदपाने जात औदपानः। राष्ट्रे जातो राष्ट्रिय इत्यादिकम्।

__आर्यभाषाः__ __अर्थ-__(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ प्रातिपदिक से (जातः) जात अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है।

__'प्राग्दीव्यतीयोऽण्'__ (४।१।८३) इत्यादि से जो 'अण्' प्रत्यय और __'राष्ट्रेऽवारापाराद् घखौ'__ (४।२।९३) इत्यादि से जो 'घ' आदि प्रत्यय विधान किये गये हैं, इससे आगे उनके अर्थ और उनकी समर्थ-विभक्तियों का विधान किया जाता है।

उदा०-__स्रुघ्ने जातः स्रौघ्नः।__ स्रुघ्न नामक नगर में उत्पन्न हुआ-स्रौघ्न। __मथुरायां जातो माथुरः।__ मथुरा नगरी में उत्पन्न हुआ-माथुर। __उत्से जातः औत्सः।__ उत्स=स्रोत में उत्पन्न हुआ-औत्स। __उदपाने जात औदपानः।__ उदपान=कूप समीपवर्ती होद में उत्पन्न हुआ-औदपान। __राष्ट्रे जातो राष्ट्रिय।__ राष्ट्र में उत्पन्न हुआ-राष्ट्रिय।

__सिद्धि-(१) स्रौघ्नः।__ स्रुघ्न+ङि+अण्। स्रौघ्न्+अ। स्रौघ्न+सु। स्रौघ्नः।

यहां सप्तमी-समर्थ 'स्रुघ्न' शब्द से इस सूत्र से जात अर्थ में __'प्राग्दीव्यतोऽण्'__ (४।१।८३) से यथाविहित अण् प्रत्यय है। __'तद्धितेष्वचामादेः'__ (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और __'यस्येति च'__ (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-__माथुरः।__

__(२) औत्सः।__ उत्स+ङि+अण्। औत्स्+अ। औत्स+सु। औत्सः।

यहां सप्तमी-समर्थ 'उत्स' शब्द से जात अर्थ में __उत्सादिभ्योऽञ्'__ (४।१।८३) से यथाविहित 'अञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-__औदपानः।__

(३) राष्ट्रियः । राष्ट+ङि+घ । राष्ट्र+इय । राष्ट्रिय+सु । राष्ट्रियः ।

*यहां सप्तमी-समर्थ 'राष्ट्र' शब्द से जात अर्थ में **'राष्ट्रावारपाराद् घखौ'** (४ ।२ ।९३) से यथाविहित 'घ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७ ।१ ।२) से 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश होता है।*

***विशेषः** स्रुघ्न-एक जनपद का नाम जो किसी समय पाटलिपुत्र से एक मंजिल पर था (वर्तमान नाम-सुघ है {श०कौ०})।*

ठप्–

(२) प्रावृषष्ठप् ।२६।

प०वि०-प्रावृषः ५ ।१ ठप् १ ।१।

अनु०-तत्र, जात इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र प्रावृषो जातष्ठप्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थात् प्रावृषः प्रातिपदिकाज्जात इत्यस्मिन्नर्थे ठप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-प्रावृषि जातः प्रावृषिकः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (प्रावृषः) प्रावृट् प्रातिपदिक से (जातः) जात अर्थ में ठप् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**प्रावृषि जातः प्रावृषिकः।** प्रावृट्=वर्षा ऋतु में उत्पन्न हुआ-प्रावृषिक।*

*सिद्धि-**प्रावृषिकः।** प्रावृष्+ङि+ठप्। प्रावृष्+इक। प्रावृषिक+सु। प्रावृषिकः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'प्रावृष्' शब्द से इस सूत्र से जात अर्थ में ठप् प्रत्यय है। **'ठस्येकः'** (७ ।३ ।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश होता है।*

*यह **'प्रावृष एण्यः'** (४ ।३ ।१७) का अपवाद है। प्रावृट् शब्द से भव-आदि शेष अर्थों में एण्य प्रत्यय होता है और जात अर्थ में इस सूत्र से ठप् प्रत्यय ही होता है। 'ठप्' प्रत्यय में पकार **'अनुदात्तौ सुप्पितौ'** (३ ।१ ।४) से अनुदात्त स्वर के लिये है-**प्रावृषिक॒।***

वुञ्–

(३) संज्ञायां शरदो वुञ् ।२७।

प०वि०-संज्ञायाम् ७ ।१ शरदः ५ ।१ वुञ् १ ।१।

अनु०-तत्र, जात इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र शरदो जातो वुञ् संज्ञायाम्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थाच्छरदः प्रातिपदिकाज्जात इत्यस्मिन्नर्थे वुञ् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-शरदि जाताः शारदका दर्भाः। शारदका मुद्गाः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (शरदः) शरद् प्रातिपदिक से (जातः) जात अर्थ में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ प्रकट हो।*

*उदा०-**शरदि जाताः शारदका दर्भाः।** शरद् ऋतु में उत्पन्न हुये-शारदक दर्भ (डाभ)। **शारदका मुद्गाः।** शरद् ऋतु में उत्पन्न हुये-शारदक मूंग। 'शारदकाः' यह दर्भविशेष और मुद्गविशेष की संज्ञा है।*

*सिद्धि-**शारदकाः।** शरद्+ङि+वुञ्। शारद्+अक। शारदक+जस्। शारदकाः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'शरद्' शब्द से जात अर्थ में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश और **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है।*

वुन्-

(४) पूर्वाह्णापराह्णार्द्रामूलप्रदोषावस्करात् वुन्।२८।

प०वि०-पूर्वाह्ण-अपराह्ण-आर्द्रा-मूल-प्रदोष-अवस्करात् ५।१ वुन् १।१।

स०-पूर्वाह्णश्च अपराह्णश्च आर्द्रा च मूलं च प्रदोषश्च अवस्करश्च एतेषां समाहारः पूर्वाह्णापराह्णार्द्रामूलप्रदोषावस्करम्, तस्मात्-पूर्वाह्णापराह्णार्द्रामूलप्रदोषावस्करात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्र, जात इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र पूर्वाह्ण०अवस्कराज्जातो वुन्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थेभ्यः पूर्वाह्णापराह्णार्द्रामूलप्रदोषावस्करेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो जात इत्यस्मिन्नर्थे वुन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(पूर्वाह्णः)** पूर्वाह्णे जातः पूर्वाह्णकः। **(अपराह्णः)** अपराह्णे जातोऽपराह्णकः। **(आर्द्रा)** आर्द्रायां जात आर्द्रकः। **(मूलम्)** मूले जातो मूलकः। **(प्रदोषः)** प्रदोषे जातः प्रदोषकः। **(अवस्करः)** अवस्करे जातोऽवस्करकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (पूर्वाह्ण०अवस्करात्) पूर्वाह्ण, अपराह्ण, आर्द्रा, मूल, प्रदोष, अवस्कर प्रातिपदिकों से (जातः) जात अर्थ में (वुन्) वुन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(पूर्वाह्ण) ***पूर्वाह्णे जातः पूर्वाह्णकः।*** *दिन के पूर्वभाग में उत्पन्न हुआ-पूर्वाह्णक। (अपराह्ण)* ***अपराह्णे जातोऽपराह्णकः।*** *दिन के पश्चिम भाग में उत्पन्न हुआ-अपराह्णक। (आर्द्रा)* ***आर्द्रायां जात आर्द्रकः।*** *आर्द्रा नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-आर्द्रक। (मूल)* ***मूले जातो मूलकः।*** *मूल नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-मूलक। (प्रदोष)* ***प्रदोषे जातः प्रदोषकः।*** *रात्रि के प्रथम पहर में उत्पन्न हुआ-प्रदोषक। (अवस्कर)* ***अवस्करे जातोऽवस्करकः।*** *अवस्कर=विष्ठा (गोबर) में उत्पन्न हुआ-अवस्करक।*

सिद्धि-पूर्वाह्णकः। *पूर्वाह्ण+ङि+वुन्। पूर्वाह्ण्+अक। पूर्वाह्णक+सु। पूर्वाह्णकः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'पूर्वाह्ण' शब्द से जात अर्थ में इस सूत्र से 'वुन्' प्रत्यय है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है। ऐसे ही-**अपराह्णकः** आदि।*

वुन्-

(५) पथः पन्थ च।२९।

प०वि०-पथः ५।१ (६।१) पन्थ १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्।

अनु०-तत्र, जातः, वुन् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र पथो जातो वुन् पन्थश्च।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थात् पथिन्-शब्दात् प्रातिपदिका-ज्जात इत्यस्मिन्नर्थे वुन् प्रत्ययो भवति, पथः स्थाने च पन्थ आदेशो भवति।

उदा०-पथि जातः पन्थकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (पथः) पथिन् प्रातिपदिक से (जातः) जात अर्थ में (वुन्) वुन् प्रत्यय होता है (च) और 'पथिन्' शब्द के स्थान में (पन्थः) 'पन्थ' आदेश होता है।*

*उदा०-**पथि जातः पन्थकः।** पन्था=मार्ग में उत्पन्न हुआ-पन्थक।*

सिद्धि-पन्थकः। *पथिन्+ङि+वुन्। पन्थ्+अक। पन्थक+सु। पन्थकः।*

यहां सप्तमी-समर्थ 'पथिन्' शब्द से जात अर्थ में इस सूत्र से 'वुन्' प्रत्यय है और 'पथिन्' के स्थान में 'पन्थ' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

वुन्-विकल्पः–

(६) अमावास्याया वा।३०।

प०वि०–अमावास्यायाः ५।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०–तत्र, जातः, वुन् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत्र अमावास्याया जातो वा वुन्।

अर्थः–तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थाद् अमावास्या-शब्दात् प्रातिपदिकाज्जात इत्यस्मिन्नर्थे विकल्पेन वुन् प्रत्ययो भवति।

अमावास्या-शब्दस्य सन्धिवेलादिषु पाठात् **'सन्धिवेलाद्यृतु-नक्षत्रेभ्योऽण्'** (४।३।१६) इत्यस्यायमपवादः। वा-वचनात् पक्षे सोऽपि भवति।

उदा०–अमावास्यायां जातोऽमावास्यकः (वुन्)। आमावास्यः (अण्)।

***आर्यभाषाः** अर्थ- (तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (अमावास्यायाः) अमावास्या प्रातिपदिक से (जातः) जात अर्थ में (वा) विकल्प से (वुन्) प्रत्यय होता है।*

*अमावास्या शब्द का सन्धिवेलादिगण में पाठ होने से यह **'सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्'** (४।३।१६) का अपवाद है। विकल्प पक्ष में वह 'अण्' प्रत्यय भी होता है।*

*सिद्धि-(१) **अमावास्यकः**। अमावास्या+ङि+वुन्। अमावास्य्+अक। अमावास्यक+सु। अमावास्यकः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'अमावास्या' शब्द से जात अर्थ में इस सूत्र से 'वुन्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (७।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है।*

*(२) **आमावास्यः**। अमावास्या+ङि+अण्। आमावास्य्+अ। आमावास्य+सु। आमावास्यः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'अमावास्या' शब्द से जात अर्थ में विकल्प पक्ष में **'सन्धिवेला०'** (४।३।१६) से 'अण्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और पूर्ववत् अंग के आकार का लोप होता है।*

अः–

(७) अ च।३१।

प०वि०–अ १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्।

अनु०–तत्र, जातः, अमावास्याया इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत्र अमावास्याथा जातोऽश्च।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थाद् अमावास्या-शब्दात् प्रातिपदिकाज्जात इत्यस्मिन्नर्थे अश्च प्रत्ययो भवति।

उदा०-अमावास्यायां जातः-अमावास्यः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (अमावास्यायाः) अमावास्या प्रातिपदिक से (जातः) जात अर्थ में (अः) अ प्रत्यय (च) भी होता है।*

*उदा०-**अमावास्यायां जातः-अमावास्यः।** अमावास्या में उत्पन्न हुआ-अमावास्य।*

*सिद्धि-**अमावास्यः।** अमावास्या+ङि+अ। अमावास्य्+अ। अमावास्य+सु। अमावास्यः।*

यहां सप्तमी-समर्थ 'अमावास्या' शब्द से जात अर्थ में इस सूत्र से 'अ' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग के आकार का लोप होता है।

विशेषः *'**एकदेशविकृतमनन्यवद् भवति**' अर्थात् किसी का एक अंग विकृत हो जाये तो वह कोई अन्य नहीं बन जाता। यदि कुत्ते की पूछ कट जाये तो वह गधा वा घोड़ा नहीं बन जाता अपितु कुत्ता ही रहता है। इस व्याकरण-परिभाषा के आश्रय से 'अमावास्या' शब्द के समान 'अमावस्या' शब्द से भी वुन्, अण् और अ प्रत्यय होते हैं। अमावस्यकः (वुन्)। आमावस्यः (अण्)। अमावस्यः (अः)।*

कन्-

(८) सिन्ध्वपकराभ्यां कन्।३२।

प०वि०-सिन्धु-अपकराभ्याम् ५।२ कन् १।१।

स०-सिन्धुश्च अपकरश्च तौ सिन्ध्वपकरौ, ताभ्याम्-सिन्ध्वपकराभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्र, जात इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र सिन्ध्वपकराभ्यां जातः कन्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थाभ्यां सिन्ध्वपकराभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां जात इत्यस्मिन्नर्थे कन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(सिन्धुः)** सिन्धौ जातः सिन्धुकः। **(अपकरः)** अपकरे जातोऽपकरकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (सिन्ध्वपकराभ्याम्) सिन्धु और अपकर प्रातिपदिकों से (जातः) जात अर्थ में (कन्) कन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(सिन्धु) सिन्धौ जातः सिन्धुकः। सिन्धु जनपद में उत्पन्न हुआ-सिन्धुक। (अपकर) अपकरे जातोऽपकरकः। अपकर में उत्पन्न हुआ-अपकरक।

सिद्धि-सिन्धुकः। सिन्धु+ङि+कन्। सिन्धु+क। सिन्धुक+सु। सिन्धुकः।

यहां सप्तमी-समर्थ 'सिन्धु' शब्द से जात अर्थ में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है। ऐसे ही-अपकरकः।

विशेषः *(१) सिन्धु-प्राचीन सिन्धु नद आजकल की सिन्ध है। सिन्धु के नाम से उसके पूर्वी किनारे की तरफ पंजाब में फैला हुआ प्राचीन सिन्धु जनपद (सिन्धु सागर दुआब) था। सिन्धु नदी कैलास के पश्चिमी तटान्त से निकलकर काश्मीर को दो भागों में बांटती हुई गिलगिट-चिलास (प्राचीन दरद् देश) में घुसकर दक्षिणवाहिनी होती हुई दरद् के चरणों में पहली बार मैदान में उतरती है (पाणिनीकालीन भारतवर्ष पृ० ५०)।*

(२) अपकर-बहुत सम्भव है, मियांवाली जिले का भखर हो। सिन्धु जनपद में यह दक्खिनी रास्ते का नाका था, जहां सिन्धु नदी पार करके प्राचीन गोमती (आधुनिक-गोमल) के किनारे गोमल दर्रे से गजनी को रास्ता जाता था। व्यापारिक और सामरिक दृष्टि से भखर या भक्खर महत्त्वपूर्ण घाटा था (पाणिनीकालीन भारतवर्ष पृ० ५०)।

अण्+अञ्-

(६) अणञौ च।३३।

प०वि०-अण्-अञौ १।२ च अव्ययपदम्।

स०-अण् च अञ् च तौ-अणञौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्र, जातः, सिन्ध्वपकराभ्यामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र सिन्ध्वपकराभ्यां जातोऽणञौ च।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थाभ्यां सिन्ध्वपकराभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां जात इत्यस्मिन्नर्थेऽणञौ च प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(**सिन्धुः**) सिन्धौ जातः सैन्धवः (अण्)। सैन्धवः (अञ्)। (**अपकरः**) अपकरे जात आपकर (अण्)। आपकरः (अञ्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (सिन्ध्वपकराभ्याम्) सिन्धु और अपकर प्रातिपदिकों से (जातः) जात अर्थ में (अणञौ) अण् और अञ् प्रत्यय (च) भी होते हैं।*

उदा०-(सिन्धु) सिन्धौ जातः सैन्धवः (अण्)। सैन्धवः (अञ्)। सिन्धु जनपद में उत्पन्न हुआ-सैन्धव। (अपकर) अपकरे जात आपकर (अण्)। आपकरः (अञ्)। अपकर में उत्पन्न हुआ-आपकर।

सिद्धि-(१) सैन्धवः । सिन्धु+ङि+अण्। सैन्धो+अ। सैन्धव+सु। सैन्धवः।

*यहां सप्तमी-समर्थ 'सिन्धु' शब्द से जात अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि तथा **'ओर्गुणः'** (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है। यहां **'आद्युदात्तश्च'** (३।१।३) से 'अण्' प्रत्यय आद्युदात्त होने से सैन्धव पद का अन्तोदात्त स्वर होता है।*

*(२) सैन्धवः-यहां 'सिन्धु' शब्द से पूर्ववत् 'अञ्' प्रत्यय है। प्रत्यय के ञित् होने से **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।१९४) से अञ्-प्रत्ययान्त सैन्धव पद का आद्युदात्त स्वर होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-आपकरः (अण्)। आर्पकरः (अञ्)।*

प्रत्ययस्य लुक्-

(१०) श्रविष्ठाफल्गुन्यनुराधास्वातितिष्यपुनर्वसु-हस्तविशाखाषाढाबहुलाल्लुक्।३४।

प०वि०-श्रविष्ठा-फल्गुनी-अनुराधा-स्वाति-तिष्य-पुनर्वसु-हस्त-विशाखा-अषाढा- बहुलात् ५।१ लुक् १।१।

स०-श्रविष्ठा च फल्गुनी च अनुराधा च स्वातिश्च तिष्यश्च पुनर्वसुश्च हस्तश्च विशाखा च बहुला च एतेषां समाहारः श्रविष्ठा०बहुलम्, तस्मात्-श्रविष्ठा०बहुलात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्र श्रविष्ठा०बहुलाज्जातो यथाविहितं प्रत्ययस्य लुक्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थेभ्यः श्रविष्ठादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो जात इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययस्य लुग् भवति।

उदा०-**(श्रविष्ठा)** श्रविष्ठायां जातः श्रविष्ठः। **(फल्गुनी)** फल्गुन्योर्जातः फल्गुनः। **(अनुराधा)** अनुराधायां जातोऽनुराधः। **(स्वातिः)** स्वात्यां जातः स्वातिः। **(तिष्यः)** तिष्ये जातस्तिष्यः। **(पुनर्वसुः)** पुनर्वस्वोर्जातः पुनर्वसुः। **(हस्तः)** हस्ते जातो हस्तः। **(विशाखा)** विशाखयोर्जातो विशाखः। **(अषाढा)** अषाढायां जातोऽषाढः। **(बहुला)** बहुलायां जातो बहुलः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (श्रविष्ठा०बहुलात्) श्रविष्ठा, फल्गुनी, अनुराधा, स्वाति, तिष्य, पुनर्वसु, हस्त, विशाखा, आषाढा, बहुला प्रातिपदिकों से (जातः) जात अर्थ में यथाविहित प्रत्यय का (लुक्) लोप होता है।*

उदा०-संस्कृत भाग में देख लेवें। अर्थ इस प्रकार है-श्रविष्ठा नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-श्रविष्ठ। फल्गुनी नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-फल्गुन। अनुराधा नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-अनुराध। स्वाति नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-स्वाति। तिष्य नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-तिष्य। पुनर्वसु नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-पुनर्वसु। हस्त नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-हस्त। विशाखा नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-विशाख। अषाढा नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-अषाढ। बहुला नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-बहुल।

सिद्धि-श्रविष्ठः। *श्रविष्ठा+ङि+अण्। श्रविष्ठा+अ। श्रविष्ठ+०। श्रविष्ठ+सु। श्रविष्ठः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'श्रविष्ठा' शब्द से जात अर्थ में **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय होता है। इससे उस 'अण्' प्रत्यय का लुक् हो जाता है। **'लुक् तद्धितलुकि'** (१।२।४९) से तद्धित 'अण्' प्रत्यय का लुक् होने पर श्रविष्ठा में विद्यमान स्त्रीप्रत्यय 'टाप्' का भी लुक् हो जाता है। ऐसे ही- **'फल्गुनः'** आदि।*

विशेषः *(१) २८ नक्षत्रों का विवरण **'फल्गुनीप्रोष्ठपदानां च नक्षत्रे'** (१।२।६०) के प्रवचन में देख लेवें।*

(२) 'तिष्य' शब्द 'पुष्य' नक्षत्र का पर्यायवाची है।

*(३) 'बहुला' शब्द 'कृत्तिका' नक्षत्र का पर्यायवाची है। **'कृत्तिकापर्यायस्य बहुलाशब्दस्यात्र द्वन्द्वैकवद्भावेन नपुंसकह्रस्वत्वेन निर्देशः'** (पदमञ्जर्यां पण्डितहरदत्तमिश्रः)।*

*(४) फल्गुनी, पुनर्वसु और विशाखा नामक दो-दो नक्षत्र हैं। अतः इनका द्विवचन में प्रयोग किया जाता है। **'फल्गुनीप्रोष्ठपदानां नक्षत्रे'** (१।२।६०) से 'फल्गुनी' में बहुवचन भी होता है।*

प्रत्ययस्य-लुक्-

(११) स्थानान्तगोशालखरशालाच्च।३५।

प०वि०-स्थानान्त-गोशाल-खरशालात् ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-स्थानमन्तो यस्य तत् स्थानान्तम्। गवां शालेति गोशालम्। खराणां शालेति खरशालम्। **'विभाषा सेनासुराच्छायाशालानिशानाम्'** (२।४।२५) इति शालान्तस्य विभषा नपुंसकत्वम्। स्थानान्तं च गोशालं च खरशालं च एतेषां समहारः स्थानान्तगोशालखरशालम्, तस्मात्-स्थानान्तगोशालखरशालात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्र, जातः, लुगिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र स्थनान्तगोशालखरशालाच्च यथाविहितं प्रत्ययस्य लुक्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थेभ्यः स्थानान्तगोशालखरशालेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यश्च जात इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययस्य लुग् भवति।

उदा०-(स्थानान्तम्) गोस्थाने जातो गोस्थानः। अश्वस्थाने जातोऽश्वस्थानः। **(गोशालम्)** गोशाले जातो गोशालः। **(खरशालम्)** खरशाले जातः खरशालः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (स्थानान्तगोशालखरशालात्) स्थानान्त, गोशाल, खरशाल प्रातिपदिकों से (च) भी यथाविहित प्रत्यय का (लुक्) लोप हो जाता है।*

उदा०-(स्थानान्त) ***गोस्थाने जातो गोस्थानः।*** *गोस्थान में उत्पन्न हुआ-गोस्थान।* ***अश्वस्थाने जातोऽश्वस्थानः।*** *अश्वस्थान में उत्पन्न हुआ-अश्वस्थान। (गोशाल)* ***गोशाले जातो गोशालः।*** *गोशाला में उत्पन्न हुआ-गोशाल। (खरशाल)* ***खरशाले जातः खरशालः।*** *खरशाला=गर्दभशाला में उत्पन्न हुआ-खरशाल।*

सिद्धि-गोस्थानः। *गोस्थान+ङि+अण्। गोस्थान+० गोस्थान+सु। गोस्थानः।*

यहां सप्तमी-समर्थ स्थानान्त 'गोस्थान' शब्द से जात अर्थ में इस से ***'प्राग्दीव्यतोऽण्'*** *(४।१।८३) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय का इस सूत्र से लुक् होता है। ऐसे ही-* ***अश्वस्थानः, गोशालः, खरशालः।***

प्रत्ययस्य लुक्-विकल्पः-

(१२) वत्सशालाभिजिदश्वयुक्शतभिषजो वा।३६।

प०वि०-वत्सशाल-अभिजित्-अश्वयुक्-शतभिषजः ५।१ वा अव्ययपदम्।

स०-वत्सानां शालेति वत्सशालम् विभाषा **'सेनासुराच्छाया०'** (२।४।२५) इति शालान्तस्य विभाषा नपुंसकत्वम्। वत्सशालं च, अभिजिच्च, अश्वयुक् च शतभिषक् च एतेषां समाहारो वत्सशालाभिजिदश्वयुक्शतभिषक्, तस्मात्-वत्सशालाभिजिदश्वयुक्शतभिषजः (षष्ठीतत्पुरुषगर्भितसमाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्र, जातः, लुगिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र वत्सशालाभिजिदश्वयुक्शतभिषजो जातो वा लुक्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थेभ्यो वत्सशालाभिजिदश्वयुक्भिषग्भ्यः प्रातिपदिकेभ्यो जात इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययस्य विकल्पेन लुग् भवति।

उदा०-(वत्सशालम्) वत्सशाले जातो वत्सशालः (लुक्)। वात्सशालः (अञ्)। **(अभिजित्)** अभिजिति जातोऽभिजित् (लुक्)। आभिजितः (अण्)। **(अश्वयुक्)** अश्वयुजि जातोऽश्वयुक् (लुक्)। आश्वयुजः (अण्)। **(शतभिषक्)** शतभिषजि जातः शतभिषक् (लुक्)। शातभिषजः (अण्)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (वत्सशाल०शतभिषजः) वत्सशाल, अभिजित्, अश्वयुक्, शतभिषक् प्रातिपदिकों से (जातः) जात अर्थ में यथाविहित प्रत्यय का (वा) विकल्प से (लुक्) लोप होता है।*

*उदा०-(वत्सशाल) वत्सशाले जातो वत्सशालः (लुक्)। बछड़ों की शाला में उत्पन्न हुआ-वत्सशाल। वात्सशालः (अञ्)। बछड़ों की शाला में उत्पन्न हुआ-वात्सशाल। **(अभिजित्) अभिजिति जातोऽभिजित् (लुक्)।** अभिजित् नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-अभिजित्। **आभिजितः (अण्)।** अभिजित् नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-आभिजित। **(अश्वयुक्) अश्वयुजि जातोऽश्वयुक् (लुक्)।** अश्वयुक्=अश्विनी नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-अश्वयुक्। **आश्वयुजः (अण्)।** अश्वयुक् अश्विनी नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-आश्वयुज। **(शतभिषक्) शतभिषजि जातः शतभिषक् (लुक्)।** शतभिषक् नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-शतभिषक्। **शातभिषजः (अण्)।** शतभिषक् नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-शातभिषज।*

***सिद्धि-(१) वत्सशालः।** वत्सशाल+ङि+अण्। वत्सशाल+०। वत्सशाल+सु। वत्सशालः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'वत्सशाल' शब्द से जात अर्थ में **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय है और इस सूत्र से उसका लुक् होता है।*

***(२) वात्सशालः।** वत्सशाल+ङि+अण्। वात्सशाल्+अ। वात्सशाल+सु। वात्सशालः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'वत्सशाल' शब्द से पूर्ववत् 'अण्' प्रत्यय है। उसका विकल्प पक्ष में लुक् नहीं है। अतः **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४) से अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**अभिजित्, अभिजितः** आदि।*

प्रत्ययस्य बहुलं लुक्–

(१३) नक्षत्रेभ्यो बहुलम्।३७।

प०वि०–नक्षत्रेभ्यः ५।३ बहुलम् १।१।

अनु०–तत्र, जातः, लुगिति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत्र नक्षत्रेभ्यो जातो बहुलं लुक्।

अर्थः–तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थेभ्यो नक्षत्रवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो जात इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययस्य बहुलं लुग् भवति।

उदा०–रोहिण्यां जातो रोहिणः (लुक्)। रौहिणः (अण्)। मृगशिरसि जातो मृगशिराः (लुक्)। मार्गशीर्षः (अण्)।

आर्यभाषाः अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (नक्षत्रेभ्यः) नक्षत्रवाची प्रातिपदिकों से (जातः) जात अर्थ में यथाविहित प्रत्यय का (बहुलम्) प्रायः (लुक्) लोप होता है।

*उदा०–**रोहिण्यां जातो रोहिणः (लुक्)**। रोहिणी नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-रोहिण। **रौहिणः (अण्)**। रोहिणी नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-रौहिण। **मृगशिरसि जातो मृगशिराः (लुक्)**। मृगशिरा नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-मृगशिरा। **मार्गशीर्षः (अण्)**। मृगशिरा नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-मार्गशीर्ष।*

*सिद्धि-(१) **रोहिणः**। रोहिणी+ङि+अण्। रौहिण+०। रौहिण+सु। रोहिणः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ, नक्षत्रवाची 'रोहिणी' शब्द से जात अर्थ में **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से यथाविहित अण् प्रत्यय है। इस सूत्र से उसका लुक् **होता है**। तद्धित प्रत्यय का लुक् हो जाने पर **'लुक्तद्धितलुकि'** (१।२।४९) से **रोहिणी में** विद्यमान स्त्रीप्रत्यय का भी लुक् हो जाता है।*

*(२) **रौहिणः**। यहां सप्तमी-समर्थ नक्षत्रवाची 'रोहिणी' शब्द से जात अर्थ में पूर्ववत् 'अण्' प्रत्यय है। यहां विकल्प पक्ष में 'अण्' प्रत्यय का लुक् नहीं होता है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के ईकार का लोप होता है।*

*(३) **मृगशिराः**। मृगशिरस्+सु। मृगशिराः।*

*यहां **'अत्वसन्तस्य चाधातोः'** (६।४।१४) से अंग को दीर्घ होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **मार्गशीर्षः**। यहां **'अचि शीर्षः'** (६।१।६२) से 'शिरस्' के स्थान में शीर्ष **आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।***

कृतादिप्रत्ययार्थविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः–

(१) कृतलब्धक्रीतकुशलाः ।३८।

प०वि०–कृत-लब्ध-क्रीत-कुशलाः १ ।३ ।

स०–कृतश्च लब्धश्च क्रीतश्च कुशलश्च ते–कृतलब्धक्रीतकुशलाः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः) ।

अनु०–तत्र इत्यनुवर्तते ।

अन्वयः–तत्र प्रातिपदिकात् कृतलब्धक्रीतकुशलेषु यथाविहितं प्रत्ययः ।

अर्थः–तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थात् प्रातिपदिकात् कृतलब्धक्रीत-कुशलेष्वर्थेषु यथाविहितं प्रत्ययो भवति ।

उदा०–स्रुघ्ने कृतो वा लब्धो वा क्रीतो वा कुशलो वा–स्रौघ्नः । माथुरः । रौहितकः । राष्ट्रियः ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ प्रातिपदिक से (कृतलब्ध-क्रीतकुशलाः) कृत, लब्ध, क्रीत, कुशल अर्थों में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

उदा०–स्रुघ्न नगर में कृत, लब्ध, क्रीत, वा कुशल–स्रौघ्न। मथुरा नगरी में कृत आदि–माथुर। रोहितक नगर में कृत आदि–रौहितक। राष्ट्र में कृत आदि–राष्ट्रिय।

सिद्धि-(१) स्रौघ्नः । स्रुघ्न+ङि+अण् । स्रौघ्न्+अ । स्रौघ्न+सु । स्रौघ्नः ।

*यहां सप्तमी-समर्थ 'स्रुघ्न' शब्द से कृत, लब्ध, क्रीत, कुशल अर्थों में **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४ ।१ ।८३) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७ ।२ ।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६ ।४ ।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही–माथुरः, रौहितकः ।*

*राष्ट्रियः । यहां 'राष्ट्र' शब्द से **'राष्ट्रावारपाराद् घखौ'** (४२ ।९३) से यथाविहित 'घ' प्रत्यय है।*

कृत=बना हुआ। लब्ध=प्राप्त हुआ। क्रीत=खरीदा हुआ। कुशल=चतुर।

प्रायभवार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः-

(१) प्रायभवः ।३९।

प०वि०–प्रायभवः १ ।१ ।

अनु०-तत्र इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तत्र प्रातिपदिकात् प्रायभवो यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थात् प्रातिपदिकात् प्रायभव इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति।

उदा०-स्रुघ्ने प्रायभवः=प्रायेण-बाहुल्येन भवतीति-स्रौघ्नः। माथुरः। रौहितकः। राष्ट्रियः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ प्रातिपदिक से (प्रायभवः) अधिकतर विद्यमान अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

उदा०-स्रुघ्न नगर में प्रायभव=अधिकतर रहनेवाला-स्रौघ्न। मथुरानगरी में प्रायभव-माथुर। रोहतक नगर में प्रायभव-रौहितक। राष्ट्र में प्रायभव-राष्ट्रिय।

सिद्धि-स्रौघ्नः आदि पदों की सिद्धि पूर्ववत् है।

विशेषः *किसी नगर आदि में नित्य रहनेवाला 'भवः' और अधिकतर रहनेवाला 'प्रायभवः' कहाता है।*

ठक्-

(२) उपजानूपकर्णोपनीवेष्ठक्।४०।

प०वि०-उपजानु-उपकर्ण-उपनीवेः ५।१ ठक् १।१।

स०-जानुनः समीपमिति उपजानु। कर्णस्य समीपमिति उपकर्णम्। नीव्याः समीपमिति उपनीवि। **'अव्ययं विभक्तिसमीप०'** (२।१।६) इत्यव्ययीभावः। उपजानु च उपकर्णं च उपनीवि च एतेषां समाहारः उपजानूपकर्णोपनीवि, तस्मात्-उपजानूपकर्णोपनीवेः (अव्ययभावगर्भित-समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्र, प्रायभव इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र उपजानूपकर्णोपनीवेः प्रायभवष्ठक्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थेभ्यः उपजानूपकर्णोपनीविभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः प्रायभव इत्यस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(उपजानु)** उपजानु प्रायभव औपजानुकः। **(उपकर्णम्)** उपकर्णं प्रायभव औपकर्णिकः। **(उपनीवि)** उपनीवि प्रायभव औपनीविकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (उपजानूपकर्णोपनीवेः) उपजानु, उपकर्ण, उपनीवि प्रातिपदिकों से (प्रायभवः) प्रायभव अर्थ में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(उपजानु) उपजानु=घुटने के अधोभाग में प्रायः धारण किया जानेवाला आभूषण आदि-औपजानुक। (**उपकर्ण**) उपकर्ण=कान के अधोभाग में प्रायः धारण किया जानेवाला आभूषण आदि-औपकर्णिक। (**उपनीवि**) उपनीवि=कटिभाग में प्रायः धारण किया जानेवाला आभूषण एवं पटबन्ध आदि-औपनीविक।*

*सिद्धि-(१) **औपजानुकः**। उपजानु+ङि+ठक्। औपजानु+क। औपजानुकः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'उपजानु' शब्द से प्रायभव अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। 'इसुसुक्तान्तात् कः' (७।३।५१) से 'ठ्' के स्थान में 'क्' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**औपकर्णिकः, औपनीविकः।***

विशेषः *'उपजानु' आदि पदों में पूर्वोक्त अव्ययीभाव समास है। '**अव्ययीभावश्च**' (१।१।४१) से अव्ययीभाव समास के अव्यय होने से '**अव्ययादाप्सुपः**' (२।४।८२) से 'सुप्' प्रत्यय का लुक् हो जाता है अतः यहां सप्तमी-विभक्ति का दर्शन नहीं होता है।*

सम्भूतार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः–

(१) सम्भूते।४१।

प०वि०–सम्भूते ७।१।

अनु०–तत्र इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–तत्र प्रातिपदिकात् सम्भूते यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः–तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थात् प्रातिपदिकात् सम्भूतेऽर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति।

उदा०–स्रुघ्ने सम्भवतीति स्रौघ्नः। माथुरः। रौहितकः। राष्ट्रियः।

अवक्लृप्तिः प्रमाणानतिरेकश्च सम्भवत्यर्थोऽत्र गृह्यते, नोत्पत्तिः, सत्ता वा जातभवाभ्यामर्थाभ्यां गतार्थत्वात्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ प्रातिपदिक से (सम्भूते) सम्भव अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

उदा०-जो स्रुघ्न में सम्भव है वह-स्रौघ्न। मथुरा में जो सम्भव है वह-माथुर। रोहितक में जो सम्भव है वह-रौहितक। राष्ट्र में जो सम्भव है वह-राष्ट्रिय।

सिद्धि- 'स्रौघ्न:' आदि पदों की सिद्धि पूर्ववत् है।

विशेषः *यहां सम्भूत शब्द का अर्थ सम्भव=हो सकना अर्थ है, उत्पत्ति वा सत्ता अर्थ नहीं क्योंकि जात और भव अर्थ से उत्पत्ति वा सत्ता अर्थ का कथन किया गया है।*

ढञ्–

(२) कोशाड्ढञ्।४२।

प०वि०–कोशात् ५।१ ढञ् १।१।

अनु०–तत्र, सम्भूते इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत्र कोशात् सम्भूते ढञ्।

अर्थः–तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थात् कोशात् प्रातिपदिकात् सम्भूतेऽर्थे ढञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–कोशे सम्भूतं कौशेयं वस्त्रम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (कोशात्) कोश प्रातिपदिक से (सम्भूते) सम्भूत अर्थ में (ढञ्) ढञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०–कोश (खोलविशेष) में सम्भूत कौशेय=रेशम। कौशेय वस्त्र=रेशमी कपड़ा।

सिद्धि–कौशेयम्। कोश+ङि+ढञ्। कौश्+एय। कौशेय+सु। कौशेयम्।

यहां सप्तमी-समर्थ 'कोश' शब्द से सम्भूत अर्थ में इस सूत्र से 'ढञ्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश होता है। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है।

विशेषः *कोश (खोलविशेष) में कृमिविशेष सम्भूत होता है, वस्त्र नहीं किन्तु रूढिवश 'कौशेय' पद रेशमीवस्त्र अर्थ का वाचक है, कृमि अर्थ का नहीं।*

साध्वाद्यर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः–

(१) कालात् साधुपुष्प्यत्पच्यमानेषु।४३।

प०वि०–कालात् ५।१ साधु-पुष्प्यत्-पच्यमानेषु ७।३।

स०–साधुश्च पुष्प्यँश्च पच्यमानश्च ते साधुपुष्प्यत्पच्यमाना:, तेषु-साधुपुष्प्यत्पच्यमानेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–तत्र इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–तत्र कालात् साधुपुष्प्यत्पच्यमानेषु यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थेभ्यः कालविशेषवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः साधुपुष्प्यत्पच्यमानेष्वर्थेषु यथाविहितं प्रत्ययो भवति।

उदा०-(साधुः) हेमन्ते साधुः-हैमनः प्राकारः। शिशिरे साधुः शैशिरमनुलेपनम्। **(पुष्प्यन्)** वसन्ते पुष्प्यन्तीति वासन्त्यः कुन्दलताः। ग्रीष्मे पुष्प्यन्तीति ग्रैष्म्यः पाटलाः। **(पच्यमानः)** शरदि पच्यन्ते इति शारदाः शालयः। ग्रीष्मे पच्यन्ते इति ग्रैष्मा यवाः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची प्रातिपदिकों से (साधुपुष्प्यत्पच्यमानेषु) साधु, पुष्प्यन्, पच्यमान अर्थों में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(साधु)** हेमन्त ऋतु में साधु=ठीक-हैमन प्राकार=परकोटा (चार दीवारी)। शिशिर ऋतु में साधु=ठीक-शैशिर अनुलेपन (तैल-मर्दन आदि)। **(पुष्प्यन्)** वसन्त ऋतु में पुष्पित होनेवाली-वासन्ती कुन्दलतायें (चमेली)। ग्रीष्म ऋतु में पुष्पित होनेवाली-ग्रैष्मी पाटला (पाढर का वृक्ष)। **(पच्यमान)** शरद् ऋतु में पकनेवाले-शारद शालि (चावल)। ग्रीष्म ऋतु में पकनेवाले-ग्रैष्म यव (जौ)।*

सिद्धि-*(१) **हैमनः।** यहां सप्तमी-समर्थ कालविशेषवाची 'हेमन्त' शब्द से साधु अर्थ में **'सर्वत्राण् च तलोपश्च'** (४।३।२२) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय और तकार का लोप होता है। सिद्धि पूर्ववत् है।*

*(२) **शैशिरम्।** यहां सप्तमी-समर्थ कालविशेषवाची 'शिशिर' शब्द से सन्धि अर्थ में **'सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्'** (४।३।१६) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय है। सिद्धि पूर्ववत् है।*

*(३) **वासन्ती।** यहां सप्तमी-समर्थ, कालविशेषवाची 'वसन्त' शब्द से पुष्प्यन् अर्थ में पूर्ववत् यथाविहित 'ऋतु-अण्' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'टिड्ढाणञ्'** (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है। ऐसे ही 'ग्रीष्म' शब्द से-**ग्रैष्मी।***

*(४) **शारदः।** यहां सप्तमी-समर्थ, कालविशेषवाची 'शरद्' शब्द से पच्यमान अर्थ में पूर्ववत् यथाविहित 'ऋतु-अण्' प्रत्यय है। ऐसे ही 'ग्रीष्म' शब्द से ग्रैष्मः।*

उप्तार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः-

(१) उप्ते च।४४।

प०वि०-उप्ते ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-तत्र, कालादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र कालाद् उप्ते च यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थात् कालविशेषवाचिनः प्रातिपदिकाद् उप्ते चार्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति।

उदा०-हेमन्ते उप्यन्ते हैमन्ता यवाः। ग्रीष्मे उप्यन्ते ग्रैष्मा व्रीहयः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची प्रातिपदिक से (उप्ते) उप्त=बोया गया अर्थ में (च) भी यथाविहित प्रत्यय होता है।*

उदा०-हेमन्त ऋतु में उप्त=बोया गया-हैमन्त यव (जौ)। ग्रीष्म ऋतु में उप्त=बोया गया-ग्रैष्म व्रीहि (धान्य=चावल)।

*सिद्धि-(१) हैमन्तः। यहां सप्तमी-समर्थ, कालविशेषवाची हेमन्त' शब्द से उप्त अर्थ में **'सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्'** (४।३।१६) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय है। ऐसे ही 'ग्रीष्म' शब्द से-ग्रैष्मः।*

वुञ्-

(२) आश्वयुज्या वुञ्।४५।

प०वि०-आश्वयुज्याः ५।१ वुञ् १।१।

अनु०-तत्र, कालात्, उप्ते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र कालादाश्वयुज्या उप्ते वुञ्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थात् कालविशेषवाचिनः आश्वयुजी-शब्दात् प्रातिपदिकाद् उप्तेऽर्थे वुञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-आश्वयुज्यामुप्ता आश्वयुजका माषाः।

अश्विनीभ्यां युक्ता पौर्णमासी आश्वयुजीति कथ्यते। अश्वयुक् शब्दो हि आश्विनीपर्यायो वर्तते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (आश्वयुज्याः) आश्वयुजी प्रातिपदिक से (उप्ते) उप्त=बोया गया अर्थ में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होती है।*

उदा०-आश्वयुजी=आसौज की पौर्णमासी के दिन बोये गये-आश्वयुजक माष (उड़द)।

अश्विनी नक्षत्र से युक्त पौर्णमासी आश्वयुजी कहाती है। अश्वयुक् शब्द अश्विनी का पर्यायवाची है।

सिद्धि-आश्वयुजकाः । आश्वयुजी+ङि+वुञ् । आश्वयुज्+अक । आश्वयुजक+जस् । आश्वयुजकाः ।

*यहां सप्तमी-समर्थ 'अश्वयुजी' शब्द से उप्त अर्थ में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के ईकार का लोप होता है।*

वुञ्-विकल्पः-

(३) ग्रीष्मवसन्तादन्यतरस्याम् ।४६।

प०वि०-ग्रीष्म-वसन्तात् ५।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-ग्रीष्मश्च वसन्तश्च एतयोः समाहारो ग्रीष्मवसन्तम्, तस्मात्-ग्रीष्मवसन्तात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्र, कालात्, उप्ते, वुञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र कालाभ्यां ग्रीष्मवसन्ताभ्यामुप्तेऽन्यतरस्यां वुञ्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थाभ्यां कालविशेषवाचिभ्यां ग्रीष्मवसन्ताभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् उप्तेऽर्थे विकल्पेन वुञ् प्रत्ययो भवति, पक्षे चाऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(ग्रीष्मः) ग्रीष्मे उप्तं ग्रैष्मकं सस्यम् (वुञ्)। ग्रैष्मं सस्यम् (अण्)। **(वसन्तः)** वसन्ते उप्तम्-वासन्तकं सस्यम् (वुञ्)। वासन्तं सस्यम् (अण्)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (ग्रीष्मवसन्ताभ्याम्) ग्रीष्म, वसन्त प्रातिपदिकों से (उप्ते) उप्त=बोया गया अर्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है और पक्ष में अण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(ग्रीष्म)** ग्रीष्म ऋतु में बोई गई खेती-ग्रैष्मक (वुञ्)। ग्रैष्म (अण्)। **(वसन्त)** वसन्त ऋतु में बोई गई खेती-वासन्तक (वुञ्)। वासन्त (अण्)।*

*सिद्धि-**(१) ग्रैष्मकम् ।** ग्रीष्म+ङि+अण्। ग्रैष्म्+अक। ग्रैष्मक+सु। ग्रैष्मकम्।*

यहां सप्तमी-समर्थ, कालविशेषवाची 'ग्रीष्म' शब्द से उप्त अर्थ में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(२) ग्रैष्मम्। ग्रीष्म+ङि+अण्। ग्रैष्म+अ। ग्रैष्म+सु। ग्रैष्मम्।

*यहां सप्तमी-समर्थ, कालविशेषवाची 'ग्रीष्म' शब्द से विकल्प पक्ष में 'सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्' (४।३।१६) से 'ऋतु-अण्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**वासन्तकम्, वासन्तम्।***

देयार्थप्रत्ययप्रकरणम्

यथाविहितं प्रत्ययः—

(१) देयमृणे।४७।

प०वि०-देयम् १।१ ऋणे ७।१।

अनु०-तत्र, कालाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र कालाद् देयं यथाविहितं प्रत्यय ऋणे।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थात् कालविशेषवाचिनः प्रातिपदिकाद् देयमित्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यद् देयमृणं चेत् तद् भवति।

उदा०-मासे देयमृणं मासिकम्। अर्धमासे देयमृणम् आर्धमासिकम्। संवत्सरे देयमृणं सांवत्सरिकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची प्रातिपदिक से (देयम्) देय अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (ऋणे) यदि जो देय है, वह ऋण हो।*

उदा०-एक मास में देय ऋण-मासिक। अर्धमास में देय ऋण-आर्धमासिक। संवत्सर में देय ऋण-सांवत्सरिक (वार्षिक)।

*सिद्धि-**मासिकम्।** मास+ङि+ठञ्। मास्+इक। मासिक+सु। मासिकम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ, कालविशेषवाची 'मास' शब्द से देय (ऋण) अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है। यहां **'कालाट्ठञ्'** (४।३।११) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय होता है। 'ठस्येकः' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि तथा अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**आर्धमासिकम्, सांवत्सरिकम्।***

वुन्—

(२) कलाप्यश्वत्थयवबुसाद् वुन्।४८।

प०वि०-कलापि-अश्वत्थ-यवबुसात् ५।१ वुन् १।१।

स०-कलापिश्च अश्वत्थश्च यवबुसं च एतेषां समाहारः कलाप्यश्वत्थयवबुसम्, तस्मात्-कलाप्यश्वत्थयवबुसात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्र, कालात्, देयम्, ऋणे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र कालेभ्यः कलाप्यश्वत्थयवबुसेभ्यो देयं वुन् ऋणे।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थेभ्यः कालविशेषवाचिभ्यः कलाप्यश्वत्थयवबुसेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो देयमित्यस्मिन्नर्थे वुन् प्रत्ययो भवति, यद् देयमृणं चेत् तद् भवति।

उदा०-(**कलापिनः**) कलापिषु देयमृणम्-कलापकम्। (**अश्वत्थः**) अश्वत्थेषु देयमृणम्-अश्वत्थकम्। (**यवबुसम्**) यवबुसे देयमृणम्-यवबुसकम्।

यस्मिन् काले मयूराः कलापिनो भवन्ति स कालः कलापीति कथ्यते। यस्मिन् कालेऽश्वत्थाः फलन्ति स कालोऽश्वत्थ इत्यभिधीयते। यस्मिन् काले यवबुसं सम्पद्यते स कालो यवबुसमित्युच्यते। अत इमे कालविशेषवाचिनः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (कलाप्यश्वत्थयवबुसात्) कलापी, अश्वत्थ, यवबुस प्रातिपदिकों से (देयम्) देय अर्थ में (वुन्) वुन् प्रत्यय होता है (ऋणे) यदि जो देय है, वह ऋण हो।*

*उदा०-**(कलापी)** कलापी-काल में देय ऋण-कलापक। **(अश्वत्थ)** अश्वत्थ=फलवान् पीपल-काल में देय ऋण-अश्वत्थक। **(यवबुस)** यवबुस-काल में देय ऋण-यवबुसक।*

जिस काल में मयूर कलापी (पुच्छवान्) होते हैं वह काल तत्साहचर्य से कलापी कहाता है। जिस काल में अश्वत्थ (पीपल) फलवान् होते हैं वह काल तत्साहचर्य से अश्वत्थ कहाता है। जिस काल में यवबुस (जौ का भूसा) तैयार हो जाता है तत्साहचर्य से उस काल को यवबुस कहते हैं। इसलिये ये शब्द कालविशेषवाची हैं।

सिद्धि-कलापकम्। *कलापिन्+सुप्+वुन्। कलाप्+अक। कलापक+सु। कलापकम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'कलापिन्' शब्द से देय-ऋण अर्थ में इस सूत्र से 'वुन्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश और **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से नकारान्त अंग के टि-भाग (इन्) का लोप होता है। ऐसे ही-**अश्वत्थकम्, यवबुसकम्।***

वुञ्–

(३) ग्रीष्मावरसमाद् वुञ्।४६।

प०वि०-ग्रीष्म-अवरसमात् ५।१ वुञ् १।१।

स०-ग्रीष्मश्च अवरसमा च एतयोः समाहारो ग्रीष्मावरसमम्, तस्मात्-ग्रीष्मावरसमात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्र, कालात्, देयम्, ऋणे चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र कालाभ्यां ग्रीष्मावरसमाभ्यां देयं वुञ् ऋणे।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थाभ्यां कालविशेषवाचिभ्यां ग्रीष्मावरसमाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां देयमित्यस्मिन्नर्थे वुञ् प्रत्ययो भवति, यद् देयमृणं चेत् तद् भवति।

उदा०-(**ग्रीष्मः**) ग्रीष्मे देयमृणम्-ग्रैष्मकम्। (**अवरसमा**) अवरसमायां देयमृणम् आवरसमम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (ग्रीष्मावरसमात्) ग्रीष्म, अवरसमा प्रातिपदिकों से (देयम्) देय अर्थ में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है (ऋणे) यदि जो देय है वह ऋण हो।*

उदा०-(ग्रीष्म) ग्रीष्म ऋतु में देय ऋण-ग्रैष्मक। (अवरसमा) अवरसमा=अवरवर्ती वर्ष में देय ऋण-आवरसमक।

"आवरसमकम्-आगामिनां संवत्सराणामाद्यसंवत्सरे देयमित्यर्थः। अपर आह-अतीते वत्सरे देयं यदद्यापि न दत्तं तदावरसकमिति" (इति पदमञ्जर्यां हरदत्तमिश्रः)। आगामी वर्षों के आदिम वर्ष में देय ऋण 'आवरसमक' कहाता है। दूसरा मत यह है कि गतवर्ष में देय ऋण जो आज तक भी नहीं दिया उसे 'आवरसमक' कहते हैं (पदमञ्जरी-हरदत्तमिश्र)।

*सिद्धि-**ग्रैष्मकम्**। ग्रीष्म+ङि+वुञ्। ग्रैष्म्+अक। ग्रैष्मक+सु। ग्रैष्मकम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ, कालविशेषवाची 'ग्रीष्म' शब्द से देय (ऋण) अर्थ में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**आवरसमकम्**।*

ठञ्+वुञ्–

(४) संवत्सराग्रहायणीभ्यां ठञ् च।५०।

प०वि०-संवत्सर-आग्रहायणीभ्याम् ५।२ ठञ् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-संवत्सरश्च आग्रहायणी च ते संवत्सराग्रहायण्यौ, ताभ्याम्-संवत्सराग्रहायणीभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्र, कालात्, देयम्, ऋणे, वुञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र कालाभ्यां संवत्सराग्रहायणीभ्यां देयं ठञ् वुञ् च ऋणे।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थाभ्यां कालविशेषवाचिभ्यां संवत्सराग्रहायणीभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां देयमित्यस्मिन्नर्थे ठञ् वुञ् च प्रत्ययो भवति, यद् देयमृणं चेत् तद् भवति।

उदा०-(**संवत्सरः**) संवत्सरे देयमृणं सांवत्सरिकम् (ठञ्)। सांवत्सरकम् (वुञ्)। (**आग्रहायणी**) आग्रहायण्यां देयमृणम्-आग्रहायणिकम् (ठञ्)। आग्रहायणकम् (वुञ्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (संवत्सराग्रहायणीभ्याम्) संवत्सर, आग्रहायणी प्रातिपदिकों से (देयम्) देय अर्थ में (ठञ्) ठञ् (च) और वुञ् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-(संवत्सर) संवत्सर=वर्ष में देय ऋणि-सांवत्सरिक (ठञ्)। सांवत्सरक (वुञ्)। (आग्रहायणी) आग्रहायणी=मार्गशीर्ष मास की पूर्णिमा के दिन देय ऋण-आग्रहायणिक (ठञ्)। आग्रहायणक (वुञ्)।

*सिद्धि-(१) **सांवत्सरिकम्**। संवत्सर+ङि+ठञ्। सांवत्सर्+इक। सांवत्सरिक+सु। सांवत्सरिकम्।*

यहां सप्तमी-समर्थ कालवाची 'संवत्सर' शब्द से देय (ऋण) अर्थ में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

*(२) **सांवत्सरकम्**। यहां पूर्वोक्त 'संवत्सर' शब्द से देय (ऋण) अर्थ में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**आग्रहायणिकम्, आग्रहायणकम्**।*

'व्याहरति मृगः' इत्यर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः-

(१) व्याहरति मृगः।५१।

प०वि०-व्याहरति क्रियापदम्, मृगः १।१।

अनु०-तत्र, कालादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र कालाद् व्याहरति मृगो यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थात् कालविशेषवाचिनः प्रातिपदिकाद् व्याहरति मृग इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति।

उदा०–निशायां व्याहरति मृगो नैशः (अण्) नैशिकः (ठञ्)। प्रदोषे व्याहरति मृगः प्रादोषः (अण्) प्रादोषिकः (ठञ्)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची प्रातिपदिक से (व्याहरति-मृगः) मृग बोलता है अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

उदा०-जो मृग निशा=रात्रि में बोलता है वह-नैश (अण्)। नैशिक (ठञ्)। जो मृग प्रदोष=रात्रि के प्रथम प्रहर में बोलता है वह-प्रादोष (अण्)। प्रादोषिक (ठञ्।

सिद्धि-नैश आदि पदों की सिद्ध 'निशाप्रदोषाभ्यां च' (४।३।१४) के प्रवचन में देख लेवें।

अस्य (षष्ठी) अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः–

(१) तदस्य सोढम्।५२।

प०वि०–तद् १।१ अस्य ६।१ सोढम् १।१।

अनु०–कालादित्यनुवर्तते।

अन्वयः–तत् कालाद् अस्य यथाविहितं प्रत्ययः सोढम्।

अर्थः–तदिति प्रथमासमर्थात् कालविशेषवाचिनः प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यत्प्रथमासमर्थं सोढं चेत् तद् भवति।

उदा०–निशासहचरितसोढमध्ययनं निशा। निशा सोढाऽस्य छात्रस्य-नैशश्छात्रः (अण्)। नैशिकश्छात्रः (ठञ्)। प्रदोषसहचरितसोढमध्ययनं प्रदोषः। प्रदोषः सोढोऽस्य छात्रस्य प्रादोषश्छात्रः (अण्)। प्रादोषिकश्छात्रः (ठञ्)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (सोढम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह सोढ=सहन किया हुआ हो।*

उदा०-निशा सहित सहन किया हुआ अध्ययन 'निशा' कहाता है। वह 'निशा' जिस छात्र ने सहन की है वह-नैश छात्र (अण्) नैशिक छात्र (ठञ्)। प्रदोष सहित सहन किया हुआ अध्ययन 'प्रदोष' कहाता है। वह 'प्रदोष' (रात्रि का प्रथम पहर) जिस छात्र ने सहन किया है वह-प्रादोष छात्र (अण्)। प्रादोषिक छात्र (ठञ्)।

***सिद्धि-** 'नैश' आदि पदों की सिद्धि 'निशाप्रदोषाभ्यां च' (४।३।१४) के प्रवचन में देख लेवें।*

भवार्थप्रत्ययप्रकरणम्

यथाविहितं प्रत्ययः–

(१) तत्र भवः ।५३।

प०वि०–तत्र सप्तम्यर्थे अव्ययपदम्, भवः १।१।

अन्वयः–तत्र प्रातिपदिकाद् भवो यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः–तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थात् प्रातिपदिकाद् भव इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति।

उदा०–स्रुघ्ने भवः स्रौघ्नः। माथुरः। रौहितकः। राष्ट्रियः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ प्रातिपदिक से (भव) भव अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

उदा०–स्रुघ्न नगर में होनेवाला-स्रौघ्न। मथुरा में होनेवाला-माथुर। रोहितक में होनेवाला-रौहितक। राष्ट्र में होनेवाला-राष्ट्रिय।

सिद्धि-स्रौघ्नः।** यहां सप्तमी-समर्थ 'स्रुघ्न' शब्द से भव (होनेवाला) अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है अतः **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**माथुरः, रौहितकः, राष्ट्रियः।

यत्–

(२) दिगादिभ्यो यत् ।५४।

प०वि०–दिक्-आदिभ्यः ५।३ यत् १।१।

स०–दिक् आदिर्येषां ते दिगादयः, तेभ्यः-दिगादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–तत्र, भव इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत्र दिगादिभ्यो भवो यत्।

अर्थः–तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थेभ्यो दिगादिभ्यः प्रातिपदिभ्यो भव इत्यस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०–दिशि भवं दिश्यम्। वर्गे भवं वर्ग्यम्, इत्यादिकम्।

दिश्। वर्ग। पूग। गण। पक्ष। धाय्या। मित्र। अन्तर। पथिन्। रहस्। अलीक। उखा। साक्षिन्। आदि। अन्त। मुख। जघन। मेष।

यूथ। उदकात्संज्ञायाम्।। न्याय। वंश। अनुवंश। विश। काल। अप्। आकाश। इति दिगादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (दिगादिभ्यः) दिक्-आदि प्रातिपदिकों से (भवः) भव अर्थ में (यत्) यत् प्रत्यय होता है।*

उदा०-दिक्=दिशा में होनेवाला-दिश्य। वर्ग में होनेवाला-वर्ग्य। वर्ग=पार्टी, इत्यादि।

सिद्धि-दिश्यम्। *दिशा+ङि+यत्। दिश्+य। दिश्य+सु। दिश्यम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'दिश्' शब्द से भव अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**वर्ग्यम्।***

यत्-

(३) शरीरावयवाच्च।५५।।

प०वि०-शरीर-अवयवात् ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-शरीरस्य अवयवमिति शरीरावयवम्, तस्मात्-शरीरावयवात् (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-तत्र, भवः, यदिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र शरीरावयवाच्च भवो यत्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थाच्छरीरावयववाचिनः प्रातिपदिकाच्च भव इत्यस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-दन्तेषु भवं दन्त्यम्। कर्णयोर्भवं कर्ण्यम्। ओष्ठयोर्भवम् ओष्ठ्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (शरीरावयवात्) शरीर-अवयववाची प्रातिपदिक से (च) भी (भवः) भव अर्थ में (यत्) यत् प्रत्यय होता है।*

उदा०-दांतों में होनेवाला-दन्त्य। कानों में होनेवाला-कर्ण्य। ओष्ठों पर होनेवाला-ओष्ठ्य।

सिद्धि-दन्त्यम्। *दन्त+सुप्+यत्। दन्त्+य। दन्त्य+सु। दन्त्यम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ, शरीर अवयववाची 'दन्त' शब्द से भव अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**कर्ण्यम्, ओष्ठ्यम्।***

ढञ्-

(४) दृतिकुक्षिकलशिवस्त्यस्त्यहेर्ढञ्।५६।

प०वि०-दृति-कुक्षि-कलशि-वस्ति-अस्ति-अहेः ५।१ ढञ् १।१।

स०-दृतिश्च कुक्षिश्च कलशिश्च वस्तिश्च अस्तिश्च अहिश्च एतेषां समाहारो दृति०अहि, तस्मात्-दृति०अहे: (समाहारद्वन्द्व:)।

अनु०-तत्र, भव इति चानुवर्तते।

अन्वय:-तत्र दृति०अहेर्भवो ढञ्।

अर्थ:-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थेभ्यो दृतिकुक्षिकलशिवस्त्यस्त्यहिभ्य: प्रातिपदिकेभ्यो भव इत्यस्मिन्नर्थे ढञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**दृति:**) दृतौ भवं दार्तेयम्। (**कुक्षि:**) कुक्षौ भवं कौक्षेयम्। (**कलशि:**) कलशौ भवं कालशेयम्। (**वस्ति:**) वस्तौ भवं वास्तेयम्। (**अस्ति:**) अस्तौ भवम् आस्तेयम्। (**अहि:**) अहौ भवम् आहेयम्। आहेयमजरं विषम्।

आर्यभाषा: *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (दृति०अहे:) दृति, कुक्षि, कलशि, वस्ति, अस्ति, अहि प्रातिपदिकों से (भव:) भव अर्थ में (ढञ्) ढञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(**दृति**) दृति=मशक में होनेवाला-दार्तेय (जल)। (**कुक्षि**) कुक्षि=म्यान में होनेवाला-कौक्षेय (तलवार)। (**कलशि**) कलशि=गगरी में होनेवाला-कालशेय (तक्र आदि)। (**वस्ति**) वस्ति=नाभि के नीचे के भाग (पेडू) में होनेवाला-वास्तेय। (**अस्ति**) अस्ति=सत्ता में होनेवाला-आस्तेय। (**अहि**) अहि=सर्प में होनेवाला-आहेय (विष)।*

*सिद्धि-**दार्तेयम्**। दृति+ङि+ढञ्। दार्त्+एय। दार्तेय+सु। दार्तेयम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'दृति' शब्द से भव अर्थ में इस सूत्र से 'ढञ्' प्रत्यय है। '**तद्धितेष्वचामादे:**' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-**कौक्षेयम्** आदि।*

विशेष: *यहां 'अस्ति' शब्द प्रातिपदिक है किन्तु तिङन्त के समानार्थक है। जैसे-अस्तिक्षीरा गौ:।*

अण्+ढञ्-

(५) ग्रीवाभ्योऽण् च।५७।

प०वि०-ग्रीवाभ्य: ५।३ अण् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-तत्र, भव:, ढञ् इति चानुवर्तते।

अन्वय:-तत्र ग्रीवाभ्यो भवोऽण् ढञ् च।

अर्थ:-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थाद् ग्रीवा-शब्दात् प्रातिपदिकाद् भव इत्यस्मिन्नर्थेऽण् ढञ् च प्रत्ययो भवति।

उदा०-ग्रीवासु भवं ग्रैवम् (अण्)। ग्रैवेयम् (ढञ्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (ग्रीवाभ्यः) ग्रीवा प्रातिपदिक से (भवः) भव अर्थ में (अण्) अण् (च) और ढञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-ग्रीवा=धमनियों में होनेवाला-ग्रैव (अण्)। ग्रैवेय (ढञ्)।

सिद्धि-(१) ***ग्रैवम्।*** *ग्रीवा+सुप्+अण्। ग्रैव्+अ। ग्रैव्+अ। ग्रैव+सु। ग्रैवम्।*

यहां सप्तमी-समर्थ 'ग्रीवा' शब्द से भव अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(२) ***ग्रैवेयम्।*** *ग्रीवा+सुप्+ढञ्। ग्रैव्+एय। ग्रैवेय+सु। ग्रैवेयम्।*

यहां पूर्वोक्त 'ग्रीवा' शब्द से भव अर्थ में इस सूत्र से 'ढञ्' प्रत्यय है। 'ढ्' के स्थान में पूर्ववत् 'एय्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के आकार का लोप होता है।

विशेषः *यहां 'ग्रीवाभ्यः' शब्द में बहुवचन के पाठ से ग्रीवा में विद्यमान धमनियों का ग्रहण किया जाता है।*

ञ्यः-

(६) गम्भीराञ्ञ्यः।५८।

प०वि०-गम्भीरात् ५।१ ञ्यः १।१।

अनु०-तत्र, भव इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र गम्भीराद् भवो ञ्यः।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थाद् गम्भीरात् प्रातिपदिकाद् भव इत्यस्मिन्नर्थे ञ्यः प्रत्ययो भवति।

उदा०-गम्भीरे भवं गाम्भीर्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (गम्भीरात्) गम्भीर प्रातिपदिक से (भवः) भव अर्थ में (ञ्यः) ञ्य प्रत्यय होता है।*

उदा०-गम्भीर में होनेवाला-गाम्भीर्य। गम्भीर=शान्त एवं महाशय पुरुष।

*सिद्धि-****गाम्भीर्यम्।*** *गम्भीर+ङि+ञ्य। गाम्भीर्+य। गाम्भीर्य+सु। गाम्भीर्यम्।*

यहां सप्तमी-समर्थ 'गम्भीर' शब्द से भव अर्थ में इस सूत्र से 'ञ्य' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

ञ्यः-

(७) अव्ययीभावाच्च।५९।

प०वि०-अव्ययीभावात् ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-तत्र, भवः, ञ्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्राव्ययीभावाच्च भवो ञ्यः।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थाद् अव्ययीभावसंज्ञकात् प्रातिपदिकाच्च भव इत्यस्मिन्नर्थे ञ्यः प्रत्ययो भवति।

उदा०-परिमुखं भवं पारिमुख्यम्। परिहनु भवं पारिहनव्यम्।

वा०-'ञ्यप्रकरणे परिमुखादिभ्य उपसंख्यानम्' (४।३।५०) इति वार्तिकेनाव्ययीभावसंज्ञकेभ्यः परिमुखादिभ्य एव ञ्यः प्रत्ययो भवति न सर्वेभ्योऽव्ययसंज्ञकेभ्यः।

परिमुख। परिहनु। पर्योष्ठ। पर्युलू। औपमूल। खल। परिसीर। अनुसीर। उपसीर। उपस्थल। उपकलाप। अनुपथ। अनुखड्ग। अनुतिल। अनुशीत। अनुमाप। अनुयव। अनुयूप। अनुवंश। अनुस्वङ्ग। इति परिमुखादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (अव्ययीभावात्) अत्ययीभाव-संज्ञक प्रातिपदिक से (च) भी (भवः) भव अर्थ में (ञ्यः) ञ्य प्रत्यय होता है।*

उदा०-परिमुख=मुख वर्जित प्रदेश में होनेवाला-पारिमुख्य। परिहनु=हनु=ठोडी वर्जित प्रदेश में होनेवाला-पारिहनव्य।

*वा०-**'ञ्यप्रकरणे परिमुखादिभ्य उपसंख्यानम्'** (४।३।५०) इस वार्तिक से अव्ययीभावसंज्ञक 'परिमुख' आदि शब्दों से ही 'ञ्य' प्रत्यय होता है, सब से नहीं। परिमुखादिगण संस्कृत-भाग में देख लेवें।*

सिद्धि-पारिमुख्यम्। *परिमुख+ङि+ञ्य। पारिमुख्+य। पारिमुख्य+सु। पारिमुखम्।*

*यहां प्रथम **'अपापरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या'** (२।१।१२) से अव्ययीभाव समास होता है। मुखात् परि इति परिमुखम्। मुख को छोड़कर। तत्पश्चात् सप्तमी-समर्थ, अव्ययीभावसंज्ञक 'परिमुख' शब्द से भव अर्थ में इस सूत्र से 'ञ्य' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**पारिहनव्यम्।***

ठञ्-

(८) अन्तःपूर्वपदाट्ठञ्।६०।

प०वि०-अन्तः-पूर्वपदात् ५।१ ठञ् १।१।

स०-अन्तः पूर्वपदं यस्य तद् अन्तःपूर्वपदम्, तस्मात्-अन्तःपूर्वपदात् (बहुव्रीहिः)। अत्रान्तःशब्दः सप्तमीविभक्त्यर्थे वर्तते।

अनु०-तत्र, भव, अव्ययीभावाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्राव्ययीभावाद् अन्त:पूर्वपदाद् भवष्ठञ्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमी-विभक्तिसमर्थाद् अव्ययीभावसंज्ञकाद् अन्त:पूर्वपदात् प्रातिपदिकाद् भव इत्यस्मिन्नर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-अन्तर्वेश्मं भवम् आन्तर्वैश्मिकम्। अन्तर्गेहे भवम् आन्तर्गैहिकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (अव्ययीभावात्) अव्ययीभाव-संज्ञक (अन्त:पूर्वपदात्) अन्त:पूर्वपदवाले प्रातिपदिक से (भवः) भव अर्थ में (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-अन्तर्वेश्म=घर में होनेवाला-आन्तर्वैश्मिक। अन्तर्गेह=घर में होनेवाला-आन्तर्गैहिक।

सिद्धि-आन्तर्वैश्मिकम्। *अन्तर्+वेश्मन्। अन्तर्वेश्मन्+टच्। अन्तर्वेश्म्+अ। अन्तर्वेश्म+ङि+ठञ्। आन्तर्वेश्म्+इक। आन्तर्वैश्मिक+सु। आन्तर्वैश्मिकम्।*

*यहां प्रथम **'अव्ययं विभक्ति०'** (२।१।६) से सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में अन्तर् और वेश्मन् शब्द का अव्ययीभाव समास, **'अनश्च'** (४।५।१०८) से समासान्त 'टच्' प्रत्यय और **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से टि-भाग (अन्) का लोप होता है। तत्पश्चात् अव्ययीभावसंज्ञक, अन्त:पूर्वपदवान्, 'अन्तर्वेष्म' शब्द से भव अर्थ में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। 'ठ्' के स्थान में पूर्ववत् 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**आन्तर्गैहिकम्।***

ठञ्-

(६) ग्रामात् पर्यनुपूर्वात्।६१।

प०वि०-ग्रामात् ५।१ परि-अनुपूर्वात् ५।१।

स०-परिश्च अनुश्च एतयोः समाहारः पर्यनु। पर्यनु पूर्वं यस्य तत् पर्यनुपूर्वम्, तस्मात्-पर्यनुपूर्वात् (समाहारद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-तत्र, भवः, अव्ययीभाव, ठञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र पर्यनुपूर्वाद् ग्रामाद् भवष्ठञ्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थाद् अव्ययीभावसंज्ञकात् परि-अनुपूर्वाद् ग्रामात् प्रातिपदिकाद् भव इतयस्मिन्नर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(परि:)** परिग्रामं भव: पारिग्रामिक:। **(अनु:)** अनुग्रामं भव आनुग्रामिक:।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (अव्ययीभावात्) अव्ययीभाव-संज्ञक (पर्यनुपूर्वात्) परि और अनु पूर्ववान् (ग्रामात्) ग्राम प्रातिपदिक से (भव:) भव अर्थ में (ठञ्) अञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(परि) परिग्राम=ग्राम वर्जित प्रदेश में होनेवाला-पारिग्रामिक। (अनु) अनुग्राम=ग्राम के समीपवर्ती प्रदेश में होनेवाला-आनुग्रामिक।

*सिद्धि-(१) **पारिग्रामिक:।** परि+ग्राम+ङसि। परिग्राम+ङि+ठञ्। परिग्राम्+इक। पारिग्रामिक+सु। पारिग्रामिक:।*

*यहां प्रथम परि और ग्राम शब्दों का '**अपपरिबहिरञ्चव: पञ्चम्या**' (२।१।१२) से अव्ययीभाव समास होता है। तत्पश्चात् सप्तमी-समर्थ, अव्ययीभावसंज्ञक 'पारिग्राम' शब्द से भव अर्थ में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय होता है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में इक् आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।*

*(२) **आनुग्रामिक:।** यहां प्रथम अनु और ग्राम शब्दों में '**अनुर्यत्समया**' (२।१।१५) से अव्ययीभाव समास होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

छ:-

(१०) जिह्वामूलाङ्गुलेश्छ:।६२।

प०वि०-जिह्वामूल-अङ्गुले: ५।१ छ: १।१।

स०-जिह्वामूलं च अङ्गुलिश्च एतयो: समाहारो जिह्वामूलाङ्गुलि:, तस्मात्-जिह्वामूलाङ्गुले: (समाहारद्वन्द्व:)।

अनु०-तत्र, भव इति चानुवर्तते।

अर्थ:-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थाभ्यां जिह्वामूलाङ्गुलिभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां भव इत्यस्मिन्नर्थे छ: प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(जिह्वामूलम्)** जिह्वामूले भवं जिह्वामूलीयम्। **(अङ्गुलि:)** अङ्गुलौ भवं अङ्गुलीयम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (जिह्वामूलाङ्गुले:) जिह्वामूल, अङ्गुलि प्रातिपदिकों से (भव:) भव अर्थ में (छ:) छ प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(जिह्वामूल)** जिह्वामूल में होनेवाला-**जिह्वामूलीय** अक्षर। **(अङ्गुलि)** अङ्गुलि में होनेवाला-**अङ्गुलीय** आभूषण।*

सिद्धि-जिह्वामूलीयम्। जिह्वामूल+ङि+छ। जिह्वामूल्+ईय। जिह्वामूलीय+सु। जिह्वामूलीयम्।

यहां सप्तमी-समर्थ 'जिह्वामूल' शब्द से भव अर्थ में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है। 'कुप्वोः ᳵक ᳵपौ च' (७।३।३७) से क, ख वर्ण परे होने पर विसर्जनीय के स्थान में ᳵ जिह्वामूलीय आदेश होता है। जैसे-देव ᳵ करोति। देव ᳵ खादति।

छः-

(११) वर्गान्ताच्च।६३।

प०वि०-वर्ग-अन्तात् ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-वर्गोऽन्ते यस्य तद् वर्गान्तम्, तस्मात्-वर्गान्तात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तत्र, भवः, छ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र वर्गान्ताच्च भवश्छः।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थाद् वर्गान्तात् प्रातिपदिकाच्च भव इत्यस्मिन्नर्थे छः प्रत्ययो भवति।

उदा०-कवर्गे भवं कवर्गीयम्। चवर्गे भवं चवर्गीयम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (वर्गान्तात्) वर्ग अन्तवाले प्रातिपदिक से (च) भी (भवः) भव अर्थ में (छः) छ प्रत्यय होता है।*

उदा०-कवर्ग में होनेवाला-कवर्गीय। चवर्ग में होनेवाला चवर्गीय।

सिद्धि-कवर्गीयम्। कवर्ग+ङि+छ। कवर्ग्+ईय। कवर्गीय+सु। कवर्गीयम्।

यहां सप्तमी-समर्थ, वर्गान्त 'कवर्ग' शब्द से भव अर्थ में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है। ऐसे ही-चवर्गीयम्।

विशेषः *संस्कृत-भाषा की वर्णमाला में कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग ये पांच वर्ग है। इनके उपरिलिखित विधि से पांच रूप बनते हैं।*

यत्+खः+छः-

(१२) अशब्दे यत्खावन्यतरस्याम्।६४।

प०वि०-अशब्दे ७।१ यत्-खौ १।२ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-न शब्द इति अशब्दः, तस्मिन्-अशब्दे (नञ्तत्पुरुषः)। यच्च खश्च तौ यत्खौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्र, भवः, वर्गान्तादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र वर्गान्ताद् अशब्दे भवोऽन्यतरस्यां यत्खौ।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थाद् वर्गान्तात् प्रातिपदिका-च्छब्दवर्जिते भव इत्यस्मिन्नर्थे विकल्पेन यत्खौ प्रत्ययौ भवतः, पक्षे च छः प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(यत्)** वासुदेववर्गे भवो वासुदेववर्ग्यः। **(खः)** वासुदेव-वर्गीणः। **(छः)** वासुदेववर्गीयः। **(यत्)** युधिष्ठिरवर्गे भवो युधिष्ठिरवर्ग्यः। **(खः)** युधिष्ठिरवर्गीणः। **(छः)** युधिष्ठिरवर्गीयः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (वर्गान्तात्) वर्ग-अन्तवाले प्रातिपदिक से (अशब्दे) शब्द-वर्जित (भवः) भव अर्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (यत्खौ) यत् और ख प्रत्यय होते हैं और पक्ष में छ प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(यत्)** वासुदेव=कृष्ण के वर्ग (पक्ष) में होनेवाला-वासुदेववर्ग्य। **(ख)** वासुदेववर्गीण। **(छ)** वासुदेववर्गीय। **(यत्)** युधिष्ठिर के वर्ग में होनेवाला-युधिष्ठिरवर्ग्य। **(ख)** युधिष्ठिरवर्गीण। **(छ)** युधिष्ठिरवर्गीय।*

सिद्धि-(१) वासुदेववर्ग्यः। *यहां सप्तमी-समर्थ, वर्गान्त 'वासुदेववर्ग' शब्द से भव अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है।*

(२) वासुदेववर्गीणः। *यहां पूर्वोक्त 'वासुदेव' शब्द से भव अर्थ में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश और 'अट्कुप्वाङ्०' (८।४।२) से णत्व होता है।*

(३) वासुदेववर्गीयः-*यहां पूर्वोक्त 'वासुदेव' शब्द से भव अर्थ में विकल्प पक्ष में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है। ऐसे ही 'युधिष्ठिरवर्ग्यः' आदि।*

*यहां शब्द-अर्थ का प्रतिषेध किया गया है अतः शब्द-अर्थ में पूर्व सूत्र से 'छ' प्रत्यय ही होता है-**कवर्गीयो वर्णः** इत्यादि।*

कन्-

(१३) कर्णललाटात् कनलङ्कारे।६५।

प०वि०-कर्ण-ललाटात् ५।१ कन् १।१ अलङ्कारे ७।१।

स०-कर्णश्च ललाटं च एतयोः समाहारः कर्णललाटम्, तस्मात्-कर्णललाटात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्र, भव इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र कर्णललाटाद् भवः कन् अलङ्कारे।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थाभ्यां कर्णललाटाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां भव इत्यस्मिन्नर्थे कन् प्रत्ययो भवति, अलङ्कारेऽभिधेये।

उदा०-**(कर्णः)** कर्णे भवा कर्णिका। **(ललाटम्)** ललाटे भवा ललाटिका।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (कर्णललाटात्) कर्ण, ललाट प्रातिपदिकों से (भवः) भव अर्थ में (कन्) कन् प्रत्यय होता है (अलङ्कारे) यदि वहां अलंकार=आभूषण अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-**(कर्ण)** कर्ण में होनेवाला अलंकार-कर्णिका (कानों की बाळी)। **(ललाट)** ललाट=माथे पर होनेवाला अलंकार-ललाटिका (माथे का आभूषण-बोरला आदि)।*

*सिद्धि-**कर्णिका।** कर्ण+ङि+कन्। कर्ण+क। कर्णक+टाप्। कर्णिक+आ। कर्णिका+सु। कर्णिका।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'कर्ण' शब्द से भव अर्थ में तथा अलंकार अभिधेय में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय और **'प्रत्ययस्थात्०'** (७।३।४४) से 'क' से पूर्ववर्ती 'अ' को इकार आदेश होता है। ऐसे ही-**ललाटिका।***

भव-व्याख्यानार्थप्रत्ययप्रकरणम्

यथाविहितं प्रत्ययः-

(१) तस्य व्याख्यान इति च व्याख्यातव्यनाम्नः।६६।

प०वि०-तस्य ६।१ व्याख्याने ७।१ इति अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्, व्याख्यातव्यनाम्नः ५।१।

स०-व्याख्यातव्यस्य नाम इति व्याख्यातव्यनाम, तस्मात्-व्याख्यातव्यनाम्नः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-तत्र, भव इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य, तत्र व्याख्यातव्यनाम्नो व्याख्याने भव इति च यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात्, तत्र इति च सप्तमीसमर्थाद् व्याख्यातव्य-नामवाचिनः प्रातिपदिकाद् यथासंख्यं व्याख्याने भव इति चार्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**षष्ठी**) सुपां व्याख्यानो ग्रन्थः सौपः। तिङां व्याख्यानो ग्रन्थस्तैङः। कृतां व्याख्यानो ग्रन्थः कार्तः। (**सप्तमी**) सुप्सु भवं सौपं कार्यम्। तिङ्क्षु भवं तैङं कार्यम्। कृत्सु भवं कार्तं कार्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ और (तत्र) सप्तमी-समर्थ (व्याख्यातव्यनाम्नः) व्याख्यतव्य-नामवाची प्रातिपदिक से (व्याख्याने) व्याख्यान (च) और (भवः) भव (इति) इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

उदा०-(षष्ठी) सुपों का व्याख्यान ग्रन्थ-सौप। तिङों का व्याख्यान ग्रन्थ-तैङ। कृतों का व्याख्यान ग्रन्थ-कार्त। (सप्तमी) सुपों में होनेवाला-सौप कार्य। तिङों में होनेवाला-तैङ कार्य। कृत्-प्रत्ययों में होनेवाला कार्त कार्य।

सिद्धि-सौपः। *यहां षष्ठी तथा सप्तमी-समर्थ व्याख्यातव्य नामवाची 'सुप्' शब्द से व्याख्यान और भव अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है अतः* ***'प्राग्दीव्यतोऽण्'*** *(४।३।८३) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय होता है।* ***'तद्धितेष्वचामादेः'*** *(७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-तैङः, कार्तः।*

ठञ्-

(२) बह्वचोऽन्तोदात्ताट्ठञ्।६७।

प०वि०-बहु-अचः ५।१ अन्तोदात्तात् ५।१ ठञ् १।१।

स०-बहवोऽचो यस्मिँस्तद् बह्वच्, तस्मात्-बह्वचः (बहुव्रीहिः)। अन्ते उदात्तो यस्य तद् अन्तोदात्तम्, तस्मात्-अन्तोदात्तात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तत्र, भवः, तस्य, व्याख्याने, इति च व्याख्यतव्यनाम्न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य तत्र चान्तोदात्ताद् बह्वचो व्याख्यातव्यनाम्नो व्याख्याने भव इति च ठञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात्, तत्र इति च सप्तमी-समर्थाद् अन्तोदात्ताद् बह्वचो व्याख्यतव्यनामवाचिनः प्रातिपदिकाद् यथासंख्यं व्याख्याने भव इति चार्थे ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**षष्ठी**) षत्वणत्वयोर्व्याख्यानो ग्रन्थः-षात्वणत्विकः। (**सप्तमी**) नतानतयोर्भवं नातानतिकं कार्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ और (तत्र) सप्तमी-समर्थ (अन्तोदात्तात्) अन्तोदात्त (बह्वचः) बहुत अच्वाले (व्याख्यातव्यनाम्नः) व्याख्यातव्य-नामवाची प्रातिपदिक से यथासंख्य (व्याख्याने) व्याख्यान (च) और (भवः) भव (इति) इस अर्थ में (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(**षष्ठी**) षत्वणत्व का व्याख्यान ग्रन्थ-षात्वणत्विक। (**सप्तमी**) नत-अनत में होनेवाला-नातानतिक कार्य। नत=अनुदात्त स्वर। अनत=उदात्त स्वर।*

सिद्धि-षात्वणत्विकः। *षत्वणत्व+ओस्+ठञ्। षात्वणत्व्+इक। षात्वणत्विक+सु। षात्वणत्विकः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ, अन्तोदात्त, बहुत अच्वाले, व्याख्यातव्यवाची 'षत्वणत्व' शब्द से व्याख्यान अर्थ में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। यह शब्द 'समासस्य' (६।१।२२०) से अन्तोदात्त स्वरवान् है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**नातानतिकम्।***

ठञ्-

(३) क्रतुयज्ञेभ्यश्च।६८।

प०वि०-क्रतु-यज्ञेभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-क्रतवश्च यज्ञाश्च ते क्रतुयज्ञाः, तेभ्यः-क्रतुयज्ञेभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्र, भवः, तस्य, व्याख्याने, इति, च, व्याख्यातव्यनाम्नः, ठञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य, तत्र च व्याख्यातव्यनामभ्यः क्रतुयज्ञेभ्यश्च व्याख्याने भव इति च ठञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः, तत्र इति च सप्तमीसमर्थेभ्यो व्याख्यातव्यनामवाचिभ्यः क्रतुविशेषवाचिभ्यो यज्ञविशेषवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यश्च यथासंख्यं व्याख्याने भव इति चार्थे ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(क्रतुः) षष्ठी-अग्निष्टोमस्य व्याख्यानो ग्रन्थ आग्निष्टोमिकः। वाजपेयिकः। राजसूयिकः। **सप्तमी**-अग्निष्टोमे भवम् आग्निष्टोमिकं कर्म।

वाजपेयिकं कर्म। राजसूयिकं कर्म। **(यज्ञ:) षष्ठी**-पाकयज्ञस्य व्याख्यानो ग्रन्थ: पाकयज्ञिक:। नवयज्ञस्य व्याख्यानो ग्रन्थो नावयज्ञिक:। **सप्तमी**-पाकयज्ञे भवं पाकयज्ञिकं कर्म। नवयज्ञे भवं नावयज्ञिकं कर्म।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तस्य) षष्ठी-समर्थ और (तत्र) सप्तमी-समर्थ (व्याख्यातव्यनाम्न:) व्याख्यातव्य-नामवाची (क्रतुयज्ञेभ्य:) क्रतुविशेष और यज्ञविशेषवाची प्रातिपदिकों से (च) भी यथासंख्य (व्याख्याने) व्याख्यान (च) और (भव:) भव (इति) इस अर्थ में (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०- ***(क्रतु) षष्ठी****-अग्निष्टोम का व्याख्यान ग्रन्थ-आग्निष्टोमिक। वाजपेय का व्याख्यान ग्रन्थ-वाजपेयिक। राजसूय का व्याख्यान ग्रन्थ-राजसूयिक।* ***सप्तमी****-अग्निष्टोम में होनेवाला-आग्निष्टोमिक कर्म। वाजपेय में होनेवाला-वाजपेयिक कर्म। राजसूय में होनेवाला-राजसूयिक कर्म।* ***(यज्ञ) षष्ठी****-पाकयज्ञ का व्याख्यान ग्रन्थ-पाकयज्ञिक। नवयज्ञ का व्याख्यान ग्रन्थ-नावयज्ञिक।* ***सप्तमी****-पाकयज्ञ में होनेवाला-पाकयज्ञिक कर्म। नवयज्ञ में होनेवाला-नावयज्ञिक कर्म।*

सिद्धि-आग्निष्टोमिक:। *अग्निष्टोम+ङस्+ठञ्। आग्निष्टोम्+इक। आग्निष्टोमिक+सु। आग्निष्टोमिक:।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, व्याख्यातव्य-नाम, क्रतुविशेषवाची 'अग्निष्टोम' शब्द से व्याख्यान अर्थ में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में इक् आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही '****वाजपेयिक:****' आदि।*

विशेषः (१) क्रतु *और* ***यज्ञ*** *दोनों ही शब्द याग के वाचक हैं किन्तु जिस याग में सोमपान किया जाता है उसे 'क्रतु' कहते हैं और सोमपान रहित याग को 'यज्ञ' कहा जाता है। अत: सूत्रपाठ में 'क्रतु' और 'यज्ञ' दोनों शब्दों का पाठ किया गया है।*

(२) अग्निष्टोम*-जिस क्रतु=सोमयाग में अग्निदेवता की स्तुति (स्तोम) किया जाता है उसे 'अग्निष्टोम' याग कहते हैं।*

(३) वाजपेय*-जिस क्रतु में वाज=यवागूविशेष का पान किया जाता है उसे 'वाजपेय' याग कहते हैं।*

(४) राजसूय*-जिस क्रतु में राजा का चयन किया जाता है उसे 'राजसूय' याग कहते हैं। सूय=उत्पत्ति।*

(५) पाकयज्ञ*-यहां पाक शब्द अल्प का पर्यायवाची है। लघु यज्ञ को '****पाकयज्ञ****' कहते हैं।*

(६) नवयज्ञ*-नवीन व्रीहि (धान्य) से जो यज्ञ किया जाता है उसे '****नवयज्ञ****' कहते हैं।*

ठञ्–

(४) अध्यायेष्वेवर्षेः।६६।

प०वि०–अध्यायेषु ७।३ एव अव्ययपदम्, ऋषेः ५।१।

अनु०–तत्र, भवः, तस्य, व्याख्याने, इति च, व्याख्यतव्यनाम्नः, ठञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य, तत्र च व्याख्यातव्यनाम्न ऋषेर्व्याख्याने भव इति ठञ् अध्यायेषु।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थात्, तत्र इति च सप्तमीसमर्थाद् व्याख्यातव्यनामवाचिन ऋषिविशेषवाचिनः प्रातिपदिकाद् यथासंख्यं व्याख्याने भव इति चार्थे ठञ् प्रत्ययो भवति, अध्यायेष्वभिधेयेषु। अत्र साहचर्याद् ऋषिशब्देन तत्प्रोक्तो ग्रन्थ उच्यते।

उदा०–**(षष्ठी)** वसिष्ठेन प्रोक्तो ग्रन्थो वसिष्ठः। वसिष्ठस्य व्याख्यानोऽध्यायः–वासिष्ठिकः। **(सप्तमी)** वसिष्ठे भवोऽध्यायः–वासिष्ठिकः।

आर्यभाषाः *अर्थ–(तस्य) षष्ठी-समर्थ (तस्य) और (तत्र) सप्तमी-समर्थ (व्याख्यातव्यनाम्नः) व्याख्यतव्य-नामवाची (ऋषेः) ऋषिविशेष वाचक प्रातिपदिक से यथासंख्य (व्याख्याने) व्याख्यान (च) और (भवः) भव (इति) इस अर्थ में (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है (अध्यायेषु) यदि वहां अध्याय अर्थ अभिधेय हो। यहां साहचर्य से ऋषि शब्द से उसके द्वारा प्रोक्त ग्रन्थ उसी ऋषि के नाम से कहा जाता है।*

*उदा०–**(षष्ठी)** वसिष्ठ ऋषि के द्वारा प्रोक्त ग्रन्थ-वसिष्ठ। वसिष्ठ ग्रन्थ का व्याख्यान आत्मक अध्याय-वासिष्ठिक। **(सप्तमी)** वसिष्ठ ग्रन्थ में होनेवाला अध्याय-वासिष्ठिक। ऐसे ही–**वैश्वामित्रिक, दायानन्दिक** आदि पदों की प्रवृत्ति समझें।*

*सिद्धि–**वासिष्ठिकः।** वसिष्ठ+ङस्/ङि+ठञ्। वासिष्ठ्+इक। वासिष्ठिक+सु। वासिष्ठिकः।*

*यहां षष्ठी/सप्तमी-समर्थ, व्याख्यातव्य-नाम, ऋषि ग्रन्थवाची 'वसिष्ठ' शब्द से व्याख्यान/भव अर्थ में इस सूत्र 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही–**वैश्वामित्रिकः, दायानन्दिकः।***

ष्ठन्–

(५) पौरोडाशपुरोडाशात् ष्ठन्।७०।

प०वि०–पौरोडाश-पुरोडाशात् ५।१ ष्ठन् १।१।

स०–पौरोडाशश्च पुरोडाशश्च एतयोः समाहारः पौरोडाशपुरोडाशम्, तस्मात्-पौरोडाशपुरोडाशात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–तत्र, भवः, तस्य, व्याख्याने, इति, च, व्याख्यातव्यनाम्न इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य तत्र च व्याख्यतव्यनाम्नः पौरोडाशपुरोडशाद् यथासंख्यं व्याख्याने भव इति च ष्ठन्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाभ्यां तत्र इति च सप्तमीसमर्थाभ्यां व्याख्यातव्यनामभ्यां पौरोडाशपुरोडाशाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां यथासंख्यं व्याख्याने भव इति चार्थे ष्ठन् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(पौरोडाशः) षष्ठी**–पिष्टपिण्डाः पुरोडाशाः। पुरोडाशानां संस्कारको मन्त्रः पौरोडाशः, पौरोडशस्य व्याख्यानो ग्रन्थः पौरोडाशिकः। **(सप्तमी)** पौराडशे भवः पौरोडाशिक उपदेशः। **(पुरोडाशः) षष्ठी**–पुरोडाश-सहचरितो ग्रन्थः पुरोडाशः, पुरोडाशस्य व्याख्यानो ग्रन्थः पुरोडाशिकः। **(सप्तमी)** पुरोडाशे भवः पुरोडाशिक उपदेशः। अत्र षकारो ङीषर्थः- पुरोडाशिकी शिक्षा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ और (तत्र) सप्तमी-समर्थ (व्याख्यातव्यनाम्नः) व्याख्यातव्य-नामवाची (पौरोडाश-पुरोडाशात्) पौरोडाश, पुराडाश प्रातिपदिकों से यथासंख्य (व्याख्याने) व्याख्यान (च) और (भवः) भव (इति) इस अर्थ में (ष्ठन्) ष्ठन् प्रत्यय होता है।*

*उदा०–**(पौरोडाश) षष्ठी**–पिष्ट (चून) के पिण्डविशेष पुरोडाश कहाते हैं। पुरोडाशों के संस्कारक मन्त्र को पौरोडाश कहते हैं। पौरोडाश (मन्त्र) का व्याख्यान ग्रन्थ-पौराडिशक। **सप्तमी**–पौरोडाश (मन्त्र) में होनेवाला-पौरोडाशिक उपदेश। **(पुरोडाश) षष्ठी**–पुरोडाश का सहचरित ग्रन्थ पुरोडाश कहाता है। पुरोडाश ग्रन्थ का व्याख्यान ग्रन्थ पुरोडाशिक। **सप्तमी**–पुरोडाश (ग्रन्थ) में होनेवाला-पौरोडाशिक उपदेश। यहां 'ष्ठन्'*

प्रत्यय में षकार 'षिद्गौरादिभ्यश्च' (४।१।४१) से स्त्रीत्व-विवक्षा में ङीष् प्रत्यय के लिये है-पुरोडाशिकी शिक्षा।

सिद्धि-पौरोडाशिकः। *पौरोडाश+ङस्/ङि+ष्ठन्। पौरोडाश्+इक। पौरोडाशिक+सु। पौरोडाशिकः।*

*यहां षष्ठी/सप्तमी-समर्थ, व्याख्यतव्य-नामवाची 'पौराडाश' शब्द से व्याख्यान/भव अर्थ में इस सूत्र से 'ष्ठन्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**पुरोडाशिकः।***

विशेषः *पुरोडाश-चावल के आटे की बनी हुई टिकिया जो कपाल में पकाई जाती थी और मन्त्र पढ़कर देवताओं के उद्देश्य से इसकी आहुति दी जाती थी (श०कौ०)।*

यत्+अण्-

(६) छन्दसो यदणौ।७१।

प०वि०-छन्दसः ५।१ यत्-अणौ १।२।

स०-यच्च अण् च यदणौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्र, भव, तस्य, व्याख्याने, इति, च, व्याख्यातव्यनाम्न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य, तत्र व्याख्यातव्यनाम्नश्छन्दसो व्याख्याने भव इति च यदणौ।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात्, तत्र इति च सप्तमीसमर्थाद् व्याख्यातव्यनामवाचिनश्छन्दसः प्रातिपदिकाद् यथासंख्यं व्याख्याने भव इति चार्थे यदणौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(यत्) षष्ठी-छन्दसो व्याख्यानो ग्रन्थश्छन्दस्यः। **(अण्)** छान्दसः। **(यत्) सप्तमी-**छन्दसि भवश्छन्दस्य उपदेशः। **(अण्)** छान्दस उपदेशः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ और (तत्र) सप्तमी-समर्थ (छन्दसः) छन्दस् प्रातिपदिक से यथासंख्य (व्याख्याने) व्याख्यान (च) और (भवः) भव (इति) इस अर्थ में (यदणौ) यत् और अण् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-(यत्) षष्ठी-छन्द=वेद का व्याख्यान ग्रन्थ-**छन्दस्य**। (अण्) **छान्दस**। (यत्) सप्तमी-छन्द=वेद में होनेवाला-**छन्दस्य उपदेश**। (अण्) **छान्दस उपदेश**।*

सिद्धि-(१) छन्दस्यः। *छन्दस्+ङस्/ङि+यत्। छन्दस्य+सु। छन्दस्यः।*

यहां षष्ठी/सप्तमी-समर्थ, व्याख्यातव्य-नामवाची 'छन्दस्' शब्द से व्याख्यान/भव अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है।

(२) छान्दसः। यहां पूर्वोक्त 'छन्दस्' शब्द से व्याख्यान और भव अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है।

ठक्–

(७) द्व्यजृद्ब्राह्मणर्क्प्रथमाध्वरपुरश्चरण-नामाख्यातात्ठक्।७२।

प०वि०-द्वि+अच्-ऋत्-ब्राह्मण-ऋक्-प्रथम-अध्वर-पुरश्चरण-नाम-आख्यातात् ५।१ ठक् १।१।

स०-द्वावचौ यस्मिँस्तद् द्व्यच्। द्व्यच् च ऋच्च ब्राह्मणश्च ऋक् च प्रथमश्च अध्वरश्च पुरश्चरणं च नाम च आख्यातं च एतेषां समाहारो द्व्यच्०आख्यातम्, तस्मात्-द्व्यच्०आख्यातात् (बहुव्रीहिगर्भितसमाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्र, भवः, तस्य, व्याख्याने, इति, च व्याख्यातव्यनाम्न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य तत्र इति च व्याख्यतव्यनाम्नो द्व्यच्०आख्याताद् व्याख्याने भव इति च ठक्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः, तत्र इति च सप्तमीसमर्थेभ्यो व्याख्यातव्यनामभ्यो द्व्यजादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो व्याख्याने भव इति चार्थे ठक् प्रत्ययो भवति। **उदाहरणम्**-

१.	द्व्यच्	**षष्ठी**-इष्टीनां व्याख्यानो ग्रन्थ ऐष्टिकः।	इष्टियों का व्याख्यान ग्रन्थ ऐष्टिक।
		पशूनां व्याख्यानो ग्रन्थः पाशुकः।	पशुओं का व्याख्यान ग्रन्थ पाशुक।
		सप्तमी-इष्टिषु भवम् ऐष्टिकम्।	इष्टियों में होनेवाला ऐष्टिक।
		पशुषु भवं पाशुकम्।	पशुओं में होनेवाला पाशुक।
२.	ऋत् (ऋकारान्तः)	**षष्ठी**-चतुर्होतॄणां व्याख्यानो ग्रन्थश्चातुर्होतृकः।	चतुर्होताओं का व्याख्यान ग्रन्थ चातुर्होतृक।

		सप्तमी–चतुर्होतृषु भवं चातुर्होतृकम्।	चतुर्होताओं में होनेवाला चातुर्होतृक।
		षष्ठी–पञ्चहोतृणां व्याख्यानो ग्रन्थः पाञ्चहोतृकः।	पांच होताओं का व्याख्यान ग्रन्थ-पांचहोतृक (कर्म)।
		सप्तमी–पञ्चहोतृषु भवं पाञ्चहोतृकम्।	पांच होताओं में होनेवाला पांचहोतृक (कर्म)।
३.	ब्राह्मणः	**षष्ठी**–ब्राह्मणस्य व्याख्यानो ग्रन्थो ब्राह्मणिकः।	ब्राह्मण का व्याख्यान ग्रन्थ-ब्राह्मणिक।
		सप्तमी–ब्राह्मणे भवो ब्राह्मणिकः।	ब्राह्मण में होनेवाला ब्राह्मणिक उपदेश।
४.	ऋक्	**षष्ठी**–ऋचां व्याख्यानो ग्रन्थ आर्चिकः।	ऋचाओं का व्याख्यान ग्रन्थ-आर्चिक।
		सप्तमी–ऋक्षु भव आर्चिकः।	ऋचाओं में होनेवाला आर्चिक।
५.	प्रथमः	**षष्ठी**–प्रथमस्य व्याख्यानो ग्रन्थः प्राथमिकः।	प्रथम का व्याख्यान ग्रन्थ-प्राथमिक।
		सप्तमी–प्रथमे भवः प्राथमिकः।	प्रथम में होनेवाला प्राथमिक।
६.	अध्वरः	**षष्ठी**–अध्वरस्य व्याख्यानो ग्रन्थ आध्वरिकः।	अध्वर का व्याख्यान ग्रन्थ-आध्वरिक।
		सप्तमी–अध्वरे भवम् आध्वरिकम्।	अध्वर में होनेवाला-आध्वरिक (कर्म)।
७.	पुरश्चरणम्	**षष्ठी**–पुरश्चरणस्य व्याख्यानो ग्रन्थः पौरश्चरणिकः।	पुरश्चरण का व्याख्यान ग्रन्थ-पौरश्चरणिक।
		सप्तमी–पुरश्चरणे भवं पौरश्चरणिकम्।	पुरश्चरण में होनेवाला-पौरश्चरणिक (कर्म)।
८.	नाम	**षष्ठी**–नाम्नां व्याख्यानो ग्रन्थो नामिकः।	नामों का व्याख्यान ग्रन्थ-नामिक।
		सप्तमी–नामसु भवं नामिकम्।	**नामों में** होनेवाला-नामिक (कार्य)।

९.	आख्यातम्	**षष्ठी**-आख्यातस्य व्याख्यानो ग्रन्थ आख्यातिकः।	आख्यात का व्याख्यान ग्रन्थ-आख्यातिक।
		सप्तमी-आख्याते भवम् आख्यातिकम्।	आख्यात में होनेवाला-आख्यातिक (कार्य)।
१०.	नामाख्यातम्	**षष्ठी**-नामाख्यातयोर्व्याख्यानो ग्रन्थो नामाख्यातिकः।	नाम-आख्यातों का व्याख्यान ग्रन्थ-नामाख्यातिक।
		सप्तमी-नामाख्यातेषु भवं नामाख्यातिकम्।	नाम-आख्यातों में होनेवाला-नामाख्यातिक (कार्य)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ और (तत्र) सप्तमी-समर्थ (व्याख्यातव्यनाम्नः) व्याख्यातव्य-नामवाची (द्व्यच्०आख्यातात्) द्वि-अच् वाले, ऋकारान्त, ब्राह्मण, ऋक्, प्रथम, अध्वर, पुरश्चरण, नाम, आख्यात (नामाख्यात) प्रातिपदिकों से (व्याख्याने) व्याख्यान (च) और (भवः) भव (इति) इस अर्थ में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में देख लेवें।

सिद्धि-ऐष्टिकः। इष्टि+ङस्/ङि+ठक्। ऐष्ट्+इक। ऐष्टिक+सु। ऐष्टिकः।

यहां षष्ठी/सप्तमी समर्थ, व्याख्यतव्यनामवाची 'इष्टि' शब्द से व्याख्यान/भव अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और अंग को आदिवृद्धि और अंग के इकार का लोप होता है।

विशेषः *(१) इष्टि-पक्षेष्टि आदि यज्ञ 'इष्टि' कहाते हैं।*

(२) ऋक्, यजु, साम, अथर्व इन चार वेदों के यथासंख्य ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ ये चार ब्राह्मण ग्रन्थ हैं।

(३) 'प्रथम' शब्द का अर्थ ईश्वर है। "सब कार्यों से पहले वर्तमान और सबका मुख्य कारण" (ईश्वर) (महर्षिदयानन्दकृत आर्याभिविनय १।४०)।

*(४) आचार्य यास्क ने अध्वर के निर्वचन में लिखा है-**'ध्वरति हिंसाकर्मा तत्प्रतिषेधः'** अध्वर शब्द यज्ञ का वाचक है और यह शब्द यज्ञों में स्वयं ही पशु-हिंसा का प्रतिषेधक है।*

(५) पुरश्चरण-किसी देवता के नाम का जप और उसके उद्देश्य से यज्ञ करना 'पुरश्चरण' कहाता है।

(६) नाम और आख्यात प्रातिपदिकों से विगृहीत तथा समस्त दोनों अवस्थाओं में यह प्रत्यय विधि की जाती है। महर्षि दयानन्द ने नामों के व्याख्यान में 'नामिक' और आख्यातों के व्याख्यान में 'आख्यातिक' नामक ग्रन्थों की रचना की है।

अण्–

(८) अणृगयनादिभ्यः।७३।

प०वि०–अण् १।१ ऋगयनादिभ्यः ५।३।

स०–ऋगयनम् आदिर्येषां ते ऋगयनादयः, तेभ्यः–ऋगयनादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–तत्र, भवः, तस्य, व्याख्याने, इति, च, व्याख्यातव्यनाम्न इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य, तत्र इति च व्याख्यातव्यनामभ्य ऋगयनादिभ्यो व्याख्याने भव इति चाऽण्।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः, तत्र इति च सप्तमीसमर्थेभ्यो व्याख्यातव्यनामवाचिभ्य ऋगयनादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो यथासंख्यं व्याख्याने भव इति चार्थेऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(षष्ठी)** ऋगयनस्य व्याख्यानो ग्रन्थ आर्गयनः। **(सप्तमी)** ऋगयने भवं आर्गयनम्। **(षष्ठी)** पदव्याख्यानस्य व्याख्यानो ग्रन्थः पादव्याख्यानः। **(सप्तमी)** पदव्याख्याने भवं पादव्याख्यानम्, इत्यादिकम्।

ऋगयन। पदव्याख्यान छन्दोमान। छन्दोभाषा। छन्दोविचिति। न्याय। पुनरुक्त। व्याकरण। निगम। वास्तुविद्या। क्षत्रविद्या। उत्पात। उत्पाद। संवत्सर। मुहूर्त्त। निमित्त। उपनिषद्। शिक्षा। छन्दोविजिनी। न्याय। निरुक्त। विद्या। उद्याव। भिक्षा। इति ऋगयनादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(तस्य) षष्ठी-समर्थ और (तत्र) सप्तमी-समर्थ (व्याख्यातव्यनाम्नः) व्याख्यातव्य-नामवाची (ऋगयनादिभ्यः) ऋगयन आदि प्रातिपदिकों से यथासंख्य (व्याख्याने) व्याख्यान (च) और (भवः) भव (इति) इस अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०–**(षष्ठी)** ऋगयन का व्याख्यान ग्रन्थ–आर्गयन। **(सप्तमी)** ऋगयन में होनेवाला–आर्गयन (कार्य)। **(षष्ठी)** पदव्याख्यान का व्याख्यान ग्रन्थ–पादव्याख्यान। **(सप्तमी)** पदव्याख्यान में होनेवाला–पादव्याख्यान (कार्य)।*

***सिद्धि–आर्गयनः।** ऋगयन+ङसि/ङि+अण्। आर्गयन्+अ। आर्गयन+सु। आर्गयनः।*

यहां षष्ठी/सप्तमी-समर्थ व्याख्यातव्य-नामवाची 'ऋगयन' शब्द से व्याख्यान और भव अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-पादव्याख्यानः आदि।

आगतार्थप्रत्ययप्रकरणम्

यथाविहितं प्रत्ययः–

(१) तत आगतः ।७४।

प०वि०–ततः पञ्चम्यर्थेऽव्ययपदम्, आगतः १।१।

अन्वयः–ततः प्रातिपदिकाद् आगतो यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः– तत इति पञ्चमी-समर्थात् प्रातिपदिकाद् आगत इत्यस्मिन्नर्थे यथविहितं प्रत्ययो भवति।

उदा०–स्रुघ्नादागतः स्रौघ्नः। माथुरः। रौहितकः। राष्ट्रियः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(ततः) पञ्चमी-समर्थ प्रातिपदिक से (आगतः) आगत अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

उदा०-स्रुघ्न नगर से आया हुआ-स्रौघ्न। मथुरा नगरी से आया हुआ-माथुर। रोहितक नगर से आया हुआ-रौहितक। राष्ट्र से आया हुआ-राष्ट्रिय।

सिद्धि-स्रौघ्नः। *यहां पञ्चमी-समर्थ 'स्रुघ्न' शब्द से आगत अर्थ में **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से यथाविहित अण् प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही **'माथुरः'** आदि।*

ठक्–

(२) ठगायस्थानेभ्यः ।७५।

प०वि०–ठक् १।१ आय-स्थानेभ्यः ५।३।

स०–आयस्य स्थानानीति आयस्थानानि, तेभ्यः-आयस्थानेभ्यः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–ततः, आगत इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत आयस्थानेभ्य आगतष्ठक्।

अर्थः–तत इति पञ्चमीसमर्थेभ्य आयस्थानवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्य आगत इत्यस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति।

आय इति स्वामिग्राह्यो भाग उच्यते। स यस्मिन्नुत्पद्यते तदाऽऽय-स्थानमिति कथ्यते।

उदा०-शुल्कशालाया आगतः शौल्कशालिकः। आकरादागतम्-आकरिकं द्रव्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ततः) सप्तमी-समर्थ (आयस्थानेभ्यः) आयस्थानवाची प्रातिपदिकों से (आगतः) आगत अर्थ में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

स्वामी के द्वारा ग्रहण करने योग्य भाग को 'आय' कहते हैं। उस आय का जिस स्थान पर उत्पादन होता है उसे 'आयस्थान' कहते हैं।

उदा०-शुल्कशाला (चुंगी आदि) से आया हुआ भाग-शौल्कशालिक। आकर (खान) से आया हुआ-आकरिक द्रव्य (माळ)।

सिद्धि-शौल्कशालिकः। *शुल्कशाला+ङसि+ठक्। शौल्कशाल्+इक। शौल्कशालिक+सु। शौल्कशालिकः।*

*यहां पञ्चमी-समर्थ 'शुल्कशाला' शब्द से आगत अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। '**ठस्येकः**' (७।३।५०) 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, '**तद्धितेष्वचामादेः**' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही-**आकरिकः।***

अण्-

(३)शुण्डिकाभ्योऽण्।७६।

प०वि०-शुण्डिक-आदिभ्यः ५।३ अण् १।१।

स०-शुण्डिक आदिर्येषां ते शुण्डिकादयः, तेभ्यः-शुण्डिकादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-ततः आगत इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ततः शुण्डिकादिभ्य आगतोऽण्।

अर्थः-तत इति पञ्चमीसमर्थेभ्यः शुण्डिकादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्य आगत इत्यस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-शुण्डिकाद् आगतः शौण्डिकः, कृकणाद् आगतः कार्कणः। उदपानाद् आगत औदपानः, इत्यादिकम्।

शुण्डिक। कृकण। स्थण्डिल। उदपान। उपल। तीर्थ। भूमि। तृण। पर्ण। इति शुण्डिकादयः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ततः) पञ्चमी-समर्थ (शुण्डिकादिभ्यः) शुण्डिक आदि प्रातिपदिकों से (आगतः) आगत अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

उदा०-शुण्डिक=कलाल (शराब बनानेवाला) से आया हुआ भाग-शौण्डिक। कृकण (भारद्वाज देश) से आया हुआ भाग-कार्कण। उदपान (कूपसमीपवर्ती होद) से आया हुआ भाग-औदपान, इत्यादि।

सिद्धि-शौण्डिकः। *शुण्डिक+ङसि+अण्। शौण्डिक्+अ। शौण्डिक+सु। शौण्डिकः।*

*यहां पञ्चमी-समर्थ 'शुण्डिक' शब्द से आगत अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**कार्कण** आदि।*

वुञ्-

(४) विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ्।७७।

प०वि०-विद्या-योनिसम्बन्धेभ्यः ५।३ वुञ् १।१।

स०-विद्या च योनिश्च ते विद्यायोनी, ताभ्याम्-विद्यायोनिभ्याम्, विद्यायोनिभ्यां कृतः सम्बन्ध एषां ते विद्यायोनिसम्बन्धाः, तेभ्यः-विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-ततः, आगत इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ततो विद्यायोनिसम्बन्धेभ्य आगतो वुञ्।

अर्थः-तत इति पञ्चमीसमर्थेभ्यो विद्यासम्बन्धवाचिभ्यो योनिसम्बन्धवाचिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्य आगत इत्यस्मिन्नर्थे वुञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(विद्यासम्बन्धः) उपाध्यायादागतम् औपाध्यायकम्। आचार्यादागतम् आचार्यकम्। शिष्यादागतं शैष्यकम्। **(योनिसम्बन्धः)** मातामहादागतं मातामहकम्। मातुलादागतं मातुलकम्। पितामहादागतं पैतामहकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ततः) पञ्चमी-समर्थ (विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यः) विद्या-सम्बन्धवाची और योनिसम्बन्धवाची प्रातिपदिकों से (आगतः) आगत अर्थ में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(विद्यासम्बन्ध) उपाध्याय से आया हुआ-औपाध्यायक (द्रव्य)। आचार्य से आया हुआ-आचार्यक (द्रव्य)। शिष्य से आया हुआ-शैष्यक (द्रव्य)। **(योनिसम्बन्ध) मातामह** (नाना) से आया हुआ-मातामहक (द्रव्य)। **मातुल** (मामा) से आया हुआ-मातुलक **(द्रव्य)। पितामह (दादा) से आया हुआ-पैतामहक (द्रव्य)।***

सिद्धि-औपाध्यायकम्। उपाध्याय+ङसि+वुञ्। औपाध्याय्+अक। औपाध्यायक+सु। औपाध्यायकम्।

यहां पञ्चमी-समर्थ 'उपाध्याय' शब्द से आगत अर्थ में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-'आचार्यकम्' आदि।

ठञ्-

(५) ऋतष्ठञ्।७८।

प०वि०-ऋतः ५।१ ठञ् १।१।

अनु०-ततः, आगत, विद्यायोनिसम्बन्धेभ्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ततो विद्यायोनिसम्बन्धेभ्य ऋत आगतष्ठञ्।

अर्थः-तत इति पञ्चमीसमर्थेभ्यो विद्यासम्बन्धवाचिभ्यो योनिसम्बन्धवाचिभ्यश्च ऋकारान्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्य आगत इत्यस्मिन्नर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(विद्यासम्बन्धः) होतुरागतं हौतृकम्। पोतुरागतं पौतृकम्। **(योनिसम्बन्धः)** मातुरागतं मातृकम्। भ्रातुरागतं भ्रातृकम्। स्वसुरागतं स्वासृकम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(ततः) पञ्चमी-समर्थ (विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यः) विद्यासम्बन्धवाची और योनिसम्बन्धवाची (ऋतः) ऋकारान्त प्रातिपदिकों से (आगतः) आगत अर्थ में (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(विद्यासम्बन्ध)** होता (ऋत्विक्) से आया हुआ-हौतृक (द्रव्य)। पोता (ब्रह्मा) से आया हुआ-पौतृक। **(योनिसम्बन्ध)** माता से आया हुआ-मातृक। भ्राता से आया हुआ-भ्रातृक। स्वसा=बहिन से आया हुआ स्वासृक।*

*सिद्धि-**हौतृकम्।** होतृ+ङसि+ठञ्। हौतृ+क। हौतृक+सु। हौतृकम्।*

*यहां पञ्चमी-समर्थ, विद्यासम्बन्धवाची ऋकारान्त 'होतृ' शब्द से आगत अर्थ में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। **'इसुसुक्तान्तात् कः'** (७।३।५१) से 'ठ्' के स्थान में 'क्' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही **'पौतृकम्'** आदि।*

यत्+ठञ्-

(६) पितुर्यच्च।७९।

प०वि०-पितुः ५।१ यत् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-ततः, आगतः, ठञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ततः पितुरागतो यत् ठञ् च।

अर्थः-तत इति पञ्चमीसमर्थात् पितृशब्दात् प्रातिपदिकाद् आगत इत्यस्मिन्नर्थे यत् ठञ् च प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**यत्**) पितुरागतं पित्र्यम्। (**ठञ्**) पैतृकम् (धनम्)।

आर्यभाषाः अर्थ-*(ततः) पञ्चमी-समर्थ (पितुः) पितृ प्रातिपदिक से (आगतः) आगत अर्थ में (यत्) यत् (च) और (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-**(यत्)** पिता से आया हुआ-पित्र्य। **(ठञ्)** पिता से आया हुआ-पैतृक (धन)।*

*सिद्धि-(१) **पित्र्यम्।** पितृ+ङसि+य। पितृ रीङ्+य। पित्री+य। पित्र्+य। पित्र्य+सु। पित्र्यम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'पितृ' शब्द से आगत अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। 'रीङ् ऋतः' (७।४।२७) से अंग को 'रीङ्' आदेश होता है। तत्पश्चात् **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग को अवयवभूत रीङ् के ईकार का लोप होता है।*

*(२) **पैतृकम्।** यहां पूर्वोक्त 'पितृ' शब्द से आगत अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। 'इसुसुक्तान्तात् कः' (७।३।५१) से 'ठ्' के स्थान में 'क्' आदेश होता है।*

अङ्कवत् प्रत्ययविधिः--

(७) गोत्रादङ्कवत्।८०।

प०वि०-गोत्रात् ५।१ अङ्कवत् अव्ययपदम्। अङ्के इव अङ्कवत् **'तत्र तस्येव'** (५।१।११५) इति सप्तम्यर्थे वतिः प्रत्ययः।

अनु०-ततः, आगत इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ततो गोत्राद् आगतोऽङ्कवत्।

अर्थः-तत इति पञ्चमी-समर्थाद् गोत्रविशेषवाचिनः प्रातिपदिकाद् आगत इत्यस्मिन्नर्थेऽङ्कवत् प्रत्ययविधिर्भवति।

व्याकरणशास्त्रेऽपत्याधिकारादन्यत्र लौकिकं गोत्रमपत्यमात्रमेव गृह्यते न तु **'अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्'** (४।१।१६२) इति पारिभाषिकं गोत्रम्। अङ्कग्रहणेन च **'तस्येदम्'** (४।३।१२०) इत्यर्थसामान्यं लक्ष्यते। तस्मात्- **'सङ्घाङ्कलक्षणेष्वञ्यञिञामण्'** (४।३।१२७) इति अण्-प्रत्ययो नातिदिश्यतेऽपितु- **'गोत्रचरणाद् वुञ्'** (४।३।१२६) इति वुञ्-प्रत्ययोऽतिदिश्यते।

उदा०–औपगवानामङ्कः–औपगवकः। कापटवकः। नाडायनकः। चारायणकः। एवम्–औपगवेभ्य आगतम्–औपगवकम्। कापटवकम्। नाडायनकम्। चारायणकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ततः) पञ्चमी-समर्थ (गोत्रात्) गोत्रविशेषवाची प्रातिपदिक से (आगतः) आगत अर्थ में (अङ्कवत्) अङ्क अर्थ के समान प्रत्यय होता है।*

*व्याकरणशास्त्र में अपत्य-अधिकार से अन्यत्र लौकिक गोत्र अर्थात् अपत्यमात्र का ही ग्रहण किया जाता है **'अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्'** (४।१।१६२) इस पारिभाषिक गोत्र का नहीं और यहां 'अङ्कवत्' कथन **'तस्येदम्'** (४।३।१२०) इस सामान्य अर्थ को लक्षित करता है न कि **'सङ्घाङ्कलक्षणेष्वञ्यञिञामण्'** (४।३।१२७) से अङ्क अर्थ में विहित 'अण्' प्रत्यय को; क्योंकि यह 'अण्' प्रत्यय गोत्रवाची से विहित नहीं किया गया है। **'गोत्रचरणाद् वुञ्'** (४।३।१२६) से गोत्रवाची प्रातिपदिक से 'तस्य इदम्' अर्थ में 'वुञ्' प्रत्यय का विधान किया गया है, अतः यहां अङ्कवत् कहने से 'वुञ्' प्रत्यय का ही ग्रहण किया जाता है।*

उदा०-औपगव=उपगु के पुत्रों का अङ्क (चिह्न)-औपगवक। कापटव=कपटु के पुत्रों का अङ्क-कापटवक। नाडायन=नड के पुत्रों का अङ्क-नाडायनक। चारायण=चर के पुत्रों का अङ्क-चारायणक। इसी प्रकार-औपगव=उपगु के पुत्रों से आया हुआ-औपगवक। कापटव=कपटु के पुत्रों से आया हुआ-कापटवक। नाडायन=नड के पुत्रों से आया हुआ-नाडायनक। चारायण=चर के पुत्रों से आया हुआ-चारायणक।

सिद्धि-औपगवकः। *औपगव+ङसि+वुञ्। औपगव्+अक। औपगवक+सु। औपगवकः।*

*यहां पञ्चमी-समर्थ, गोत्रवाची 'औपगव' शब्द से आगत अर्थ में इस सूत्र से अङ्कवत् प्रत्ययविधि का कथन किया गया है। अतः **'गोत्रचरणाद् वुञ्'** (४।३।१२६) से अङ्कवत् 'वुञ्' प्रत्यय होता है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही **'कापटवकः'** आदि।*

रूप्यः–

(८) हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः।८१।

प०वि०–हेतु-मनुष्येभ्यः ५।३ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्, रूप्यः १।१।

स०–हेतवश्च मनुष्याश्च ते हेतुमनुष्याः, तेभ्यः-हेतुमनुष्येभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-ततः, आगत इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ततो हेतुमनुष्येभ्य आगतोऽन्यतरस्यां रूप्यः।

अर्थः-तत इति पञ्चमीसमर्थेभ्यो हेतुवाचिभ्यो मनुष्यविशेषवाचिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्य आगत इत्यस्मिन्नर्थे विकल्पेन रूप्यः प्रत्ययो भवति, पक्षे च यथाविहितं प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**हेतुः**) समादागतं समरूप्यम् (रूप्यः)। समीयं धनम् (छः)। विषमादागतं **विषमरूप्यम्** (रूप्यः)। विषमीयं धनम् (छः)। (**मनुष्यः**) देवदत्तादागतं देवदत्तरूप्यम् (रूप्यः)। दैवदत्तं धनम् (अण्) यज्ञदत्तादागतं यज्ञदत्तरूप्यम् (रूप्यः)। याज्ञदत्तं धनम् (अण्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ततः) पञ्चमी-समर्थ (हेतुमनुष्येभ्यः) हेतुवाची और मनुष्य-विशेषवाची प्रातिपदिकों से (आगतः) आगत अर्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (रूप्यः) रूप्य प्रत्यय होता है और पक्ष में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

उदा०-(हेतु) सम=उपयुक्त हेतु से आया हुआ-समरूप्य (रूप्य)। समीय धन (छ)। विषम=अनुपयुक्त हेतु से आया हुआ-विषमरूप्य (रूप्य)। विषमीय धन (छ)। (मनुष्य) देवदत्त से आया हुआ-देवदत्तरूप्य (रूप्य)। दैवदत्त धन (अण्)। यज्ञदत्त से आया हुआ-यज्ञदत्तरूप्य (रूप्य)। याज्ञदत्त धन (अण्)।

*सिद्धि-(१) **समरूप्यम्।** सम+ङसि+रूप्य। सम+रूप्य। समरूप्य+सु। समरूप्यम्।*

*यहां पञ्चमी-समर्थ, हेतुवाची 'सम' शब्द से आगत अर्थ में इस सूत्र से 'रूप्य' प्रत्यय है। ऐसे ही-**देवदत्तरूप्यम्, यज्ञदत्तरूप्यम्।***

*(२) **समीयम्।** सम+ङसि+छ। सम्+ईय। समीय+सु। समीयम्।*

*यहां पूर्वोक्त 'सम' शब्द से आगत अर्थ में विकल्प पक्ष में **'गहादिभ्यश्च'** (४।२।१३८) से यथाविहित 'छ' प्रत्यय होता है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही 'विषम' शब्द से-**विषमीयम्।***

*(३) **दैवदत्तम्।** देवदत्त+ङसि+अण्। दैवदत्त्+अ। दैवदत्त+अ। दैवदत्त+सु। दैवदत्तम्।*

*यहां पञ्चमी-समर्थ, मनुष्यविशेषवाची 'देवदत्त' शब्द से आगत अर्थ में विकल्प पक्ष में यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है। अतः **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से यथाविहित प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'यज्ञदत्त' शब्द से-**याज्ञदत्तम्।***

मयट्–

(६) मयट् च।८२।

प०वि०–मयट् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–ततः, आगतः, हेतुमनुष्येभ्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः–ततो हेतुमनुष्येभ्य आगतो मयट् च।

अर्थः–तत इति पञ्चमीसमर्थेभ्यो हेतुवाचिभ्यो मनुष्यविशेषवाचिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्य आगत इत्यस्मिन्नर्थे मयट् च प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(हेतुः)** समादागतं सममयम्। विषमादागतं विषममयं धनम्। **(मनुष्यः)** देवदत्तादागतं देवदत्तमयम्। यज्ञदत्तादागतं यज्ञदत्तमयं धनम्।

आर्यभाषाः *अर्थ–(ततः) पञ्चमी-समर्थ (हेतुमनुष्येभ्यः) हेतुवाची और मनुष्य-विशेषवाची प्रातिपदिकों से (आगतः) आगत अर्थ में (मयट्) मयट् प्रत्यय (च) भी होता है।*

*उदा०–**(हेतु)** सम=उपयुक्त हेतु से आया हुआ-सममय। विषम=अनुपयुक्त हेतु से आया हुआ-विषममय धन। **(मनुष्य)** देवदत्त से आया हुआ-देवदत्तमय। यज्ञदत्त से आया हुआ-यज्ञदत्तमय धन।*

सिद्धि–सममयम्। *सम+ङसि+मयट्। सम+मय। सममय+सु। सममयम्।*

*यहां पञ्चमी-समर्थ, हेतुवाची 'सम' शब्द से आगत अर्थ में इस सूत्र से 'मयट्' प्रत्यय है। ऐसे ही **'विषममयम्'** आदि।*

*मयट् प्रत्यय के टित् होने से स्त्रीत्व-विवक्षा में **'टिड्ढाणञ्०'** (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है **'सममयी भूमि'** इत्यादि।*

।। इति आगतार्थप्रत्ययप्रकरणम्।।

प्रभवति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः–

(१) प्रभवति।८३।

प०वि०–प्रभवति क्रियापदम्।

अनु०–तत इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–ततः प्रातिपदिकात् प्रभवति यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थ:-तत इति पञ्चमीसमर्थात् प्रातिपदिकात् प्रभवतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति। प्रभवति=प्रकाशते, प्रथमत उपलभ्यते इत्यर्थः।

उदा०-हिमवतः प्रभवति हैमवती गङ्गा। दरदः प्रभवति दारदी सिन्धुः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(ततः) पञ्चमी-समर्थ प्रातिपदिक से (प्रभवति) 'प्रथम से उपलब्ध होता है' इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

उदा०-हिमवान् (हिमालय) से जो प्रथमतः उपलब्ध होती है (निकलती है) वह-हैमवती गंगा। दरद् से जो प्रथमतः उपलब्ध होती है (निकलती है) वह-दारदी सिन्धु नदी।

***सिद्धि-हैमवती।** हिमवत्+ङसि+अण्। हैमवत्+अ। हैमवत+ङीप्। हेमवत्+ई। हैमवती+सु। हैगवती।*

*यहां पञ्चमी-समर्थ 'हिमवत्' शब्द से प्रभवति अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है, अतः **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से यथाविहित प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय होता है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'टिड्ढाणञ्०'** (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है। ऐसे ही 'दरद्' शब्द से-**दारदी।***

***विशेषः** सिंधु नदी कैलास के पश्चिमी तटान्त से निकलकर काश्मीर को दो भागों में बांटती हुई गिलगिटचिलास (प्राचीन दरद् देश) में घुसकर दक्षिणवाहिनी होती हुई दरद् के चरणों से पहली बार मैदान में उतरती है। इस भौगोलिक सच्चाई को जानकर भारतवासी सिन्धु को 'दारदी सिन्धुः' कहते थे (पाणिनीकालीन भारतवर्ष पृ० ५०)।*

ञ्यः–

(२) विदूराञ्ञ्यः।८४।

प०वि०-विदूरात् ५।१ ञ्यः १।१।

अनु०-ततः, प्रभवतीति चानुवर्तते।

अन्वयः-ततो विदूरात् प्रभवति ञ्यः।

अर्थः-तत इति पञ्चमीसमर्थाद् विदूरात् प्रातिपदिकात् प्रभवतीत्यस्मिन्नर्थे ञ्यः प्रत्ययो भवति।

उदा०-विदूरात् प्रभवतीति वैदूर्यो मणिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ततः) पञ्चमी-समर्थ (विदूरात्) विदूर प्रातिपदिक से (प्रभवति) निकलता है, अर्थ में (ञ्यः) ञ्य प्रत्यय होता है।*

उदा०-विदूर से जो निकलता है वह-वैदूर्य मणि।

सिद्धि-वैदूर्यः। विदूर+ङसि+ञ्य। वैदूर्+य। वैदूर्य+सु। वैदूर्यः।

यहां पंचमी-समर्थ 'विदूर' शब्द से प्रभवति अर्थ में इस सूत्र से 'ञ्य' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

विशेषः *(१) विदूर-यह वैदूर्य मणि का उत्पत्ति स्थान था। मार्कण्डेय पुराण की व्याख्या में पारजिटर ने वैदूर्य की पहिचान सातपुड़ा से की है। पतंजलि के मत में वैदूर्य मणि की खाने वालवाय पर्वत में थी। वहां से लाकर विदूर के बेगड़ी (संस्कृत-वैकटिक=रत्नतराश) उसे घाट पहलों पर काटते और बींधते थे, इससे इसका नाम वैदूर्य पड़ा। सम्भव है कि दक्षिण का बीदर 'विदूर' हो (पाणिनीकालीन भारतवर्ष पृ० ४५)।*

(२) जैसे वणिक् लोग मंगलार्थ वाराणसी को जित्वरी कहते हैं वैसे वैयाकरण लोग वालवाय पर्वत को विदूर कहते हैं:- ***"वणिज एव मङ्गलार्थं वाराणसीं जित्वरीति व्यवहरन्ति, एवं वैयाकरणा वालवायं विदूरमुपाचरन्ति" इति पदमञ्जर्यां पण्डितहरदत्तमिश्रः)।***

(३) वैदूर्य मणि वालवाय पर्वत से पैदा होता है, विदूर से नहीं, विदूर में तो उसे संस्कृत किया जाता है। ***"वालवायादसौ प्रभवति, न तु विदूरात्, तत्र तु संस्क्रियते" इति पण्डितजयादित्यः काशिकायाम्।***

गच्छति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः-

(१) तद् गच्छति पथिदूतयोः।८५।

प०वि०-तत् २।१ गच्छति क्रियापदम्, पथि-दूतयोः ७।२।

स०-पन्थाश्च दूतश्च तौ पथिदूतौ, तयोः-पथिदूतयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-तत् प्रातिपदिकाद् गच्छति यथाविहितं प्रत्ययः पथिदूतयोः।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् गच्छतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, योऽसौ गच्छति पन्था दूतो वा चेत् स भवति।

उदा०-स्रुघ्नं गच्छति-स्रौघ्नः, पन्था दूतो वा। माथुरः। रौहितकः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ प्रातिपदिक से (गच्छति) 'जाता है' अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (पथिदूतयोः) जो यह जाता है वह यदि पन्था=मार्ग वा दूत हो।*

उदा०-स्रुघ्न नगर को जो जाता है वह-स्रौघ्न पन्था (मार्ग) वा दूत। मथुरा नगरी को जो जाता है वह-माथुर पन्था वा दूत। रोहितक नगर को जो जाता है वह-रौहितक पन्था वा दूत।

सिद्धि-स्रौघ्नः। स्रुघ्न+अम्+अण्। स्रौघ्न्+अ। स्रौघ्न+सु। स्रौघ्नः।

*यहां द्वितीया-समर्थ 'स्रुघ्न' प्रातिपदिक से गच्छति अर्थ में तथा पन्था एवं दूत अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है अतः **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से यथाविहित प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-माथुरः, रौहितकः।*

***विशेषः** स्रुघ्न नगर को देवदत्त आदि पुरुष जाता है, पन्था (मार्ग) नहीं किन्तु उपचार से यह कहा जाता है यह पन्था स्रुघ्न नगर को जाता है। अथवा-**'गम्लृ गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से यहां प्राप्ति-अर्थक है। यह पन्था स्रुघ्न को प्राप्त कराता है।*

अभिनिष्क्रामति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः-

(१) अभिनिष्क्रामति द्वारम्।८६।

प०वि०-अभिनिष्क्रामति क्रियापदम्, द्वारम् १।१।

अनु०-तदित्यनुवर्तते।

अन्वयः-तत् प्रातिपदिकाद् अभिनिष्क्रामति यथाविहितं प्रत्ययो द्वारम्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अभिनिष्क्रामतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यद् अभिनिष्क्रामति द्वारं चेत् तद् भवति। अभिमुख्येन निष्क्रामति=अभिनिष्क्रामति।

उदा०-स्रुघ्नमभिनिष्क्रामति कान्यकुब्जद्वारम्-स्रौघ्नम्। मथुराम-भिनिष्क्रामति दिल्लीनगरद्वारम्-माथुरम्। रोहितकमभिनिष्क्रामति प्राणिप्रस्थ-द्वारम्-रौहितकम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ प्रातिपदिक से (अभिनिष्क्रामति) 'अभिमुख निकलता है' अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (द्वारम्) जो अभिमुख निकलता है यदि वह द्वार हो।*

उदा०-जो कान्यकुब्ज (कन्नौज) का द्वार स्रुघ्न नगर के अभिमुख निकलता है वह-स्रौघ्न (द्वार)। जो दिल्ली नगर का द्वार मथुरा नगरी के अभिमुख निकलता है वह-माथुर (द्वार)। जो प्राणिप्रस्थ (पानीपत) नगर का द्वार रोहितक नगर के अभिमुख निकलता है वह-रौहितक (द्वार)। जैसे दिल्ली नगर के आधुनिक कश्मीरी गेट, अजमेरी गेट आदि द्वार हैं।

सिद्धि-स्रौघ्नम्। *यहां द्वितीया-समर्थ 'स्रुघ्न' शब्द से अभिनिष्क्रामति अर्थ में तथा द्वार अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है। अतः यहां पूर्ववत् यथाविहित प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**माथुरम्, रौहितकम्।***

अधिकृत्य-कृतार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः-

(१) अधिकृत्य कृते ग्रन्थे।८७।

प०वि०-अधिकृत्य अव्ययपदम्, कृते ७।१ ग्रन्थे ७।१।

अनु०-तदित्यनुवर्तते।

अन्वयः-तत् प्रातिपदिकाद् अधिकृत्य कृत यथाविहितं प्रत्ययो ग्रन्थे।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अधिकृत्य कृत इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, योऽसौ कृतो ग्रन्थश्चेत् स भवति। अधिकृत्य=प्रस्तुत्य इत्यर्थः।

उदा०-सुभद्रामधिकृत्य कृतो ग्रन्थः-सौभद्रः। गौरिमित्रः। यायातः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ प्रातिपदिक से (अधिकृत्यकृतः) 'प्रस्तुत करके बनाया' अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (ग्रन्थे) जो बनाया है यदि वह ग्रन्थ हो।*

उदा०-सुभद्रा को प्रस्तुत करके बनाया ग्रन्थ-सौभद्र। गौरिमित्र को प्रस्तुत करके बनाया ग्रन्थ-गौरिमित्र। ययाति (राजा) को प्रस्तुत करके बनाया ग्रन्थ-यायात।

सिद्धि-सौभद्रः। *सुभद्रा+अम्+अण्। सौभद्र्+अ। सौभद्र+सु। सौभद्रः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'सुभद्रा' शब्द से अधिकृत्य-कृत (ग्रन्थ) अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है। अतः 'प्राग्दीव्यतोऽण्' (४।१।८३) से यथाविहित प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। सुभद्रा=श्रीकृष्ण की बहिन जो वीर अर्जुन को ब्याही थी। ऐसे ही-**गौरिमित्रः, यायातः।***

छः–

(२) शिशुक्रन्दयमसभद्वन्द्वेन्द्रजननादिभ्यश्छः।८८।

प०वि०–शिशुक्रन्द-यमसभ–द्वन्द्व–इन्द्रजननादिभ्यः ५।३ छः १।१।

स०–इन्द्रजननम् आदिर्येषां ते इन्द्रजननादयः। शिशुक्रन्दश्च यमसभं च द्वन्द्वश्च इन्द्रजननादयश्च ते शिशुक्रन्द०इन्द्रजननादयः, तेभ्यः–शिशुक्रन्द०इन्द्रजननादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–तत्, अधिकृत्य, कृते, ग्रन्थे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत् शिशुक्रन्द०इन्द्रजननादिभ्योऽधिकृत्य कृतश्छो ग्रन्थे।

अर्थः–तद् इति द्वितीयासमर्थेभ्यः शिशुक्रन्दयमसभद्वन्द्वेन्द्रजननादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽधिकृत्य कृत इत्यस्मिन्नर्थे छः प्रत्ययो भवति, योऽसौ कृतो ग्रन्थश्चेत् स भवति।

उदा०–(**शिशुक्रन्दः**) शिशूनां क्रन्द इति शिशुक्रन्दः। शिशुक्रन्दमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः शिशुक्रन्दीयः। (**यमसभम्**) यमस्य सभेति यमसभम्। यमसभमधिकृत्य कृतो ग्रन्थो यमसभीयः। (**द्वन्द्वः**) अग्निश्च काश्यपश्च एतयोः समाहारोऽग्निकाश्यपम्। अग्निकाश्यपमधिकृत्य कृतो ग्रन्थोऽग्नि-काश्यपीयः। श्येनकपोतीयः। शब्दार्थसम्बन्धीयं प्रकरणम्। वाक्यपदीयम्। (**इन्द्रजननादिः**) इन्द्रजननमधिकृत्य कृतं प्रकरणम् इन्द्रजननीयम्। प्रद्युम्नागमनीयम्।

इन्द्रजननादिराकृतिगणः स प्रयोगत एवानुसर्तव्यः, यतो हि स पाणिनीयगणपाठे प्रातिपदिकेषु न पठ्यते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (शिशुक्रन्द०इन्द्रजननादिभ्यः) शिशुक्रन्द, यमसभ, द्वन्द्व, इन्द्रजननादि प्रातिपदिकों से (अधिकृत्य कृतः) 'प्रस्तुत करके बनाया' अर्थ में (छः) छ: प्रत्यय होता है (ग्रन्थे) जो बनाया है यदि वह ग्रन्थ हो।*

*उदा०-(**शिशुक्रन्द**) शिशुक्रन्द (बच्चों का रोना) को प्रस्तुत करके बनाया गया ग्रन्थ-शिशुक्रन्दीय। (**यमसभा**) यमसभ (राजा यम की सभा) को प्रस्तुत करके बनाया हुआ ग्रन्थ-यमसभीय। (**द्वन्द्व**) अग्नि और कश्यप ऋषि को प्रस्तुत करके बनाया गया ग्रन्थ-अग्निकाश्यपीय। श्येनकपोत=श्येन (बाज) कपोत (कबूतर) को प्रस्तुत करके बनाया हुआ ग्रन्थ-श्येनकपोतीय। (**शब्दार्थसम्बन्ध**) शब्द-अर्थसम्बन्ध=शब्द और अर्थसम्बन्ध*

*को प्रस्तुत करके बनाया गया प्रकरण-शब्दार्थसम्बन्धीय। **(वाक्यपद)** वाक्य और पद को प्रस्तुत करके बनाया गया प्रकरण-वाक्यपदीय। **(इन्द्रजननादि)** इन्द्रजनन (इन्द्र की उत्पत्ति) को प्रस्तुत करके बनाया गया प्रकरण-इन्द्रजननीय। प्रद्युम्नागमन=प्रद्युम्न के आगमन को प्रस्तुत करके बनाया गया प्रकरण-प्रद्युम्नागमनीय।*

इन्द्रजननादि आकृतिगण है, उसका शिष्टप्रयोग से ही अनुसरण किया जाता है क्योंकि वह पाणिनीय-गणपाठ में प्रातिपदिक रूप में नहीं पढ़ा गया है।

***सिद्धि-शिशुक्रन्दीयः।** शिशुक्रन्द+अम्+छ। शिशुक्रन्द्+ईय। शिशुक्रन्दीय+सु। शिशुक्रन्दीयः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'शिशुक्रन्द' शब्द से अधिकृत्य-कृत (ग्रन्थ) अर्थ में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही- **'यमसभीयः'** आदि।*

अस्य (षष्ठी) अर्थप्रत्ययप्रकरणम्

यथाविहितं प्रत्ययः-

(१) सोऽस्य निवासः।८६।

प०वि०-सः १।१ अस्य ६।१ निवासः १।१।

अन्वयः-स प्रातिपदिकाद् अस्य यथाविहितं प्रत्ययो निवासः।

अर्थः-स इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं निवासश्चेत् स भवति। निवसन्त्यस्मिन्निति निवासः=देश उच्यते।

उदा०-स्रुघ्नो निवासोऽस्य-स्रौघ्नः। माथुरः। रौहितकः। राष्ट्रियः।

***आर्यभाषाः अर्थ-**(सः) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (निवासः) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह निवास (देश) हो।*

उदा०-स्रुघ्न नगर इसका निवास है यह-स्रौघ्न। मथुरा नगरी इसका निवास है यह-माथुर। रोहितक नगर इसका निवास है यह-रौहितक। राष्ट्र इसका निवास है यह-राष्ट्रिय। यहां निवास शब्द का अर्थ देश' है।

***सिद्धि-स्रौघ्नः।** स्रुघ्न+सु+अण्। स्रौघ्न+अ। स्रौघ्न+सु। स्रौघ्नः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ निवासवाची 'स्रुघ्न' शब्द से 'इसका' अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है। अतः **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से*

*यथाविहित प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**माथुरः, रौहितकः, राष्ट्रियः।***

यथाविहितं प्रत्ययः– {अभिजनः}

(२) अभिजनश्च।९०।

प०वि०–अभिजनः १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–सः, अस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः–स प्रातिपदिकाद् अस्य यथाविहितं प्रत्ययोऽभिजनश्च।

अर्थः–स इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमभिजनश्च स भवति।

अभिजनः=पूर्वबान्धवो भवति, तस्य सम्बन्धाद् देशोऽप्यभिजन इत्युच्यते। यस्मिन् देशे पूर्वबान्धवैरुषितं सोऽभिजन इति कथ्यते। तस्मादिह देशवाचिनः प्रातिपदिकात् प्रत्ययो विधीयते, न बन्धुवाचिभ्यः। यत्र साम्प्रतमुष्यते स निवास इत्युच्यते यत्र च पूर्वैरुषितं सोऽभिजनोऽभिधीयते।

उदा०–स्रुघ्नोऽभिजनोऽस्य-स्रौघ्नः। माथुरः। रौहितकः। राष्ट्रियः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(सः) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (च) और (अभिजन) जो प्रथमा-समर्थ यदि वह अभिजन हो।*

'अभिजन' का अर्थ पूर्वबान्धव है। उसके सम्बन्ध से देश को भी 'अभिजन' कहते हैं। जिस देश में पूर्वबान्धव रहे हों उसे 'अभिजन' कहते हैं। इसलिये यहां देशवाची प्रातिपदिक से प्रत्यय होता है, बन्धुवाची से नहीं। निवास और अभिजन में यह भेद है कि जहां वर्तमान में रहते हैं उसे 'निवास' कहते हैं और जहां पूर्वज रहते थे उसे 'अभिजन' कहते हैं।

उदा०-स्रुघ्न नगर अभिजन है इसका यह-स्रौघ्न। मथुरा नगरी अभिजन है इसका यह-माथुर। रोहितक नगर है अभिजन इसका यह-रौहितक। राष्ट्र है अभिजन इसका यह-राष्ट्रिय।

***सिद्धि-स्रौघ्नः।** स्रुघ्न+सु+अण्। स्रौघ्न्+अ। स्रौघ्न+सु। स्रौघ्नः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, अभिजनवाची 'स्रुघ्न' शब्द से अस्य-अर्थ में यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है। अतः **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से यथाविहित प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**माथुरः, रौहितकः, राष्ट्रियः।***

छः–

{अभिजनः}

(३) आयुधजीविभ्यश्छः पर्वते।६१।

प०वि०–आयुध-जीविभ्यः ४।३ छः १।१ पर्वते ७।१ (पञ्चम्यर्थे)।

अनु०–सः, अस्य, अभिजन इति चानुवर्तते।

अन्वयः–स पर्वताद् अस्य छोऽभिजन आयुधजीविभ्यः।

अर्थः–स इति प्रथमासमर्थात् पर्वतवाचिनः प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे छः प्रत्ययो भवति, आयुधजीविभ्यः=आयुजीविनोऽभिधातुम्।

उदा०–हृद्गोलः पर्वतोऽभिजन एषामायुधजीविनामेते–हृद्गोलीयाः। अन्धकवर्तीयाः। रोहितगिरीयाः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सः) प्रथमा-समर्थ (पर्वते) पर्वतवाची प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (छः) छ प्रत्यय होता है (अभिजनः) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह अभिजन हो (आयुजीविभ्यः) यह प्रत्ययविधि आयुजीवी लोगों के कथन के लिये है।*

उदा०–हृद्गोल नामक पर्वत है अभिजन इन आयुधजीवी लोगों का ये-हृद्गोलीय। अन्धकवर्त नामक पर्वत है अभिजन इन आयुधजीवी लोगों का ये-अन्धकवर्तीय। रोहितगिरि नामक पर्वत है अभिजन इन आयुधजीवी लोगों का ये-रोहितगिरीय।

सिद्धि-हृद्गोलीयः। *हृद्गोल+सु+छ। हृद्गोल+ईय। हृद्गोलीय+सु। हृद्गोलीयः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ अभिजन एवं पर्वतवाची 'हृद्गोल' शब्द से अस्य (इसका) अर्थ में तथा आयुधजीवी लोगों के कथन के लिये इस सूत्र से छः प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**अन्धकवर्तीयाः, रोहितगिरीयाः।***

विशेषः *आयुधजीवी वे लोग होते हैं जो वेतन लेकर किसी के लिए भी लड़ने को तैयार रहते हैं, जैसे गोरखे (आ०भा० प्रथमावृत्ति टि०पृ० १६४)।*

ञ्यः–

{अभिजनः}

(४) शण्डिकादिभ्यो ञ्यः।६२।

प०वि०–शण्डिक-आदिभ्यः ५।३ ञ्यः १।१।

स०–शण्डिक आदिर्येषां ते शण्डिकादयः, तेभ्यः-शण्डिकादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-सः, अस्य, अभिजन इति चानुवर्तते।

अन्वयः-स शण्डिकादिभ्योऽस्य ञ्योऽभिजनः।

अर्थः-स इति प्रथमासमर्थेभ्यः शण्डिकादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे ञ्यः प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमभिजनश्चेत् स भवति।

उदा०-शण्डिकोऽभिजनोऽस्य-शाण्डिक्यः। सार्वकेश्यः। सार्वसेन्यः।

शण्डिक। सर्वकेश। सर्वसेन। शक। सट। रक। शङ्ख। बोध। इति शण्डिकादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सः) प्रथमा-समर्थ (शण्डिकादिभ्यः) शण्डिक आदि प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (ञ्यः) ञ्य प्रत्यय होता है (अभिजनः) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह अभिजन अभिधेय हो।*

उदा०-शण्डिक है अभिजन इसका यह-शाण्डिक्य। सर्वकेश है अभिजन इसका यह-सार्वकेश्य। सर्वसेन है अभिजन इसका यह-सार्वसेन्य।

सिद्धि-शाण्डिक्यः। *शण्डिक+सु+ञ्य। शाण्डिक्+य। शाण्डिक्य+सु। शाण्डिक्यः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, अभिजनवाची 'शण्डिक' शब्द से अस्य (इसका) अर्थ में इस सूत्र से 'ञ्य' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**सार्वकेश्य, सार्वसेन्य** आदि।*

अण्+अञ्- **{अभिजनः}**

(५) सिन्धुतक्षशिलादिभ्योऽणञौ।६३।

प०वि०-सिन्धु-तक्षशिलादिभ्यः ५।३ अण्-अञौ १।१।

स०-सिन्धुश्च तक्षशिला च ते सिन्धुतक्षशिले, सिन्धुतक्षशिले आदौ येषां ते सिन्धुतक्षशिलादयः, तेभ्यः-सिन्धुतक्षशिलादिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्व-गर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-सः, अस्य, अभिजन इति चानुवर्तते।

अन्वयः-स सिन्धुतक्षशिलादिभ्योऽस्याणञौ, अभिजनः।

अर्थः-स इति प्रथमासमर्थेभ्यः सिन्ध्वादिभ्यस्तक्षशिलादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे यथासंख्यम् अणञौ प्रत्ययौ भवतः, यत् प्रथमासमर्थम् अभिजनश्चेत् स भवति।

उदा०-(**सिन्ध्वादिः**) सिन्धुरभिजनोऽस्य-सैन्धवः। वर्णुरभिजनोऽस्य-वार्णवः (अण्)। (**तक्षशिलादिः**) तक्षशिलाऽभिजनोऽस्य-ताक्षशिलः। वत्सोद्धरणोऽभिजनोऽस्य-वात्सोद्धरणः (अञ्)।

(१) सिन्धु। वर्णु। गन्धार। मधुमत्। कम्बोज। कश्मीर। साल्व। किष्किन्धा। गब्दिका। उरस। दरत्। कुलून। दिरसा। इति सिन्ध्वादयः।।

(२) तक्षशिला। वत्सोद्धरण। कौमेदुर। काण्डधारण। ग्रामणी। सरालक। कंस। किन्नर। संकुचित। सिंहकोष्ठ। कर्णकोष्ठ। बर्बर। अवसान। इति तक्षशिलादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(स) प्रथमा-समर्थ (सिन्धुतक्षशिलादिभ्यः) सिन्धु-आदि और तक्षशिला-आदि प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में यथासंख्य (अणञौ) अण् और अञ् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-(**सिन्ध्वादि**) सिन्धु है अभिजन इसका यह-सैन्धव। वर्णु है अभिजन इसका यह-वार्णव (अण्)। (**तक्षशिलादिः**) तक्षशिला है अभिजन इसका यह-ताक्षशिल। वत्सोद्धरण है अभिजन इसका यह-वात्सोद्धरण।*

*सिद्धि-(१) **सैन्धवः**। सिन्धु+सु+अण्। सैन्धव्+अ। सैन्धव+सु। सैन्धवः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, अभिजनवाची 'सिन्धु' शब्द से अस्य (इसका) अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**वार्णवः**।*

*(२) **ताक्षशिलः**। तक्षशिला+सु अञ्। ताक्षशिल्+अ। ताक्षशिल+सु। ताक्षशिलः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, अभिजनवाची 'तक्षशिला' शब्द से 'इसका' अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही-**वात्सोद्धरणः**।*

विशेषः *(१) **सिन्धु**-प्राचीन सिन्धु नद आजकल की सिन्धु है। सिन्धु के नाम से उसके पूर्वी किनारे की तरफ पंजाब में फैला हुआ प्राचीन सिन्धु जनपद {सिन्धु-सागर दुआब था} (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ५०)।*

*(२) **वर्णु**-सिन्धु की पश्चिमी सहायक नदी कुर्रम के किनारे निचले हिस्से में बन्नू की दून (घाट) है। इसका वैदिक नाम क्रमु था। इसका ऊपरी पहाड़ी प्रदेश आज भी कुर्रम कहलाता है और निचला मैदानी भाग बन्नू। पाणिनि ने इसी को वर्णु नद के नाम से प्रसिद्ध वर्णु देश कहा है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ५१)।*

(३) तक्षशिला-यह पूर्वी गंधार की प्रसिद्ध राजधानी थी और सिन्धु और विपाशा के बीच के सब नगरों में बड़ी और समृद्ध थी। पाटलिपुत्र, मथुरा और शाकल को-पुष्कलावती, कापिशी और बाल्हीक से मिलानेवाली उत्तरपथ नामक राजमार्ग पर तक्षशिला मुख्य व्यापारिक नगरी थी। पाणिनिकाल से हूणों के समय तक तक्षशिला का प्राधान्य बना रहा (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ८५)।

ढक्+छण्+ढञ्+यक्- **{अभिजनः}**

(६) तूदीशलातुरवर्मतीकूचवाराड्ढक्छण्ढञ्यकः।६४।

प०वि०-तूदी-शलातुर-वर्मती-कूचवारात् ५।१ ढक्-छण्-ढञ्-यकः १।३।

स०-तूदी च शलातुरश्च वर्मती च कूचवारश्च एतेषां समाहारः-तूदीशलातुरवर्मतीकूचवारम्, तस्मात्- तूदीशलातुरवर्मतीकूचवारात् (समाहारद्वन्द्वः)। ढक् च छण् च ढञ् च यक् च ते ढक्छण्ढञ्यकः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-सः, अस्य, अभिजन इति चानुवर्तते।

अन्वयः-स तूदीशलातुरवर्मतीकूचवाराद् अस्य ढक्छण्ढञ्यकोऽभिजनः।

अर्थः-स इति प्रथमासमर्थेभ्यस्तूदीशलातुरवर्मतीकूचवारेभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे यथासंख्यं ढक्छण्ढञ्यकः प्रत्यया भवन्ति, यत् प्रथमासमर्थमभिजनश्चेत् स भवति।

उदा०-**(तूदी)** तूदी अभिजनोऽस्य-तौदेयः (ढक्)। **(शलातुरः)** शलातुरोऽभिजनोऽस्य-शालातुरीयः (छण्)। **(वर्मती)** वर्मती अभिजनोऽस्य-वार्मतेयः (ढञ्)। **(कूचवारः)** कूचवारोऽभिजनोऽस्य-कौचवार्यः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सः) प्रथमा-समर्थ (तूदी०कूचवारात्) तूदी, शलातुर, वर्मती, कूचवार प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में यथासंख्य (ढक्छण्ढञ्यकः) ढक्, छण्, ढञ्, यक् प्रत्यय होते हैं (अभिजनः) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह अभिजन हो।*

*उदा०-(तूदी) तूदी अभिजन है इसका यह-तौदेय (ढक्)। (शलातुर) शलातुर अभिजन है इसका यह-शालातुरीय (छण्)। (वर्मती) वर्मती अभिजन है इसका यह-वार्मतेय (ढञ्)। **(कूचवार) कूचवार** अभिजन है इसका यह-कौचवार्य।*

*सिद्धि-(१) **तौदेयः**। तूदी+सु+ढक्। तौद्+एय। तौदेय+सु। तौदेयः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, अभिजनवाची 'तूदी' शब्द से अस्य=इसका अर्थ में इस सूत्र से 'ढक्' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में एय् आदेश होता **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के ईकार का लोप होता है।*

(२) शालातुरीयः। यहां 'शलातुर' शब्द से पूर्ववत् 'छण्' प्रत्यय है।

*(३) **वार्मतेयः**। यहां 'वर्मती' शब्द से पूर्ववत् 'ढञ्' प्रत्यय है।*

*(४) **कौचवार्यः**। यहां 'कूचवार' शब्द से पूर्ववत् 'ञ्य' प्रत्यय है।*

विशेषः *(१) तूदी-पहचान अनिश्चित है।*

(२) शलातुर-पाणिनि का जन्मस्थान, जो सिन्धु-कुम्भा संगम के कोने में ओहिंद से चार मील पश्चिम में था। यह स्थान इस समय लहुर कहलाता है।

(३) वर्मती-इसकी ठीक पहचान ज्ञात नहीं। हो सकता है यह बीनरान का पुराना नाम हो।

*(४) **कूचवार**-यह चीनी तुर्किस्तान में उत्तरी तरिम उपत्यका का नाम था, जिसका अर्वाचीन नाम कूचा है। चीनी भाषा में आजकल इसे कूची कहते हैं (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ८५)।*

यथाविहितं प्रत्ययः– {भक्तिः}

(७) भक्तिः।६५।

प०वि०-भक्तिः १।१।

अनु०-सः, अस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-स प्रातिपदिकाद् अस्य यथाविहितं प्रत्ययो भक्तिः।

अर्थः-स इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं भक्तिश्चेत् तद् भवति।

भज्यते=सेव्यत इति भक्तिः **'स्त्रियां क्तिन्'** (३।३।९४) इति कर्मणि क्तिन् प्रत्ययः।

उदा०-स्रुघ्नो भक्तिरस्य-स्रौघ्नः। माथुरः। रौहितकः। राष्ट्रियः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सः) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (भक्तिः) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह **भक्ति** (सेव्य) हो।*

*भज्यते=सेव्यते इति भक्तिः। यहां **'भज सेवायाम्'** (भ्वा०उ०) धातु से **'स्त्रियां क्तिन्'** (३।३।९४) से कर्म कारक में 'क्तिन्' प्रत्यय है जिसकी सेवा की जाये उसे 'भक्ति' कहते हैं।*

उदा०-स्रुघ्न है भक्ति (सेव्य) इसकी यह-स्रौघ्न। मथुरा है भक्ति इसकी यह-माथुर। रोहितक है भक्ति इसकी यह-रौहितक। राष्ट्र है भक्ति इसकी यह-राष्ट्रिय।

सिद्धि-स्रौघ्नः।** यहां प्रथमा-समर्थ, भक्तिवाची 'स्रुघ्न' शब्द से अस्य=इसकी अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है। अतः **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से यथाविहित प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**माथुरः, रौहितकः, राष्ट्रियः।

ठञ्- **{भक्तिः}**

(८) अचित्ताददेशकालाट्ठक्।६६।

प०वि०-अचित्तात् ५।१ अदेशकालात् ५।१ ठक् १।१।

स०-न विद्यते चित्तं यस्मिँस्तत्-अचित्तम्, तस्मात्-अचित्तात् (बहुव्रीहिः)। देशश्च कालश्च एतयोः समाहारः-देशकालम्, न देशकालमिति अदेशकालम्, तस्मात्-अदेशकालात् (समाहारद्वन्द्वगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-सः, अस्य, भक्तिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-सोऽदेशकालाद् अचित्ताद् अस्य ठग् भक्तिः।

अर्थः-स इति प्रथमासमर्थाद् देशकालवर्जिताद् अचित्तवाचिनः प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं भक्तिश्चेत् तद् भवति।

उदा०-अपूपा भक्तिरस्य-आपूपिकः। शष्कुल्यो भक्तिरस्य-शाष्कुलिकः। पायसं भक्तिरस्य-पायसिकः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(सः) प्रथमा-समर्थ (अदेशकालात्) देश, काल से रहित (अचित्तात्) अचित्त (जड़) वाची प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है (भक्तिः) जो प्रथमा समर्थ है यदि वह भक्ति (सेवनीय पदार्थ) हो।*

उदा०-अपूप हैं भक्ति (सेवनीय) है इसके यह-आपूपिक। अपूप=मालपूआ। शष्कुलियाँ भक्ति हैं इसकी यह-शाष्कुलिक। शष्कुली=पूरी। पायस है भक्ति इसकी यह-पायसिक। पायस=खीर।

सिद्धि-आपूपिकः । अपूप+जस्+ठक् । अपूप्+इक । आपूपिक+सु । आपूपिकः ।

*यहां प्रथमा-समर्थ, देश-काल से रहित, अचित्त (जड़) वाचक एवं भक्तिवाची 'अपूप' शब्द से अस्य=इसका अर्थ में इस सूत्र 'ठक्' प्रत्यय है। **'ठस्येकः'** (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, **'किति च'** (७।२।११८) अंग को आदिवृद्धि और पूर्ववत् अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-शाष्कुलिकः, पायसिकः ।*

ठञ्- {भक्तिः}

(९) महाराजाट्ठञ्।६७।

प०वि०-महाराजात् ५।१ ठञ् १।१।

अनु०-सः, अस्य, भक्तिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-स महाराजाद् अस्य ठञ् भक्तिः।

अर्थः-स इति प्रथमासमर्थाद् महाराजात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं भक्तिश्चेत् तद् भवति।

उदा०-महाराजो भक्तिरस्य-माहाराजिकः ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सः) प्रथमा-समर्थ (महाराजात्) महाराज प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है (भक्तिः) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह भक्ति हो।*

उदा०-महाराज है भक्ति इसकी यह-माहाराजिक। महाराज=कुबेर।

सिद्धि-माहाराजिकः । महाराज+सु+ठञ् । माहाराज्+इक । माहाराजिक+सु । माहाराजिकः ।

*यहां प्रथमा-समर्थ, भक्तिवाची 'महाराज' शब्द से अस्य=इसका अर्थ में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

विशेषः *महाराज-देवता वैश्रवण या कुबेर की संज्ञा थी। अतिप्राचीनकाल में राजा का एक अर्थ यक्ष था। यक्षों के राजा होने के कारण कुबेर महाराज कहलाये। इन्हें ही कालिदास (मेघदूत १।३) ने राजराज कहा है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ३५५)।*

वुन्- {भक्तिः}

(१०) वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन्।६८।

प०वि०-वासुदेव-अर्जुनाभ्याम् ५।२ वुन् १।१।

स०-वासुदेवश्च अर्जुनश्च तौ वासुदेवार्जुनौ, ताभ्याम्-वासुदेवार्जुनाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-सः, अस्य, भक्तिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-स वासुदेवार्जुनाभ्याम् अस्य वुन् भक्तिः।

अर्थः-स इति प्रथमासमर्थाभ्यां वासुदेवार्जुनाभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अस्येति षष्ठ्यर्थे वुन् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं भक्तिश्चेत् तद् भवति।

उदा०-(**वासुदेवः**) वासुदेवो भक्तिरस्य-वासुदेवकः। (**अर्जुनः**) अर्जुनो भक्तिरस्य-अर्जुनकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सः) प्रथमा-समर्थ (वासुदेवार्जुनाभ्याम्) वासुदेव, अर्जुन प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (वुन्) वुन् प्रत्यय होता है (भक्तिः) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह भक्ति हो।*

*उदा०-(**वासुदेव**) वासुदेव=श्रीकृष्ण भक्ति है इसकी यह-वासुदेवक। (**अर्जुन**) अर्जुन है भक्ति इसकी यह-अर्जुनक।*

*सिद्धि-**वासुदेवकः**। वासुदेव+सु+वुन्। वासुदेव्+अक। वासुदेवक+सु। वासुदेवकः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, भक्तिवाची 'वासुदेव' शब्द से अस्य=इसकी अर्थ में इस सूत्र से 'वुन्' प्रत्यय है। '**युवोरनाकौ**' (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक्' आदेश होता है। '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**अर्जुनकः**।*

विशेषः *वासुदेव-यहां वसुदेव शब्द से अपत्य अर्थ में '**ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च**' (४।१।११४) से 'अण्' प्रत्यय है। वसुदेव का पुत्र वासुदेव कहाता है। श्रीकृष्ण के पिता का नाम वसुदेव था। महाभारत युद्ध में श्रीकृष्ण वीर अर्जुन का सारथि था।*

बहुलं वुञ्- {**भक्तिः**}

(११) गोत्रक्षत्रियाख्येभ्यो बहुलं वुञ्।९९।

प०वि०-गोत्र-क्षत्रियाख्येभ्यः ५।३ बहुलम् १।१ वुञ् १।१।

स०-गोत्रं च क्षत्रियश्च तौ गोत्रक्षत्रियौ। गोत्रक्षत्रियावाऽऽख्या येषां ते-गोत्रक्षत्रियाख्याः, तेभ्यः-गोत्रक्षत्रियाख्येभ्यः (इतरेतरद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-सः, अस्य, भक्तिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-स गोत्रक्षत्रियाख्येभ्योऽस्य बहुलं वुञ्, भक्तिः।

अर्थः-स इति प्रथमासमर्थेभ्यो गोत्राख्येभ्यः क्षत्रियाख्येभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे बहुलं वुञ् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं भक्तिश्चेत् तद् भवति।

उदा०-(**गोत्राख्यः**) ग्लुचुकायनिर्भक्तिरस्य-ग्लौचुकायनकः। औपगवकः। कापटवकः। (**क्षत्रियाख्यः**) नकुलो भक्तिरस्य नाकुलकः। साहदेवकः। साम्बकः।

बहुलवचनादत्र वुञ् न भवति-पाणिनो भक्तिरस्य-पाणिनीयः। पौरवो भक्तिरस्य-पौरवीयः। अत्र **'वृद्धाच्छः'** (४।२।११४) इति छः प्रत्ययो भवति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सः) प्रथमा-समर्थ (गोत्रक्षत्रियाख्येभ्यः) गोत्रवाची और क्षत्रियवाची प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (बहुलम्) प्रायशः (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है (भक्तिः) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह भक्ति हो।*

*उदा०-(**गोत्र**) ग्लुचुकायनि भक्ति है इसकी यह-ग्लौचुकायनक। औपगव भक्ति है इसकी यह-औपगवक। कापटव भक्ति है इसकी यह-कापटवक। (**क्षत्रिय**) नकुल भक्ति है इसकी यह-नाकुलक। सहदेव है भक्ति इसकी यह-साहदेवक। साम्ब भक्ति है इसकी यह-साम्बक।*

*बहुल-वचन से यहां वुञ् प्रत्यय नहीं होता है- (गोत्र) पाणिन है भक्ति इसकी यह-पाणिनीय। (क्षत्रिय) पौरव राजा है भक्ति इसकी यह-पौरवीय। यहां **'वृद्धाच्छः'** (४।२।११४) से 'छ' प्रत्यय होता है।*

*सिद्धि-(१) **ग्लौचुकायनकः।** यहां प्रथमा-समर्थ, गोत्रवाची एवं भक्तिवाची 'ग्लुचुकायनि' शब्द से अस्य=इसकी अर्थ में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'वु' के स्थान में अक आदेश, पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही **'औपगवकः'** आदि।*

*(२) **पाणिनीयः।** यहां बहुल-वचन से प्रथमा-समर्थ, गोत्रवाचक एवं भक्तिवाची 'पाणिन' शब्द से षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय नहीं होता है अपितु 'वृद्धाच्छः' (४।२।११४) से शेष-अर्थ की विवक्षा में 'छ' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**पौरवीयः।***

जनपदवत्प्रत्ययविधिः- {भक्तिः}

(१२) जनपदिनां जनपदवत् सर्वं जनपदेन समानशब्दानां बहुवचने।१००।

प०वि०-जनपदिनाम् ६।३। जनपदवत् अव्ययपदम्, सर्वम् १।१ जनपदेन ३।१ समान-शब्दानाम् ६।३ बहुवचने ७।१।

जनपद एषामस्तीति जनपदिनः । **'अत इनिठनौ'** (५ ।२ ।११५) इति मतुबर्थे इनिः प्रत्ययः । जनपदिनः=जनपदस्वामिनः क्षत्रिया उच्यन्ते । जनपदे इव जनपदवत् **'तत्र तस्येव'** (५ ।१ ।११६) इति सप्तम्यर्थे वतिः प्रत्ययः ।

स०-समानाः शब्दा येषां ते समानशब्दाः, तेषाम्-समानशब्दानाम् (बहुव्रीहिः) ।

अनु०-सः, अस्य, भक्तिरिति चानुवर्तते ।

अन्वयः-स जनपदेन समानशब्देभ्यो बहुवचने जनपदिभ्योऽस्य सर्वं जनपदवद् भक्तिः ।

अर्थः-स इति प्रथमासमर्थेभ्यो जनपदेन समानशब्देभ्यो बहुवचने वर्तमानेभ्यो जनपदिवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे सर्वं जनपदवत् प्रत्ययविधिर्भवति, यत् प्रथमासमर्थं भक्तिश्चेत् तद् भवति ।

अयमभिप्रायः-**'जनपदतदवध्योश्च'** (४ ।१ ।१२४) इत्यस्मिन् प्रकरणे ये प्रत्यया विहितास्ते जनपदिभ्योऽस्मिन्नर्थेऽतिदिश्यन्ते ।

उदा०-अङ्गा जनपदो भक्तिरस्य-आङ्गकः । वाङ्गकः । सौह्मकः । पौण्ड्रकः । तद्वत्-अङ्गा क्षत्रिया भक्तिरस्य-आङ्गकः । वाङ्गकः । सौह्मकः । पौण्ड्रकः ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सः) प्रथमा-समर्थ (जनपदेन-समानशब्दानाम्) जनपद के सदृश शब्दवाले (बहुवचने) बहुवचन में विद्यमान (जनपदिभ्यः) जनपद-स्वामी क्षत्रियवाची प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (सर्वम्) सब (जनपदवत्) जनपद के समान प्रत्ययविधि होती है (भक्तिः) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह भक्ति हो।*

*अभिप्राय यह है- **'जनपदतदवध्योश्च'** (४ ।२ ।१२४) इस प्रकरण में जो प्रत्यय विहित हैं वे जनपदी=जनपद के स्वामी क्षत्रियवाची प्रातिपदिकों से भी इस प्रकृत अर्थ में अतिदिष्ट किये गये हैं।*

उदा०-अङ्ग जनपद है भक्ति इसकी यह-आङ्गक। वङ्ग जनपद है भक्ति इसकी यह-वाङ्गक। सुह्म जनपद जनपद है भक्ति इसकी यह-सौह्मक। पुण्ड्र जनपद है भक्ति इसकी यह-पौण्ड्रक। उनके समान-अङ्ग नामक क्षत्रिय हैं भक्ति इसकी यह-आङ्गक। वङ्ग नामक क्षत्रिय हैं भक्ति इसकी यह-वाङ्गक। सुह्म नामक क्षत्रिय हैं भक्ति इसकी यह-सौह्मक। पुण्ड्र नामक क्षत्रिय हैं भक्ति इसकी यह-पौण्ड्रक।

सिद्धि-आङ्गकः । अङ्ग+जस्+वुञ् । आङ्ग्+अक । आङ्गक+सु । आङ्गकः ।

*यहां 'अङ्ग' शब्द बहुवचनान्त एवं जनपदवाची है। **'जनपदतदवध्योश्च'** (४।२।१२३) के प्रकरण में **'अवृद्धादपि बहुवचनविषयात्'** (४।२।१२४) से शेष अर्थ में 'वुञ्' प्रत्यय का विधान किया गया है-**अङ्गा जनपदो भक्तिरस्य-आङ्गकः ।** यह 'वुञ्' प्रत्यय, इस सूत्र से भक्तिवाची, जनपदी (जनपद के राजा क्षत्रिय) वाचक प्रातिपदिकों से अस्य=षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में होता है। अङ्गा क्षत्रिया भक्तिरस्य-आङ्गकः । ऐसे ही 'वाङ्गकः' आदि।*

प्रोक्तार्थप्रत्ययप्रकरणम्

यथाविहितं प्रत्ययः-

(१) तेन प्रोक्तम् ।१०१।

प०वि०-तेन ३।१ प्रोक्तम् १।१।

अन्वयः-तेन प्रातिपदिकात् प्रोक्तं यथाविहितं प्रत्ययः ।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् प्रोक्तमित्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति।

उदा०-पाणिनिना प्रोक्तम्-पाणिनीयम्। आपिशलिना प्रोक्तम्-आपिशलम्। काशकृत्स्निना प्रोक्तम्-काशकृत्स्नम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से (प्रोक्तम्) प्रोक्त अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है। प्रोक्त=अतिशय व्याख्यात वा अध्यापित।*

उदा०-पाणिनि के द्वारा प्रोक्त-पाणिनीय। आपिशलि के द्वारा प्रोक्त-आपिशल। काशकृत्स्नि के द्वारा प्रोक्त-काशकृत्स्न।

*सिद्धि-(१) **पाणिनीयम् ।** पाणिनि+टा+छ। पाणिन्+ईय। पाणिनीय+सु। पाणिनीयम्।*

*यहां तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से प्रोक्त अर्थ में यथाविहित प्रत्यय का विधान किया है। अतः यहां 'पाणिनि' शब्द से **'वृद्धाच्छः'** (४।२।११४) से यथाविहित 'छ' प्रत्यय होता है।*

*'पणिन्' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में **'तस्यापत्यम्'** (४।१।९२) से 'अण्' प्रत्यय करने पर तथा **'गाथिविदथिकेशिगणिपणिनश्च'** (४६।४।१६५) से प्रकृतिभाव होने से 'पाणिन' शब्द सिद्ध होता है। 'पाणिन' शब्द से अनन्तरापत्य अर्थ में **'अत इञ्'** (४।१।९५) से 'इञ्' प्रत्यय करने पर 'पाणिनि' शब्द सिद्ध होता है। 'पाणिनि' शब्द से प्रोक्त अर्थ में 'छ' प्रत्यय करने पर 'पाणिनीय' शब्द सिद्ध होता है।*

*(२) **आपिशलम्।** आपिशलि+टा+अण्। आपिशल्+अ। आपिशल+सु। आपिशलम्।*

*यहां तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से प्रोक्त अर्थ में यथाविहित प्रत्यय का विधान किया है। अतः गोत्रप्रत्ययान्त 'आपिशलि' शब्द **'इञश्च'** (४।२।१११) से 'अण्' प्रत्यय होता है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-**काशकृत्स्नम्।***

छण्-

(२) तित्तिरिवरतन्तुखण्डिकोखाच्छण्।१०२।

प०वि०-तित्तिरि-वरतन्तु-खण्डिका-उखात् ५।१ छण् १।१।

स०-तित्तिरिश्च वरतन्तुश्च खण्डिकश्च उखश्च एतेषां समाहारः-तित्तिरिवरतन्तुखण्डिकोखम्, तस्मात्-तित्तिरिवरतन्तुखण्डिकोखात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तेन प्रोक्तमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन तित्तिरिवरतन्तुखण्डिकोखात् प्रोक्तं छण्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थेभ्यस्तित्तिर्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः प्रोक्तमित्यस्मिन्नर्थे छण् प्रत्ययो भवति।

'शौनकादिभ्यश्छन्दसि' (४।३।१०६) इत्यत्र प्रोक्तार्थस्यानुवृत्तेः **'छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि'** (४।२।६२) इत्यनेन च छन्दसां ब्राह्मणानां च तद्विषयतया=अध्येतृवेदितृविषयतयाऽत्राध्येतृविषये प्रत्यय-विधिर्भवति, न प्रोक्तार्थमात्रे।

उदा०-**(तित्तिरिः)** तित्तिरिणा प्रोक्तमधीयते-तैत्तिरीयाः। **(वरतन्तुः)** वारतन्तवीयाः। **(खण्डिकाः)** खाण्डिकीयाः। **(उखाः)** औखीयाः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (तित्तिरि०उखात्) तित्तिरि, वरतन्तु, खण्डिक, उख प्रातिपदिकों से (प्रोक्तम्) प्रोक्त अर्थ में (छण्) छण् प्रत्यय होता है।*

*'**शौनकादिभ्यश्छन्दसि**' (४।३।१०६) सूत्र से प्रोक्त अर्थ की अनुवृत्ति होने से और '**छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि**' (४।२।६२) से छन्द और ब्राह्मणवाची शब्दों से प्रत्ययविधि में तद्विषयता=अध्येता, वेदिता अर्थ के विधान से यहां तित्तिरि आदि आचार्यों द्वारा प्रोक्त छन्दों के अध्येता अर्थ में प्रत्यय विधि होती है; प्रोक्त अर्थ में नहीं।*

उदा०-**(तित्तिरि)** तित्तिर आचार्य के द्वारा प्रोक्त छन्द (शाखा ग्रन्थ) के अध्येता (छात्र)-तैत्तिरीय। **(वरतन्तु)** वरतन्तु आचार्य के द्वारा प्रोक्त छन्दों के अध्येता (छात्र)-वारतन्तवीय। **(खण्डिक)** खण्डिक आचार्य के द्वारा प्रोक्त छन्दों के अध्येता (छात्र)-खाण्डिकीय। **(उख)** उख आचार्य के द्वारा प्रोक्त छन्दों के अध्येता (छात्र)-औखीय।

सिद्धि-(१) तैत्तिरीयाः। तित्तिरि+टा+छण्। तैत्तिर्+ईय। तैत्तिरीय+जस्। तैत्तिरीयाः।

यहां तृतीया-समर्थ 'तित्तिरि' शब्द से प्रोक्त अर्थ में एवं '**छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि**' (४।२।६२) से अध्येता-वेदिता अर्थ में इस सूत्र से 'छण्' प्रत्यय है। '**आयनेय०**' 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश, पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और इकार का लोप होता है।

(२) वारतन्तवीयाः। यहां '**ओर्गुणः**' (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**खाण्डिकीयाः, औखीयाः।**

विशेषः (१) चरणों (वैदिक विद्यापीठ) के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न छन्द या शाखा-ग्रन्थ पढ़ाये जाते थे। उनके अध्येता छात्रों का नाम उन छन्द-ग्रन्थों के नाम से रखा जाता था। जैसे तित्तिरि आचार्य से प्रोक्त तैत्तिरीय शाखा के विद्यार्थी 'तैत्तिरीय' कहलाते थे (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २८०)।

(२) तैत्तिरीय, वारतन्तवीय, खाण्डिकीय, औखीय ये कृष्ण यजुर्वेद के शाखाग्रन्थ हैं (व्याकरणशास्त्र का इतिहास पृ० १७२)।

(३) **तित्तिरि, वरतन्तु, खण्डिक, उख, कठ और कलाप** कृष्णयजुर्वेद के चरण-संस्थापक आचार्य थे। इन सबके गुरु वैशम्पायन थे। ये विद्वान् वैशम्पायन के प्रसिद्ध अन्तेवासी थे। प्रत्येक ने स्वयं एक-एक शाखा का प्रवचन किया और चरण की स्थापना की।

(४) **तैत्तिरीय-** तैत्तिरीय चरण के संस्थापक आचार्य तित्तिरि थे। तैत्तिरीय ब्राह्मण के अन्तिम भाग का नाम काठक है। इससे तैत्तिरीय और कठों का निकट सम्बन्ध ज्ञात होता है।

(५) **औखीय-**तैत्तिरीय चरण के दो उपविभाग हुये-औखीय, खाण्डिकीय।

(६) **वारतन्तवीय-**पाणिनि के समय इस चरण का पृथक् अस्तित्व था। पाणिनि के शिष्य कौत्स, वरतन्तु के भी शिष्य होने से वारतन्तवीय चरण के साथ सम्बन्धित थे (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ३१६, १७)।

णिनिः–

(३) काश्यपकौशिकाभ्यामृषिभ्यां णिनिः ।१०३।

प०वि०–काश्यप-कौशिकाभ्याम् ५ ।२ ऋषिभ्याम् ५ ।२ णिनिः १ ।१।

स०–काश्यपश्च कौशिकश्च तौ काश्यपकौशिकौ, ताभ्याम्-काश्यपकौशिकाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–तेन, प्रोक्तमिति चानुवर्तते।

अन्वयः–तेन ऋषिभ्यां काश्यपकौशिकाभ्यां प्रोक्तं णिनिः।

अर्थः–तेन इति तृतीयासमर्थाभ्याम् ऋषिवाचिभ्यां काश्यपकौशिकाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां प्रोक्तमित्यस्मिन्नर्थे णिनिः प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(काश्यपः)** काश्यपेन प्रोक्तं कल्पमधीयते-काश्यपिनः। कौशिकेन प्रोक्तं कल्पमधीयते-कौशिकिनः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (ऋषिभ्याम्) ऋषिवाची (काश्यप-कौशिकाभ्याम्) काश्यप, कौशिक प्रातिपदिकों से (प्रोक्तम्) प्रोक्त अर्थ में (णिनिः) णिनि प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(काश्यप)** काश्यप ऋषि के द्वारा प्रोक्त कल्प के अध्येता-काश्यपी। **(कौशिक)** कौशिक ऋषि के द्वारा प्रोक्त कल्प के अध्येता-कौशिकी।*

*सिद्धि-**काश्यपिनः।** काश्यप+टा+णिनि। काश्यप्+इन्। काश्यपिन्+जस्। काश्यपिनः।*

*यहां तृतीया-समर्थ, ऋषिवाची 'काश्यप' शब्द से प्रोक्त अर्थ में तथा पूर्ववत् तद्विषयता होने से अध्येता-वेदिता अर्थ में इस सूत्र से णिनि प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**कौशिकिनः।***

णिनिः–

(४) कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च।१०४।

प०वि०–कलापि-वैशम्पायनान्तेवासिभ्यः ५ ।३ च अव्ययपदम्।

स०–कलापी च वैशम्पायनश्च तौ कलापिवैशम्पायनौ, तयोः-कलापिवैशम्पायनयोः। कलापिवैशम्पायनयोरन्तेवासिनः कलापिवैशम्पायनान्तेवासिनः, तेभ्यः-कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भित-षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-तेन, प्रोक्तम्, णिनिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च प्रोक्तं णिनिः।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थेभ्यः कलाप्यन्तेवासिवाचिभ्यो वैशम्पायनान्तेवासिवाचिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः प्रोक्तमित्यस्मिन्नर्थे णिनिः प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(कलाप्यन्तेवासिनः)** कलाप्यन्तेवासिनश्चत्वारः सन्ति-हरिद्रुः, छगली, तुम्बुरुः, उलप इति। हरिद्रुणा प्रोक्तमधीयते-हारिद्रविणः। तौम्बुरविणः। औलपिनः। छगलिनस्तु ढिनुकं वक्ष्यति (४।३।१०९)। **(वैशम्पायनान्तेवासिनः)** वैशम्पायनान्तेवासिनो नव सन्ति-आलम्बिः, पलङ्गः, कमलः, ऋचाभः, अरुणिः, ताण्ड्यः, श्यामायनः, कठः, कलापी चेति। आलम्बिना प्रोक्तमधीयते-आलम्बिनः। पालङ्गिनः। कामलिनः। आर्चाभिनः। आरुणिनः। ताण्डिनः। श्यामायनिनः। कठाल्लुकं वक्ष्यति (४।३।१०७)। कलापिनश्चाणं वक्ष्यति (४।३।३।१०८)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यः) कलापी आचार्य के अन्तेवासी (शिष्य) और वैशम्पायन आचार्य के अन्तेवासी वाची प्रातिपदिकों से (च) भी (प्रोक्तम्) प्रोक्त अर्थ में (णिनिः) णिनि प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(कलापी-अन्तेवासी)** कलापी आचार्य के चार अन्तेवासी हैं-हरिद्रु, छगली, तुम्बुरु, उलप। हरिद्रु के द्वारा प्रोक्त शाखा-ग्रन्थ के अध्येता-हारिद्रवी। तौम्बुरवी। औलपी। छगली से ढिनुक् प्रत्यय का विधान किया जायेगा (४।३।१०९)। **(वैशम्पायन-अन्तेवासी)** वैशम्पायन आचार्य के नौ अन्तेवासी हैं-आलम्बि, पलङ्ग, कमल, ऋचाभ, अरुणि, ताण्ड्य, श्यामायन, कठ, कलापी। आलम्बि के द्वारा प्रोक्त शाखा-ग्रन्थ के अध्येता-आलम्बी। पालङ्गी। कामली। आर्चाभी। आरुणी। ताण्डी। श्यामायनी। 'कठ' से प्रत्यय का लुक् कहा जायेगा (४।३।१०७)। 'कलापी' से अण् प्रत्यय का विधान किया जायेगा (४।३।१०८)।*

सिद्धि-हारिद्रविणः। हरिद्रु+टा+णिनि। हारिद्रो+इन्। हारिद्रविन्+जस्। हारिद्रविणः।

*यहां तृतीया-समर्थ कलापी आचार्य के अन्तेवासी 'हरिद्रु' शब्द से प्रोक्त अर्थ में एवं पूर्ववत् अध्येता-वेदिता विषय में इस सूत्र से 'णिनि' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'ओर्गुणः'** (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है। ऐसे ही-**तौम्बुरविणः, आरुणिनः** आदि।*

णिनिः–

(५) पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु।१०५।

प०वि०–पुराण-प्रोक्तेषु ७।३ ब्राह्मण-कल्पेषु ७।३।

स०–पुराणैः (प्राचीनैः) प्रोक्ता इति पुराणप्रोक्ताः, तेषु-पुराणप्रोक्तेषु (तृतीयातत्पुरुषः)। ब्राह्मणानि च कल्पाश्च ते ब्राह्मणकल्पाः, तेषु-ब्राह्मणकल्पेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–तेन, प्रोक्तम्, णिनिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–तेन प्रातिपदिकात् प्रोक्तं णिनिः पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मण-कल्पेषु।

अर्थः–तेन इति तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् प्रोक्तमित्यस्मिन्नर्थे णिनिः प्रत्ययो भवति, यत् प्रोक्तं पुराणप्रोक्ता ब्राह्मणकल्पाश्चेत् ते भवन्ति।

उदा०–**(ब्राह्मणानि)** भल्लुना प्रोक्तं ब्राह्मणमधीयते-भाल्लविनः। शाट्यायनिनः। ऐतरेयिणः। **(कल्पाः)** पिङ्गेन प्रोक्तं कल्पमधीयते-पैङ्गिनः। आरुणपराजिनः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तेन) तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से (प्रोक्तम्) प्रोक्त अर्थ में (णिनिः) णिनि प्रत्यय होता है (पुराण-प्रोक्तेषु, ब्राह्मण-कल्पेषु) वहां जो प्रोक्त शाखा ग्रन्थ हैं यदि वे ब्राह्मणग्रन्थ और कल्पग्रन्थ हों।*

*उदा०-**(ब्राह्मण)** भल्लु (भालव) प्राचीन मुनि के द्वारा प्रोक्त ब्राह्मणग्रन्थ के अध्येता-भाल्लवी। शाट्यायन प्राचीन मुनि के द्वारा प्रोक्त ब्राह्मणग्रन्थ के अध्येता-शाट्यायनी। ऐतरेय प्राचीन मुनि के द्वारा प्रोक्त ब्राह्मणग्रन्थ के अध्येता-ऐतरेयी। **(कल्प)** पिङ्ग मुनि के द्वारा प्रोक्त कल्प वेदाङ्ग के अध्येता-पैङ्गी। अरुणपराज मुनि के द्वारा प्रोक्त कल्प वेदाङ्ग के अध्येता-आरुणपराजी।*

सिद्धि-भाल्लविनः। *भल्लु+टा+णिनि। भाल्लो+इन्। भाल्लविन्+जस्। भाल्लविनः।*

*यहां तृतीया-समर्थ, प्राचीन मुनिवाची 'भल्लु' शब्द से प्रोक्त (ब्राह्मणग्रन्थ) अर्थ में इस सूत्र से णिनि प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'ओर्गुणः'** (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है। ऐसे ही-**शाट्यायनिनः, पैङ्गिनः** आदि।*

विशेषः प्राचीन ऋषियों ने वेदों की व्याख्या में ब्राह्मण-ग्रन्थों की रचना की थी। *ऋक्, यजु, साम और अथर्ववेद के ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ ये चार ब्राह्मणग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। यहां भल्लु (भालव) तथा शाट्यायन ब्राह्मण का भी उल्लेख किया गया है। वेदों की व्याख्या में ही शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्यौतिष इन छः वेदांगों की रचना की गई। यहां पैङ्ग तथा अरुणपराज नामक कल्प वेदांग का भी उल्लेख किया गया है।*

णिनिः–

(६) शौनकादिभ्यश्छन्दसि।१०६।

प०वि०–शौनक-आदिभ्यः ५।३ छन्दसि ७।१।

स०–शौनक आदिर्येषां ते शौनकादयः, तेभ्यः–शौनकादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–तेन, प्रोक्तम्, णिनिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–तेन शौनकादिभ्यः प्रोक्तं णिनिश्छन्दसि।

अर्थः–तेन इति तृतीयासमर्थेभ्यः शौनकादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः प्रोक्तमित्यस्मिन्नर्थे णिनिः प्रत्ययो भवति, यत् प्रोक्तं छन्दश्चेत् तद्भवति।

उदा०–शौनकेन प्रोक्तं छन्दोऽधीयते–शौनकिनः। वाजसनेयिनः।

शौनक। वाजसनेय। साङ्गरव। शाङ्गरव। सांपेय। शाखेय। खाडायन। स्कन्द। स्कन्ध। देवदत्तशठ। रज्जुकण्ठ। रज्जुभार। कठशाड। कशाय। तलवकार। पुरुषासक। अश्वपेय। स्कम्भ। इति शौनकादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(तेन) तृतीया-समर्थ (शौनकादिभ्यः) शौनक आदि प्रातिपदिकों से (प्रोक्तम्) प्रोक्त अर्थ में (णिनिः) णिनि प्रत्यय होता है (छन्दसि) जो प्रोक्त है यदि वह छन्द हो।*

उदा०–शौनक मुनि के द्वारा प्रोक्त (छन्द) के अध्येता-शौनकी। वाजसनेय मुनि के द्वारा प्रोक्त (छन्द) के अध्येता-वाजसनेयी।

*सिद्धि-**शौनकिनः**। शौनक+टा+णिनि। शौनक्+इन्। शौनकिन्+जस्। शौनकिनः।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'शौनक' शब्द से प्रोक्त अर्थ में, अध्येता-वेदिता विषय में एवं छन्द अभिधेय में इस सूत्र से 'णिनि' प्रत्यय है। '**तद्धितेष्वचामादेः**' (७।२।११७) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही–**वाजसनेयिनः** आदि।*

विशेषः *(१) शौनक-ऋग्वेद के शाकल आदि अनेक चरण (वैदिक-विद्यापीठ) हैं। उनमें एक शौनक चरण प्रसिद्ध है। "शौनक चरण के छन्द-ग्रन्थ का अध्ययन करनेवाले 'शौनकिनः' कहलाते थे। इस चरण का शाकलों (शाकल चरणवालों) के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था। ऋग्वेद के सम्बन्ध में शौनकों ने बहुत-कुछ साहित्यिक कार्य किया। ऋग्वेद प्रातिशाख्य भी मुख्यतः इसी चरण का (ग्रन्थ) है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ३१६)।*

(२) वर्तमान में उपलब्ध शुक्ल यजुर्वेद 'वाजसनेय' चरण का ग्रन्थ है। इसके अध्येता 'वाजसनेयिनः' कहलाते थे।

प्रोक्तार्थप्रत्ययस्य लुक्–

(७) कठचरकाल्लुक्।१०७।

प०वि०–कठ–चरकात् ५।१ लुक् १।१।

स०–कठश्च चरकश्च एतयोः समाहारः कठचरकम्, तस्मात्–कठचरकात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–तेन, प्रोक्तम्, छन्दसीति चानुवर्तते।

अन्वयः–तेन कठचरकात् प्रोक्तं प्रत्ययस्य लुक् छन्दसि।

अर्थः–तेन इति तृतीयासमर्थाभ्यां कठचरकाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां प्रोक्तमित्यस्मिन्नर्थे विहितस्य प्रत्ययस्य लुग् भवति, यत् प्रोक्तं छन्दश्चेत् तद् भवति।

उदा०–**(कठः)** कठेन प्रोक्तं छन्दोऽधीयते–कठाः। **(चरकः)** चरकेण प्रोक्तं छन्दोऽधीयते–चरकाः।

आर्यभाषाः *अर्थ–(तेन) तृतीया-समर्थ (कठचरकात्) कठ, चरक प्रातिपदिकों से (प्रोक्तम्) प्रोक्त अर्थ में विहित प्रत्यय का (लुक्) लोप होता है (छन्दसि) जो प्रोक्त है यदि वह छन्द हो।*

उदा०–(कठ) कठ आचार्य के द्वारा प्रोक्त (छन्द-ग्रन्थ) के अध्येता–कठ। (चरक) चरक आचार्य के द्वारा प्रोक्त (छन्द-ग्रन्थ) के अध्येता–चरक।

सिद्धि–(१) कठाः। कठ+टा+णिनि। कठ+०। कठ+जस्। कठाः।

यहां तृतीया-समर्थ 'कठ' शब्द से प्रोक्त अर्थ में अध्येता-वेदिता विषय में एवं छन्द अभिधेय में विहित प्रत्यय का लुक्-विधान किया गया है। यहां 'कठ' के वैशम्पायन आचार्य के अन्तेवासी (शिष्य) होने से 'कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च' (४।३।१०४) से 'णिनि' प्रत्यय का विधान किया गया है। इस सूत्र से उसका लुक् होता है।

(२) चरकाः । चरक+टा+अण् । चरक+० । चरक+जस् । चरकाः ।

*यहां तृतीया-समर्थ 'चरक' शब्द से **'तेन प्रोक्तम्'** (४ ।३ ।१०१) से यथाविहित प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय है। इस सूत्र से उसका लुक् होता है।*

***विशेषः** (१) कठ-'कठ' वैशम्पायन आचार्य के नौ शिष्यों में से एक थे तथा वे 'कठ' नामक चरण (वैदिक-विद्यापीठ) के संस्थापक आचार्य थे। यह चरकों का अति प्रसिद्ध चरण था जिसके अनुयायी गांव-गांव में फैल गये थे (महाभाष्य ४ ।३ ।१०१)।*

*(२) चरक-पाणिनि के अनुसार चरक-चरण के विद्वान् 'चरक' नाम से प्रसिद्ध थे। काशिका के अनुसार वैशम्पायन की संज्ञा चरक थी **"चरक इति वैशम्पायनस्याख्या, तत्सम्बन्धेन सर्वे तदन्तेवासिनश्चरका इत्युच्यन्ते"** (४ ।३ ।१०४)। चरक का मूल अर्थ ज्ञानोपार्जन के लिए विचरण करनेवाला विद्वान् था। वैशम्पायन वैदिक आचार्यों में प्रमुख थे। शबर स्वामी ने लिखा है कि कृष्ण यजुर्वेद की समस्त शाखाओं के अध्यापन का श्रेय वैशम्पायन को था **"स्मर्यते च वैशम्पायनः सर्वशाखाध्यायी"** (मी०भा० १ ।१ ।३०)। वैशम्पायन के अन्तेवासी=शिष्यों द्वारा स्थापित चरण दूर-दूर तक कई दिशाओं में फैले हुये थे। पतंजलि के अनुसार तीन मध्य देश में, तीन उत्तर में और तीन प्राच्य देश में निवास करते थे (४ ।२ ।१३८)। आलम्बि, पलङ्ग और कमल द्वारा स्थापित आलम्बी, पालङ्गी और कामली चरकों के ये तीन चरण प्राच्य देश में थे। ऋचाभ, आरुणि, ताण्ड्य इन तीन आचार्यों के द्वारा स्थापित आर्चाभी, आरुणी और ताण्डी ये तीन चरण मध्यदेश में थे। श्यामायन, कठ और कलापी आचार्यों के चरण श्यामायनी, कठ, कालाप ये उदीच्य देश में थे।*

आलम्बिश्चरकः प्राचां पलङ्गकमलावुभौ ।
ऋचाभारुणिताण्ड्याश्च मध्यमीयास्त्रयोऽपरे ।।
श्यामायन उदीच्येषु उक्तः कठकलापिनोः ।। (काशिका ४ ।३ ।१०४)

अण्-

(८) कलापिनोऽण् ।१०८।

प०वि०-कलापिनः ५ ।१ अण् १ ।१ ।

अनु०-तेन, प्रोक्तम्, छन्दसीति चानुवर्तते ।

अन्वयः-तेन कलापिनः प्रोक्तम् अण् छन्दसि ।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् कलापिनः प्रातिपदिकात् प्रोक्तमित्य-स्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति, यत् प्रोक्तं छन्दश्चेत् तद भवति ।

उदा०-कलापिना प्रोक्तं छन्दोऽधीयते-कालापाः ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (कलापिनः) कलापिन् प्रातिपदिक से (प्रोक्तम्) प्रोक्त अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है (छन्दसि) जो प्रोक्त है यदि वह छन्द हो।*

उदा०-कलापी आचार्य के द्वारा प्रोक्त (छन्द-ग्रन्थ) के अध्येता-कालाप।

सिद्धि-कालापाः। कलापिन्+टा+अण्। कालाप्+अ। कालाप+जस्। कालापाः।

*यहां तृतीया-समर्थ, कलापिन् प्रातिपदिक से, अध्येता-वेदिता विषय में एवं छन्द अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। **'इनण्यनपत्ये'** (६।४।१६४) से प्रकृतिभाव प्राप्त होने पर वा०-**'नान्तस्य टिलोपे सब्रह्मचारिपीठसर्पिकलापि..........सुपर्वणामुपसंख्यानम्'** (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (इन्) का लोप होता है।*

*यहां **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) के अधिकार में यथाविहित 'अण्' प्रत्यय सिद्ध ही था पुनः 'अण्' प्रत्यय का कथन अधिक-विधान के लिये किया गया है कि यदि अभीष्ट हो तो अन्य प्रातिपदिक से भी 'अण्' प्रत्यय हो जाये। जैसे-माथुरी वृत्तिः, सौलभानि ब्राह्मणानि।*

विशेषः *कलापी-'कालाप' यह चरकों का उदीच्य चरण था। वैशम्पायन आचार्य के अन्तेवासियों में कलापी आचार्य स्वयं बहुत उच्चकोटि के विद्वान् थे। उन्होंने केवल नये चरण की ही स्थापना नहीं की अपितु उनके हरिद्रु, छगली, तुम्बुरु और उलप ये चार शिष्य ऐसे उत्कृष्ट विद्वान् हुये जो एक-एक चरण के संस्थापक थे।*

ढिनुक्-

(६) छगलिनो ढिनुक्।१०६।

प०वि०-छगलिनः ५।१ ढिनुक् १।१।

अनु०-तेन, प्रोक्तम्, छन्दसीति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन छगलिनः प्रोक्तं ढिनुक् छन्दसि।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थाच्छगलिनः प्रातिपदिकात् प्रोक्तमित्यस्मिन्नर्थे ढिनुक् प्रत्ययो भवति, यत् प्रोक्तं छन्दश्चेत् तद् भवति।

उदा०-छगलिना प्रोक्तं छन्दोऽधीयते-छागलेयिनः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (छगलिनः) छगलिन् प्रातिपदिक से (प्रोक्तम्) प्रोक्त अर्थ में (ढिनुक्) ढिनुक् प्रत्यय होता है (छन्दसि) जो प्रोक्त है यदि वह छन्द हो।*

उदा०-छगली आचार्य के द्वारा प्रोक्त (छन्द-ग्रन्थ) के अध्येता-छागलेयी।

सिद्धि-छागलेयिनः । छगलिन्+टा+ढिनुक् । छागलिन्+एय् इन् । छागल्+एयिन् । छागलेयिन्+जस् । छागलेयिनः ।

*यहां तृतीया-समर्थ 'छगलिन्' प्रातिपदिक से प्रोक्त अर्थ में तथा अध्येता-वेदिता विषय में एवं छन्द अभिधेय में इस सूत्र से 'ढिनुक्' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश और **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि होती है। **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (इन्) का लोप होता है।*

विशेषः *छगली-ये वैशम्पायन आचार्य के अन्तेवासी कलापी नामक आचार्य के चार शिष्यों में से एक थे। ये उच्चकोटि के विद्वान् और एक चरण (वैदिक विद्यापीठ) के संस्थापक थे।*

णिनिः--

(१०) पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः।११०।

प०वि०-पाराशर्य-शिलालिभ्याम् ५।२ भिक्षु-नटसूत्रयोः ७।२।

स०-पाराशर्यश्च शिलाली च तौ पाराशर्यशिलालिनौ, ताभ्याम्-पाराशर्यशिलालिभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। भिक्षुश्च नटश्च तौ भिक्षुनटौ, तयोः-भिक्षुनटयोः। भिक्षुनटयोः सूत्रे इति भिक्षुनटसूत्रे, तयोः-भिक्षुनटसूत्रयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितषष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-तेन, प्रोक्तम् छन्दसि इति चानुवर्तते, तथा प्रयोगबलाण्णिनि-रित्यनुवर्तति न ढिनुक्।

अन्वयः-तेन पाराशर्यशिलालिभ्यां प्रोक्तं णिनिर्भिक्षुनटसूत्रयोश्छन्दसि।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थाभ्यां पाराशर्यशिलालिभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां प्रोक्तमित्यस्मिन्नर्थे णिनिः प्रत्ययो भवति यथासंख्यं भिक्षुनटसूत्रयोरभिधेययोः, यत् प्रोक्तं छन्दश्चेत् तद्भवति।

उदा०-**(पाराशर्यः)** पाराशर्येण प्रोक्तं भिक्षुसूत्रमधीयते-पाराशरिणो भिक्षवः। **(शिलाली)** शिलालिना प्रोक्तं नटसूत्रमधीयते-शैलालिनः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (पाराशर्यशिलालिभ्याम्) पाराशर्य, शिलालिन् प्रातिपदिकों से (प्रोक्तम्) प्रोक्त अर्थ में (णिनिः) णिनि प्रत्यय होता है (भिक्षुनटसूत्रयोः) यथासंख्य भिक्षुसूत्र और नटसूत्र अर्थ में, (छन्दसि) जो प्रोक्त है यदि वह छन्द हो।*

उदा०- (पाराशर्य) पाराशर्य आचार्य के द्वारा प्रोक्त भिक्षु-सूत्र के अध्येता-पाराशरी भिक्षु। (शिलाली) शिलाली आचार्य के द्वारा प्रोक्त नटसूत्र के अध्येता-शैलाली नट।

सिद्धि- (१) पाराशरिणः। पाराशर्य+टा+णिनि। पाराशर्य्+इन्। पाराशर्+इन्। पाराशरिन्+जस्। पाराशरिणः।

यहां तृतीया-समर्थ, 'पाराशर्य' प्रातिपदिक से प्रोक्त (भिक्षुसूत्र) अर्थ में तथा अध्येता-वेदिता विषय में और छन्द अभिधेय में इस सूत्र से 'णिनि' प्रत्यय है। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और 'आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति' (६।४।१५१) से अंग के यकार का लोप होता है।

(२) शैलालिनः। शिलालिन्+टा+णिनि। शैलालिन्+इन्। शैलाल्+इन्। शैलालिन्+जस्। शैलालिनः।

यहां 'नस्तद्धिते' (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (इन्) का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

***विशेषः** (१) भिक्षुसूत्र और नटसूत्र छन्द (वेद) नहीं हैं किन्तु "छन्दोवत् सूत्राणि भवन्ति" (महाभाष्य) इस वचन-प्रमाण से उन्हें इस छन्दोऽधिकार में छन्दोवत् मानकर उनसे तद्विषयता=अध्येता-वेदिता विषय में यह प्रत्ययविधि की जाती है।*

(२) पाराशर्य- मूल भिक्षुसूत्रों की रचना वैदिक चरण के अन्तर्गत हुई। व्यक्तिविशेष का उनके साथ सम्बन्ध आनुषङ्गिक था। मूलतः ऋग्वेद की वाष्कल शाखा के अन्तर्गत पाराशर्य चरण की स्थिति थी। इसी चरण के कल्पसूत्र का अध्ययन करनेवाले 'पाराशर-कल्पिक' या 'पाराशराः' और भिक्षुसूत्रों के अध्येता 'पाराशरिणः' कहलाते थे (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ३३०)।

(३) शिलाली। पाणिनि मुनि ने शिलाली आचार्य को नट-सूत्रों का प्रवचनकर्ता कहा है- 'शैलालिनो नटाः'। इनका एक वैदिक चरण था जिसमें मुख्यतः नाट्यशास्त्र का अध्ययन किया जाता था। मूलतः शैलालक ऋग्वेद का चरण था जिन्होंने एक ब्राह्मण ग्रन्थ का भी विकास किया था। इस चरण में नट-सूत्र जैसे लौकिक विषय का विकास करके वैदिक अध्ययन के क्षेत्र में एक नये मार्ग का प्रवर्तन किया गया (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ३१५)।

इनिः-

(११) कर्मन्दकृशाश्वादिनिः।१११।

प०वि०- कर्मन्द-कृशाश्वात् ५।१ इनिः १।१।

स०- कर्मन्दश्च कृशाश्वश्च तौ कर्मन्दकृशाश्वौ, ताभ्याम्-कर्मन्दकृशाश्वाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तेन, प्रोक्तम्, छन्दसि, भिक्षुनटसूत्रयोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन कर्मन्दकृशाश्वात् प्रोक्तम् इनिः, भिक्षुनटसूत्रयो-श्छन्दसि।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थाभ्यां कर्मन्दकृशाश्वाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां प्रोक्तमित्यस्मिन्नर्थे इनिः प्रत्ययो भवति, यथासंख्यं भिक्षुनटसूत्रयोरभिधेययोः, यत् प्रोक्तं छन्दश्चेत् तद् भवति।

उदा०-(**कर्मन्दः**) कर्मन्देन प्रोक्तं भिक्षुसूत्रमधीयते-कर्मन्दिनो भिक्षवः। (**कृशाश्वः**) कृशाश्वेन प्रोक्तं नटसूत्रमधीयते कृशाश्विनः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तेन) तृतीया-समर्थ (कर्मन्दकृशाश्वात्) कर्मन्द, कृशाश्व प्रातिपदिकों से (प्रोक्तम्) प्रोक्त अर्थ में (इनिः) इनि प्रत्यय होता (भिक्षुनटसूत्रयोः) यथासंख्य भिक्षुसूत्र और नटसूत्र अर्थ में (छन्दसि) जो प्रोक्त है यदि वह छन्द हो।*

*उदा०-(कर्मन्द) कर्मन्द आचार्य के द्वारा प्रोक्त भिक्षुसूत्र के अध्येता-**कर्मन्दी** भिक्षु। (कृशाश्व) कृशाश्व आचार्य के द्वारा प्रोक्त नट-सूत्र के अध्येता-कृशाश्वी नट।*

सिद्धि-कर्मन्दिनः। *कर्मन्द+टा+इनि। कर्मन्द्+इन्। कर्मन्दिन्+जस्। **कर्मन्दिनः।***

*यहां तृतीया-समर्थ 'कर्मन्द' शब्द से प्रोक्त (भिक्षुसूत्र) अर्थ में तथा अध्येता-वेदिता विषय में और छन्द अभिधेय में इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**कृशाश्विनः।***

विशेषः *कर्मन्द आचार्य पाराशर्य आचार्य के समान भिक्षु-सूत्रों के प्रवक्ता थे। कृशाश्व आचार्य शिलाली आचार्य के समान नट-सूत्रों के प्रवक्ता थे। भिक्षु-सूत्रों में भिक्षु=साधुजनों के आचार-व्यवहार के नियमों का विधान होता था और नटसूत्र भरतमुनिकृत नाट्यशास्त्र जैसे ग्रन्थ थे।*

एकदिगर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः--

(१) तेनैकदिक्।११२।

प०वि०-तेन ३।१ एकदिक् १।१।

स०-एका दिग् यस्य तत्-एकदिक् (बहुव्रीहिः)। एकदिक्= समानदिगित्यर्थः।

अन्वयः-तेन प्रातिपदिकाद् एकदिग् यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् एकदिगित्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति।

उदा०-सुदाम्ना एकदिक् सौदामनी विद्युत्। हैमवती। त्रैककुदी। पैलुमूली।

'तेन' इत्यनुवर्तमाने पुनः 'तेन' इति समर्थविभक्तिग्रहणं छन्दोऽधिकारनिवृत्त्यर्थं क्रियते यतो हि पूर्वत्र छन्दोऽधिकारात् '**छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि**' (४।२।६६) इत्यनेन तद्विषयता=अध्येतृवेदितृविषयता संसाध्यते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से (एकदिक्) समानदिशावाला अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

उदा०-सुदामा नामक पर्वत की एकदिक्=समान दिशावाली विद्युत्-सौदामनी। हिमवान् पर्वत की एकदिक्वाली विद्युत्-हैमवती। त्रिककुत् पर्वत की एक दिक्वाली विद्युत्-त्रैककुदी। पीलु नामक वृक्ष के मूल की एकदिक्वाली विद्युत्-पैलुमूली। पीलु=जालवृक्ष।

"पीलौ गुडफलः स्रंसी'त्यमरः"। तस्य पाकमूले पीत्वादिकर्णादिभ्यः कुणब्जाहचौ (अ० ५।२।२४)।

***सिद्धि-सौदामनी।** सुदामन्+टा+अण्। सुदामन्+अ। सौदामन+ङीप्। सौदामनी+सु। सौदामनी।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'सुदामन्' शब्द से एकदिक् (समानदिशावाला) अर्थ में यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है, अतः '**प्राग्दीव्यतोऽण्**' (४।१।८३) से प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय है। '**तद्धितेष्वचामादेः**' (७।२।११७) अंग को आदिवृद्धि होती है। '**अन्**' (६।४।१६७) से 'सुमदान्' शब्द प्रकृतिभाव से रहता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में '**टिड्ढाणञ्०**' (४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**हैमवती** आदि।*

***विशेषः** यहां 'तेन' पद की अनुवृत्ति होने पर पुनः 'तेन' पद का ग्रहण छन्दोऽधिकार की निवृत्ति के लिये है। इससे पूर्व प्रकरण में छन्दोऽधिकार होने से '**छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि**' (४।२।६६) से तद्विषयता=अध्येता-वेदिता विषयता सिद्ध की जाती है।*

तसिः-

(२) तसिश्च।११३।

प०वि०-तसिः १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-तेन, एकदिगति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन प्रातिपदिकात् एकदिक् तसिश्च।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् एकदिगित्यस्मिन्नर्थे तसिः प्रत्ययश्च भवति।

उदा०-सुदाम्ना एकदिक् सुदामतः। हैमवत्तः। पीलुमूलतः।

आर्यभाषाः *अर्थ-तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से (एकदिक्) एकदिक्=समान दिशावाला अर्थ में (तसिः) तसि प्रत्यय (च) भी होता है।*

उदा०-सुदामा नामक पर्वत की एकदिक्=समान दिशावाला-सुदामतः। हिमवान् पर्वत की समान दिशावाला-हिमवत्तः। पीलुमूल वृक्ष की समान दिशावाला-पीलुमूलतः।

*सिद्धि-**सुदामतः।** सुदामन्+टा+तसि। सुदाम+तस्। सुदाम+तस्। सुदामतस्+सु। सुदामतः।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'सुदामन्' प्रातिपदिक से एकदिक् अर्थ में इस सूत्र से 'तसि' प्रत्यय है। 'तसि' प्रत्यय के परे होने पर '**स्वादिष्वसर्वनामस्थाने**' (१।४।१७) से 'सुदामन्' की पदसंज्ञा होकर '**नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य**' (८।२।७) से उसके नकार का लोप होता है। 'तसि' प्रत्यय का स्वरादिगण में पाठ होने से '**स्वरादिनिपातमव्ययम्**' (१।१।३७) से अव्यय संज्ञा और '**अव्ययादाप्सुपः**' (२।४।८२) से 'सुप्' प्रत्यय का लुक् होता है।*

यत्+तसिः-

(३) उरसो यच्च।११४।

प०वि०-उरसः ५।१ यत् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-तेन, एकदिगिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन उरसो यत् तसिश्च।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थाद् उरसः प्रातिपदिकाद् एकदिगित्यस्मिन्नर्थे यत् तसिश्च प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(यत्)** उरसा एकदिक् उरस्यः। **(तसिः)** उरस्तः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (उरसः) उरस् प्रातिपदिक से (एकदिक्) एकदिक अर्थ में (यत्) यत् (च) और (तसिः) तसि प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(यत्)** उरस्=वक्षस्थल (छाती) का एकदिक्=समान दिशावाला-उरस्यः (पुत्र)। उरस् की एकदिक्=समान दिशावाला-उरस्तः।*

उपज्ञातार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः–

(१) उपज्ञाते।११५।

वि०–उपज्ञाते ७।१।

अनु०–तेन इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–तेन प्रातिपदिकाद् उपज्ञाते यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः–तेन इति तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् उपज्ञाते इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, विनोपदेशेन ज्ञातम्=उपज्ञातम् स्वयमभिसम्बद्धमित्यर्थः।

उदा०–पाणिनिना उपज्ञातम्-पाणिनीयमकालकं व्याकरणम्। काशकृत्स्निना उपज्ञातम्-काशकृत्स्नं गुरुलाघवम् (अर्थशास्त्रम्)। आपिशलिना उपज्ञातम्-आपिशलं दुष्करणम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से (उपज्ञाते) उपज्ञात अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है। बिना उपदेश के ज्ञात, स्वयं सम्बद्ध विषय को 'उपज्ञात' कहते हैं।*

उदा०–पाणिनि के द्वारा उपज्ञात-पाणिनीय काल परिभाषा से रहित व्याकरणशास्त्र (अष्टाध्यायी)। काशकृत्स्नि के द्वारा उपज्ञात-काशकृत्स्न गुरुलाघव नामक अर्थशास्त्र। जिसमें उपायों के गौरव-लाघव का चिन्तन किया गया है। आपिशलि के द्वारा उपज्ञात-आपिशल दुष्करण। पाणिनीय व्याकरणशास्त्र के वत्-करण के समान समाप्ति-सूचक दुष्-करणवाला व्याकरण। किन्हीं के मत में 'दुष्करण' का अर्थ कामशास्त्र है।

*सिद्धि-(१) **पाणिनीयम्**। पाणिनि+टा+छ। पाणिन्+ईय। पाणिनीय+सु। पाणिनीयम्।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'पाणिनि' शब्द से उपज्ञात अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है। अतः 'पाणिनि' शब्द के वृद्धसंज्ञक होने से **'वृद्धाच्छः'** (४।२।११४) से यथाविहित 'छ' प्रत्यय होता है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है।*

*(२) **काशकृत्स्नम्/आपिशलम्** पदों की सिद्धि **'तेन प्रोक्तम्'** (४।३।१०१) के प्रवचन में देख लेवें।*

कृतार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः–

(१) कृते ग्रन्थे।११६।

प०वि०–कृते ७।१ ग्रन्थे ७।१।

अनु०–तेन इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–तेन प्रातिपदिकात् कृते यथाविहितं प्रत्ययो ग्रन्थे।

अर्थः–तेन इति तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् कृत इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, योऽसौ कृतो ग्रन्थश्चेत् स भवति।

उदा०–वररुचिना कृताः–वाररुचाः श्लोकाः। हैकुपादो ग्रन्थः–भैकुराटो ग्रन्थः। दायानन्दो ग्रन्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से (कृते) कृत=बनाया गया अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (ग्रन्थे) जो कृत है यदि वह ग्रन्थ हो।*

उदा०–वररुचि के द्वारा बनाये गये-वाररुच श्लोक। हीकुपाद के द्वारा बनाया गया-हैकुपाद ग्रन्थ। भीकुराट के द्वारा बनाया गया-भैकुराट ग्रन्थ। दयानन्द के द्वारा बनाया गया-दायानन्द ग्रन्थ (सत्यार्थप्रकाश)।

सिद्धि–वाररुचाः। वररुचि+टा+अण्। वाररुच्+अ। वाररुच+जस्। वाररुचाः।

यहां तृतीया-समर्थ 'वररुचि' शब्द से कृत (ग्रन्थ) अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है। अतः 'प्राग्दीव्यतोऽण्' (४।१।८३) से प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-हैकुपादः, भैकुराटः, दायानन्दः।

विशेषः *वररुचिकृत श्लोक निश्चय ही पाणिनि से अर्वाचीन हैं। यह वररुचि वार्तिककार कात्यायन है। पतञ्जलि ने महाभाष्य (४।३।१०१) में वाररुच काव्य का निर्देश किया है (पं० युधिष्ठिर मीमांसककृत संस्कृतव्याकरणशास्त्र का इतिहास पृ० १८८-८९)।*

यथाविहितं प्रत्ययः–

(२) {क} संज्ञायाम्।११७।

वि०–संज्ञायाम् ७।१।

अनु०–तेन, कृते, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन प्रातिपदिकात् कृते यथाविहितं प्रत्ययः, संज्ञायाम्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् कृत इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-मक्षिकाभिः कृतम्-माक्षिकम्। सारघम्। पौत्तिकम्। मधुनः संज्ञा एताः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से (कृते) बनाया गया अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है, (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।*

उदा०-मक्षिकाओं के द्वारा बनाया गया-माक्षिक (मधु)। सरघाओं के द्वारा बनाया गया-सारघ (मधु)। पुत्तिकाओं के द्वारा बनाया गया-पौत्तिक (मधु)। सरघा और पुत्तिका नामक विशेष भ्रमर की मक्खियां हैं जो मधु बनाती हैं।

सिद्धि-माक्षिकम्। *मक्षिका+भिस्+अण्। माक्षिक्+अ। माक्षिक+सु। माक्षिकम्।*

यहां तृतीया-समर्थ 'मक्षिका' शब्द से कृत अर्थ में तथा संज्ञा अर्थ की गम्यमानता में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के आकार का लोप होता है।

विशेषः *महाभाष्य के पाठ से विदित होता है कि 'संज्ञायां कुलालादिभ्यो वुञ्' एक सूत्र है। वहां 'माक्षिकम्' आदि पदों की सिद्धि के लिये योग-विभाग का विधान किया है। अतः यहां योगविभाग पूर्वक सूत्र का प्रवचन किया गया है।*

वुञ्-

(३) {ख} कुलालादिभ्यो वुञ्।११८।

प०वि०-कुलाल-आदिभ्यः ५।३ वुञ् १।१।

स०-कुलाल आदिर्येषां ते कुलालादयः, तेभ्यः-कुलालादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तेन, कृते, संज्ञायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन कुलालादिभ्यः कृते वुञ् संज्ञायाम्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थेभ्यः कुलालादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः कृत इत्यस्मिन्नर्थे वुञ् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-कुलालेन कृतम्-कौलालकम्। वरुडेन कृतम्-वारुडकम्, इत्यादिकम्।

कुलाल। वरुड। चण्डाल। निषाद। कर्मार। सेना। सिरिध्र। सेन्द्रिय। देवराज। परिषत्। वधू। रुरु। ध्रुव। रुद्र। अनडुह। ब्रह्मन्। कुम्भकार। श्वपाक। इति कुलालादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (कुलालादिभ्यः) कुलाल आदि प्रातिपदिकों से (कृते) बनाया गया अर्थ में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।*

उदा०-कुलाल (कुम्हार) के द्वारा बनाया गया कौलालक (घड़ा)। वरुड (जातिविशेष) के द्वारा बनाया गया-वारुडक। वस्तुविशेष।

***सिद्धि-कौलालकम्।** कुलाल+टा+वुञ्। कौलाल्+अक। कौलालक+सु। कौलालकम्।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'कुलाल' शब्द से कृत अर्थ में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**वारुडकम्** आदि।*

अञ्–

(४) क्षुद्राभ्रमरवटरपादपादञ्।११६।

प०वि०-क्षुद्रा-भ्रमर-वटर-पादपात् ५।१ अञ् १।१।

स०-क्षुद्रा च भ्रमरश्च वटरश्च पादपश्च एतेषां समाहारः क्षुद्राभ्रमरवटरपादपम्, तस्मात्-क्षुद्राभ्रमरवटरपादपात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तेन, कृते, संज्ञायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन क्षुद्राभ्रमरवटरपादपात् कृतेऽञ् संज्ञायाम्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थेभ्यः क्षुद्राभ्रमरवटरपादपेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः कृत इत्यस्मिन्नर्थेऽञ् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-क्षुद्राभिः कृतम्-क्षौद्रम्। भ्रामरम्। वाटरम्। पादपम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (क्षुद्राभ्रमरवटरपादपात्) क्षुद्रा, भ्रमर, वटर, पादप प्रातिपदिकों से (कृते) बनाया गया अर्थ में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।*

*उदा०-**(क्षुद्रा)** क्षुद्रा (छोटी मक्खी) के द्वारा बनाया गया-क्षौद्र (मधु)। **(भ्रमर)** भ्रमर (बड़ी मक्खी) द्वारा बनाया गया-भ्रामर (मधु)। **(वटर)** वटर (बटेर पक्षी) द्वारा बनाया गया-वाटर (घौंसला आदि)। **(पादप)** पादप=प्राणिविशेष से बनाया गया-पादप (पदार्थविशेष)।*

*सिद्धि-**क्षौद्रम्**। क्षुद्रा+भिस्+अञ्। क्षौद्र+अ। क्षौद्र+सु। क्षौद्रम्।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'क्षुद्रा' शब्द से कृत अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही-**भ्रामरम्** आदि।*

इदमर्थप्रत्ययप्रकरणम्

यथाविहितं प्रत्ययः-

(१) तस्येदम्।१२०।

प०वि०-तस्य ६।१ इदम् १।१।

अन्वयः-तस्य प्रातिपदिकाद् इदं यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् इदमित्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति।

उदा०-उपगोरिदम्-औपगवम्। कपटोरिदम्-कापटवम्। राष्ट्रस्येदम्-राष्ट्रियम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ प्रातिपदिक से (इदम्) 'यह' अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

उदा०-उपगु का यह-औपगव। कपटु का यह-कापटव। राष्ट्र का यह-राष्ट्रिय।

*सिद्धि-(१) **औपगवम्**। उपगु+ङस्+अण्। औपगो+अ। औपगव्+अ। औपगव+सु। औपगवम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'उपगु' शब्द से इदम् (यह) अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है, अतः '**प्राग्दीव्यतोऽण्**' (४।१।८३) से यथाविहित प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि तथा '**ओर्गुणः**' (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है। ऐसे ही-**कापटवम्**।*

*(२) **राष्ट्रियम्**। यहां षष्ठी-समर्थ 'राष्ट्र' शब्द से इदम् अर्थ में '**राष्ट्रावारपाराद् घखौ**' (४।२।९३) से यथाविहित 'घ' प्रत्यय है। '**आयनेय०**' (७।१।२) से 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश और पूर्ववत् अंग के अकार का लोप होता है।*

यत्-

(२) रथाद् यत्।१२१।

प०वि०-रथात् ५।१ यत् १।१।

अनु०-तस्य, इदमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य रथाद् इदं यत्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् रथात् प्रातिपदिकाद् इदमित्यस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-रथस्येदम्-रथ्यम्, चक्रं वा युगं वा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (रथात्) रथ प्रातिपदिक से (इदम्) यह अर्थ में (यत्) यत् प्रत्यय होता है।*

उदा०-रथ का यह (अंग)-रथ्य। रथ का अंग पहिया वा जूवा।

सिद्धि-रथ्यम्। *रथ+ङस्+यत्। रथ्+य। रथ्य+सु। रथ्यम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'रथ' शब्द से इदम् अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। 'रथ' से 'यत्' प्रत्यय उसके अवयव अर्थ में ही अभीष्ट है, अन्यत्र नहीं।*

अञ्-

(३) पत्रपूर्वादञ्।१२२।

प०वि०-पत्र-पूर्वात् ५।१ अञ् १।१।

स०-पत्रं पूर्वं यस्य तत् पत्रपूर्वम्, तस्मात्-पत्रपूर्वात् (बहुव्रीहिः)। पतन्ति=गच्छन्ति येन इति पत्रम्, अश्वादिकं वाहनमुच्यते।

अनु०-तस्य, इदम्, रथादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य पत्रपूर्वाद् रथाद् इदम् अञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् पत्रपूर्वाद् रथात् प्रातिपदिकाद् इदमित्यस्मिन्नर्थेऽञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-अश्वरथस्येदम्-आश्वरथं चक्रम्। औष्ट्ररथं चक्रम्। गार्दभरथं चक्रम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (पत्रपूर्वात्) पत्र=वाहन पूर्वपदवाले (रथात्) रथ प्रातिपदिक से (इदम्) यह अर्थ में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-अश्वरथ (घोड़ागाड़ी) का यह-आश्वरथ पहिया। उष्ट्ररथ (ऊंटगाड़ी) का यह-औष्ट्ररथ पहिया। गर्दभरथ (गधागाड़ी) का यह-गार्दभरथ पहिया।

सिद्धि-आश्वरथम्। *अश्वरथ+ङस्+अञ्। आश्वरथ्+अ। आश्वरथ+सु। आश्वरथम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, पत्रपूर्वपदवाले 'अश्वरथ' शब्द से इदम् अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**औष्ट्ररथम्, गार्दभरथम्।** यहां भी 'अश्वरथ' आदि शब्दों से 'यत्' प्रत्यय उसके अवयव अर्थ में अभीष्ट है, अन्यत्र नहीं।*

अञ्–

(४) पत्राध्वर्युपरिषदश्च।१२३।

प०वि०–पत्र-अध्वर्यु-परिषद: ५।१ च अव्ययपदम्।

स०–पत्रं च अध्वर्युश्च परिषच्च एतेषां समाहार: पात्राध्वर्युपरिषद्, तस्मात्–पत्राध्वर्युपरिषद: (समाहारद्वन्द्व:)।

अनु०–तस्य, इदम्, अञ् इति चानुवर्तते।

अन्वय:–तस्य पत्राध्वर्युपरिषदश्च इदम् अञ्।

अर्थ:–तस्य इति षष्ठीसमर्थात् पत्रवाचिन: प्रातिपदिकात्, अध्वर्यु-परिषद्भ्यां च प्रातिपदिकाभ्याम् इदमित्यस्मिन्नर्थेऽञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(पत्रम्)** अश्वस्येदम् (वहनीयम्)-आश्वम्। औष्ट्रम्। गार्दभम्। **(अध्वर्यु:)** अध्वर्योरिदम्–आध्वर्यवम्। **(परिषद्)** परिषद इदम्-पारिषदम्।

आर्यभाषा: *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (पत्राध्वर्युपरिषद:) पत्रवाची (अश्व आदि) प्रातिपदिक से एवं अध्वर्यु, परिषद् प्रातिपदिकों से (च) भी (इदम्) यह अर्थ में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(पत्र)** अश्व का यह-(वोढव्य)-आश्व (घुड़सवार आदि)। उष्ट्र का यह (वोढव्य)-औष्ट्र। गर्दभ का यह (वोढव्य)-गार्दभ (भार आदि)। **(अध्वर्यु)** अध्वर्यु नामक ऋत्विक् (यजुर्वेदी विद्वान्) का यह-आध्वर्यव कर्म। **(परिषद्)** परिषद् का यह-पारिषद (कार्य)।*

सिद्धि-(१) आश्वम्। *अश्व+ङस्+अञ्। आश्व्+अ। आश्व+सु। आश्वम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'अश्व' शब्द से इदम् (वोढव्य) अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। **वा०-'पत्राद् वाह्ये'** पत्रवाची (अश्व आदि) शब्द से वाह्य=वहनीय अर्थ में ही 'यत्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**पारिषदम्।***

*(२) **आध्वर्यवम्।** यहां 'अध्वर्यु' शब्द से 'अञ्' प्रत्यय है। 'ओर्गुण:' (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

विशेषः *परिषद्-पाणिनि ने तीन प्रकार की परिषदों का उल्लेख किया है (१) शिक्षा-सम्बन्धी (२) समाज में गोष्ठी-सम्बन्धी (३) राज-शासन सम्बन्धी। पहले प्रकार की परिषद् चरण के अन्तर्गत एक प्रकार की विद्वत्सभा थी जो उच्चारण और व्याकरण-सम्बन्धी नियमों का निश्चय करती थी और शाखा के पाठ आदि के विषय में भी जिसमें विचार होता था। सूत्र (४।३।१२३) में चरण-परिषद् का ही उल्लेख है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २९१)।*

ठक्–

(५) हलसीराट्ठक्।१२४।

प०वि०-हल-सीरात् ५।१ ठक् १।१।

स०-हलं च सीरश्च एतयोः समाहारो हलसीरम्, तस्मात्-हलसीरात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, इदमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य हलसीराद् इदं ठक्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाभ्यां हलसीराभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां इदमित्यस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(हलम्)** हलस्येदम्-हालिकम्। **(सीरः)** सीरस्येदम्-सैरिकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (हलसीरात्) हल, सीर प्रातिपदिकों से (इदम्) यह अर्थ में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(हल)** हल का यह-हालिक बैल आदि। **(सीर)** सीर=हलविशेष का यह-सैरिक (बैल)। हल में जुड़नेवाला बैल आदि।*

सिद्धि-हालिकम्। *हल+ठक्। हाल्+इक। हालिक+सु। हालिकम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'हल' शब्द से इदम् अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और पूर्ववत् अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**सैरिकम्।***

वुन्–

(५) द्वन्द्वाद् वुन् वैरमैथुनिकयोः।१२५।

प०वि०-द्वन्द्वात् ५।१ वैर-मैथुनिकयोः ७।२।

स०-मिथुनम्=दम्पती। मिथुनस्य कर्म इति मैथुनिका। कर्म= **क्रियानिष्पादनम्। 'द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च' (५।१।१३३) इति मनोज्ञादित्वाद्**

वुञ् प्रत्ययः । वैरं च मैथुनिका च ते वैरमैथुनिके, तयोः वैरमैथुनिकयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः) ।

अनु०-तस्य, इदमित्यनुवर्तते ।

अन्वयः-तस्य द्वन्द्वाद् इदं वुन् वैरमैथुनिकयोः ।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् द्वन्द्वसंज्ञकात् प्रातिपदिकाद् इदमित्यस्मिन्नर्थे वुन् प्रत्ययो भवति, यद् इदमिति वैरं मैथुनिका चेत् तद् भवति ।

उदा०-(वैरम्) बाभ्रव्यश्च शालङ्कायनश्च तौ बाभ्रव्यशालङ्कायनौ, तयोः-बाभ्रव्यशालङ्कायनयोः । बाभ्रव्यशालङ्कायनयोरिदं वैरम्-बाभ्रव्य-शालङ्कायनिका । काकश्च उलूकश्च तौ काकोलूकौ, तयोः-काकोलूकयोः । काकोलूकयोरिदं वैरम्-काकोलूकिका । **(मैथुनिका)** अत्रिश्च भरद्वाजश्च तौ अत्रिभरद्वाजौ, तयोः-अत्रिभरद्वाजयोः । अत्रिभरद्वाजयोरियं मैथुनिका-अत्रिभरद्वाजिका । कुत्सश्च कुशिकश्च तौ कुत्सकुशिकौ, तयोः-कुत्सकुशिकयोः । कुत्सकुशिकयोरियं मैथुनिका-कुत्सकुशिकिका । वुन्नन्तं स्वभावतः स्त्रियां वर्तते ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (द्वन्द्वात्) द्वन्द्वसंज्ञक प्रातिपदिक से (इदम्) यह अर्थ में (वुन्) वुन् प्रत्यय होता है (वैरमुथिनकयोः) जो (इदम्) यह प्रत्ययार्थ है यदि वह वैर और मैथुनिका हो। मिथुन=दम्पती। दम्पती का कर्म (क्रियाविशेष) मैथुनिका कहाती है।*

*उदा०-**(वैर)** बाभ्रव्य और शालङ्कायन लोगों का यह वैर-बाभ्रव्यशालङ्कायनिका। काक और उलूक का यह वैर-काकोलूकिका। **(मैथुनिका)** अत्रि और भरद्वाज लोगों की यह मैथुनिका (विवाह सम्बन्ध)-अत्रिभरद्वाजिका। कुत्स और कुशिक लोगों की यह मैथुनिका (विवाह सम्बन्ध)-कुत्सकुशिकिका।*

***सिद्धि-बाभ्रव्यशालङ्कायनिका ।** बाभ्रव्यशालङ्कायन+ओस्+वुन् । बाभ्रव्य-शालङ्कायन्+अक । बाभ्रव्यशालङ्कायनक+टाप् । बाभ्रव्यशालङ्कायनिक+अ । बाभ्रव्यशालङ्कायनिका+सु । बाभ्रव्यशालङ्कायनिका ।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, द्वन्द्वसंज्ञक 'बाभव्य-शालङ्कायन' शब्द से इदम् (वैर) अर्थ में इस सूत्र से 'वुन्' प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश*

*होता है। 'वुन्' प्रत्ययान्त शब्द स्वभावतः स्त्रीलिङ्ग में होते हैं, अतः स्त्रीत्व-विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय और 'प्रत्ययस्थात् कात्' (७।३।४४) से अंग के ककार से पूर्ववर्ती अकार को इत्त्व होता है। ऐसे ही-**काकोलूकिका** आदि।*

वुञ्–

(६) गोत्रचरणाद् वुञ्।१२६।

प०वि०-गोत्र-चरणात् ५।१ वुञ् १।१।

स०-गोत्रं च चरणं च एतयोः समाहारो गोत्रचरणम्, तस्मात्-गोत्रचरणात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य इदमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य गोत्रचरणाद् इदं वुञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठी-समर्थाद् गोत्रवाचिनश्चरणवाचिनश्च प्रातिपदिकाद् इदमित्यस्मिन्नर्थे वुञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**गोत्रम्**) ग्लुचुकायनेरिदम्-ग्लौचुकायनकम्। उपगोरिदम्-औपगवकम्। कालापकम्। मौदकम्। पैपलादकम्। (**चरणम्**) **चरणाद्** धर्माम्नाययोरिष्यते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (गोत्रचरणाद्) गोत्रवाची और चरणवाची प्रातिपदिकों से (इदम्) यह अर्थ में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(**गोत्र**) ग्लुचुकायनि का यह-ग्लौचुकायन (कार्य)। उपगु का यह-औपगवक (कार्य)। (**चरण**) कठ का यह (धर्म/आम्नाय) काठक। कलाप का यह-कालापक। मुद का यह-मौदक। पिप्लाद का यह-पैप्लादक।*

*सिद्धि-**ग्लौचुकायनकम्**। ग्लुचुकायनि+ङस्+वुञ्। ग्लौचुकायन्+अक। ग्लौचुकायनक+सु। ग्लौचुकायनकम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, गोत्रवाची 'ग्लुचुकायनि' शब्द से इदम् अर्थ में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-**औपगवकम्** आदि।*

***विशेषः** चरणवाची प्रातिपदिक से वा०-'**चरणाद् धर्माम्नाययोरिष्यते**' (४।३।१२६) से धर्म और आम्नाय (पाठ्यग्रन्थ) अर्थ में प्रत्ययविधि होती है। **वैदिक** विद्यापीठ का प्राचीन नाम 'चरण' है।*

अण्–

(७) सङ्घाङ्कलक्षणेष्वञ्यञिञामण्।१२७।

प०वि०-सङ्घ-अङ्क-लक्षणेषु ७।३ अञ्यञिञाम् ६।३ (पञ्चम्यर्थे) अण् ।१।१।

स०-सङ्घश्च अङ्कश्च लक्षणं च तानि सङ्घाङ्कलक्षणानि, तेषु-सङ्घाङ्कलक्षणेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। अञ् च यञ् च इञ् च ते अञ्यञिञः, तेषाम्-अञ्यञिञाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, इदमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य अञ्यञिञाम् इदम् अण् सङ्घाङ्कलक्षणेषु।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् अञन्ताद् यञन्ताद् इञन्ताच्च प्रातिपदिकाद् इदमित्यस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति, यद् इदमिति संघोऽङ्को लक्षणं चेत् तद् भवति, यथासंख्यमत्र प्रत्ययार्थविधिर्नेष्यते।

उदा०-(**अञ्**) बिदस्य गोत्रापत्यं बैदः। बिदानामयम्-संघः, अङ्कः, लक्षणं वा-बैदः। (**यञ्**) गर्गस्य गोत्रापत्यं गार्ग्यः। गार्गाणामयम्-संघः, अङ्कः, लक्षणं वा-गार्गः। (**इञ्**) दक्षस्यापत्यं दाक्षिः। दाक्षीणामयम्-संघः, अङ्कः, लक्षणं वा-दाक्षः।

***आर्यभाषाः* अर्थ**-*(तस्य) षष्ठी-समर्थ (अञ्यञिञाम्) अञन्त, यञन्त, इञन्त प्रातिपदिक से (इदम्) यह अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है (सङ्घाङ्कलक्षणेषु) जो 'इदम्' प्रत्ययार्थ है, यदि वह संघ, अंक, लक्षण हो।*

*उदा०-(**अञ्**) बिद का गोत्रापत्य-बैद। बैद लोगों का संघ, अंक वा लक्षण-बैद। (**यञ्**) गर्ग का गोत्रापत्य-गार्ग्य। गर्ग लोगों का संघ, अंक वा लक्षण-गार्ग। (**इञ्**) दाक्षि लोगों का संघ, अंक वा लक्षण-दाक्ष।*

***सिद्धि-(१) बैदाः।** बिद+अञ्। बिद+०। बिद+आम्+अण्। बिद+अ। बैद्+अ। बैद+जस्। बैदाः।*

*यहां प्रथम 'बिद' शब्द से '**अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्**' (४।१।१०४) से गोत्रापत्य अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय होता है। अञ्-लुगन्त 'बिद' शब्द से इस सूत्र से इदम्=यह (संघ, अंक, लक्षण) अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है '**यञिञोश्च**' (२।४।६४) से बहुत्व-विवक्षा में 'अञ्' प्रत्यय का लुक् हो जाता है। तत्पश्चात् 'बिद' शब्द से यह अण्-प्रत्ययविधि होती है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।*

(२) गार्गाः । गर्ग+यञ् । गर्ग+० । गर्ग+आम्+अण् । गर्ग+अ । गार्ग्+अ । गार्ग+जस् । गार्गाः ।

यहां प्रथम 'गर्गादिभ्यो यञ्' (४ ।१ ।१०५) से गोत्रापत्य अर्थ में 'यञ्' प्रत्यय होता है । यञ्-लुगन्त 'गर्ग' शब्द से इस सूत्र से पूर्वोक्त अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है । बहुत्व-विवक्षा में पूर्ववत् 'यञ्' प्रत्यय का लुक् होता है । तत्पश्चात् 'गर्ग' शब्द से 'अण्' प्रत्ययविधि होती है । पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है ।

(३) दाक्षाः । दक्ष+इञ् । दाक्षि । दाक्षि+आम्+अण् । दाक्ष्+अ । दाक्ष+जस् । दाक्षाः ।

यहां प्रथम 'दक्ष' शब्द से 'अत इञ्' (४ ।१ ।९५) से 'इञ्' प्रत्यय होता है । इञन्त 'दाक्षि' शब्द से पूर्वोक्त अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है । पूर्ववत् अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और अंग के इकार का लोप होता है ।

विशेषः *(१) अंक और लक्षण शब्द पर्यायवाची रूप में प्रयुक्त होते हैं किन्तु यहां दोनों पदों का ग्रहण किया गया है । अतः यहां अंक और लक्षण में यह अन्तर है कि अङ्क (चिह्न) गौ आदि पशुओं में अवस्थित होता हुआ उनका स्व (आत्मीय) नहीं होता है किन्तु लक्षणभूत पदार्थ का चिह्नभूत स्व (आत्मीय) होता है । जैसे बिद लोगों का विद्यारूप चिह्न स्व=आत्मीय लक्षण है ।*

(२) यहां अञ्, यञ्, इञ् प्रत्ययान्त तीन प्रातिपदिक हैं और संघ, अंक, लक्षण ये तीन प्रत्ययार्थ हैं, अतः 'यथासंख्यमनुदेशः समानाम्' (१ ।३ ।१०) से यथासंख्य प्रत्ययविधि होनी चाहिये किन्तु यहां यथासंख्यता अभीष्ट नहीं है । यथासंख्यता के निवारण के लिये वैयाकरण यहां 'घोष' शब्द का ग्रहण करते हैं-वा०- 'घोषग्रहणमत्र कर्तव्यम्' । घोष=ग्राम ।

अणप्रत्यय-विकल्पः–

(८) शाकलाद् वा ।१२८ ।

प०वि०-शाकलात् ५ ।१ वा अव्ययपदम् ।

अनु०-तस्य, इदम्, अण्, सङ्घाङ्कलक्षणेषु इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-तस्य शाकलाद् इदं वाऽण् सङ्घाङ्कलक्षणेषु ।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् शाकलात् प्रातिपदिकाद् इदमित्यस्मिन्नर्थे विकल्पेन अण् प्रत्ययो भवति, यद् इदमिति सङ्घोऽङ्को लक्षणं चेत् तद् भवति, पक्षे च वुञ् प्रत्ययो भवति ।

उदा०-शकलस्य गोत्रापत्यम्-शाकल्यः, शाकल्येन प्रोक्तम्-शाकलम् । शाकलम् अधीयते-शाकलाः । शाकलानां सङ्घः, अङ्कः, लक्षणं वा-शाकलम्, शाकलकं वा ।

आर्यभाषाः अर्थ- *(तस्य) षष्ठी-समर्थ (शाकलात्) शाकल प्रातिपदिक से (इदम्) यह अर्थ में (वा) विकल्प से (अण्) अण् प्रत्यय होता है (सङ्घाङ्कलक्षणेषु) जो इदम्='यह' है यदि वह संघ, अंक वा लक्षण हो।*

उदा०-शकल का गोत्रापत्य-शाकल्य, शाकल्य आचार्य के द्वारा प्रोक्त ग्रन्थ-शाकल। शाकल्य आचार्य के द्वारा प्रोक्त ग्रन्थ के अध्येता (छात्र)-शाकल। शाकलजनों का संघ, अंक वा लक्षण-शाकल वा शाकलक कहाता है।

सिद्धि-(१) शाकलम्। *शकल+यञ्। शाकल्+य। शाकल्य।। शाकल्य+अण्। शाकल्+अ। शाकल।। शाकल+अण्। शाकल+०। शाकल।। शाकल+अण्। शाकल्+अ। शाकल+जस्। शाकलाः।*

*यहां प्रथम 'शकल' शब्द से **'गर्गादिभ्यो यञ्'** (४।१।१०५) से गोत्रापत्य अर्थ में 'यञ्' प्रत्यय करने पर 'शाकल्य' शब्द सिद्ध होता है। 'शाकल्य' शब्द से **'कण्वादिभ्यो गोत्रे'** (४।१।१११) से प्रोक्त अर्थ में 'अण्' प्रत्यय करने पर तथा **'आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति'** (६।४।१५१) से यकार का लोप होने पर 'शाकल' शब्द बनता है। 'शाकल' शब्द से **'तदधीते तद्वेद'** (४।२।५९) से अध्येता-वेदिता अर्थ में 'अण्' प्रत्यय होता है और उसके प्रोक्तार्थक होने से **'प्रोक्ताल्लुक्'** (४।२।१११) से 'अण्' प्रत्यय का लोप हो जाता है। तत्पश्चात् उस षाष्ठी-समर्थ, चरणवाची 'शाकल' शब्द से इदम् (संघ, अंक, लक्षण) अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय होता है। पूर्ववत् अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।*

*(२) **शाकलकम्।** यहां षष्ठी-समर्थ, चरणवाची 'शाकल' शब्द से इदम् (संघ, अंक, लक्षण) अर्थ में विकल्प पक्ष में **'गोत्रचरणाद् वुञ्'** (४।३।१२६) से 'वुञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

विशेषः *शाकल-शाकल्य आचार्य ने ऋग्वेद का पदपाठ बनाया था जिसका पाणिनि में उल्लेख है (सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे १।१।१६)। शाकल प्रोक्त शाखा का अध्ययन करनेवाले विद्वानों का भी (४।३।१२८) सूत्र में उल्लेख है। इसे शाकल चरण कहते थे, शाकलेन प्रोक्तमधीयते-शाकलाः ऋक्संहिता का वर्तमान संस्करण शाकल शाखा का है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ३१४)।*

ञ्यः-

(६) छन्दोगौक्थिकयाज्ञिकबह्वृचनटाञ्ञ्यः।१२६।

प०वि०-छन्दोग-औक्थिक-याज्ञिक-बह्वृच-नटात् ५।१ ञ्यः १।१।

स०-छन्दोगश्च औक्थिकश्च याज्ञिकश्च बह्वृचश्च नटश्च एतेषां समाहारः-छन्दोगौक्थिकयाज्ञिकबह्वृचनटम्, तस्मात्-छन्दोगौक्थिकयाज्ञिक-बह्वृचनटात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, इदमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य छन्दोगौक्थिकयाज्ञिकबह्वृचनटाद् इदं ञ्यः।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यश्छन्दोगौक्थिकयाज्ञिकबह्वृचनटेभ्यः प्रातिपदिकेभ्य इत्यस्मिन्नर्थे ञ्यः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**छन्दोगः**) छन्दोगानां धर्म आम्नायो वा-छान्दोग्यम्। (**औक्थिकः**) औक्थिकानां धर्म आम्नायो वा-औक्थिक्यम्। (**याज्ञिकः**) याज्ञिकानां धर्म आम्नायो वा-याज्ञिक्यम्। (**बह्वृचः**) बह्वृचानां धर्म आम्नायो वा-बाह्वृच्यम्। (**नटः**) नटानां धर्म आम्नायो वा-नाट्यम्।

चरणाद्धर्माम्नाययोरर्थयोः प्रत्ययो विधीयते। तत्साहचर्यान्नटशब्दादपि धर्माम्नाययोरेवार्थयोः प्रत्ययो भवति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (छन्दोग०नटात्) छन्दोग, औक्थिक, याज्ञिक, बह्वृच, नट प्रातिपदिको से (इदम्) 'यह' अर्थ में (ञ्यः) ञ्य प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(छन्दोग)** छन्दोगों का यह (धर्म/आम्नाय) छान्दोग्य। **(औक्थिक)** औक्थिकों का यह (धर्म/आम्नाय) औक्थिक्य। **(याज्ञिक)** याज्ञिकों का यह (धर्म/आम्नाय) याज्ञिक। **(नट)** नटों का यह (धर्म/आम्नाय) नाट्य।*

चरण (वैदिक विद्यापीठ) वाची शब्दों से धर्म और आम्नाय (पाठ्यग्रन्थ) अर्थ में प्रत्यय होता है। यहां 'नट' शब्द का चरणवाची शब्दों के साथ पाठ होने से 'नट' शब्द से भी धर्म और आम्नाय अर्थ में प्रत्यय होता है।

सिद्धि-छान्दोग्यम्। *छन्दोग+आम्+ञ्य। छाग्योग्+य। छाग्योग्य+सु। छान्दोग्यम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'छन्दोग' शब्द से इदम् (धर्म/आम्नाय) अर्थ में इस सूत्र में 'ञ्य' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**औक्थिक्यम्**, आदि।*

विशेषः *(१) छन्दोग-सामवेद का गान करनेवाले सामवेदी ब्राह्मणों को 'छन्दोग' कहते हैं। छन्दोग नामक चरण का धर्म एवं आम्नाय छान्दोग्य कहाता है।*

*(२) **औक्थिक**-उद्गाता द्वारा गेय सामों के संग्रह को उक्थ कहते थे। उक्थों का निश्चय सामवेदीय चरणों की परिषदों का कर्त्तव्य था। उसके लिए जिस ग्रन्थ का निर्माण हुआ वह 'उक्थ' और उसे पढ़ने-पढ़ानेवाले लोग 'औक्थिक' कहे गये (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ३२८)।*

*(३) **याज्ञिक**-यज्ञीय कर्मकाण्ड का अध्ययन करनेवाले याज्ञिक कहलाते थे। याज्ञिक चरण का धर्म/आम्नाय याज्ञिक्य कहलाता था।*

*(४) बह्वृच-बह्वृच ऋग्वेद का अत्यन्त **प्रसिद्ध** चरण था। पतञ्जलि के 'एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्' वचन से विदित होता **है** कि बह्वृचों के २१ भेद वा शाखायें थीं।*

*(५) **नटसूत्र**-यह नटों से सम्बन्धित **कोई ग्रन्थ** था। यहां उसका चरणवाची 'छन्दोग' आदि के साथ पाठ होने से विदित होता **है कि** उस नाट्यग्रन्थ की आम्नाय (छन्दोग्रन्थ) के समान प्रतिष्ठा थी।*

वुञ्-प्रतिषेधः–

(१०) न दण्डमाणवान्तेवासिषु।१३०।

प०वि०-न अव्ययपदम्, दण्डमाणवान्तेवासिषु ७।३।

स०-दण्डप्रधाना माणवा दण्डमाणवाः। **'मयूरव्यंसकादयश्च'** (२।१।७२) इति मध्यमपदलोपिसमासः। दण्डमाणवाश्च अन्तेवासिनश्च ते दण्डमाणवान्तेवासिनः, तेषु-दण्डमाणवान्तेवासिषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-**'गोत्रचरणाद् वुञ्'** (४।३।१२६) इत्यतो गोत्रग्रहण-मिहानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य गोत्राद् इदं वुञ् न दण्डमाणवान्तेवासिषु।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् गोत्रवाचिनः प्रातिपदिकाद् इत्यस्मिन्नर्थे वुञ् प्रत्ययो न भवति। दण्डमाणवान्तेवासिष्वभिधेयेषु।

उदा०-गोकक्षस्य गोत्रापत्यम्-गौकक्ष्यः। गौकक्ष्येण प्रोक्तम्-गौकक्षम्। गौकक्षम् अधीयते-गौकक्षा दण्डमाणवाः, अन्तेवासिनो वा। दाक्षकाः। माहकाः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (गोत्रात्) गोत्रवाची प्रातिपदिक से (इदम्) यह अर्थ में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय नहीं होता है (दण्डमाणवान्तेवासिषु) यदि वहां दण्डमाणव और अन्तेवासी अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-गोकक्ष का गोत्रापत्य-गौकक्ष्य कहाता है। गौकक्ष्य आचार्य के द्वारा प्रोक्त ग्रन्थ-गौकक्ष। गौकक्ष के अध्येता (छात्र)-गौकक्ष, दण्डमाणव/अन्तेवासी (शिष्य)। दक्ष का गोत्रापत्य-दाक्षि। दाक्षि आचार्य के द्वारा प्रोक्त ग्रन्थ-दाक्ष। दाक्ष ग्रन्थ के अध्येता-दाक्ष, दण्डमाणव/अन्तेवासी। महक का गोत्रापत्य-माहकि। माहकि आचार्य के द्वारा प्रोक्त ग्रन्थ-माहक। माहक ग्रन्थ के अध्येता-माहक, दण्डमाणव/अन्तेवासी।

सिद्धि-गौकक्षाः । गोकक्ष+ङस्+यञ् । गौकक्ष्+य । गौकक्ष्य । । गौकक्ष्य+अण् । गौकक्ष्+अ । गौकक्ष+सु । गौकक्षः । गौकक्ष+अण् गौकक्ष+० । गौकक्षः ।

*यहां प्रथम 'गोकक्ष' शब्द से '**गर्गादिभ्यो यञ्**' (४ ।१ ।१०५) से गोत्रापत्य अर्थ में यञ् प्रत्यय होता है । फिर गोत्रप्रत्ययान्त 'गौकक्ष्य' शब्द से '**कण्वादिभ्यो गोत्रे**' (४ ।२ ।१११) से प्रोक्त अर्थ में 'अण्' प्रत्यय करने पर '**आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति**' (६ ।४ ।१५१) से यकार का लोप होता है । 'गोकक्ष' शब्द से '**तदधीते तद्वेद**' (४ ।२ ।५९) से अध्येता-वेदिता अर्थ में 'अण्' प्रत्यय होता है किन्तु 'प्रोक्तात्लुक्' से उस 'अण्' प्रत्यय का लोप हो जाता है । 'गौकक्ष्य' शब्द से गोत्रप्रत्ययान्त होने से '**गोत्रचरणाद् वुञ्**' (४ ।३ ।१२६) से प्राप्त 'वुञ्' प्रत्यय का प्रतिषेध होने पर '**कण्वादिभ्यो गोत्रे**' (४ ।२ ।१११) से विहित 'अण्' प्रत्यय अवशिष्ट रह जाता है ।*

*(२) **दाक्षाः ।** दक्ष+इञ् । दाक्ष्+इ । दाक्षि+अण् । दाक्ष्+अ । दाक्ष+जस् । दाक्षाः ।*

*यहां प्रथम 'दक्ष' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में 'अत इञ्' (४ ।१ ।९५) से 'इञ्' प्रत्यय होता है । '**गोत्रचरणाद् वुञ्**' (४ ।३ ।१२६) से प्राप्त वुञ् प्रत्यय का इस सूत्र से प्रतिषेध होने पर '**इञश्च**' (४ ।२ ।११२) से 'अण्' प्रत्यय होता है । शेष कार्य पूर्ववत् है । ऐसे ही-**माहकाः ।***

***विशेषः** (१) **दण्डमाणव ।** छोटी श्रेणियों के छात्रों को दण्डमाणव कहते थे । तत्त्वबोधिनी के अनुसार 'दण्डमाणव' वह कहलाता था जिसका अभी उपनयन संस्कार न हुआ हो । काशिका के अनुसार पलाश आदि का दण्ड धारण करनेवाले छात्रों को 'दण्डमाणव' कहते थे (दण्डप्रधाना माणवाः दण्डमाणवाः-काशिका) । वे अपना डंडा लिये हुये आश्रम में इधर से उधर फिरते दिखाई देते थे ।*

*(२) **अन्तेवासी**-जब वेद पढ़ने का समय आता तो आचार्य उस 'माणव' का उपनयन-संस्कार करते थे । इस संस्कार के बाद वह 'माणव' सच्चे अर्थों में आचार्य का सामीप्य प्राप्त करता था । मनसा, वाचा, कर्मणा आचार्य के समीप पहुंचा हुआ ब्रह्मचारी 'अन्तेवासी' इस अन्वितार्थ पदवी को धारण करता था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २७६) ।*

छः-

(११) रैवतिकादिभ्यश्छः ।१३१।

प०वि०-रैवतिक-आदिभ्यः ५ ।३ छः १ ।१ ।

स०-रैवतिक आदिर्येषां ते रैवतिकादयः, तेभ्यः-रैवतिकादिभ्यः (बहुव्रीहिः) ।

अनु०-तस्य, इदमित्यनुवर्तते।

अन्वयः-तस्य रैवतिकादिभ्य इदं छः।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो रैवतिकादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्य इदमित्यस्मिन्नर्थे छः प्रत्ययो भवति।

उदा०-रेवत्या अपत्यम्-रैवतिकः। रैवतिकस्येदम्-रैवतकीयम्। स्वपिशस्यापत्यम्-स्वापिशिः। स्वापिशेरिदम्-स्वापिशीयम्।

रैवतिक। स्वापिशि। क्षेमवृद्धि। गौरग्रीवि। औदमेयि। औदवाहि। बैजवापि। इति रैवतिकादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (रैवतिकादिभ्यः) रैवतिक आदि प्रातिपदिकों से (इदम्) 'यह' अर्थ में (छः) छ प्रत्यय होता है।*

उदा०-रेवती का पुत्र-रैवतिक। रैवतिक का यह-रैवतकीय। स्वपिश का पुत्र-स्वापिशि। स्वापिशिका यह-स्वापिशीय।

सिद्धि-(१) ***रैवतकीयम्।*** *रेवती+ठञ्। रैवत्+इक। रैवतिक।। रैवतक+छ। रैवतक्+ईय। रैवतकीय+सु। रैवतकीयम्।*

यहां प्रथम रेवती शब्द से अपत्य अर्थ में ***'रेवत्यादिभ्यष्ठञ्'*** *(४।१।१४६) से 'ठञ्' प्रत्यय होता है। पुनः षष्ठी-समर्थ गोत्रप्रत्ययान्त 'रैवतिक' शब्द से 'इदम्' अर्थ में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय होता है। यहां* ***'गोत्रचरणाद् वुञ्'*** *(४।२।१११) से 'वुञ्' प्रत्यय प्राप्त था, अतः उसके बाधक 'छ' प्रत्यय का विधान किया गया है।*

(२) ***स्वापिशीयम्।*** *स्वपिश+इञ्। स्वापिश्+इ। स्वापिशि।। स्वापिशि+छ। स्वपिश्+ईय। स्वापिशीय+सु। स्वापिशीयम्।*

यहां प्रथम 'स्वपिश' शब्द से अपत्य अर्थ ***'अत इञ्'*** *(४।१।९५) से इञ् प्रत्यय है। पुनः षष्ठी-समर्थ गोत्रप्रत्ययान्त 'स्वापिशि' शब्द से 'इदम्' अर्थ में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय होता है। यहां* ***'इञश्च'*** *(४।२।११२) से 'अण्' प्रत्यय प्राप्त था अतः यह उसके बाधक 'छ' प्रत्यय का विधान किया गया है।*

विशेषः *काशिकावृत्तिकार पं० जयादित्य ने* ***'कौपिञ्जलहास्तिपदादण्, आथर्वणिकस्येकलोपश्च'*** *इन दोनों को पाणिनीय सूत्र मानकर इनकी व्याख्या की है। महाभाष्य के अनुसार ये दोनों वार्तिकसूत्र हैं। अतः इनका यहां प्रवचन नहीं किया जाता है।*

।। इति शेषार्थप्रत्ययप्रकरणम्।।

विकारावयवार्थप्रत्ययप्रकरणम्

यथाविहितं प्रत्ययः–

(१) तस्य विकारः।१३२।

प०वि०–तस्य ६।१ विकारः १।१।

अन्वयः–तस्य प्रातिपदिकाद् विकारो यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् विकार इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, इत्यधिकारोयम्। प्रकृतेरवस्थान्तरं विकार इति कथ्यते।

उदा०–अश्मनो विकारः–आश्मः, आश्मनो वा। भस्मनो विकारः–भास्मनः। मृत्तिकाया विकारः–मार्त्तिकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ प्रातिपदिक से (विकारः) विकार अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

उदा०–अश्मा (पत्थर) का विकार–आश्म, वा आश्मन। भस्म का विकार–भास्मन। मृत्तिका (मिट्टी) का विकार–मार्त्तिक।

सिद्धि–आश्मः। *अश्मन्+ङस्+अण्। आश्मन्+अ। आश्म्+अ। आश्मः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'अश्मन्' शब्द से इदम् अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है। अतः **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से यथाविहित प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और वा०- **'अश्मनो विकार उपसंख्यानम्'** (६।४।१४४) से 'अश्मन्' शब्द के टि-भाग (अन्) का विकल्प से लोप होता है। जहां टि-भाग का लोप नहीं होता वहां–आश्मनः। ऐसे ही–**भास्मनः, मार्त्तिकः** आदि।*

विशेषः *'तस्य' इस षष्ठी-समर्थ विभक्ति की अनुवृत्ति होने पर पुनः इस सूत्र में 'तस्य' पद का ग्रहण **'शेषे'** (४।२।९२) इस शेष-अधिकार की निवृत्ति के लिये है।*

यथाविहितं प्रत्ययः–

(२) अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः।१३३।

प०वि०–अवयवे ७।१ च अव्ययपदम्, प्राणि-ओषधि-वृक्षेभ्यः ५।३।

स०–प्राणी च ओषधिश्च वृक्षश्च ते प्राण्योषधिवृक्षाः, तेषु–प्राण्योषधिवृक्षेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, विकार इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य प्राण्योषधिवृक्षेभ्योऽवयवे विकारे च यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः प्राणि-ओषधि-वृक्षवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽवयवे विकारे चार्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, इत्यधिकारोऽयम्।

उदा०-**(प्राणी)** कपोतस्यावयवो विकारो वा-कापोतः। मायूरः। तैत्तिरः। **(ओषधिः)** मूर्वाया अवयवो मौर्वं काण्डम्। मूर्वाया विकारो मौर्वं भस्म। **(वृक्षः)** करीरस्यावयवः कारीरं काण्डम्। करीरस्य विकारः कारीरं भस्म।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः) प्राणी, ओषधि और वृक्षवाची प्रातिपदिकों से (अवयवे) अवयव=अंग (च) और (विकारः) विकार अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(प्राणी)** कपोत=कबूतर का अवयव वा विकार-कापोत। मयूर=मोर का अवयव वा विकार-मायूर। तित्तिरि=तीतर का अवयव वा विकार-तैत्तिर। **(ओषधि)** मूर्वा=मरोड़फली का अवयव-मौर्व काण्ड (तना)। मूर्वा का विकार-मौर्व भस्म। **(वृक्ष)** करीर=कैर का अवयव-कारीर काण्ड (तना)। करीर का विकार कारीर भस्म।*

*सिद्धि-**(१) कपोतः।** कपोत+ङस्+अञ्। कापोत्+अ। कापोत+सु। कापोतः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, प्राणीवाची 'कपोत' शब्द से अवयव और विकार अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है। अतः इस अधिकार में वक्ष्यमाण **'प्राणिरजतादिभ्योऽञ्'** (४।३।१५२) से यथाविहित 'अञ्' प्रत्यय होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**मायूरः, तैत्तिरः।***

*(२) **मौर्वम्।** मूर्वा+ङस्+अण्। मौर्व्+अ। मौर्व+सु। मौर्वम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, ओषधिवाची 'मूर्वा' शब्द से अवयव और विकार अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है। अतः **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से यथाविहित प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही-**कारीरम्।***

विशेषः *(१) **मूर्वा**-मरोड़फली नाम की बेल जिसके रेशे निकालकर धनुष के रोदे की डोरी और क्षत्रिय का कटिसूत्र बनाया जाता है (श०कौ०)।*

(२) ओषधि और वृक्ष में यह अन्तर है कि ओषधियां फल-पाक के पश्चात् नष्ट हो जाती हैं, वृक्ष नहीं। वृक्ष पुष्पवान् और फलवान् होते हैं। वनस्पतियां केवल फलवान् होती हैं। वृक्ष में वनस्पतियों का भी अन्तर्भाव हो जाता है।

(३) इस प्रकरण में विधीयमान प्रत्यय प्राणी, ओषधि और वृक्षवाची प्रातिपदिकों से अवयव और विकार अर्थ में होते हैं। अन्य प्रातिपदिकों से केवल विकार अर्थ में होते हैं क्योंकि यह विकार और अवयव अर्थ का एक साथ अधिकार इस अपवाद के विधान के लिये किया गया है।

अण्–

(२) बिल्वादिभ्योऽण्।१३४।

प०वि०-बिल्व-आदिभ्यः ५।३ अण् १।१।

स०-बिल्व आदिर्येषां ते बिल्वादयः, तेभ्यः-बिल्वादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तस्य, विकारः, अवयवे च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य बिल्वादिभ्योऽवयवे विकारे चाऽण्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो बिल्वादिभ्यः **प्रातिपदिकेभ्योऽवयवे** विकारे चार्थेऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-बिल्वस्यावयवो विकारो वा बैल्वः। गवेधुकाया **अवयवो** विकारो वा गावेधुकः।

बिल्व। व्रीहि। काण्ड। मुद्ग। इक्षु। वेणु। गवेधुका। कर्पासी। पाटली। कर्कन्धू। कुटीर। इति बिल्वादयः।।

आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (बिल्वादिभ्यः) बिल्व आदि प्रातिपदिकों से (अवयवे) अवयव (च) और (विकारः) विकार अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय **होता है।

उदा०-बिल्व=बेलगिरी का अवयव वा विकार-बैल्व। गवेधुका=(गौ आदि पशुओं के खाने का घास) का अवयव वा विकार-गावेधुक।

***सिद्धि-(१) बैल्वः।** बिल्व+ङस्+अण्। बैल्व्+अ। बैल्व+सु। बैल्वः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'बिल्व' शब्द से अवयव और विकार अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। **'बिल्वतिष्ययोः स्वरितो वा'** (फिट्० १।२३) से 'बिल्व' शब्द अन्तःस्वरित वा अन्तोदात्त होने से अनुदात्तादि है-बिल्वः, बिल्वः। अतः 'अनुदात्तादेश्च' (४।३।१४०) से 'अञ्' प्रत्यय प्राप्त था। यह 'अण्' प्रत्यय उसका अपवाद है।*

(२) गावेधुकः । गवेधुका+ङस्+अण् । गावेधुक्+अ । गावेधुक+सु । गावेधुकः ।

यहां षष्ठी-समर्थ 'गवेधुका' शब्द से पूर्ववत् 'अण्' प्रत्यय है। यहां ***'कोपधाच्च'*** *(४।३।१३७) से ही 'अण्' प्रत्यय सिद्ध था किन्तु* ***'मयड्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः'*** *(४।३।१४३) से 'मयट्' प्रत्यय भी प्राप्त होता है। अतः यह 'अण्' प्रत्यय उस 'मयट्' प्रत्यय का अपवाद है।*

अण्–

(३) कोपधाच्च ।१३५।

प०वि०–कोपधात् ५।१ च अव्ययपदम्।

स०–क उपधा यस्य तत् कोपधम्, तस्मात्-कोपधात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०–तस्य, विकारः, अवयवे, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य कोपधाच्च अवयवे विकारे चाऽण्।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थात् ककारोपधात् प्रातिपदिकाच्च यथायोगम् अवयवे विकारे चार्थेऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०–तर्कोर्विकारस्तार्कवम्। तित्तिडीकस्यावयवो विकारो वा तैत्तिडीकम्। मण्डूकस्यावयवो विकारो वा माण्डूकम्। दर्दुरूकस्यावयवो विकारो वा दार्दुरूकम्। मधूकस्यावयवो विकारो वा माधूकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (कोपधात्) ककार उपधावान् प्रातिपदिक से (च) भी (अवयवे) अवयव (च) और (विकारः) विकार अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

उदा०–तर्कु (ताकू जिस पर चर्खे में सूत लिपटता जाता है) का विकार-तार्कव (सूत)। तित्तिडीक=इमली के वृक्ष का अवयव वा विकार-तैत्तिडीक। मण्डूक=मेंढक का अवयव वा विकार-माण्डूक। दर्दुरूक=मेंढक का अवयव वा विकार-दार्दुरूक। मधूक=महुए के वृक्ष का अवयव वा विकार-माधूक।

*सिद्धि-**तार्कवम्।** तर्कु+ङस्+अण्। तार्को+अ। तार्कव+सु। तार्कवम्।*

यहां षष्ठी-समर्थ, ककारोपध 'तर्कु' शब्द से विकार अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। यह ***'ओरञ्'*** *(४।३।३९) से प्राप्त 'अञ्' प्रत्यय का अपवाद है।* ***'तद्धितेष्वचामादेः'*** *(७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि तथा* ***'ओर्गुणः'*** *(६।४।१४६) से अंग को गुण होता है। ऐसे ही-* ***'तैत्तिडीकम्'*** *आदि।*

तित्तिडीक आदि शब्द 'लघावन्ते०' (फिट्० २।१९) से मध्योदात्त होने से अनुदात्तादि हैं, अतः यह 'अनुदात्तादेश्च' (४।३।१४०) से प्राप्त 'अञ्' प्रत्यय का अपवाद है।

विशेषः *यहां 'तर्कु' शब्द से केवल विकार अर्थ में और तित्तिडीक (वृक्ष), मण्डूक (मेंढक) दर्दुरूक (मेंढक) मधूक (वृक्ष) इन प्राणीवाची और वृक्षवाची शब्दों से 'अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः' (४।३।१३५) इस नियम-सूत्र से विकार और अवयव अर्थ में 'अण्' प्रत्यय होता है।*

अण् (षुक)—

(४) त्रपुजतुनोः षुक्।१३६।

प०वि०-त्रपु-जतुनोः ६।२ षुक् १।१।

स०-त्रपु च जतु च ते त्रपुजतुनी, तयोः-त्रपुजतुनोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, विकार इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य त्रपुजतुभ्यां विकारोऽण् तयोश्च षुक्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाभ्यां त्रपुजतुभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां विकार इत्यस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति, तयोश्च षुक्-आगमो भवति।

उदा०-**(त्रपु)** त्रपुणो विकारः-त्रापुषम्। **(जतु)** जतुनो विकारः-जातुषम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (त्रपुजतुनोः) त्रपु, जतु प्रातिपदिकों से (विकारः) विकार अर्थ में (अण्) प्रत्यय होता है (षुक्) और उन्हें षुक् आगम होता है।*

उदा०-(त्रपु) त्रपु=सीसा/रांग का विकार-त्रापुष। जतु=गोंद/लाख का विकार-जातुष।

सिद्धि-त्रापुषम्। त्रपु+ङस्+अण्। त्रापुषुक्+अ। त्रापुष्+अ। त्रापुष+सु। त्रापुषम्।

यहां षष्ठी-समर्थ 'त्रपु' शब्द से विकार अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय और 'त्रपु' शब्द को 'षुक्' आगम होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-जातुषम्।

अञ्—

(५) ओरञ्।१३६।

प०वि०-ओः ५।१ अञ् १।१।

अनु०-तस्य, विकारः, अवयवे, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य ओरवयवे विकारे चाऽण्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् ओः=उकारान्तात् प्रातिपदिकाद् अवयवे विकारे चार्थेऽञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-देवदारोरवयवो विकारो वा दैवदारवम्। भद्रदारोरवयवो विकारो वा भाद्रदारवम्।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (ओः) उकारान्त प्रातिपदिक से (अवयवे) अवयव (च) और (विकारः) विकार अर्थ में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-देवदारु का अवयव विकार-दैवदारव। देवदारु=देवदार एक पहाड़ी पेड़ है जिसकी लकड़ी कड़ी, हल्की और पीले रंग की होती है। भद्रदारु का अवयव वा विकार-भाद्रदारव। 'भद्रदारु' शब्द 'देवदारु' का पर्यायवाची है।

__सिद्धि-दैवदारवम्।__ देवदारु+ङस्+अण्। दैवदारो+अ। दैवदारव+सु। दैवदारवम्।

यहां षष्ठी-समर्थ, उकारान्त 'देवदारु' शब्द से इसके वृक्षवाची होने से पूर्वोक्त नियम से अवयव और विकार अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। __'तद्धितेष्वचामादेः'__ (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि तथा __'ओर्गुणः'__ (४।४।१४६) से अंग को गुण होता है। देवदारु और भद्रदारु शब्द __'पीतद्र्वर्थानाम्'__ (फिट्० २।१४) से आद्युदात्त हैं। अतः __'अनुदात्तादेश्च'__ (४।३।१३८) का यहां अवकाश नहीं है अतः ये इस सूत्र के उदाहरण हैं। पीतद्रु=सरल वनस्पति।

अञ्-

(६) अनुदात्तादेश्च।१३८।

प०वि०-अनुदात्त-आदेः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-तस्य, विकारः, अवयवे, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्याऽनुदात्तादेरवयवे विकारे चाऽञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् अनुदात्तादेः प्रातिपदिकाच्च अवयवे विकारे चार्थेऽञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-दधित्थस्यावयवो विकारो वा दाधित्थम्। कपित्थस्य विकारोऽवयवो वा कापित्थम्। महित्थस्यावयवो विकारो वा माहित्थम्।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (अनुदात्तादेः) अनुदात्तादि प्रातिपदिक से (च) भी (अवयवे) अवयव (च) और (विकारः) विकार अर्थ में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-दधित्थ=कैथा वृक्ष का अवयव वा विकार-दाधित्थ। कपित्थ=कैथा वृक्ष का अवयव वा विकार-कापित्थ। महित्थ वृक्ष का अवयव वा विकार-माहित्थ।

सिद्धि-दाधित्थम्। *यहां षष्ठी-समर्थ, अनुदात्तादि प्रातिपदिक से अवयव और विकार अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है।*

दध्नि तिष्ठतीति दधित्थः। *यहां 'सुपि स्थः' (३।२।४) से 'क' प्रत्यय, 'आतो लोप इटि च' (६।४।६४) से 'स्था' आकार का लोप* ***'पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्'*** *(६।३।१०९) से 'स्था' के 'स्' को 'त्' आदेश होता है। यहां उपपद समास है अतः* ***'समासस्य'*** *(६।१।२२०) से आन्तोदात्त स्वर होने से 'दधित्थ' शब्द अनुदात्तादि है-दधित्थः।*

*यहां पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**कापित्थम्, माहित्थम्।***

'कपित्थ' शब्द 'दधित्थ' शब्द का पयार्चवाची है। इस वृक्ष के फल कपि=वानरों को प्रिय होते हैं, अतः इसे 'कपित्थ' कहते हैं।

अञ्-विकल्पः-

(७) पलाशादिभ्यो वा।१३६।

प०वि०-पलाश-आदिभ्यः ५।३ वा अव्ययपदम्।

अनु०-तस्य, विकारः, अवयवे, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य पलाशादिभ्योऽवयवे विकारे च वाऽञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः पलाशादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽवयवे विकारे चार्थे विकल्पेनाऽञ् प्रत्ययो भवति, पक्षे चाऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पलाशस्यावयवो विकारो वा पालाशम्। खादिरम्।

पलाश। खदिर। शिंशपा। स्यन्दन। करीर। शिरीष। यवास। विकङ्कत। इति पलाशादयः।।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तस्य) षष्ठी-समर्थ (पलाशादिभ्यः) पलाश आदि प्रातिपदिकों से (अवयवे) अवयव (च) और (विकारः) विकार अर्थ में (वा) विकल्प से (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है और पक्ष में औत्सर्गिक अण् प्रत्यय होता है।*

उदा०-पलाश (ढाक) वृक्ष का अवयव वा विकार-पालाश। खदिर (कत्था) वृक्ष का अवयव वा विकार-खादिर।

सिद्धि-(१) पालशम्। *पलाश+ङस्+अञ्। पालाश्+अ। पालाश+सु। पालाशम्।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'पलाश' शब्द से अवयव वा विकार अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-खादिरम्। यहां 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (६।४।९४) से आद्युदात्त स्वर होता है-पालाशम्। ऐसे ही-खादिरम्।

(२) पालशम्। यहां विकल्प पक्ष में 'प्राग्दीव्यतोऽण्' (४।१।८३) से प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय करने पर भी 'पालाशम्' पद सिद्ध होता है किन्तु यहां 'आद्युदात्तश्च' (३।१।३) से 'अण्' प्रत्यय के आद्युदात्त स्वर होने से पद का अन्तोदात्त स्वर होता है-पालाशम्। ऐसे ही-खादिरम्।

ट्लञ्–

(८) शम्याष्ट्लञ्।१४०।

प०वि०-शम्याः ५।१ ट्लञ् १।१।

अनु०-तस्य, विकारः, अवयवे च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य शम्या अवयवे विकारे च ट्लञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाच्छमी-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अवयवे विकारे चार्थे ट्लञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-शम्या अवयवो विकारो वा शामीलं भस्म। शामीली स्रुक्। **'चातुर्मास्ये वरुणप्रघासेषु शमीमय्यः स्रुचो भवन्तीति श्रुतम्'** इति **पदमञ्जर्यां** पण्डितहरदत्तमिश्रः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (शम्याः) शमी प्रातिपदिक से (अवयवे) अवयव (च) और (विकारः) विकार अर्थ में (ट्लञ्) प्रत्यय होता है।*

उदा०-शमी (जांटी) वृक्ष का अवयव वा विकार-शामिल भस्म। शामीली स्रुक् (आहुति की चमस)।

***सिद्धि-(१) शामिलम्।** शमी+ङस्+ट्लञ्। शामी+ल। शामील+सु। शामीलम्।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'शमी' शब्द से अवयव वा विकार अर्थ में इस सूत्र से 'ट्लञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है।

'शमी' शब्द 'षिद्गौरादिभ्यश्च' (४।१।४१) से ङीष्-प्रत्ययान्त है। 'आद्युदात्तश्च' (३।१।३) से प्रत्यय के आद्युदात्त होने से 'शमी' शब्द अनुदात्तादि है। 'अनुदात्तेरश्च' (४।३।१३८) से यहां 'अञ्' प्रत्यय प्राप्त था। यह सूत्र उसका अपवाद है।

(२) शामीली। यहां स्त्रीत्व-विवक्षा में 'टिड्ढाणञ्' (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है।

मयट्–

(६) मयड्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः ।१४१।

प०वि०–मयट् १।१ वा अव्ययपदम्, एतयोः ७।२ भाषायाम् ७।१ अभक्ष्य-आच्छादनयोः ७।२।

स०–भक्ष्यं च आच्छादनं च ते भक्ष्याच्छादने, न भक्ष्याच्छादने अभक्ष्याच्छादने, तयोः-अभक्ष्याच्छादनयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भित नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–तस्य, विकारः, अवयवे, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य प्रातिपदिकाद् एतयोरभक्ष्याच्छादनयोर्विकारावयवयोर्भाषायां वा मयट्।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् एतयोरभक्ष्याच्छादनयोर्विकारावयवयोरर्थयोर्भाषायां विकल्पेन मयट् प्रत्ययो भवति, पक्षे च यथाप्राप्तं प्रत्यया भवन्ति।

उदा०–अश्मनोऽवयवो विकारो वाऽश्ममयम्, आश्मनम्। मूर्वाया अवयवो विकारो वा मूर्वामयम्, मौर्वम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ प्रातिपदिक से (एतयोः) इन (अभक्ष्य-आच्छादनयोः) भक्ष्य और आच्छादन अर्थ से रहित (अवयवे) अवयव (च) और (विकारः) विकार अर्थ में (भाषायाम्) लौकिक भाषा विषय में (वा) विकल्प से (मयट्) मयट् प्रत्यय होता है और पक्ष में यथाप्राप्त प्रत्यय होते हैं।*

उदा०–अश्मा (पत्थर) का अवयव वा विकार-अश्ममय, आश्मन। मूर्वा (मरोड़फली) का अवयव वा विकार-मूर्वामिय, मौर्व।

सिद्धि-(१) अश्ममयम्। *अश्मन्+ङस्+मयट्। अश्म+मय। अश्ममय+सु। अश्ममयम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'अश्मन्' शब्द से भक्ष्य और आच्छादन (वस्त्र) से रहित अवयव और विकार अर्थ में इस सूत्र से 'मयट्' प्रत्यय है। **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से अंग के नकार का लोप होता है।*

*(२) **आश्मनम्।** यहां 'अश्मन्' शब्द से विकल्प पक्ष में **'प्रागदीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से प्रागदीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् (४।३।१३२) है। ऐसे ही-**मूर्वामयम्, मौर्वम्।***

विशेषः *यहां 'एतयोः' पद के पाठ से विकार और अवयव इन दोनों अर्थों में जिनसे प्रत्यय-विधान किया गया है उनसे लौकिक भाषा में भक्ष्य और आच्छादन को छोड़कर 'मयट्' प्रत्यय भी होता है। जैसे-**कपोतमयम्, मायूरम्** इत्यादि।*

नित्यं मयट्–

(१०) नित्यं वृद्धशरादिभ्यः।१४२।

प०वि०-नित्यम् १।१ वृद्ध-शरादिभ्यः ५।३।

स०-शर आदिर्येषां ते शरादयः, वृद्धं च शरादयश्च ते वृद्धशरादयः, तेभ्यः-वृद्धशरादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, विकारः, अवयवे, च, भाषायाम्, अभक्ष्याच्छादनयोः मयट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य वृद्धशरादिभ्योऽभक्ष्याच्छादनयोर्विकारावयवयोर्भाषायां नित्यं मयट्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो वृद्धसंज्ञकेभ्यः शरादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्योऽभक्ष्याच्छादनयोर्विकारावयवयोरर्थयोर्भाषायां विषये नित्यं मयट् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(वृद्धम्)** आम्रस्यावयवो विकारो वा-आम्रमयम्। शालमयम्। शाकमयम्। **(शरादिः)** शरस्यावयवो विकारो वा-शरमयम्। दर्भमयम् मृण्मयम्।

शर। दर्भ। मृत्। कुटी। तृण। सोम। बल्वज। इति शरादयः।।

आर्यभाषाः ***अर्थ***-*(तस्य) षष्ठी-समर्थ (वृद्ध-शरादिभ्यः) वृद्धसंज्ञक और शर आदि प्रातिपदिकों से (अभक्ष्याच्छादनयोः) भक्ष्य और आच्छादन अर्थ से रहित (अवयवे) अवयव (च) और (विकारः) विकार अर्थ में (भाषायाम्) लौकिक भाषा में (नित्यम्) सदा (मयट्) मयट् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(वृद्ध) आम्र वृक्ष का अवयव वा विकार-आम्रमय। शाल (साळ) वृक्ष का अवयव वा विकार-शालमय। शाक (साग) का अवयव वा विकार-शाकमय। (शरादि) शर (सरपत=सरकंडा) का अवयव वा विकार-शरमय। दर्भ (डाभ) का अवयव वा विकार-दर्भमय। मृत् (मिट्टी) का अवयव वा विकार-मृण्मय।

*सिद्धि-(१) **आम्रमयम्।** आम्र+ङस्+मयट्। आम्र+मय। आम्रमय+सु। आम्रमयम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, वृद्धसंज्ञक 'आम्र' शब्द से अवयव और विकार अर्थ में इस सूत्र से नित्य 'मयट्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**शालमयम्, शाकमयम्, शरमयम्** आदि।*

*(२) **मृण्मयम्।** मृत्+ङस्+मयट्। मृत्+मय। मृद्+मय। मृन्+मय। मृण+मय। मृण्मय+सु। मृण्मयम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'मृत्' शब्द से पूर्ववत् 'मयट्' प्रत्यय है। **'झलां जशोऽन्ते'** (८।२।३९) से 'त्' को 'जश्' द् **'यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा'** (८।४।४५) से 'द्' को अनुनासिक 'न्' और वा०- **'ऋवर्णाच्चेति वक्तव्यम्'** (८।४।१) से 'न्' को णत्व होता है।*

मयट्–

(११) गोश्च पुरीषे।१४३।

प०वि०-गो: ५।१ च अव्ययपदम्, पुरीषे ७।१।

अनु०-तस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तस्य गोश्च पुरीषे मयट्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् गो-शब्दात् प्रातिपदिकाच्च पुरीषेऽर्थे मयट् प्रत्ययो भवति।

उदा०-गो: पुरीषम्-गोमयम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (गो:) 'गो' प्रातिपदिक से (पुरीषे) पुरीष=मल अर्थ में (मयट्) मयट् प्रत्यय होता है।*

उदा०-गौ (गाय) का पुरीष (मल)-गोमय (गोबर)।

*सिद्धि-**गोमयम्।** गो+ङस्+मयट्। गो+मय। गोमय+सु। गोमयम्।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'गो' शब्द से पुरीष (मल) अर्थ में इस सूत्र से 'मयट्' प्रत्यय है।

***विशेषः** यहां 'गो' शब्द से विकार-अवयव के प्रकरण में पुरीष (मल) अर्थ में मयट् प्रत्यय का विधान किया गया है। पुरीष गौ का अवयव और विकार नहीं है अत: 'गौ' के सम्बन्धमात्र (तस्य-इदम्) में मयट् प्रत्यय होता है।*

मयट्–

(१२) पिष्टाच्च।१४४।

प०वि०-पिष्टात् ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-तस्य, विकार इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य पिष्टाच्च विकारो मयट्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् पिष्टात् प्रातिपदिकाच्च विकार इत्यस्मिन्नर्थे मयट् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पिष्टस्य विकारः-पिष्टमयं भस्म।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (पिष्टात्) पिष्ट प्रातिपदिक से (च) भी (विकारः) विकार अर्थ में (मयट्) मयट् प्रत्यय होता है।*

उदा०-पिष्ट (चूर्ण) का विकार-पिष्टमय भस्म।

***सिद्धि-पिष्टमयम्।** पिष्ट+ङस्+मयट्। पिष्ट+मय। पिष्टमय+सु। पिष्टमयम्।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'पिष्ट' शब्द से विकार अर्थ में इस सूत्र से 'मयट्' प्रत्यय है। यह प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय का अपवाद है।

कन्–

(१३) संज्ञायां कन्।१४५।

प०वि०-संज्ञायाम् ७।१ कन् १।१।

अनु०-तस्य, विकारः इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य पिष्टाद् विकारः कन् संज्ञायाम्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् पिष्टात् प्रातिपदिकाद् विकार इत्यस्मिन्नर्थे कन् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-पिष्टस्य विकारः-पिष्टमयः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (पिष्टात्) पिष्ट प्रातिपदिक से (विकारः) विकार अर्थ में (कन्) कन् प्रत्यय होता है (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।*

उदा०-पिष्ट (चूर्ण) का विकार-पिष्टक (पूड़ी, रोटी आदि)।

***सिद्धि-पिष्टकः।** पिष्टक+ङस्+कन्। पिष्ट+क। पिष्टक+सु। पिष्टकः।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'पिष्ट' शब्द से विकार अर्थ में और संज्ञा विषय में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है। यह पूर्वोक्त 'मयट्' प्रत्यय का अपवाद है।

मयट्–

(१४) व्रीहेः पुराडाशे।१४६।

प०वि०-व्रीहेः ५।१ पुरोडाशे ७।१।

अनु०-तस्य, विकार इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य व्रीहेर्विकारो मयट् पुरोडाशे।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् व्रीहि-शब्दात् प्रातिपदिकाद् विकार इत्यस्मिन्नर्थे मयट् प्रत्ययो भवति, पुरोडाशेऽभिधेये।

उदा०-व्रीहेर्विकारो व्रीहिमयः पुरोडाशः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (व्रीहेः) व्रीहि शब्द से (विकारः) विकार अर्थ में (मयट्) मयट् प्रत्यय होता है (पुरोडाशे) यदि वहां विकारात्मक पुराडाश अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-व्रीहि (चावल) का विकार-व्रीहिमय पुरोडाश।

सिद्धि-व्रीहिमयः। व्रीहि+ङस्+मयट्। व्रीहि+मय। व्रीहिमय+सु। व्रीहिमयः।

यहां षष्ठी-समर्थ 'व्रीहि' शब्द से विकार अर्थ में और पुरोडाश अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'मयट्' प्रत्यय है।

***विशेषः** पुरोडाश-चावल के आटे की बनी हुई टिकिया जो कपाल में पकाई जाती थी। यज्ञ में इसके टुकड़े काटकर और मन्त्र पढ़कर देवताओं के उद्देश्य से इसकी आहुति दी जाती थी (श०कौ०)।*

मयट्-

(१५) असंज्ञायां तिलयवाभ्याम्।१४७।

प०वि०-असंज्ञायाम् ७।१ तिल-यवाभ्याम् ५।२।

स०-न संज्ञा इति असंज्ञा, तस्याम्-**असंज्ञायाम्** (नञ्तत्पुरुषः)। तिलं च यवश्च तौ तिलयवौ, ताभ्याम्-**तिलयवाभ्याम्** (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, विकारः, अवयवे, च, **मयट्** इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य तिलयवाभ्याम् **अवयवे विकारे** च मयट् असंज्ञायाम्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाभ्यां **तिलयवाभ्यां** प्रातिपदिकाभ्याम् अवयवे विकारे चार्थे मयट् प्रत्ययो भवति, असंज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-**(तिलम्)** तिलस्यावयवो विकारो वा-तिलमयम्। **(यवः)** यवस्यावयवो विकारो वा-यवमयम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (तिलयवाभ्याम्) तिल, यव प्रातिपदिकों से (विकारः) विकार अर्थ में (मयट्) मयट् प्रत्यय होता है (असंज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति न हो।*

उदा०-(तिल) तिल का अवयव वा विकार-तिलमय। (यव) यव=जौ का अवयव वा विकार-यवमय।

***सिद्धि-तिलमयम्।** तिल+ङस्+मयट्। तिल+मय। तिलमय+सु। तिलमयम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, 'तिल' शब्द से विकार अर्थ में और असंज्ञा अर्थ की प्रतीति में इस सूत्र से 'मयट्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**यवमयम्।** संज्ञाविषय में तो **'अवयवे च प्राण्यौषधिवृक्षेभ्यः'** (४।३।१३३) से प्रागदीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय होता है-**तैलम्।***

मयट्-

(१६) द्व्यचश्छन्दसि।१४८।

प०वि०-द्व्यचः ५।१ छन्दसि ७।१।

स०-द्वावचौ यस्मिँस्तद् द्व्यच्, तस्मात्-द्व्यचः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तस्य, विकारः, अवयवे, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि तस्य द्व्यचोऽवयवे विकारे च मयट्।

अर्थः-छन्दसि विषये तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् द्वि-अचः प्रातिपदिकाद् अवयवे विकारे चार्थे मयट् प्रत्ययो भवति।

उदा०-यस्य पर्णमयी जुहूर्भवति (तै०सं० ३।५।७।१)। दर्भमयं वासो भवति (मै०सं० १।११।८)। शरमयं बर्हिर्भवति (आ०श्रौ० ९।७।५)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तस्य) षष्ठी-समर्थ (द्वि-अचः) दो अचोंवाले प्रातिपदिक से (अवयवे) अवयव (च) और (विकारः) विकार अर्थ में (मयट्) मयट् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-संस्कृत भाग में देख लेवें। अर्थ इस प्रकार है-जिसकी **पर्णमयी** (पर्ण का विकार) जुहू (आहुति चमस) होती है। **दर्भमय** (दर्भ का विकार) वास=आच्छादन होता है। **शरमय** (सरकंडे का विकार) बर्हिः=आसन होता है।*

***सिद्धि-पर्णमयी।** पर्ण+ङस्+मयट्। पर्ण+मय। पर्णमय+ङीप्। पर्णमयी+सु। पर्णमयी।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, दो अचोंवाले 'पर्ण' शब्द से अवयव और विकार अर्थ में इस सूत्र से 'मयट्' प्रत्यय है। 'मयट्' प्रत्यय के टित् होने से स्त्रीत्व-विवक्षा में **'टिड्ढाणञ्'** (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**दर्भमयम्, शरमयम्।***

मयट्-प्रतिषेधः--

(१७) नोत्वद्वर्ध्रबिल्वात्।१४६।

प०वि०-न अव्ययपदम्, उत्वद्-वर्ध्र-बिल्वात् ५।१।

स०-उद् अस्त्यस्मिँस्तद् उत्वत्। उत्वच्च वर्ध्रश्च बिल्वश्च एतेषां समाहार उत्वद्वर्ध्रबिल्वम्, तस्मात्-उत्वद्वर्ध्रबिल्वात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, विकारः, अवयवे, च, मयट्, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि तस्य उत्वद्वर्ध्रबिल्वाद् अवयवे विकारे च मयट् न।

अर्थः-छन्दसि विषये तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् उत्वतो वर्ध्रबिल्वाभ्यां च प्रातिपदिकाभ्यामवयवे विकारे चार्थे मयट् प्रत्ययो न भवति।

उदा०-**(उत्वत्)** मौञ्जं शिक्यम् (तै०सं० ५।१।१०।५)। गार्मुतं चरुम् (तै०सं० २।४।४।१)। **(वर्ध्रम्)** वार्ध्री=बालग्रथिता भवति (आ०श्रौ० १८।१०।२३)। **(बिल्वः)** बैल्वो ब्रह्मवर्चकामेन कार्यः (मै०सं० ३।९।३)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तस्य) षष्ठी-समर्थ (उत्वद्-वर्ध्रबिल्वात्) उत्वत्=उकारवान्, वर्ध्र और बिल्व प्रातिपदिकों से (अवयवे) अवयव (च) और (विकारः) विकार अर्थ में (मयट्) मयट् प्रत्यय (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(उत्वत्) **मौञ्जं शिक्यम्।** मुञ्ज का विकार-मौञ्ज शिक्य (छींका)। **गार्मुतं चरु।** गर्मुत् का विकार-गार्मुत चरु। गर्मुत् का बना हुआ चरु। गर्मुत्=घासविशेष। चरु=हव्य-अन्न। (वर्ध्र) वर्ध्र का विकार-वार्ध्री। चमड़े का तसमा (बाधी)। **बैल्वो ब्रह्मवर्चसकामेन कार्यः।** बैल्व=विल्व (बेल-गिरि) का विकार। ब्रह्मतेज के इच्छुक ब्रह्मचारी को बैल्व दण्ड धारण करना चाहिये।*

*सिद्धि-(१) **मौञ्जम्।** मुंञ्ज+ङस्+अण्। मौञ्ज्+अ। मौञ्ज+सु। मौञ्जम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, उत्वत्=उकारवान् 'मुञ्ज' शब्द से अवयव और विकार अर्थ में इस सूत्र से 'मयट्' प्रत्यय का प्रतिषेध है। 'द्व्यचश्छन्दसि' (४।३।१५०) से 'मयट्' प्रत्यय प्राप्त होता था। उसका प्रतिषेध होने पर **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।*

*(२) **गार्मुतम्।** यहां षष्ठी-समर्थ उकारवान् 'गर्मुत्' शब्द से इस सूत्र से 'मयट्' प्रत्यय का प्रतिषेध होने से **'अनुदात्तादेश्च'** (४।३।१३८) से 'अञ्' प्रत्यय होता है। **'ग्रोर्मुट्'** (उणा० १।९५) से 'गॄ' धातु से 'अति' प्रत्यय और 'मुट्' आगम होने पर 'गर्मुत्' शब्द सिद्ध होता है। 'गर्मुत्' शब्द प्रत्यय-स्वर से अन्तोदात्त होने से अनुदात्तादि है-गर्मुत्।*

*(३) **वार्ध्री।** वर्ध्र+ङस्+अण्। वार्ध्र्+अ। वार्ध्र+ङीप्। वार्ध्री+सु। वार्ध्री।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'वर्ध्र' शब्द से अवयव और विकार अर्थ में इस सूत्र से 'मयट्' प्रत्यय का प्रतिषेध होने पर पूर्ववत् प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'टिड्ढाणञ्०'** (४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है।*

*(४) **बैल्व:।** यहां षष्ठी-समर्थ 'बिल्व' शब्द से इस सूत्र से 'मयट्' प्रत्यय का प्रतिषेध होने पर **'बिल्वादिभ्योऽण्'** (४।३।१३४) से 'अण्' प्रत्यय होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।*

अण्–

(१८) तालादिभ्योऽण्।१५०।

प०वि०-ताल-आदिभ्य: ५।३ अण् १।१।

स०-ताल आदिर्येषां ते तालादय:, तेभ्य:-तालादिभ्य: (बहुव्रीहि:)।

अनु०-तस्य, विकार:, अवयवे, च इति चानुवर्तते।

अन्वय:-तस्य तालादिभ्योऽवयवे विकारे चाऽण्।

अर्थ:-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यस्तालादिभ्य: प्रातिपदिकेभ्योऽवयवे विकारे चार्थेऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-तालस्यावयवो विकारो वा-तालं धनु:। बार्हिणं चन्द्रकम्, इत्यादिकम्।

तालाद् धनुषि। बार्हिणि। इन्द्रालिश। इन्द्रादृश। इन्द्रायुध। चाप। श्यामाक। पीयुक्षा। इति तालादय:।।

***आर्यभाषा:** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (तालादिभ्य:) ताल आदि प्रातिपदिकों से (अवयवे) अवयव (च) और (विकार:) विकार अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

उदा०-ताल (ताड़) वृक्ष का अवयव वा विकार-ताल (धनुष)। बार्हिण (मयूर) का अवयव वा विकार-बार्हिण चन्दा इत्यादि।

***सिद्धि-तालम्।** ताल+ङस्+अण्। ताल्+अ। ताल+सु। तालम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'ताल' शब्द से अवयव और विकार अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। **'तालाद् धनुषि'** इस गण-सूत्र से धनुष अर्थ में ही 'अण्' प्रत्यय होता है। यह 'मयट्' आदि प्रत्ययों का अपवाद है। ऐसे ही-**बार्हिणम्** आदि।*

अण्–

(१६) जातरूपेभ्यः परिमाणे।१५१।

प०वि०–जातरूपेभ्य: ५।३ परिमाणे ७।१।

अनु०–तस्य, विकार इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य जातरूपेभ्यो विकारोऽण्, परिमाणे।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो जातरूपवाचिभ्य: प्रातिपदिकेभ्यो विकार इत्यस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति, परिमाणेऽभिधेये। जातरूपम्=सुवर्णम्। **'जातरूपेभ्यः'** इति बहुवचननिर्देशात् सुवर्णवाचिनः शब्दा गृह्यन्ते।

उदा०–हाटकस्य विकारो हाटकं निष्कम्। हाटकं कार्षापणम्। जातरूपम्। तापनीयम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (जातरूपेभ्यः) जातरूप=सुवर्णवाची प्रातिपदिकों से (विकारः) विकार अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है (परिमाणे) यदि वहां परिमाण अर्थ अभिधेय हो। 'जातरूपेभ्यः' इस बहुवचन-निर्देश से जातरूपवाची (सुवर्णवाची) शब्दों का ग्रहण किया जाता है।*

उदा०-हाटक का विकार-हाटक निष्क। निष्क=१६ माशे का सोने का सिक्का हाटक का विकार-हाटक कार्षापण। कार्षापण=१० माशे का सोने का सिक्का। जातरूप का विकार-जातरूप। तपनीय का विकार-तापनीय।

*सिद्धि-**हाटकम्**। हाटक+ङस्+अण्। हाटक्+अ। हाटक+सु। हाटकम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'हाटक' शब्द से विकार अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**जातरूपम्, तापनीयम्**। यह 'अण्' प्रत्यय परिमाण अर्थ में होता है, परिमाण अर्थ से अन्यत्र नहीं-**यष्टिरियं हाटकमयी** (यह सोने की छड़ी है)। यह 'मयट्' आदि प्रत्ययों का अपवाद हैं।*

अञ्–

(२०) प्राणिरजतादिभ्योऽञ्।१५२।

प०वि०–प्राणि-रजतादिभ्य: ५।३ अञ् १।१।

स०–रजत आदिर्येषां ते रजतादयः। प्राणिनश्च रजतादयश्च ते प्रातिरजतादयः, तेभ्यः-प्राणिरजतादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, विकारः, अवयवे, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य प्राणिरजतादिभ्योऽवयवे विकारे चाऽञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः प्राणिवाचिभ्यो रजतादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्योऽवयवे विकारे चार्थेऽञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**प्राणी**) कपोतस्यावयवो विकारो वा कापोतम्। मायूरम्। तैत्तिरम्। (**रजतादिः**) रजतस्य विकारो राजतम्। सैसम्। लौहम्।

रजत। सीस। लोह। उदुम्बर। नीलदारु। रोहितक। बिभीतक। पीतदारु। तीव्रदारु। त्रिकण्टक। कण्टकार। इति रजतादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (प्राणिरजतादिभ्यः) प्राणीवाची और रजत-आदि प्रातिपदिकों से (अवयवे) अवयव (च) और (विकारः) विकार अर्थ में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(प्राणी)** कपोत=कबूतर का अवयव वा विकार-कापोत। मयूर=मोर का अवयव वा विकार-मायूर। तित्तिरि=तीतर का अवयव वा विकार-तैत्तिर। **(रजतादि)** रजत=चांदी का विकार-राजत। सीस=सीसे का विकार-सैस। लोह का विकार-लौह।*

सिद्धि-कापोतम्। *कपोत+ङस्+अण्। कापोत्+अ। कापोत+सु। कापोतम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, प्राणीवाची 'कपोत' शब्द से अवयव और विकार अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है यह 'अण्' आदि प्रत्ययों का अपवाद है। ऐसे ही-**मायूरम्** आदि।*

अञ्-

(२१) ञितश्च तत्प्रत्ययात्।१५३।

प०वि०-ञितः ५।१ च अव्ययपदम्, तत्प्रत्ययात् ५।१।

स०-ञ इद् यस्य तद् ञित्, तस्मात्-ञितः (बहुव्रीहिः)। तयोः (विकारावयवयोः) प्रत्यय इति तत्प्रत्ययः, तस्मात्-तत्प्रत्ययात् (सप्तमी-तत्पुरुषः)।

अनु०-तस्य, विकारः, अवयवे, च, अञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य ञितश्च तत्प्रत्ययाद् अवयवे विकारे चाऽञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् तयोर्विकारावयवयोरर्थयोर्विद्यमानो यो ञित्प्रत्ययस्तदन्तात् प्रातिपदिकाच्चावयवे विकारे चार्थेऽञ् प्रत्ययो भवति।

अत्र-'**ओरञ्**' (४।३।१३९) '**अनुदात्तादेश्च**' (४।३।१४०) '**पलाशादिभ्यो वा**' (४।३।१४१) '**शम्याष्ट्लञ्**' (४।३।१४२) '**प्राणिरजतादिभ्योऽञ्**' (४।३।१५४) '**उष्ट्राद् वुञ्**' (४।३।१५७) '**एण्या ढञ्**' (४।३।१५९) '**कंसीयपरशव्ययोर्यञञौ लुक् च**' (४।३।१६८) इत्येते ञित्प्रत्यया गृह्यन्ते।

उदा०-(अञ्) दैवदारवस्यावयवो विकारो वा दैवदारवम्। दाधित्थस्यावयवो विकारो वा दाधित्थम्। पालाशस्यावयवो विकारो वा पालशम्। **(ट्लञ्)** शामीलस्यावयवो विकारो वा शामीलम्। **(अञ्)** कापोतस्यावयवो विकारो कापोतम्। **(वुञ्)** औष्ट्रकस्यावयवो विकारो वा औष्ट्रकम्। **(ढञ्)** ऐणेयस्यावयवो विकारो वा ऐणेयम्। **(यञ्)** कांस्यस्यावयवो विकारो वा कांस्यम्। **(अञ्)** पारशवस्यावयवो विकारो वा पारशवम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (ञितः, तत्प्रत्ययात्) उन विकार और अवयव अर्थों में विद्यमान जो ञित् प्रत्यय हैं, तदन्त प्रातिपदिकों से (च) भी (अवयवे) अवयव (च) और (विकारः) विकार अर्थ में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है।*

यहां संस्कृत भाग में उपरिलिखित ञित्-प्रत्ययों का ग्रहण किया जाता है। यह 'अञ्' प्रत्यय-अवयव के अवयव और विकार के विकार अर्थ में विधान किया गया है।

*उदा०-**(अञ्)** दैवदारव का अवयव वा विकार-दैवदारव। दाधित्थ का अवयव वा विकार-दाधित्थ। पालाश का अवयव वा विकार-पालाश। **(ट्लञ्)** शामील का अवयव वा विकार-शामील। **(अञ्)** कापोत का अवयव वा विकार-कापोत। **(वुञ्)** औष्ट्रक का अवयव वा विकार-औष्ट्रक। **(ढञ्)** ऐणेय का अवयव वा विकार-ऐणेय। **(यञ्)** कांस्य का अवयव वा विकार-कांस्य। **(अञ्)** पारशव का अवयव वा विकार-पारशव।*

सिद्धि-(१) दैवदारवम्। *देवदारु+ङस्+अञ्। दैवदारो+अ। दैवदारव।। दैवदारव+ङस्+अञ्। दैवदारव्+अ। दैवदारव+सु। दैवदारवम्।*

*यहां प्रथम षष्ठी-समर्थ, उकारान्त 'देवदारु' शब्द से अवयव और अर्थ में **'ओरञ्'** (४।३।१३९) से 'अञ्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् उस ञित् अञ् प्रत्ययान्त 'दैवदारव' शब्द से अवयव और विकार अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय होता है। देवदारु वृक्ष का अवयव*

वा विकार (लकड़ी) दैवदारव कहाता है। उस दैवदारव लकड़ी का अवयव वा विकार (आसन्दिका, पीठ) आदि भी दैवदारव ही कहाता है। यह अवयव के अवयव और विकार के विकार अर्थ में प्रत्यय है।

(२) **दाधित्थम्।** यहां प्रथम 'दधित्थ' शब्द से **'अनुदात्तादेश्च'** (४।३।१३८) से 'अञ्' प्रत्यय होता है। शेष पूर्ववत् है।

(३) **पालाशम्।** यहां प्रथम 'पलाश' शब्द से **'पलाशादिभ्यो वा'** (४।३।१४०) से 'अञ्' प्रत्यय होता है। शेष पूर्ववत् है।

(४) **शामीलम्।** यहां प्रथम 'शमी' शब्द से **'शम्याष्ट्लञ्'** (४।३।१४२) से 'ट्लञ्' प्रत्यय होता है। शेष पूर्ववत् है।

(५) **कापोतम्।** यहां 'कपोत' शब्द से **'प्राणिरजतादिभ्योऽञ्'** (४।३।१५४) से 'अञ्' प्रत्यय होता है। शेष पूर्ववत् है।

(६) **औष्ट्रकम्।** यहां प्रथम 'उष्ट्र' शब्द से **'उष्ट्राद् वुञ्'** (४।३।१५७) से 'वुञ्' प्रत्यय होता है। शेष पूर्ववत् है।

(७) **ऐणेयम्।** यहां प्रथम 'एणी' शब्द से **'एण्या ढञ्'** (४।३।१५९) से 'ढञ्' प्रत्यय होता है। शेष पूर्ववत् है।

(८) **कांस्यम्।** यहां प्रथम 'कंसीय' शब्द से **'कंसीयपरशव्ययोर्यञञौ लुक्'** (४।३।१६८) से 'यञ्' प्रत्यय होता है। शेष पूर्ववत् है।

(९) **परशव्यम्।** यहां प्रथम 'परशव्य' शब्द से पूर्ववत् 'अञ्' प्रत्यय होता है। तत्पश्चात् इस शब्द से इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय किया जाता है।

क्रीतवत् प्रत्ययविधिः–

(२२) क्रीतवत् परिमाणात्।१५४।

प०वि०–क्रीतवत् अव्ययपदम्, परिमाणात् ५।१। क्रीते इव क्रीतवात् **'तत्र तस्येव'** (५।१।११६) इति सप्तम्यर्थे वतिः प्रत्ययः।

अनु०–तस्य, विकार इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य परिमाणाद् विकारः क्रीतवत् प्रत्ययाः।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थात् परिमाणवाचिनः प्रातिपदिकाद् विकार इत्यस्मिन्नर्थे क्रीतवत् प्रत्यया भवन्ति। **'प्राग्वतेष्ठञ्'** (५।१।१८) इत्यतः प्रारभ्य क्रीतार्थे ये प्रत्ययाः परिमाणवाचिनः शब्दाद् विहितास्ते विकारेऽर्थेऽपि भवन्ति।

उदा०–निष्केण क्रीतं नैष्किकम्, एवम्-निष्कस्य विकारो नैष्किकः। शतेन क्रीतं शत्यम्, शतिकम्। एवम्-शतस्य विकारः शत्यः, शतिकः। सहस्रेण क्रीतं साहस्रम्। एवम्-सहस्रस्य विकारः साहस्रः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (परिमाणात्) परिमाणवाची प्रातिपदिक से (विकारः) विकार अर्थ में (क्रीतवत्) क्रीत अर्थ के समान प्रत्यय होते हैं। अर्थात्-'प्राग्वतेष्ठञ्' (५।१।१८) से लेकर 'क्रीत' अर्थ में जो प्रत्यय परिमाणवाची शब्द से विधान किये गये हैं वे उक्त शब्द से विकार अर्थ में भी होते हैं।*

उदा०-निष्क के द्वारा क्रीत (खरीदा हुआ) नैष्किक। ऐसे ही-निष्क का विकार-नैष्किक। शत (मुद्रा) से क्रीत-शत्य, शतिक। शत का विकार-शत्य, शतिक। सहस्र (मुद्रा) से क्रीत-साहस्र। सहस्र का विकार-साहस्र।

सिद्धि-(१) ***नैष्किकम्।*** *निष्क+टा+ठञ्। नैष्क्+इक। नैष्किक+सु। नैष्किकम्।*

यहां तृतीया-समर्थ 'निष्क' शब्द से ***'प्राग्वतेष्ठञ्'*** *(५।१।१८) के अधिकार में* ***'तेन क्रीतम्'*** *(५।१।३७) से 'ठञ्' प्रत्यय है। यह 'ठञ्' प्रत्यय परिमाणवाची शब्द से इस सूत्र से विकार अर्थ में भी होता है। 'ठस्येकः' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।*

(२) ***शत्यः।*** *शत+टा+यत्। यत्+य। शत्य+सु। शत्यः।*

यहां 'शत' शब्द से क्रीत अर्थ में ***'शताच्च ठन्यतावशते'*** *(५।१।२१) से 'यत्' प्रत्यय होता है। वह इस सूत्र से विकार अर्थ में विहित किया गया है।* ***'यस्येति च'*** *(६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

(३) ***शतिकः।*** *शत+टा+ठन्। शत्+इक। शतिक+सु। शतिकः।*

यहां 'शत' शब्द से पूर्ववत् 'ठन्' प्रत्यय है और वह इस सूत्र से विकार अर्थ में भी विहित है।

(४) ***साहस्रः।*** *सहस्र+टा+अण्। साहस्र+अ। साहस्र+सु। साहस्रः।*

यहां 'सहस्र' शब्द से क्रीत अर्थ में ***'शतमानविंशतिसहस्रवसनादण्'*** *(५।१।२७) से 'अण्' प्रत्यय है, वह इस सूत्र से विकार अर्थ में भी विहित किया गया है। शत और सहस्र संख्यावाची शब्द भी परिमाण अर्थ के वाचक हैं।*

विशेषः *निष्क (१६ माशे का सोने का सिक्का) से खरीदा हुआ पदार्थ-नैष्किक कहाता है। निष्क का विकार अर्थात् निष्क नामक सिक्कों को तुड़वाकर जो आभूषण आदि बनवाया गया है वह नैष्किक कहाता है। ऐसे ही-शत और सहस्र रूप्य अर्थ में समझ लेवें। पाणिनिकाल में कागजी रूप्य का व्यवहार नहीं था। धातु-रूप्य का ही प्रचलन था। यहां उसके विकार का वर्णन किया गया है।*

वुञ्–

(२३) उष्ट्राद् वुञ्।१५५।

प०वि०-उष्ट्रात् ५।१ वुञ् १।१।

अनु०-तस्य, विकारः, अवयवे, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य उष्ट्राद् अवयवे विकारे च वुञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् उष्ट्र-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अवयवे विकारे चार्थे वुञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-उष्ट्रस्यावयवो विकारो वा औष्ट्रकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (उष्टात्) उष्ट्र प्रातिपदिक से (अवयवे) अवयव (च) और (विकारः) विकार अर्थ में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-उष्ट्र (ऊंट) का अवयव वा विकार-औष्ट्रक। उष्ट्र का मुख आदि अवयव और केश विकार हैं।

सिद्धि-औष्ट्रकः। उष्ट्र+ङस्+वुञ्। औष्ट्र+अक। औष्ट्रक+सु। औष्ट्रकः।

यहां षष्ठी-समर्थ 'उष्ट्र' शब्द से अवयव और विकार अर्थ में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

वुञ्-विकल्पः–

(२४) उमोर्णयोर्वा।१५६।

प०वि०-उमा-ऊर्णयोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) वा अव्ययपदम्।

स०-उमा च ऊर्णा च ते उमोर्णे, तयोः-उमोर्णयोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, विकारः, अवयवे च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य उमोर्णाभ्याम् अवयवे विकारे च वा वुञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाभ्याम् उमोर्णाभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अवयवे विकारे चार्थे विकल्पेन वुञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(उमा)** उमाया अवयवो विकारो वा-औमकम् (वुञ्)। औमम् (अण्)। ऊर्णाया अवयवो विकारो वा-और्णकम् (वुञ्)। और्णम् (अञ्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (उमोर्णयोः) उमा और ऊर्णा प्रातिपदिकों से (अवयवे) अवयव (च) और (विकारः) विकार अर्थ में (वा) विकल्प से (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(**उमा**) उमा=हल्दी का अवयव वा विकार-औमक (वुञ्)। औम (अण्)। (**ऊर्णा**) ऊर्णा=ऊन का अवयव वा विकार-और्णक (वुञ्)। और्ण (अञ्)।*

*सिद्धि-(१) **औमकम्।** उमा+ङस्+वुञ्। औम्+अक। औमक+सु। औमकम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'उमा' शब्द से अवयव वा विकार अर्थ में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। '**युवोरनाकौ**' (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**और्णकम्।***

*(२) **औमम्।** उमा+ङस्+अण्। औम्+अ। औम+सु। औमम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'उमा' शब्द से विकल्प पक्ष में '**प्राग्दीव्यतोऽण्**' (४।१।८३) से प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय है। 'उमा' शब्द 'तृणधान्यानानां च द्व्यषाम्' (फिट्० २।४) से आद्युदात्त है।*

*(३) **और्णम्।** ऊर्णा+ङस्+अञ्। और्ण्+अ। और्ण+सु। और्णम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'ऊर्णा' शब्द से अवयव वा विकार अर्थ में विकल्प पक्ष में 'अनुदात्तादेश्च' (४।३।१३८) से 'अञ्' प्रत्यय है। 'ऊर्णा' शब्द '**फिषोऽन्तोदात्तः**' (फिट्० १।१) से विहित प्रातिपदिक स्वर से अन्तोदात्त होने से अनुदात्तादि है-**ऊर्णा।***

विशेषः *उमा (हल्दी) ओषधिवाची और ऊर्णा कीटविशेष (प्राणी) का विकार होने से 'अवयवे च **प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः**' (४।३।१३३) के नियम से अवयव और विकार अर्थ में प्रत्ययविधि होती है।*

ढञ्-

(२५) एण्या ढञ्।१५७।

प०वि०-एण्याः ५।१ ढञ् १।१।

अनु०-तस्य, विकारः, अवयवे, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य एण्या अवयवे विकारे च ढञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् एणी-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अवयवे विकारे चार्थे ढञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-एण्या अवयवो विकारो वा-ऐणेयं मांसम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (एण्याः) एणी प्रातिपदिक से (अवयवे) अवयव (च) और (विकार) विकार अर्थ में (**ढञ्**) **ढञ्** प्रत्यय होता है।*

उदा०-एणी=काली हरिणी का अवयव वा विकार-ऐणेय मांस।

सिद्धि-ऐणेयम्। एणी+ङस्+ ढञ्। ऐण्+एय। ऐणेय+सु। ऐणेयम्।

यहां षष्ठी-समर्थ 'एणी' शब्द से अवयव वा विकार अर्थ में इस सूत्र से 'ढञ्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग ईकार का लोप होता है। 'एणी' शब्द के प्राणीवाची होने से 'प्राणिरजतादिभ्योऽञ्' (३।४।१५४) से अञ् प्रत्यय प्राप्त था, उसका यह अपवाद है।

***विशेषः** यही 'एण' शब्द का पुंलिङ्ग में निर्देश करने पर 'प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम्' इस परिभाषा से स्त्रीलिङ्ग 'एणी' शब्द का भी ग्रहण किया जा सकता था पुनः यहां 'एणी' शब्द को स्त्रीलिङ्ग में निर्देश करने से विदित होता है कि पुंलिङ्ग 'एण' शब्द से 'प्राणिरजतादिभ्योऽञ्' (४।३।१५२) से 'अञ्' प्रत्यय ही होता है-एण=काले हरिण का अवयव वा विकार-'ऐण' कहाता है। हरिण के मुख आदि अंग अवयव और केश तथा शृंग विकार कहाते हैं।*

यत्–

(२६) गोपयसोर्यत्।१५८।

प०वि०-गो-पयसोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) यत् १।१।

स०-गौश्च पयश्च ते गोपयसी, तयोः-गोपयसोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, विकारः, अवयवे, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य गोपयोभ्याम् अवयवे विकारे च यत्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाभ्यां गो-पयोभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अवयवे विकारे चार्थे यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(गोः)** गोरवयवो विकारो वा-गव्यम्। **(पयः)** पयसो विकारः पयस्यम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (गो-पयसोः) गो और पयस् प्रातिपदिकों से (अवयवे) अवयव (च) और (विकारः) विकार अर्थ में (यत्) यत् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(गो)** गौ का अवयव वा विकार-गव्य। **(पयस्)** पयः=दूध का विकार-पयस्य, दही आदि।*

सिद्धि-(१) गव्यम्। गो+ङस्+यत्। गो+य। गव्+य। गव्य+सु। गव्यम्।

यहां षष्ठी-समर्थ 'गो' शब्द से अवयव और विकार अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। 'वान्तो यि प्रत्यये' (६।१।७८) से 'गो' शब्द को वान्त (अव्) आदेश होता

है। यहां 'मयड्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः' (४।३।१४१) से मयट् प्रत्यय प्राप्त था। इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय का विधान किया गया है।

*(२) **पयस्यम्।** पयस्+ङस्+यत्। पयस्+य। पयस्य+सु। पयस्यम्।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'पयस्' शब्द से विकार अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है।

***विशेषः** (१) यहां 'गौ' शब्द के प्राणीवाची होने से 'अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः' (४।३।१३३) के नियम से उससे अवयव और विकार अर्थ में 'यत्' प्रत्यय होता है। यह 'मयट्' प्रत्यय का अपवाद होने से भक्ष्य और आच्छादन अर्थवाले अवयव और विकार अर्थ में यत् प्रत्यय होता है। गौ का भक्ष्य-विकार दुग्ध आदि 'गव्य' कहाता है, अभक्ष्य मांस आदि नहीं।*

(२) 'पयस्' शब्द के प्राणी, ओषधि और वृक्षवाची न होने से पूर्वोक्त नियम से 'विकार' अर्थ में ही 'यत्' प्रत्यय होता है, अवयव अर्थ में नहीं।

यत्–

(२७) द्रोश्च।१५९।

प०वि०–द्रोः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–तस्य, विकारः, अवयवे, च, यत् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य द्रोरवयवे विकारे च यत्।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् द्रु-शब्दात् प्रातिपदिकाच्चाऽवयवे विकारे चार्थे यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०–द्रोरवयवो विकारो वा–द्रव्यम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (द्रोः) द्रु प्रातिपदिक से (च) भी (अवयवे) अवयव (च) और (विकारः) विकार अर्थ में (यत्) यत् प्रत्यय होता है।*

उदा०–द्रु (लकड़ी) का अवयव वा विकार–द्रव्य।

*सिद्धि–**द्रव्यम्।** द्रु+ङस्+यत्। द्रो+य। द्रव्+य। द्रव्य+सु। द्रव्यम्।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'द्रु' शब्द से अवयव और विकार अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। 'ओर्गुणः' (६।४।१४६) से अंग को गुण और 'वान्तो यि प्रत्यये' (६।१।७८) से वान्त (अव्) आदेश होता है।

वयः–

(२८) माने वयः।१६०।

प०वि०–माने ७।१ वयः १।१।

अनु०–तस्य, विकारः, द्रोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य द्रोर्विकारो वयो माने।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् द्रु-शब्दात् प्रातिपदिकाद् विकारेऽर्थे वयः प्रत्ययो भवति, मानेऽभिधेये।

उदा०-द्रोर्विकारो द्रुवयं मानम् (परिमाणम्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (द्रोः) द्रु प्रातिपदिक से (विकारः) विकार अर्थ में (वयः) वय प्रत्यय होता है (माने) यदि वहां परिमाण अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-द्रु=(लकड़ी) का विकार-द्रुवय (परिमाण) अन्न आदि मांपने के लिये लकड़ी का बना हुआ पात्रविशेष।

*सिद्धि-**द्रुवयम्।** द्रु+ङस्+वय। द्रुवय+सु। द्रुवयम्।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'द्रु' शब्द से विकार अर्थ में और मान (परिमाण) अभिधेय में इस सूत्र से 'वय' प्रत्यय है।

प्रत्ययस्य लुक्-

(२६) फले लुक्।१६१।

प०वि०-फले ७।१ लुक् १।१।

अनु०-तस्य, विकारः, अवयवे, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य प्रातिपदिकाद् अवयवे विकारे च प्रत्ययस्य लुक्, फले।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् अवयवे विकारे चार्थे विहितस्य प्रत्ययस्य लुग् भवति, फलेऽभिधेये।

उदा०-आमलक्या अवयवो विकारो वा आमलकं फलम्। कुवल्या अवयवो विकारो वा कुवलं फलम्। बदर्या अवयवो विकारो वा बदरम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ प्रातिपदिक से (अवयवे) अवयव (च) और (विकारः) विकार अर्थ में विहित प्रत्यय का (लुक्) लोप होता है (फले) यदि वहां फल अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-आमलकी (आंवला) का अवयव वा विकार-आमलक (फल)। कुवली (कुई) का अवयव वा विकार-कुवल (फल)। बदरी (बेरी) का अवयव वा विकार-बदर (बेर)।

*सिद्धि-(१) **आमलकम्।** आमलकी+ङस्+मयट्। आमलकी+०। आमलक+०। आमलक+सु। आमलकम्।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'आमलकी' शब्द से अवयव और विकार अर्थ में फल अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का लुक्-विधान किया गया है। यहां 'नित्यं वृद्धशरादिभ्यः' (४।३।१४२) से आमलकी शब्द से उक्त अर्थ में 'मयट्' प्रत्यय है। इस सूत्र से उसका लुक् हो जाता है और 'लुक् तद्धितलुकि' (१।२।४९) से तद्धित प्रत्यय के लुक् हो जाने पर स्त्रीप्रत्यय का भी लुक् हो जाता है।

(२) कवलम् बदरम्। यहां 'अनुदात्तादेश्च' (४।३।१३८) से विहित 'अञ्' प्रत्यय का लुक् होता है।

विशेषः *फलित वृक्ष का फल उसका अवयव और विकार भी माना जाता है जैसे कि पल्लवित वृक्ष का पल्लव (पत्ता) उस वृक्ष का अवयव और विकार दोनों होता है।*

अण्–

(३०) प्लक्षादिभ्योऽण्।१६२।

प०वि०–प्लक्ष-आदिभ्यः ५।३ अण् १।१।

स०–प्लक्ष आदिर्येषां ते प्लक्षादयः, तेभ्यः–प्लक्षादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–तस्य, विकारः, अवयवे, च, फले इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य प्लक्षादिभ्योऽवयवे विकारे चाऽण्, फले।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः प्लक्षादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽवयवे विकारे चार्थेऽण् प्रत्ययो भवति, फलेऽभिधेये।

उदा०–प्लक्षस्यावयवो विकारो वा–प्लाक्षम्। न्योग्रोधस्यावयवो विकारो वा–नैयग्रोधम्।

प्लक्ष। न्यग्रोध। अश्वत्थ। इङ्गुदी। शिग्रु। कर्कन्धु। बृहती। इति प्लक्षादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (प्लाक्षादिभ्यः) प्लक्ष आदि प्रातिपदिकों से (अवयवे) अवयव (च) और (विकारः) विकार अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है (फले) यदि वहां फल अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०–प्लक्ष (पिलखण) का अवयव वा विकार–प्लाक्ष (फल)। न्योग्रोध (बड़) का अवयव वा विकार-नैयग्रोध (फल)।

सिद्धि-(१) प्लाक्षम्। प्लक्ष+ङस्+अण्। प्लाक्ष्+अ। प्लाक्ष+सु। प्लाक्षम्।

यहां षष्ठी-समर्थ 'प्लक्ष' शब्द से अवयव और विकार अर्थ में तथा फल अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार

का लोप होता है। विधान-सामर्थ्य से ***'फले लुक्'*** *(४।३।१६३) से 'अण्' प्रत्यय का लुक् नहीं होता है।*

(२) ***नैयग्रोधम्।*** *न्यग्रोध+ङस्+अण्। न् ऐ यग्रोध्+अ। नैयग्रोध+सु। नैयग्रोधम्।*

यहां 'न्यग्रोध' शब्द से पूर्ववत् 'अण्' प्रत्यय है किन्तु यहां ***'तद्धितेष्वचामादेः'*** *(७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि न होकर* ***'न्यग्रोधस्य च केवलस्य'*** *(४।३।५) से अंग के अकार से पूर्व ऐच्-आगम होता है।*

यह 'अण्' प्रत्यय प्लक्षादिगण में पठित उकारान्त शब्दों से ***'ओरञ्'*** *(६।४।१४६) से प्राप्त 'अञ्' प्रत्यय का तथा शेष शब्दों से* ***'अनुदात्तादेश्च'*** *(४।३।१३८) से प्राप्त 'अञ्' प्रत्यय का अपवाद है।*

अण्-प्रत्ययविकल्पः–

(३१) जम्ब्वा वा।१६३।

प०वि०–जम्ब्वाः ५।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०–तस्य, विकारः, अवयवे, च, फले इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य जम्ब्वा अवयवे विकारे वाऽण्, फले।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थात् जम्बू-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अवयवे विकारे चार्थे विकल्पेनाऽण् प्रत्ययो भवति, फलेऽभिधेये, पक्षे चाञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–जम्ब्वा अवयवो विकारो वा जाम्बवं फलम् (अण्)। जम्बु फलं वा (अञ्)।

आर्यभाषाः अर्थ–*(तस्य) षष्ठी-समर्थ (जम्ब्वाः) जम्बू प्रातिपदिक से (अवयवे) अवयव (च) और (विकारः) विकार अर्थ में (वा) विकल्प से (अण्) अण् प्रत्यय होता है (फले) यदि वहां फल अर्थ अभिधेय हो और पक्ष में 'अण्' प्रत्यय होता है।*

उदा०–जम्बू (जामुन) का अवयव वा विकार-जाम्बव फल (अण्) जम्बु फल (अञ्) जामुन।

सिद्धि–*(१)* ***जाम्बवम्।*** *जम्बू+ङस्+अण्। जाम्बो+अ। जाम्बव+सु। जाम्बवम्।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'जम्बू' शब्द से अवयव और विकार अर्थ में तथा फल अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि तथा ***'ओर्गुणः'*** *(६।४।१४६) से अंग को गुण होता है।*

(२) ***जम्बु।*** *जम्बू+ङस्+अञ्। जम्बू+०। जम्बु+सु। जम्बु।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'जम्बू' शब्द से पूर्वोक्त अर्थ में विकल्प पक्ष में ***'ओरञ्'*** *(४।३।१३७) से 'अञ्' प्रत्यय होता है और* ***'फले लुक्'*** *(४।३।१६१) से उसका लुक्*

*हो जाता है। तत्पश्चात् स्त्रीलिङ्ग जम्बू शब्द का फल-अभिधेय के अनुसार नपुंसक लिङ्ग होता है। अतः **'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य'** (१।२।४७) से 'जम्बू' शब्द को ह्रस्व होता है-जम्बु। **'स्वमोर्नपुंसकात्'** (७।१।२३) से 'सु' प्रत्यय का लोप हो जाता है।*

प्रत्ययस्य लुप्-विकल्पः–

(३२) लुप् च।१६४।

प०वि०–लुप् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–तस्य, विकारः, अवयवे, च, फले, जम्ब्वा, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य जम्ब्वा अवयवे विकारे च प्रत्ययस्य वा लुप् च, फले।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाज् जम्बू-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अवयवे विकारे चार्थे विहितप्रत्ययस्य विकल्पेन लुबपि भवति, फलेऽभिधेये।

उदा०–जम्ब्वा अवयवो विकारो वा-जाम्बवं फलम् (अण्)। जम्बू फलम् (अञ्-लुक्)। जम्बूः फलम् (अञ्-लुप्)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (जम्ब्वाः) जम्बू प्रातिपदिक से **(अवयवे)** अवयव (च) और (विकारः) विकार अर्थ में यथाविहित प्रत्यय का (वा) विकल्प से **(लुप्)** लुप् (च) भी होता है (फले) यदि वहां फल अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-जम्बू (जामुन) का अवयव वा विकार-जाम्बव फल (अण्)। जम्बू फल (अञ् प्रत्यय का लुक्)। जम्बू फल (अञ्-प्रत्यय का लुप्)।

***सिद्धि-जम्बूः (फलम्)।** जम्बू+ङस्+अञ्। जम्बू+०। जम्बू+सु। जम्बूः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'जम्बू' शब्द से अवयव और विकार अर्थ में तथा फल अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से विकल्प से प्रत्यय का लुप्-विधान किया गया है। यहां **'ओरञ्'** (६।४।१४६) से प्राप्त 'अञ्' प्रत्यय का लुप् होता है। प्रत्यय का लुप् हो जाने पर **'लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने'** (१।२।५१) से 'जम्बू' शब्द से व्यक्ति (लिङ्ग) और वचन युक्तवत् (पूर्ववत्) रहते हैं। अतः लुप्-पक्ष में 'जम्बू' शब्द स्त्रीलिङ्ग ही रहता है, फल-अभिधेय का अनुसरण नहीं करता है। **'जाम्बवं फलम्'** और **'जम्बू फलम्'** की सिद्धि पूर्ववत् (४।३।१६३) है।*

प्रत्ययस्य लुप्–

(३३) हरीतक्यादिभ्यश्च।१६५।

प०वि०–हरीतकि-आदिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-हरीतकी आदिर्येषां ते हरीतक्यादय:, तेभ्य:-हरीतक्यादिभ्य: (बहुव्रीहि:)।

अनु०-तस्य, विकार:, अवयवे, च, फले इति चानुवर्तते।

अन्वय:-तस्य हरीतक्यादिभ्यश्चाऽवयवे विकारे च प्रत्ययस्य लुप्।

अर्थ:-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो हरीतक्यादिभ्य: प्रातिपदिकेभ्योऽवयवे विकारे चार्थे विहितस्य प्रत्ययस्य लुब् भवति।

उदा०-हरीतक्या अवयवो विकारो वा-हरीतकी फलम्। कोशातक्या अवयवो विकारो वा-कोशातकी फलम्, इत्यादिकम्।

हरीतकी। कोशातकी। नखररजनी। नखरजनी। शष्कण्डी। शाकण्डी। दाडी। दोडी। दडी। श्वेतपाकी। अर्जुनपाकी। काला। द्राक्षा। ध्वाङ्क्षा। गर्गरिका। कण्टकारिका। शेफालिका। इति हरीतक्यादय:॥

आर्यभाषा: *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (हरीतक्यादिभ्य:) हरीतकी आदि प्रातिपदिकों से (च) भी (अवयवे) अवयव (च) और (विकार:) विकार अर्थ में यथाविहित प्रत्यय का (लुप्) लुप् होता है।*

उदा०-*हरीतकी (हरड़) का अवयव वा विकार-हरीतकी फल। कोशातकी (तोरी) का अवयव वा फल-कोशातकी फल, इत्यादि।*

सिद्धि-*हरीतकी। हरीतकी+ङस्+अञ्। हरीतकी+०। हरीतकी+सु। हरीतकी।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'हरीतकी' शब्द से अवयव और विकार अर्थ में तथा फल अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का लुप्-विधान किया गया है। यहां हरीतकी शब्द से पूर्वोक्त अर्थ में **'अनुदात्तादेश्च'** (४।३।१३८) से 'अञ्' प्रत्यय होता है और इस सूत्र से उसका लुप् हो जाता है। प्रत्यय के लुप् हो जाने पर **'लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने'** (१।२।५१) से हरीतकी शब्द की व्यक्ति (लिङ्ग) युक्तवत् (पूर्ववत्) रहती है-हरीतकी फलम्। यहां वचन, फल का अनुसरण करता है-हरीतक्य: फलानि।*

यञ्+अञ् (लुक् च)-

(३४) कंसीयपरशव्ययोर्यञञौ लुक् च।१६६।

प०वि०-कंसीय-परशव्ययो: ६।२ (पञ्चम्यर्थे) यञञौ १।२ लुक् १।१ **च** अव्ययपदम्।

स०-कंसीयश्च परशव्यश्च तौ कंसीयपरशव्यौ, तयो:- कंसीयपर-शव्ययो: (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)। यञ् च अञ् च तौ यञञौ (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०-तस्य, विकार इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य कंसीयपरशव्याभ्यां विकारो यञञौ लुक् च।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाभ्यां कंसीयपरशव्याभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां विकार इत्यस्मिन्नर्थे यथासंख्यं यञञौ प्रत्ययौ भवतः, तत्सन्नियोगेन च तयोर्वर्तमानस्य प्रत्ययस्य लुगपि भवति।

उदा०-(**कंसीयः**) कंसीयस्य विकारः-कांस्यम्। (**परशव्यः**) परशव्यस्य विकारः-पारशवम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (कंसीयपरशव्ययोः) कंसीय और परशव्य प्रातिपदिकों से (विकारः) विकार अर्थ में यथासंख्य (यञञौ) यञ् और अञ् प्रत्यय होते हैं और उनके सन्नियोग से कंसीय और परशव्य शब्दों में विद्यमान प्रत्यय (छ, यत्) का (लुक्) लुक् (च) भी होता है।*

*उदा०-कंसीय (कंस=गिलास के लिये हितकारी धातु) का विकार-कांस्य। **(परशव्य)** परशव्य (परशु=कुठार के लिये हितकारी धातु) का विकार-पारशव।*

*सिद्धि-(१) **कांस्यम्।** कंस+ङे+छ। कंस्+ईय+कंसीय।। कंसीय+ङस्+यञ्। कंसीय+य। कंस्+य। कांस्+य। कांस्य+सु। कांस्यम्।*

*यहां प्रथम 'कंस' शब्द से 'प्राक् क्रीताच्छः' (५।१।१) के अधिकार में **'तस्मै हितम्'** (५।१।५) से 'छ' प्रत्यय होता है। छ-प्रत्ययान्त 'कंसीय' शब्द से विकार अर्थ में इस सूत्र से 'यञ्' प्रत्यय और उस 'छ' प्रत्यय का लुक् होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है।*

*(२) **पारशवम्।** परशु+ङे+यत्। परशो+य। परशव्य।। परशव्य+ङस्+अञ्। पारशो+अ। पारशव्+अ। पारशव+सु। पारशवः।*

*यहां प्रथम 'परशु' शब्द से **'उगवादिभ्यो यत्'** (५।१।२) से हित अर्थ में 'यत्' प्रत्यय होता है। यत्-प्रत्ययान्त 'परशव्य' शब्द से विकार अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय होता है और उस 'यत्' प्रत्यय का लुक् होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि तथा **'ओर्गुणः'** (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है।*

।। इति विकारावयवप्रत्ययार्थप्रकरणम् प्राग्दीव्यतीयप्रत्ययार्थप्रकरणं च सम्पूर्णम्।।

इति पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने
चतुर्थाध्यायस्य तृतीयः पादः समाप्तः।।

चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थः पादः

प्राग्वहतीयप्रत्ययार्थप्रकरणम्

ठक्-अधिकारः–

(१) प्राग्वहतेष्ठक्।१।

प०वि०-प्राक् १।१ वहतेः ५।१ ठक् १।१।

अन्वयः-वहतेः प्राक् ठक्।

अर्थः- **'तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्'** (४।४।७६) इति वक्ष्यति, तस्माद् वहति-शब्दात् प्राक् ठक् प्रत्ययो भवतीत्यधिकारोऽयम्। वक्ष्यति **'तेन दीव्यति खनति जयति जितम्'** (४।४।२) इति। अक्षैर्दीव्यति आक्षिक इत्यादिकम्।

आर्यभाषाः अर्थ-(वहतेः) *'तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्' (४।४।७६) इस सूत्र में जो 'वहति' शब्द पढ़ा है (प्राक्) उससे पहले-पहले (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है। यह अधिकार सूत्र है। जैसे-* ***तेन दीव्यति खनति जयति जितम्'*** *(४।४।२)। अक्ष=पासों से जो खेलता है वह-आक्षिक इत्यादि।*

सिद्धि-आक्षिकः। अक्ष+भिस्+ठक्। आक्ष्+इक। आक्षिक+सु। आक्षिकः।

यहां तृतीया-समर्थ 'अक्ष' शब्द से 'तेन दीव्यति खनति जयति जितम्' (४।४।२) से 'ठक्' प्रत्यय है। ***'ठस्येकः'*** *(७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और* ***'किति च'*** *(७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि होती है।*

दीव्यति-आद्यर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)–

(१) तेन दीव्यति खनति जयति जितम्।२।

प०वि०-तेन ३।१ दीव्यति क्रियापदम्, खनति क्रियापदम्, जयति क्रियापदम्, जितम् १।१।

अनु०-ठक् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तेन प्रातिपदिकाद् दीव्यति, खनति, जयति, जितं ठक्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् दीव्यति, खनति, जयति, जितमित्येतेष्वर्थेषु ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(दीव्यति)** अक्षैर्दीव्यति-आक्षिकः। शलाकाभिर्दीव्यति-शालाकिकः। **(खनति)** अभ्र्या खनति-आभ्रिकः। कुद्दालेन खनति-कौद्दालिकः। **(जयति)** अक्षैर्जयति-आक्षिकः। शलाकाभिर्जयति-शालाकिकः। **(जितम्)** अक्षैर्जितम्-आक्षिकम्। शलाकाभिर्जितम्-शालाकिकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से (दीव्यति०) दीव्यति, खनति, जयति, जितम् इन अर्थों में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(दीव्यति)** अक्ष=पासों से जो खेलता है वह-आक्षिक। शलाकाओं से जो खेलता है वह-शालाकिक। **(खनति)** अभ्रि (कुदाली) से जो खोदता है वह-आभ्रिक। कुद्दाल (कस्सी) से जो खोदता है वह-कौद्दालिक। **(जयति)** अक्ष=पासों से जो जीतता है वह-आक्षिक। शलाकाओं से जो जीतता है वह-शालाकिक। **(जितम्)** अक्ष=पासों से जीता हुआ-आक्षिक (धन)। शलाकाओं से जीता हुआ-शालाकिक (धन)।*

सिद्धि-*'आक्षिकः' आदि पदों की सिद्धि पूर्ववत् (४।१।१) है।*

विशेषः *द्यूतक्रीडा में अक्षाकार (गोल) और शलाकाकार (लम्बे) दो प्रकार के पासों का प्रयोग किया जाता है। जो अक्षों से खेलने/जीतने में चतुर होता है उसे आक्षिक और जो शलाकाओं से खेलने/जीतने में चतुर होता है उस खिलाड़ी को शालाकिक कहते हैं। अक्षराज, कृत, त्रेता, द्वापर, कलि नामक ये पांच पांसे/शलाकायें होती हैं।*

संस्कृतार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)-

(१) संस्कृतम्।३।

वि०-संस्कृतम् १।१।

अनु०-तेन, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन प्रातिपदिकात् संस्कृतं ठक्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् संस्कृतमित्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति। सत उत्कर्षाधानं संस्कार इत्युच्यते।

उदा०-दध्ना संस्कृतं दाधिकम् ओदनम्। शृङ्गवेरेण संस्कृतं शाङ्गवेरिकम्। मरिचिकया संस्कृतं मारिचिकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से (संस्कृतम्) संस्कृत=गुणाधान अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है। विद्यमान पदार्थ में गुणों का आधान करना संस्कार कहाता है।*

उदा०-दधि (दही) से संस्कृत-दाधिक ओदन (भात)। शृङ्गवेर (अदरक) से संस्कृत-शाङ्गवेरिक। मरिचिका (मिर्च) से संस्कृत-मारिचिक।

सिद्धि-दाक्षिकम्। *दधि+टा+ठक्। दाध्+इक। दाधिक+सु। दाधिकम्।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'दधि' शब्द से संस्कृत अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। शेष कार्य 'आक्षिकः' (४।१।१) के समान है। ऐसे ही-**शाङ्गवेरिकम्, मारिचिकम्।***

अण्-

(२) कुलत्थकोपधादण्।४।

प०वि०-कुलत्थ-कोपधात् ५।१ अण् १।१।

स०-क उपधा यस्य तत् कोपधम्, कुलत्थश्च कोपधं च एतयोः समाहारः कुलत्थकोपधम्, तस्मात्-कुलत्थकोपधात् (बहुव्रीहिगर्भित-समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तेन, संस्कृतमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन कुलत्थकोपधात् संस्कृतम् अण्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् कुलत्थशब्दात् ककारोपधाच्च प्रातिपदिकात् संस्कृतमित्यस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(कुलत्थम्)** कुलत्थैः संस्कृतम्-कौलत्थम्। **(कोपधम्)** तित्तिडिकेन संस्कृतम्-तैत्तिडिकम्। दृदभकेन संस्कृतम्-दार्दभकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (कुलत्थकोपधात्) कुलत्थ शब्द और ककार उपधावान् प्रातिपदिक से (संस्कृतम्) संस्कृत अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

उदा०-कुलत्थ (अन्नविशेष) से संस्कृत-कौलत्थ। तित्तिडिक (इमली) से संस्कृत-तैत्तिडिक। दृदभक (व्यञ्जन-विशेष) से संस्कृत-दार्दभक।

सिद्धि-कौलत्थम्। *कुलत्थ+भिस्+अण्। कौलत्थ्+अ। कौलत्थ+सु। कौलत्थम्।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'कुलत्थ' शब्द से संस्कृत अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। यह 'ठक्' प्रत्यय का अपवाद है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**तैत्तिडिकम्, दार्दभकम्।***

तरति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)–

(१) तरति।५।

वि०–तरति क्रियापदम्।

अनु०–तेन, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तेन प्रातिपदिकात् तरति ठक्।

अर्थः–तेन इति तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् तरतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति। तरति=प्लवते इत्यर्थः।

उदा०–काण्डप्लवेन तरति-काण्डप्लविकः। उडुपेन तरति-औडुपिकः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से (तरति) तरति **अर्थ में** (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है। तरति=वह तैरता है।*

*उदा०-काण्डप्लव (वृक्ष के तनों का बेड़ा) से जो तैरता है वह-**काण्डप्लविक**। उडुप (एक प्रकार की नाव) से जो तैरता है वह-औडुपिक।*

***सिद्धि-काण्डप्लविकः।** काण्डप्लव+टा+ठक्। काण्डप्लव्+इक। **काण्डप्ल**विक+सु। काण्डप्लविकः।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'काण्डप्लव' शब्द से तरति अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। **'ठस्येकः'** (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, **'किति च'** (७।२।११८) से पर्जन्यवत् अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**औडुपिकः।***

ठञ्–

(२) गोपुच्छाट्ठञ्।६।

प०वि०–गोपुच्छात् ५।१ ठञ् १।१।

अनु०–तेन, तरति इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तेन गोपुच्छात् तरति ठञ्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थाद् गोपुच्छशब्दात् प्रातिपदिकात् तरतीत्यस्मिन्नर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-गोपुच्छेन तरति-गौपुच्छिकः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तेन) तृतीया-समर्थ (गोपुच्छात्) गोपुच्छ प्रातिपदिक से (तरति) तरति अर्थ में (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-गोपुच्छ (गौ की पूंछ/वानर-विशेष) से जो तैरता है वह-गौपुच्छिक।

सिद्धि-गौपुच्छिकः। *गोपुच्छ+टा+ठञ्। गौपुच्छ्+इक। गौपुच्छिक+सु। गौपुच्छिकः।*

यहां तृतीया-समर्थ 'गोपुच्छ' शब्द से तरति अर्थ में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय होता है। यह 'ठक्' प्रत्यय का अपवाद है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ***'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'*** *(६।४।९४) से पद का आद्युदात्त स्वर होता है-**गौपुच्छिकः।***

ठन्-

(३) नौद्व्यचष्ठन्।७।

प०वि०-नौ-द्व्यचः ५।१ ठन् १।१।

स०-द्वावचौ यस्मिँस्तत् द्व्यच्। नौश्च द्व्यच् च एतयोः समाहारो नौद्व्यच्, तस्मात्-नौद्व्यचः (बहुव्रीहिगर्भितसमाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तेन, तरति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन नौद्व्यचस्तरति ठन्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थाद् नौशब्दाद् द्व्यचश्च प्रातिपदिकात् तरतीत्यस्मिन्नर्थे ठन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(नौः)** नावा तरति-नाविकः। **(द्व्यच्)** घटेन तरति-घटिकः। प्लवेन तरति-प्लविकः। बाहुभ्यां तरति-बाहुकः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तेन) तृतीया-समर्थ (नौद्व्यचः) नौ शब्द और दो अचोंवाले प्रातिपदिक से (तरति) तरति अर्थ में (ठन्) ठन् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(नौ)** नौ (नौका) से जो तैरता है वह-नाविक। **(द्व्यच्)** घट (घड़ा) से जो तैरता है वह-घटिक। प्लव (नाव) से जो तैरता है वह-प्लविक। बाहु (भुजाओं) से जो तैरता है वह-बाहुक।*

सिद्धि-(१) नाविकः । नौ+टा+ठन् । नाव्+इक । नाविक+सु । नाविकः ।

*यहां तृतीया-समर्थ 'नौ' शब्द से तरति अर्थ में इस सूत्र से 'ठन्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश होता है। पद का पूर्ववत् आद्युदात्त स्वर होता है-**नाविकः**। ऐसे ही-घटिकः, प्लविकः ।*

(२) बाहुकः । यहां तृतीया-समर्थ 'बाहु' शब्द से पूर्ववत् 'ठन्' प्रत्यय है। 'इसुसुक्तान्तात् कः' (७।३।५१) से 'ठ्' के स्थान में 'क्' आदेश होता है।

चरति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)–

(१) चरति।८।

वि०-चरति क्रियापदम्।

अनु०-तेन, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन प्रातिपदिकाच्चरति ठक्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकाच्चरतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति। चरतिर्भक्षणे गतौ चार्थे वर्तते।

उदा०-दध्ना चरति-दाधिकः। हस्तिना चरति-हास्तिकः। शकटेन चरति-शाकटिकः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तेन) तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से (चरति) चरति=खाता है वा चलता है, अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-दधि (दही) से जो चरति=खाता है वह दाधिक। हस्ती (हाथी) से जो चरति=चलता है वह-हास्तिक। शकट (गाड़ी) से जो चरति=चलता है वह-शाकटिक।

*सिद्धि-(१) **दाधिक**। दधि+टा+ठक्। दाध्+इक। दाधिक+सु। दाधिकः।*

यहां तृतीया-समर्थ 'दधि' शब्द से चरति (खाता है) अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के इकार का लोप होता है।

(२) हास्तिकः। हस्तिन्+टा+ठक्। हास्त्+इक। हास्तिक+सु। हास्तिकः।

*यहां तृतीया-समर्थ 'हस्तिन्' शब्द से चरति (चलता है) अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। 'नस्तद्धिते' (६।४।१४४) से 'हस्तिन्' के टि-भाग (इन्) का लोप होता है। ऐसे ही-**शाकटिकः**।*

ष्ठल्–

(२) आकर्षात् ष्ठल्।६।

प०वि०–आकर्षात् ५।१ ष्ठल् १।१।

अनु०–तेन, चरति इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तेन आकर्षातच्चरति ष्ठल्।

अर्थः–तेन इति तृतीयासमर्थाद् आकर्षशब्दात् प्रातिपदिकाच्चरतीत्यस्मिन्नर्थे ष्ठल् प्रत्ययो भवति।

उदा०–आकर्षेण चरति–आकर्षिकः। स्त्री चेत्–आकर्षिकी।

आर्यभाषाः *अर्थ–(तेन) तृतीया-समर्थ (आकर्षात्) आकर्ष प्रातिपदिक से (चरति) चरति=घूमता है अर्थ में (ष्ठल्) ष्ठल् प्रत्यय होता है।*

उदा०–आकर्ष (सुवर्ण–कसौटी) लेकर जो घूमता है वह–आकर्षिक। यदि स्त्री है तो–आकर्षिकी।

सिद्धि–आकर्षिकः। आकर्ष+टा+ष्ठल्। आकर्ष्+इक। आकर्षिक+सु। आकर्षिकः।

यहां तृतीया–समर्थ 'आकर्ष' शब्द से चरति (घूमता है) अर्थ में इस सूत्र से 'ष्ठल्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और अंग के अकार का लोप होता है।

*प्रत्यय के षित् होने से स्त्रीत्व-विवक्षा में '**षिद्गौरादिभ्यश्च**' (४।१।४१) से ङीष् प्रत्यय होता है–**आकर्षिकी**। प्रत्यय के लित् होने से '**लिति**' (६।१।१९०) से प्रत्यय का पूर्ववर्ती अच् उदात्त होता है–आकर्षिकः।*

विशेषः *सुवर्ण की परीक्षा के लिये जो निकष-उपल (कसौटी) होता है उसे 'आकर्ष' कहते हैं। आकृष्यते स्वर्णं यत्रेति आकर्षः। जो उसे लेकर सुवर्ण आदि खरीदने के लिए घर-घर घूमता है उसे आकर्षिक कहते हैं। यदि स्त्री है तो वह 'आकर्षिकी' कहाती है। यह पाणिनि-कालीन समाज का एक चित्रण है।*

ष्ठन्–

(३) पर्पादिभ्यः ष्ठन्।१०।

प०वि०–पर्प-आदिभ्यः ५।३ ष्ठन् १।१।

स०–पर्प आदिर्येषां ते पर्पादयः, तेभ्यः–पर्पादिभ्यः (बहुव्रीहिः)

अनु०–तेन, चरति इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तेन पर्पादिभ्यश्चरति ष्ठन्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थेभ्यः पर्पादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यश्चरतीत्यस्मिन्नर्थे ष्ठन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पर्पेण चरति-पर्पिकः। स्त्री चेत्-पर्पिकी। अश्वेन चरति-अश्विकः। स्त्री चेत्-अश्विकी।

पर्प। अश्व। अश्वत्थ। रथ। जाल। न्यास। व्याल। पाद। पच्च। पथिक। इति पर्पादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (पर्पादिभ्यः) पर्प आदि प्रातिपदिकों से (चरति) चरति अर्थ में (ष्ठन्) ष्ठन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-पर्प (पंगुपीठ/पंगु के चलने के लिये एक पहिये की गाड़ी) से जो चलता है वह-पर्पिक। यदि स्त्री है तो-पर्पिकी। अश्व (घोड़ा) से जो चलता है वह-अश्विक। यदि स्त्री है तो-अश्विकी।

सिद्धि-पर्पिकः। *पर्प+टा+ष्ठन्। पर्प्+इक। पर्पिक+सु। पर्पिकः।*

यहां तृतीया-समर्थ 'पर्प' शब्द से चरति (चलता है) अर्थ में इस सूत्र से 'ष्ठन्' प्रत्यय है। 'ठस्येकः' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और ***'यस्येति च'*** *(६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। प्रत्यय के षित् होने से स्त्रीत्व-विवक्षा में* ***'षिद्गौरादिभ्यश्च'*** *(४।१।४१) 'ङीष्' प्रत्यय होता है-**पर्पिकी।** प्रत्यय में नकार* ***'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'*** *(६।१।१९४) से आद्युदात्त स्वर के लिये है-**पर्पिकः।***

ठञ्+ष्ठन्-

(४) श्वगणाट्ठञ् च।११।

प०वि०-श्वगणात् ५।१ ठञ् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-तेन, चरति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन श्वगणाच्चरति ठञ् ष्ठन् च।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् श्वगणशब्दात् प्रातिपदिकाच्चरतीत्यस्मिन्नर्थे ठञ् ष्ठन् च प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(ठञ्)** श्वगणेन चरति-श्वागणिकः। स्त्री चेत्-श्वागणिकी। **(ष्ठन्)** श्वगणेन चरति-श्वगणिकः। स्त्री चेत्-श्वगणिकी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (श्वगणात्) श्वगण प्रातिपदिक **से** (चरति) चरति अर्थ में (ठञ्) ठञ् (च) और (ष्ठन्) ष्ठन् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-(ठञ्) श्वगण (कुत्तों का झुण्ड) को साथ लेकर जो घूमता है वह-श्वागणिक (शिकारी)। यदि स्त्री हो तो-श्वागणिकी। (ष्ठन्) श्वगण को साथ लेकर जो घूमता है वह-श्वगणिक (शिकारी)। यदि स्त्री हो तो-श्वगणिकी।

सिद्धि-(१) श्वागणिकः। श्वगण+टा+ठञ्। श्वागण्+इक। श्वागणिक+सु। श्वागणिकः।

*यहां तृतीया-समर्थ 'श्वगण' शब्द से चरति अर्थ में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है-**श्वागणिकी**। 'श्वादेरिञि' (७।३।८) इस सूत्र पर वा०-'इकारादिग्रहणं कर्तव्यं श्वागणिकाद्यर्थम्' इस वार्तिक-सूत्र से 'द्वारादीनां च' (७।३।४) से प्राप्त आदिवृद्धि का प्रतिषेध एवं ऐच् आगम नहीं होता है।*

*(२) श्वगणिकः। यहां तृतीय-समर्थ 'श्वगण' शब्द से चरति अर्थ में ष्ठन् प्रत्यय है। प्रत्यय के 'षित्' होने से स्त्री-विवक्षा में 'षिद्गौरादिभ्यश्च' (४।१।४१) से 'ङीष्' प्रत्यय होता है-**श्वगणिकी**। ठञ्-पक्ष में 'ङीप्' का 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' (३।१।३) से अनुदात्त स्वर होता है-**श्वागणिकी** और ष्ठन्-पक्ष में ङीष् प्रत्यय का 'आद्युदात्तश्च' (३।१।३) से आद्युदात्त स्वर होता है-**श्वगणिकी**।*

जीवति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)-

(१) वेतनादिभ्यो जीवति।१२।

प०वि०-वेतन-आदिभ्यः ५।३ जीवति क्रियापदम्।

स०-वेतन आदिर्येषां ते वेतनादयः, तेभ्यः-वेतनादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तेन, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन वेतनादिभ्यो जीवति ठक्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थेभ्यो वेतनादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो जीवतीत्यस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-वेतनेन जीवति-वैतनिकः। वाहेन जीवति-वाहिकः इत्यादिकम्।

वेतन। वाह। अर्द्धवाह। धनुर्दण्ड। जाल। वेस। उपवेस। प्रेषण। उपस्ति। सुख। शय्या। शक्ति। उपनिषत्। उपवेष। स्रक्। पाद। उपस्थान। इति वेतनादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (वेतनादिभ्यः) वेतन आदि प्रातिपदिकों से (जीवति) 'जीता है' अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-वेतन (तनखाह) से जो जीता है वह-वैतनिक। वाह (बोझ ढोनेवाला जानवर बैल/भैंसा आदि) से जो जीता है वह-वाहिक।

***सिद्धि-वैतनिकः।** वेतन+टा+ठक्। वैतन्+इक। वैतनिक+सु। वैतनिकः।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'वेतन' शब्द से जीवति अर्थ में इस सूत्र 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, 'किति च' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और पूर्ववत् अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**वाहिकः** आदि।*

ठन्-

(२) वस्नक्रयविक्रयाट्ठन्।१३।

प०वि०-वस्न-क्रयविक्रयात् ५।१ ठन् १।१।

स०-क्रयश्च विक्रयश्च एतयोः समाहारः क्रयविक्रयम्। वस्नं च क्रयविक्रयं च एतयोः समाहारो वस्नक्रयविक्रयम्, तस्मात्-वस्नक्रयविक्रयात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तेन, जीवति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन वस्नक्रयविक्रयाज्जीवति ठन्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थाभ्यां वस्न-क्रयविक्रयाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां जीवतीत्यस्मिन्नर्थे ठन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(वस्नम्) वस्नेन जीवति-वस्निकः। **(क्रयविक्रयः)** क्रयविक्रयेण जीवति-क्रयविक्रयिकः। विगृहीतादपि प्रत्यय इष्यते-क्रयेण जीवति-क्रयिकः। विक्रयेण जीवति-विक्रयिकः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (वस्न-क्रयविक्रयात्) वस्न और क्रयविक्रय प्रातिपदिकों से (जीवति) जीवति अर्थ में (ठन्) ठन् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(वस्नम्)** वस्न (भाड़ा, मूल्य) से जो जीता है वह-वस्निक। **(क्रयविक्रयम्)** क्रय-विक्रय (खरीदना-बेचना) से जो जीता है वह-क्रयविक्रयिक। विगृहीत से भी प्रत्ययविधि*

अभीष्ट है-क्रय (खरीदना) से जो जीता है वह-क्रयिक। विक्रय (बेचना) से जो जीता है वह-विक्रयिक।

सिद्धि-वस्निक:। वस्न+टा+ठन्। वस्न्+इक। वस्निक+सु। वस्निक:।

यहां तृतीया-समर्थ 'वस्न' शब्द से जीवति अर्थ में इस सूत्र से 'ठन्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-क्रयविक्रयिक:, क्रयिक:, विक्रयिक:।

छ:+ठन्-

(३) आयुधाच्छ च।१४।

प०वि०-आयुधात् ५।१ छ १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्।

अनु०-तेन, जीवति इति चानुवर्तते।

अन्वय:-तेन आयुधाज्जीवति छ:, ठँश्च।

अर्थ:-तेन इति तृतीयासमर्थाद् आयुधशब्दात् प्रातिपदिकाज्जीवतीत्यस्मिन्नर्थे छ:, ठन् च प्रत्ययो भवति।

उदा०-(छ:) आयुधेन जीवति-आयुधीय:। (ठन्) आयुधिक:।

आर्यभाषा: *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (आयुधात्) आयुध प्रातिपदिक से (जीवति) जीवति अर्थ में (छ:) छ (च) और (ठन्) ठन् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-(छ:) आयुध (हथियार) से जो जीता है वह-आयुधीय (योद्धा)। (ठन्) आयुधिक: (योद्धा)।

सिद्धि-(१) आयुधीय:। आयुध+टा+छ। आयुध्+ईय। आयुधीय+सु। आयुधीय:।

यहां तृतीया-समर्थ 'आयुध' शब्द से जीवति अर्थ में 'छ' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश और पूर्ववत् अंग के अकार का लोप होता है।

हरति-अर्थप्रत्ययविधि:

यथाविहितम् (ठक्)-

(१) हरत्युत्सङ्गादिभ्य:।१५।

प०वि०-हरति क्रियापदम्, उत्सङ्गादिभ्य: ५।३।

स०-उत्सङ्ग आदिर्येषां ते उत्सङ्गादय:, तेभ्य:-उत्सङ्गादिभ्य: (बहुव्रीहि:)।

अनु०-तेन, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन उत्सङ्गादिभ्यो हरति ठक्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थेभ्य उत्सङ्गादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो हरतीत्यस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। अत्र हरतिर्देशान्तरप्रापणेऽर्थे वर्तते।

उदा०-उत्सङ्गेन हरति-औत्सङ्गिकः। उडुपेन हरति-औडुपिकः इत्यादिकम्।

उत्सङ्ग। उडुप। उत्पत। पिटक। इत्युत्सङ्गादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (उत्सङ्गादिभ्यः) उत्सङ्ग प्रातिपदिकों (हरति) हरति=देशान्तर में पहुंचाता है, अर्थ में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-उत्सङ्ग (गोद) से जो हरण करता है वह-औत्सङ्गिक। उडुप (नाव) से जो हरण करता है वह-औडुपिक।

***सिद्धि-औत्सङ्गिकः।** उत्सङ्ग+टा+ठक्। औत्सङ्ग+इक। औत्सङ्गिक+सु। औत्सङ्गिकः।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'उत्साङ्ग' शब्द से हरति अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-औडुपिकः आदि।*

ष्ठन्-

(२) भस्त्रादिभ्यः ष्ठन्।१६।

प०वि०-भस्त्रा-आदिभ्यः ५।३ ष्ठन् १।१।

स०-भस्त्रा आदिर्येषां ते भस्त्रादयः, तेभ्यः-भस्त्रादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तेन, हरति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन भस्त्रादिभ्यो हरति ष्ठन्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थेभ्यो भस्त्रादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो हरतीत्यस्मिन्नर्थे ष्ठन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-भस्त्रया हरति-भस्त्रिकः। स्त्री चेत्-भस्त्रिकी। भरटेन हरति-भरटिकः। स्त्री चेत्-भरटिकी इत्यादिकम्।

भस्त्रा। भरट। भरण। शीर्षभार। शीर्षेभार। अंसभार। अंसेभार। इति भस्त्रादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (भस्त्रादिभ्यः) भस्त्रा-आदि प्रातिपदिकों से (हरति) हरति अर्थ में (ष्ठन्) ष्ठन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-भस्त्रा (मशक) से जो जल-हरण करता है वह-भस्त्रिक। यदि स्त्री हो तो-भस्त्रिकी। भरट (नौकर) से जो कोई वस्तु देशान्तर में पहुंचाता है वह-भरटिक। यदि स्त्री हो तो-भरटिकी।

*सिद्धि-**भस्त्रिकः।** भस्त्रा+टा+ष्ठन्। भस्त्र्+इक। भस्त्रिक+सु। भस्त्रिकः।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'भस्त्रा' शब्द से हरति अर्थ में 'ष्ठन्' प्रत्यय है। '**ठस्येकः**' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और '**यस्येति**' (६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है। प्रत्यय के षित् होने से स्त्रीत्व-विवक्षा में '**षिद्गौरादिभ्यश्च**' (४।१।४१) से 'ङीष्' प्रत्यय होता है-**भस्त्रिकी।** ऐसे ही-**भरटिकः, भरटिकी** इत्यादि।*

ष्ठन्-विकल्पः--

(३) विभाषा विवधात्।१७।

प०वि०-विभाषा १।१ विवधात् ५।१।

अनु०-तेन, हरति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन विवधाद् हरति विभाषा ठन्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थाद् विवधात् प्रातिपदिकाद् हरतीत्यस्मिन्नर्थे विकल्पेन ष्ठन् प्रत्ययो भवति, पक्षे च ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(ष्ठन्) विवधेन हरति-विवधिकः। स्त्री चेत्-विवधिकी। **(ठक्)** वैवधिकः। स्त्री चेत्-वैवधिकी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (विवधात्) विवध प्रातिपदिक से (हरति) हरति अर्थ में (विभाषा) विकल्प से (ष्ठन्) ष्ठन् प्रत्यय होता है। पक्ष में औत्सर्गिक 'ठक्' प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(ष्ठन्)** विवध (बहंगी) से जो जल आदि हरण करता है वह-विवधिक (कहार)। यदि स्त्री हो तो-विवधिकी। **(ठक्)** वैवधिक। यदि स्त्री हो तो-वैवधिकी।*

*सिद्धि-**(१) विवधिकः।** विवध+टा+ष्ठन्। विवध्+इक। विवधिक+सु। विवधिकः।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'विवध' शब्द से हरति-अर्थ में इस सूत्र से 'ष्ठन्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और अंग के अकार का लोप होता है। प्रत्यय के षित् होने से स्त्रीत्व-विवक्षा में **'षिद्गौरादिभ्यश्च'** (४।१।४१) से ङीष् प्रत्यय होता है- **विवधिकी।***

*(२) **वैवधिकः।** यहां तृतीया-समर्थ 'विवध' शब्द से हरति-अर्थ में विकल्प पक्ष में **'प्राग्वहतेष्ठक्'** (४।४।१) से प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय होता है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और पूर्ववत् अंग के अकार का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'टिड्ढाणञ्०'** (४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है।*

अण्–

(४) अण् कुटिलिकायाः।१८।

प०वि०-अण् १।१ कुटिलिकायाः ५।१।

अनु०-तेन, हरति इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तेन कुटिलिकाया हरति अण्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् कुटिलिकाशब्दात् प्रातिपदिकाद् हरतीत्यस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-कुटिलिकया हरति-मृगो व्याधम्-कौटिलिको मृगः। कुटिलिकया हरत्यङ्गारान्-कौटिलिकः कर्मारः।

कुटिलिका=वक्रगतिः, कर्माराणामायुधकर्षणी लोहमयी यष्टिश्च कथ्यते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (कुटिलिकायाः) कुटिलिका प्रातिपदिक से (हरति) हरति-अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

उदा०-कुटिलिका (वक्रगति) से देशान्तर में जो मृग शिकारी को हरण करता है वह-कौटिलिक मृग। कुटिलिका (भट्ठी से आयुधों को खींचनेवाली लोह की छड़ी) से आयुधों को जो हरण करता है वह-कौटिलिक कर्मार (लोहार)। कुटिलिका शब्द के वक्रगति और टेढ़ी लोह की छड़ी ये दो अर्थ हैं।

*सिद्धि-**कौटिलिकः।** कुटिलिका+टा+अण्। कौटिलिक्+अ। कौटिलिक+सु। कौटिलिकः।*

यहां तृतीया-समर्थ 'कुटिलिका' शब्द से हरति-अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के आकार का लोप होता है।

निर्वृत्तार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)–

(१) निर्वृत्तेऽक्षद्यूतादिभ्यः।१६।

प०वि०-निर्वृत्ते ७।१ अक्षद्यूत-आदिभ्यः ५।३।

स०-अक्षद्यूत आदिर्येषां ते अक्षद्यूतादयः, तेभ्यः-अक्षद्यूतादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तेन, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन अक्षद्यूतादिभ्यो निर्वृत्ते ठक्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थेभ्योऽक्षद्यूतादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो निर्वृत्त इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-अक्षद्यूतेन निर्वृत्तम्-आक्षद्यूतिकं वैरम्। जानुप्रहृतेन निर्वृत्तम्-जानुप्रहृतिकं वैरम् इत्यादिकम्।

अक्षद्यूत। जानुप्रहृत। जङ्घाप्रहृत। पादस्वेदन। कण्टकमर्दन। गतागत। यातोपयात। अनुगत। इति अक्षद्यूतादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (अक्षद्यूतादिभ्यः) अक्षद्यूत-आदि प्रातिपदिकों से (निर्वृत्ते) निर्वृत्त=बना हुआ अर्थ में (ठक्) यथाविहित 'ठक्' प्रत्यय होता है।*

उदा०-अक्षद्यूत (अक्ष नामक पासों से खेली गई द्यूतक्रीडा) से निर्वृत्त=बना हुआ आक्षद्यूतिक वैर। जानुप्रहृत (गोड़ा प्रहार) से निर्वृत्त=बना हुआ जानुप्रहृतिक वैर।

***सिद्धि-आक्षद्यूतिकम्।** अक्षद्यूत+टा+ठक्। आक्षद्यूत्+इक। आक्षद्यूतिक+सु। आक्षद्यूतिकम्।*

यहां तृतीया-समर्थ 'अक्षद्यूत' शब्द से निर्वृत्त-अर्थ में इस सूत्र से 'प्राग्वहतेष्ठक्' (४।४।१) से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, 'किति च' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-जानुप्रहृतिकम् आदि।

मप्–

(२) त्रेर्मम् नित्यम्।२०।

प०वि०-त्रेः ५।१ मप् १।१ नित्यम् १।१।

अनु०-तेन, निर्वृत्ते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन त्रेर्निर्वृत्ते नित्यं मप्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् त्रि-अन्तात् प्रातिपदिकाद् निर्वृत्त इत्यस्मिन्नर्थे नित्यं मप् प्रत्ययो भवति। अत्र त्रि-शब्देन '**ड्वितः क्त्रिः**' (३।३।८८) इति क्त्रि-प्रत्ययो गृह्यते।

उदा०-पक्त्रिणा निर्वृत्तम्-पक्त्रिमं फलम्। उप्त्रिणा निर्वृत्तम्-उप्त्रिमम् अन्नम्। कृत्रिणा निर्वृत्तम्-कृत्रिमं चित्रम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (त्रेः) क्त्रि-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से (निर्वृत्ते) निर्वृत्त=बना हुआ अर्थ में (नित्यम्) सदा (मप्) मप् प्रत्यय होता नित्य-वचन से केवल क्त्रि-प्रत्ययान्त शब्द का प्रयोग नहीं होता है।*

उदा०-पक्त्रि (पकाना) से निर्वृत्त=बना हुआ-पक्त्रिम फल। उप्त्रि (बोना) से निर्वृत्त-उप्त्रिम अन्न। कृत्रि (बनाना) से निर्वृत्त-कृत्रिम (बनावटी) चित्र।

सिद्धि-(१) पक्त्रिमम्। *पच्+क्त्रि। पक्+त्रि। पक्त्रि।। पक्त्रि+टा+मप्। पक्त्रि+म। पक्त्रिम+सु। पक्त्रिमम्।*

यहां प्रथम 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से 'ड्वितः क्त्रिः' (३।३।८८) से 'क्त्रि' प्रत्यय होता है। तत्पश्चात् क्त्रि-प्रत्ययान्त 'पक्त्रि' शब्द से निर्वृत्त-अर्थ में इस सूत्र से नित्य 'मप्' प्रत्यय होता है।

(२) उप्त्रिमम्। *'**डुवप् बीजसन्ताने छेदने च**' (भ्वा०उ०)। '**वचिस्वपियजादीनां किति**' (६।१।१५) से सम्प्रसारण होता है।*

(३) कृत्रिमम्। *'**डुकृञ् करणे**' (तना०उ०) पूर्ववत्।*

कक्+कन्-

(२) अपमित्ययाचिताभ्यां कक्कनौ।२१।

प०वि०-अपमित्य-याचिताभ्याम् ५।२ कक्-कनौ १।२।

स०-अपमित्यं च याचितं च ते अपमित्ययाचिते, ताभ्याम्-अपमित्ययाचिताभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। कक् च कन् च तौ कक्कनौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तेन, निर्वृत्ते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन अपमित्ययाचिताभ्यां निर्वृत्ते कक्कनौ।

४७४ पाणिनीय-अष्टाध्यायी-प्रवचनम्

अर्थ:-तेन इति तृतीयासमर्थाभ्याम् अपमित्य-याचिताभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां निर्वृत्त इत्यस्मिन्नर्थे यथासंख्यं कक्-कनौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(**अपमित्य**) अपमित्य निर्वृत्तम्-आपमित्यकम् (कक्)। (**याचितम्**) याचितेन निर्वृत्तम्-याचितकम् (कन्)।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तेन) तृतीया-समर्थ (अपमित्ययाचिताभ्याम्) अपमित्य और याचित शब्दों से (निर्वृत्ते) निर्वृत्त अर्थ में यथासंख्य (कक्कनौ) कक् और कन् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-**(अपमित्य)** अपमित्य=प्रतिदान (बदलना) से निर्वृत्त-आपमित्यक बदले में पाया हुआ। **(याचित)** याचित (मांगने) से निर्वृत्त-याचितक। मांग से पाया हुआ।*

*सिद्धि-(१) **आपमित्यकम्।** अपमित्य+टा+कक्। अपमित्य+०+क। आपमित्यक+सु। आपमित्यकम्।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'अपमित्य' शब्द से निर्वृत्त अर्थ इस सूत्र से 'कक्' प्रत्यय है। **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि होती है।*

*'अपमित्य' शब्द में **'मेङ् प्रतिदाने'** (भ्वा०प०) धातु से **'उदीचां माङो व्यतीहारे'** (३।४।१९) से क्त्वा प्रत्यय है **'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्'** (७।१।३७) से क्त्वा को ल्यप् आदेश होता है। क्त्वा-प्रत्ययान्त शब्द की **'क्त्वातोसुन्कसुनः'** (१।१।४०) से अव्यय संज्ञा होने से **'अव्ययादाप्सुपः'** (२।४।८२) से तृतीया-विभक्ति 'टा' का लोप हो जाता है।*

*(२) **याचितकम्।** यहां तृतीया-समर्थ 'याचित' शब्द से निर्वृत्त अर्थ में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है।*

संसृष्टार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)–

(१) संसृष्टे।२२।

वि०-संसृष्टे ७।१।

अनु०-तेन, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन प्रातिपदिकात् संसृष्टे ठक्।

अर्थ:-तेन इति तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् संसृष्ट इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति। संसृष्टम्=एकीभूतम्, अभिन्नमित्यर्थः।

उदा०-दध्ना संसृष्टम्-दाधिकम्। मारिचिकम्। शाङ्गविरिकम्। पैप्पलिकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से (संसृष्टे) मिश्रित अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-दधि (दही) से संसृष्ट=मिश्रित-दाधिक। मरिचिका (मिर्च) से संसृष्ट-मारिचिक। शृङ्गवेर (अदरक) से संसृष्ट-शाङ्गविरिक। पिप्पल (पीपल) से संसृष्ट-पैप्पलिक।

सिद्धि-दाधिकम्। *दधि+टा+ठक्। दाध्+इक। दाधिक+सु। दाधिकम्।*

यहां तृतीया-समर्थ 'दधि' शब्द से संसृष्ट अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

विशेषः *संसृष्ट अर्थ के कथन में जो पदार्थ मिलाया जाता है वह गौण होता है। जैसे दही लगाकर पूरी-पराठा खाने में दही गौण और पराठा प्रधान है। संस्कृत अर्थ में पदार्थ में उत्कर्षता का आधान होता है, संसृष्ट अर्थ में नहीं। जैसे दधि से संस्कृत-दाधिक ओदन।*

इनिः-

(२) चूर्णादिनिः।२३।

प०वि०-चूर्णात् ५।१ इनिः १।१।

अनु०-तेन, संसृष्टे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन चूर्णात् संसृष्टे इनिः।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थाच्चूर्णात् प्रातिपदिकात् संसृष्ट इत्यस्मिन्नर्थे इनिः प्रत्ययो भवति।

उदा०-चूर्णैः संसृष्टाः-चूर्णिनोऽपूपाः। चूर्णिनो धानाः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (चूर्णात्) चूर्ण प्रातिपदिक से (संसृष्टे) संसृष्ट अर्थ में (इनिः) इनि प्रत्यय होता है।*

उदा०-चूर्ण (कसार) से संसृष्ट-चूर्णी अपूप। चून से भरे हुये गुझे। चूर्ण से संसृष्ट-चूर्णी धान।

सिद्धि-चूर्णिनः। *चूर्ण+भिस्+इन्। चूर्ण्+इन्। चूर्णिन्+जस्। चूर्णिनः।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'चूर्ण' शब्द से संसृष्ट अर्थ में इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

प्रत्ययस्य लुक्--

(३) लवणाल्लुक्।२४।

प०वि०-लवणात् ५।१ लुक् १।१।

अनु०-तेन, संसृष्टे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन लवणात् संसृष्टे प्रत्ययस्य लुक्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थाल्लवण-शब्दात् प्रातिपदिकात् संसृष्ट इत्यस्मिन्नर्थे विहितस्य प्रत्ययस्य लुग् भवति। अत्र द्रव्यवाची लवणशब्दो गृह्यते न तु गुणवाची।

उदा०-लवणेन संसृष्टः-लवणः सूपः। लवणं शाकम्। लवणा यवागूः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (लवण) लवण प्रातिपदिक से (संसृष्टे) संसृष्ट अर्थ में यथाविहित ठक् प्रत्यय का लुक् होता है। यहां द्रव्यवाची 'लवण' शब्द का ग्रहण है, गुणवाची का नहीं।*

उदा०-लवण से संसृष्ट-लवण सूप (नमकीन दाल)। लवण से संसृष्ट-लवण शाक (नमकीन साग)। लवण से संसृष्ट-लवणा यवागू (नमकीन राबड़ी)।

__सिद्धि-लवणः।__ लवण+टा+ठक्। लवण+०। लवण+सु। लवणः।

यहां तृतीया-समर्थ 'लवण' शब्द से संसृष्ट अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का लुक्-विधान किया गया है। 'प्राग्वहतेष्ठक्' (४।४।१) से प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय प्राप्त है। उसका लुक् हो जाता है। ऐसे ही-__लवणं शाकम्, लवणा यवागूः।__

अण्--

(४) मुद्गादण्।२५।

प०वि०-मुद्गात् ५।१ अण् १।१।

अनु०-तेन, संसृष्टे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन मुद्गात् संसृष्टेऽण्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थाद् मुद्ग-शब्दात् प्रातिपदिकात् संसृष्ट इत्यस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-मुद्गेन संसृष्टः-मौद्ग ओदनः। मौद्गी यवागूः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (मुद्गात्) मुद्ग प्रातिपदिक से (संसृष्टे) संसृष्ट अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

उदा०-मुद्ग (मूंग) से संसृष्ट-मौद्ग ओदन (भात)। मुद्ग से संसृष्ट-मौद्गी यवागू (लापसी/राबड़ी)।

*सिद्धि-**मौद्गः।** मुद्ग+टा+अण्। मौद्ग्+अ। मौद्ग+सु। मौद्गः।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'मुद्ग' शब्द से संसृष्ट अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है-**मौद्गी यवागूः।***

उपसिक्तार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)–

(१) व्यञ्जनैरुपसिक्ते।२६।

प०वि०-व्यञ्जनैः ३।३ (पञ्चम्यर्थे) उपसिक्ते ७।१।

अनु०-तेन, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन व्यञ्जनैः=व्यञ्जनवाचिभ्य उपसिक्ते ठक्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थेभ्यो व्यञ्जनवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्य उपसिक्त इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-दध्ना उपसिक्त-दाधिक ओदनः। सौपिक ओदनः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (व्यञ्जनैः) व्यञ्जनवाची प्रातिपदिकों से (उपसिक्ते) उपसिक्त अर्थ में यथाविहित (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-दधि (दही) से उपसिक्त=सेचन से मृदूकृत-दाधिक ओदन (भात)। सूप (दाल) से उपसिक्त-सौपिक ओदन।

*सिद्धि-**दाधिकः।** दधि+टा+ठक्। दाध्+इक। दाधिक+सु। दाधिकः।*

यहां तृतीया-समर्थ 'दधि' शब्द से उपसिक्त अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

वर्ततेऽर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)–

(१) ओजः सहोऽम्भसा वर्तते।२७।

प०वि०-ओजः-सहः-अम्भसा ३।१ (पञ्चम्यर्थे) वर्तते क्रियापदम्।

स०-ओजश्च सहश्च अम्भश्च एतेषां समाहार: ओज:सहोऽम्भ:, तेन-ओज:सहोऽम्भसा।

अनु०-तेन, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वय:-तेन ओज:सहोऽम्भोभ्यो वर्तति ठक्।

अर्थ:-तेन इति तृतीयासमर्थेभ्य ओज:सहोऽम्भोभ्य: प्रातिपदिकेभ्यो वर्तति इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**ओज:**) ओजसा वर्तति-औजसिक: शूर:। (**सह:**) सहसा वर्तति-साहसिकश्चौर:। (**अम्भ:**) अम्भसा वर्तति-आम्भसिको मत्स्य:।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (ओज:सहोऽम्भसा) ओजस्, सहस्, अम्भस् प्रातिपदिकों से (वर्तति) वर्तति='है' अर्थ में यथाविहित (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(**ओज:**) जो ओज (बल) के सहित है वह-औजसिक शूर। (**सह:**) जो सह: (मर्षण-शक्ति) के सहित है वह-साहसिक चौर। (**अम्भ:**) जो अम्भ: (जल) के सहित है वह-आम्भसिक मत्स्य (मछली)।*

सिद्धि-औजसिक:। *ओजस्+टा+ठक्। औजस्+इक। औजसिक+सु। औजसिक:।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'ओजस्' शब्द से वर्तति (है) अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**साहसिक:, आम्भसिक:**।*

यथाविहितम् (ठक्)-

(२) तत् प्रत्यनुपूर्वमीपलोगकूलम्।२८।

प०वि०-तत् २।१ प्रति-अनुपूर्वम् २।१ ईपलोमकूलम् २।१ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-प्रतिश्च अनुश्च एतयो: समाहार: प्रत्यनु। प्रत्यनुपूर्वं यस्य तत् प्रत्यनुपूर्वम्, तत्-प्रत्यनुपूर्वम् (समाहारद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहि:)। ईपं च लोम च कूलं च एतेषां समाहार ईपलोमकूलम्, तत्-ईपलोमकूलम् (समाहारद्वन्द्व:)।

अनु०-वर्तति, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वय:-तत् प्रत्यनुपूर्वाद् ईपलोमकूलाद् वर्तति ठक्।

अर्थः-तद् इति तृतीयासमर्थेभ्य प्रति-अनुपूर्वेभ्य ईपलोमकूलेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो वर्तते इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(प्रति+ईपम्)** प्रतीपं वर्तते-प्रातीपिकः। **(अनु+ईपम्)** अन्वीपं वर्तते-आन्वीपिकः। **(प्रति+लोम)** प्रतिलोमं वर्तते-प्रातिलोमिकः। **(अनु+लोम)** अनुलोमं वर्तते-आनुलोमिकः। **(प्रति+कूलम्)** प्रतिकूलं वर्तते-प्रातिकूलिकः। **(अनु+कूलम्)** अनुकूलं वर्तते-आनुकूलिकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (प्रति-अनुपूर्वम्) प्रति और अनु पूर्वक (ईप-लोम-कूलम्) ईप, लोम और कूल प्रातिपदिकों से (वर्तति) वर्तति='है' अर्थ में यथाविहित (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(प्रति+ईप)** जो प्रतीप=विरुद्ध है वह-प्रातीपिक। **(अनु+ईप)** जो अन्वीप=जल के समान है वह-आन्वीपिक। **(प्रति+लोम)** जो प्रतिलोम=विरुद्ध है वह-प्रातिलोमिक। **(अनु+लोम)** जो अनुलोम=अविरुद्ध है वह-आनुलोमिक। **(प्रति+कूल)** जो प्रतिकूल=विरुद्ध है वह-प्रातिकूलम्। **(अनु+कूल)** जो अनुकूल=अविरुद्ध है वह-आनुकूलिक।*

सिद्धि-प्रातीपिकः। *प्रति+ईप+अम्+ठक्। प्रातीप्+इक। प्रातीपिक+सु। प्रातिपिकः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ प्रति-पूर्वक 'ईप' शब्द से वर्तति अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**अन्वीपम्** आदि।*

प्रतीपम्। *यहां '**प्रतिगता आपोऽस्मिन्निति-प्रतीपम्**' बहुव्रीहि समास है। '**द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽप ईत्**' (६।३।९७) से 'अप्' के अकार को ईत्-आदेश होता है। '**ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे**' (५।४।७४) से समासान्त 'अ' प्रत्यय होता है। प्रति+अप्+अ। प्रति+ईप्+अ। प्रतीप+सु। प्रतीपम्।*

प्रतिलोमम्। *यहां '**प्रतिगतानि लोमान्यस्य प्रतिलोमम्**' बहुव्रीहि समास है। '**अच् प्रत्यनुपूर्वात् सामलोम्नः**' (५।४।७५) से समासान्त 'अच्' प्रत्यय होता है-प्रति+लोमन्+अच्। प्रतिलोम्+अ। प्रतिलोम+सु। प्रतिलोमम्। '**नस्तद्धिते**' (६।४।१४४) से टि-भाग (अन्) का लोप हो जाता है।*

विशेषः *'वर्तति' शब्द में 'वृतु वर्तने' (भ्वा०आ०) धातु अकर्मक है। उसका कर्म (द्वितीया-विभक्ति) के साथ सम्बन्ध कैसे हो सकता है? "**क्रियाविशेषणमकर्मकाणां कर्म भवति**" अर्थात् क्रियाविशेषण अकर्मक धातुओं का कर्म होता है। इस परिभाषा से अकर्मक 'वृतु' धातु का कर्म के साथ सम्बन्ध होता है। 'प्रतीपम्' आदि क्रियाविशेषण अकर्मक 'वर्तति' के कर्म हैं।*

यथाविहितम् (ठक्)–

(३) परिमुखं च।२६।

प०वि०-परिमुखम् २।१ (पञ्चम्यर्थे) च अव्ययपदम्।

अनु०-तत्, वर्तति, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् परिमुखाच्च वर्तति ठक्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थात् परिमुखशब्दात् प्रातिपदिकाच्च वर्तति इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-परिमुखं वर्तति-पारिमुखिकः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (परिमुखम्) परिमुख प्रातिपदिक से (च) भी (वर्तति) वर्तति='है' अर्थ में यथाविहित (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-जो सेवक परिमुख=स्वामी के मुख के सामने वर्तमान रहता है वह-पारिमुखिक।

सिद्धि-पारिमुखिकः। परिमुख+अम्+ठक्। पारिमुख्+इक। पारिमुखिक+सु। पारिमुखिकः।

यहां द्वितीया-समर्थ 'परिमुख' शब्द से वर्तति अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय ठक् प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

परिमुखम्। यहां 'परितो मुखमिति परिमुखम्' 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से प्रादि-समास है। परि+मुख। परिमुख+सु। परिमुखम्-मुख के सामने।

प्रयच्छति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)–

(१) प्रयच्छति गर्ह्यम्।३०।

प०वि०-प्रयच्छति क्रियापदम्, गर्ह्यम् २।१।

अनु०-तत्, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् प्रातिपदिकात् प्रयच्छति ठक् गर्ह्यम्।

अर्थः-तदिति द्वितीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् प्रयच्छतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति, यद् द्वितीयासमर्थं गर्ह्यं चेत् तद् भवति।

उदा०-द्विगुणं प्रच्छति-द्वैगुणिकः । द्विगुणार्थं प्रयच्छतीत्यर्थः । त्रिगुणं प्रयच्छति-त्रैगुणिकः । द्विगुणार्थं त्रिगुणार्थं च धनप्रदानं गर्ह्यं मन्यते ।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ प्रातिपदिक से (प्रयच्छति) प्रयच्छति=प्रदान करता है अर्थ में यथाविहित (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है (गर्ह्यम्) जो द्वितीया-समर्थ है यदि वह गर्ह्य=निन्दनीय हो।

उदा०-जो द्विगुण (दुगना) करने के लिये धन प्रदान करता है वह-द्वैगुणिक। जो त्रिगुण (तिगुना) करने के लिये धन प्रदान करता है वह-त्रैगुणिक। यहां द्विगुण, त्रिगुण शब्द द्विगुण तथा त्रिगुण के लिये अर्थ में हैं। द्विगुण (दुगुना) और त्रिगुण (तिगुना) करने के लिये धन प्रदान करना गर्ह्य=निन्दनीय माना जाता है।

सिद्धि-द्वैगुणिकः । द्विगुण+अम्+ठक् । द्वैगुण्+इक । द्वैगुणिक+सु । द्वैगुणिकः ।

यहां द्वितीया-समर्थ 'द्विगुण' शब्द से प्रयच्छति=प्रदान करता है अर्थ में तथा गर्हा अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

ष्ठन्+ष्ठच्-

(२) कुसीददशैकादशात् ष्ठन्ष्ठचौ।३१।

प०वि०-कुसीद-दशैकादशात् ५।१ ष्ठन्-ष्ठचौ १।२।

स०-एकादशार्था दश इति दशैकादशाः। कुसीदं च दशैकादशाश्च एतेषां समाहारः कुसीददशैकादशम्, तस्मात्-कुसीददशैकादशात् (कर्मधारय-गर्भितसमाहारद्वन्द्वः)। ष्ठन् च ष्ठच् च तौ ष्ठन्ष्ठचौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, प्रयच्छति, गर्ह्यम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् कुसीददशैकादशाभ्यां प्रयच्छति ष्ठन्ष्ठचौ गर्ह्यम्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थाभ्यां कुसीद-दशैकादशाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां प्रयच्छतीत्यस्मिन्नर्थे यथासंख्यं ष्ठन्-ष्ठचौ प्रत्ययौ भवतः, यद् द्वितीयासमर्थं गर्ह्यं चेत् तद् भवति।

कुसीदम्=वृद्धिः। कुसीदार्थं द्रव्यं कुसीदमित्युच्यते। 'एकादशार्था दश इति दशैकादशाः' इति समानाधिकरणतत्पुरुषः। 'संख्याया अल्पीयस्या०' इति दशशब्दस्य पूर्वनिपातः। 'दशैकादशात्' इति सूत्रे निर्देशादेवाकारः

समासान्तो भवति। अतो वाक्यमपि अकारान्तमेव भवति-दशैकादशान् प्रयच्छति।

उदा०-(कुसीदम्) कुसीदं प्रयच्छति-कुसीदिकः। स्त्री चेत्-कुसीदिकी। (दशैकादशाः) दशैकादशान् प्रयच्छति-दशैकादशिकः। स्त्री चेत्-दशैकादशिकी।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (कुसीद-दशैकादशात्) कुसीद और दशैकादश प्रातिपदिकों से (प्रयच्छति) 'प्रदान करता है' अर्थ में यथासंख्य (ष्ठन्-ष्ठचौ) ष्ठन् और ष्ठच् प्रत्यय होते हैं। (गर्ह्यम्) जो द्वितीया-समर्थ है यदि वह गर्ह्य=निन्दनीय हो।

कुसीद का अर्थ वृद्धि है। कुसीद के लिये जो द्रव्य है, उसे कुसीद कहते हैं। यह तदर्थ में तत् शब्द का प्रयोग है। एकादश (११) के लिये जो दश (१०) मुद्रायें हैं उन्हें __'दशैकादश'__ कहते हैं।

उदा०-(कुसीद) कुसीद=व्याज के लिये जो धन देता है वह-कुसीदिक (सूदखोर)। यदि स्त्री हो तो-कुसीदिकी। (दशैकादश) जो एकादश मुद्राओं के लिये दश मुद्रायें देता है वह-दशैकादशिक। यदि स्त्री हो तो-दशैकादशिकी।

सिद्धि-(१) __कुसीदिकः।__ कुसीद+अम्+ष्ठन्। कुसीद+इक। कुसीदिक+सु। कुसीदिकः।

यहां द्वितीया-समर्थ 'कुसीद' शब्द से प्रयच्छति अर्थ में इस सूत्र से 'ष्ठन्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और अंग के अकार का लोप होता है। प्रत्यय के षित् होने से __'षिद्गौरादिभ्यश्च'__ (४।१।४१) से स्त्रीत्व-विवक्षा में ङीष् प्रत्यय होता है-__कुसीदिकी।__ प्रत्यय के नित् होने से __'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'__ (६।१।९४) से आद्युदात्त स्वर होता है-__कुसीदकः।__

(२) __दशैकादशिकः।__ यहां द्वितीया-समर्थ 'दशैकादश' शब्द से प्रयच्छति अर्थ में 'ष्ठच्' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में पूर्ववत् ङीष् प्रत्यय होता है-__दशैकादशिकी।__ प्रत्यय के चित् होने से 'चितः' (६।१।१६०) से अन्तोदात्त स्वर होता है-__दशैकादशिकः।__

__विशेषः__ कुसीद (व्याज) पर धन देना तथा ११) रु० के लिये १०) रु० देना पाणिनि के काल में गर्ह्य=निन्दनीय था।

उञ्छति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)–

(१) उञ्छति।३२।

प०वि०-उञ्छति क्रियापदम्।

अनु०-तत्, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् प्रातिपदिकाद् उञ्छति ठक्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् उञ्छतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति। भूमौ पतितस्यैकैकस्य कणस्योपादानमुञ्छ इत्युच्यते।

उदा०-बदराण्युञ्छति-बादरिकः। श्यामाकिकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ प्रातिपदिक से (उञ्छति) उञ्छति='भूमि पर पड़े हुये एक-एक कण को चुगता है' अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-जो बदर=बेरों को चुगता है वह-बादरिक। जो श्यामाक=सामक अन्नविशेष को चुगता है वह-श्यामाकिक।

सिद्धि-बादरिकः। बदर+शस्+ठक्। बादर्+इक। बादरिक+सु। बादरिकः।

*यहां द्वितीया-समर्थ 'बदर' शब्द से उञ्छति अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**श्यामाकिकः**।*

रक्षति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)-

(१) रक्षति।३३।

वि०-रक्षति क्रियापदम्।

अनु०-तत्, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् प्रातिपदिकाद् रक्षति ठक्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् रक्षतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-समाजं रक्षति-सामाजिकः। सान्निवेशिकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ प्रातिपदिक से (रक्षति) रक्षति=रक्षा करता है अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-जो समाज=मानव समूह की रक्षा करता है वह-सामाजिक। जो सन्निवेश=समुदाय की रक्षा करता है वह-सान्निवेशिक।

सिद्धि-सामाजिक: । समाज+अम्+ठक् । सामाज्+इक् । सामाजिक+सु । सामाजिक: ।

यहां द्वितीया-समर्थ 'समाज' शब्द से रक्षति अर्थ में यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

करोति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)–

(१) शब्ददर्दुरं करोति।३४।

प०वि०-शब्द-दर्दुरम् २।१ (पञ्चम्यर्थे)। करोति क्रियापदम्।

अनु०-तत्, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् शब्ददर्दुराभ्यां करोति ठक्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थाभ्यां शब्ददर्दुराभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां करोतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(शब्दः) शब्दं करोति-शाब्दिको वैयाकरणः। **(दर्दुरम्)** दर्दुरं करोति-दार्दुरिकः कुम्भकारः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (शब्ददर्दुरम्) शब्द और दर्दुर प्रातिपदिकों से करोति=करता है/बनाता है अर्थ में यथाविहित (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(शब्द) जो शब्द बनाता है वह-शाब्दिक वैयाकरण। जो दर्दुर=घड़ा बनाता है वह-दार्दुरिक कुम्भकार।

सिद्धि-शाब्दिकः । शब्द+अम्+ठक् । शाब्द्+इक । शाब्दिक+सु । शाब्दिकः ।

यहां द्वितीया-समर्थ 'शब्द' प्रातिपदिक से करोति-अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-दार्दुरिकः।

हन्ति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)–

(१) पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति।३५।

प०वि०-पक्षि-मत्स्य-मृगान् २।३ (पञ्चम्यर्थे) हन्ति क्रियापदम्।

स०-पक्षी च मत्स्यश्च मृगश्च ते पक्षिमत्स्यमृगाः, तान्-पक्षिमत्स्यमृगान् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् पक्षिमत्स्यमृगेभ्यो हन्ति ठक्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थेभ्यः पक्षिमत्स्यमृगेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो हन्तीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति। अत्र स्वरूपस्य पर्यायवाचिनां तद्विशेषवाचिनां च ग्रहणमिष्यते।

उदा०-(१) **पक्षी।** पक्षिणो हन्ति-पाक्षिकः। (पर्यायः) शकुनीन् हन्ति-शाकुनिकः (तद्विशेष) मयूरान् हन्ति-मायूरिकः। तित्तिरान् हन्ति-तैत्तिरीकः।

(२) **मत्स्यः।** मत्स्यान् हन्ति-मात्स्यिकः। (पर्यायः) मीनान् हन्ति-मैनिकः। (तद्विशेषः) शफरान् हन्ति-शाफरिकः। शकुलान् हन्ति-शाकुलिकः।

(३) **मृगः।** मृगान् हन्ति-मार्गिकः। (पर्यायः) हरिणान् हन्ति-हारिणिकः। (तद्विशेषः) सूकरान् हन्ति-सौकरिकः। सारङ्गान् हन्ति-सारङ्गिकः। आरण्याश्चतुष्पादो मृगा उच्यन्ते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (पक्षिमत्स्यमृगान्) पक्षी, मत्स्य, मृग प्रातिपदिकों से (हन्ति) हन्ति=मारता है अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है। यहां स्वरूप, पर्यायवाची और तद्विशेषवाची शब्दों का ग्रहण किया जाता है।*

उदा०-(१) पक्षी। जो पक्षियों को मारता है वह-पाक्षिक (चिड़ीमार)। (पर्याय) जो शकुनियों को मारता है वह-शाकुनिक (चिड़ीमार)। (तद्विशेष) जो मयूर=मोर को मारता है वह-मायूरिक (मोरमार)। जो तित्तिर=तीतरों को मारता है वह-तैत्तिरिक (तीतरमार)।

(२) मत्स्य। जो मत्स्य=मछलियों को मारता है वह-मात्स्यिक (मछलीमार)। (पर्याय) जो मीन को मारता है वह-मैनिक (मछलीमार)। (तद्विशेष) जो शफर=छोटी चमकीली मछलियों को मारता है वह-शाफरिक। जो शकुल=सोरा मछलियों को मारता है वह-शाकुलिक।

(३) मृग। जो मृगों को मारता है वह-मार्गिक। (पर्याय) जो हरिणों को मारता है वह-हारिणिक (हरिणमार)। (तद्विशेष) जो सूकर=सूअरों को मारता है वह-सौकरिक (सूअरमार)। जो सारङ्ग=चितकबरे हरिणों को मारता है वह-सारङ्गिक। चौपाये जंगली जानवर 'मृग' कहाते हैं।

सिद्धि-पाक्षिकः । पक्षिन्+शस्+ठक् । पाक्ष्+इक । पाक्षिक+सु । पाक्षिकः ।

यहां द्वितीया-समर्थ 'पक्षिन्' के शब्द से हन्ति-अर्थ में यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग के आदिवृद्धि और 'नस्तद्धिते' (६।४।१४४) से अंग के टि-भग (इन्) का लोप होता है। ऐसे ही-मैनिकः आदि।

तिष्ठति-हन्ति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)–

(१) परिपन्थं च तिष्ठति।३६।

प०वि०-परिपन्थम् २।१ च अव्ययपदम्, तिष्ठति क्रियापदम्।

अनु०-तत्, ठक्, हन्ति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् परिपन्थं तिष्ठति हन्ति च ठक्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थात् परिपन्थ-शब्दात् प्रातिपदिकात् तिष्ठति हन्तीति चार्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-परिपन्थं तिष्ठति-पारपन्थिकश्चौरः। परिपन्थं हन्ति-पारिपन्थिकश्चौरः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (परिपन्थम्) परिपन्थ शब्द से (तिष्ठति) ठहरता है (च) और (हन्ति) मारता है अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय* ***होता है।***

उदा०-जो परिपन्थ (मार्ग को घेरकर) बैठा रहता है वह-पारिपन्थिक चौर। जो ***परिपन्थ*** *(मार्ग पर चलनेवाले को) मारता है वह-पारिपन्थिक चौर।*

सिद्धि-पारिपन्थिकः । *परिपन्थ+अम्+ठक् । पारिपन्थ्+इक । पारिपन्थिक+सु । पारिपन्थिकः ।*

यहां द्वितीया-समर्थ 'परिपन्थ' शब्द से तिष्ठति और हन्ति अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

विशेषः *(१)* ***'परिपन्थ'*** *शब्द में* ***'अपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या'*** *(२।१।१२) से अव्ययीभाव समास है-पथः परि इति-परिपन्थम्।* ***'अव्ययीभावश्च'*** *(१।१।४१) से 'परिपन्थ' शब्द अव्यय है। यहां 'परि' शब्द* ***'अपपरी वर्जने'*** *(१।४।८८) से वर्जनार्थक है। जो पन्था (मार्ग) को छोड़कर बैठा रहता है वह-* ***'पारिपन्थिक'*** *कहाता है।*

*(२) 'परिपन्थ' शब्द में 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से प्रादि-समास भी हो सकता है। **पन्थानं परि इति परिपन्थम्।** जो पन्था (मार्ग) को सब ओर से घेरकर बैठा रहता है वह- 'पारिपन्थिक' कहाता है। अथवा जो परिपन्थ=पन्था को तय करनेवाले लोगों को मारता है वह-पारिपन्थिक (चोर) होता है।*

धावति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)–

(१) माथोत्तरपदपदव्यनुपदं धावति।३७।

प०वि०-माथोत्तरपद-पदवी-अनुपदम् २।१ (पञ्चम्यर्थे) धावति क्रियापदम्।

स०-माथ उत्तरपदं यस्य तद् माथोत्तरपदम्, माथोत्तरपदं च पदवी च अनुपदं च एतेषां समाहारो माथोत्तरपदपदव्यनुपदम्, तत्-माथोत्तरपदपदव्यनुपदम् (बहुव्रीहिगर्भितसमाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः-तद् माथोत्तरपदात् पदव्यनुपदाभ्यां धावति ठक्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थाद् माथोत्तरपदात् प्रातिपदिकात् पदवी-अनुपदाभ्यां च प्रातिपदिकाभ्यां धावतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(माथोत्तरपदम्)** दण्डमाथं धावति-दाण्डमाथिकः। शुल्कमाथं धावति-शौल्कमाथिकः। **(पदवी)** पदवीं धावति-पादविकः। **(अनुपदम्)** अनुपदं धावति-आनुपदिकः। माथशब्दः पथि-पर्यायः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (माथोत्तरपदपदव्यनुपदम्) माथ शब्द उत्तरपदवाले प्रातिपदिक से तथा पदवी और अनुपद प्रातिपदिकों से (धावति) 'दौड़ता है' अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(माथोत्तरपद)** जो दण्डमाथ (सरल पथ) पर दौड़ता है वह-दाण्डमाथिक। जो शुल्कमाथ (शुल्क के पथ) पर दौड़ता है वह-शौल्कमाथिक। **(पदवी)** जो पदवी=मार्ग पर दौड़ता है वह-पादविक। **(अनुपद)** जो अनुपद=पीछे-पीछे दौड़ता है वह-आनुपदिक।*

सिद्धि-दाण्डमाथिकः। *दण्डमाथ+अम्+ठक्। दाण्डमाथ्+इक। दाण्डमाथिक+सु। दाण्डमाथिकः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'दण्डमाथ' शब्द से धावति अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**शौल्कमाथिक:** आदि।*

विशेषः *(१) दण्डमाथ-यहां माथ शब्द 'पथिन्' का पर्यायवाची है। **मथ्यते=विलोड्यते गन्तृभिरिति माथः। दण्डाकारो माथ इति दण्डमाथः।** दण्ड के समान जो सरल माथ (मार्ग) है वह 'दण्डमाथ' कहाता है। **शुल्कस्य माथ इति शुल्कमाथः।** शुल्क (भाड़े) का जो माथ (मार्ग) है वह 'शुल्कमाथ' होता है अर्थात् जिस पर गाड़ी आदि का भाड़ा देकर चलना पड़ता है।*

*(२) **अनुपदम्-पदस्य पश्चात्-अनुपदम्।** पद=पैर का निशान। पैर के निशान के पीछे-पीछे=अनुपद। यहां **'अव्ययं विभक्ति०'** (२।१।६) से पश्चात् अर्थ में अव्ययीभाव समास है। **'अव्ययीभावश्च'** (१।१।४१) से 'अनुपदम्' शब्द अव्यय है।*

ठञ्+ठक्-

(२) आक्रन्दाट्ठञ् च।३८।

प०वि०-आक्रन्दात् ५।१ ठञ् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-तत्, ठक्, धावति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् आक्रन्दाद् धावति ठञ् ठक् च।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थाद् आक्रन्दशब्दात् प्रातिपदिकाद् धावतीत्यस्मिन्नर्थे ठञ् ठक् च प्रत्ययो भवति। आक्रन्द्यते=आर्त्तैराहूयते इति आक्रन्दः, आर्त्तानामयनम् (शरणम्) उच्यते।

उदा०-आक्रन्दं धावति-आक्रन्दिकः (ठञ्)। आक्रन्दिकः (ठक्)। स्त्री चेत्-आक्रन्दिकी।

आर्यभाषाः अर्थ- *(तत्) द्वितीया-समर्थ (आक्रन्दात्) आक्रन्द प्रातिपदिक से (धावति) दौड़ता है अर्थ में (ठञ्) ठञ् (च) और (ठक्) ठक् प्रत्यय होते हैं। आर्त्त=दुःखीजन जिसे शरण के लिये पुकारते उस स्थान को 'आक्रन्द' कहते हैं।*

उदा०-जो आक्रन्द (आर्त्तालय) की ओर दौड़ता है वह-आक्रन्दिक (ठञ्)। आक्रन्दिक (ठक्)। यदि स्त्री हो तो-आक्रन्दिकी।

*सिद्धि-(१) **आक्रन्दिकः।** आक्रन्द+अम्+ठञ्। आक्रन्द+इक। आक्रन्दिक+सु। **आक्रन्दिकः।***

*यहां द्वितीया-समर्थ 'आक्रन्द' शब्द से धावति अर्थ में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। **पूर्ववत्** अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। यहां **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।१९४) से आद्युदात्त स्वर होता है-**आक्रन्दिकः।***

*(२) आक्रन्दिकः। यहां 'आक्रन्द' शब्द से पूर्ववत् 'ठक्' प्रत्यय है। यहां **'कितः'** (६।१।१६२) से अन्तोदात्त स्वर होता है-आक्रन्दिकः। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'टिड्ढाणञ्०'** (४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है-आक्रन्दिकी।*

गृह्णाति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)–

(१) पदोत्तरपदं गृह्णाति।३६।

प०वि०–पदोत्तरपदम् २।१ (पञ्चम्यर्थे)। गृह्णाति क्रियापदम्।

स०–पदम् उत्तरपदं यस्य तत् पदोत्तरपदम्, तत्-पदोत्तरपदम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०–तत्, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत् पदोत्तरपदाद् गृह्णाति ठक्।

अर्थः–तद् इति द्वितीयासमर्थात् पदोत्तरपदात् प्रातिपदिकाद् गृह्णातीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०–पूर्वपदं गृह्णाति-पौर्वपदिकः। उत्तरपदं गृह्णाति-औत्तरपदिकः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (पदोत्तरपदम्) पद शब्द उत्तर में है जिसके उस प्रातिपदिक से (गृह्णाति) ग्रहण करता है अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०–जो पूर्वपद को ग्रहण करता है वह-पौर्वपदिक। जो उत्तरपद को ग्रहण करता है वह-औत्तरपदिक।

***सिद्धि-पौर्वपदिकः।** पूर्वपद+अम्+ठक्। पौर्वपद्+इक। पौर्वपदिक+सु। पौर्वपदिकः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'पद' शब्द उत्तरपदवाले 'पूर्वपद' शब्द से गृह्णाति अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**औत्तरपदिकः।***

यथाविहितम् (ठक्)–

(२) प्रतिकण्ठार्थललामं च।४०।

प०वि०–प्रतिकण्ठ-अर्थ-ललामम् २।१ (पञ्चम्यर्थे) च अव्ययपदम्।

स०-कण्ठं कण्ठं प्रति इति प्रतिकण्ठम्। प्रतिकण्ठं च **अर्थश्च** ललामश्च एतेषां समाहारः प्रतिकण्ठार्थललामम्, तत्-प्रतिकण्ठार्थललामम् (अव्ययीभावगर्भितसमाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, ठक्, गृह्णाति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् प्रतिकण्ठार्थललामेभ्यश्च गृह्णाति ठक्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थेभ्यः प्रतिकण्ठार्थललामेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यश्च गृह्णातीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**प्रतिकण्ठम्**) प्रतिकण्ठं गृह्णाति-प्रातिकण्ठिकः। (**अर्थः**) अर्थं गृह्णाति-आर्थिकः। (**ललामः**) ललामं गृह्णाति-लालामिकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (प्रतिकण्ठार्थललामम्) प्रतिकण्ठ, अर्थ, ललाम प्रातिपदिकों से (च) भी (गृह्णाति) ग्रहण करता है अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(**प्रतिकण्ठ**) जो प्रतिकण्ठ=समस्त कण्ठ को ग्रहण करता है वह-प्रातिकण्ठिक। (**अर्थ**) जो अर्थ=धन को ग्रहण करता है वह-आर्थिक। (**ललाम**) जो ललाम=भूषण को ग्रहण करता है वह-लालामिक।*

*सिद्धि-**प्रातिकण्ठिकः**। प्रतिकण्ठ+अम्+ठक्। प्रातिकण्ठ्+इक। प्रातिकण्ठिक+सु। प्रातिकण्ठिकः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'प्रतिकण्ठ' प्रातिपदिक से गृह्णाति अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**आर्थिकः, लालामिकः**।*

चरति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)-

(१) धर्मं चरति।४१।

प०वि०-धर्मम् २।१ (पञ्चम्यर्थे) चरति क्रियापदम्।

अनु०-तत्, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् धर्माच्चरति ठक्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थाद् धर्मशब्दात् प्रातिपदिकाच्चरतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति। अत्र चरतिरासेवा (पौनःपुन्यम्) गृह्यते, नानुष्ठानमात्रम्।

उदा०-धर्मं चरति-धार्मिकः।

आर्यभाषाः अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (धर्मम्) धर्म प्रातिपदिक से (चरति) बार-बार आचरण करता है अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है।

उदा०-जो धर्म का पुनः-पुनः आचरण करता है वह-धार्मिक।

सिद्धि-धार्मिकः। धर्म+अम्+ठक्। धार्म्+इक। धार्मिक+सु। धार्मिकः।

यहां द्वितीया-समर्थ 'धर्म' शब्द से चरति अर्थ में यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

एति-अर्थप्रत्ययविधिः

ठन्+ठक्–

(१) प्रतिपथमेति ठँश्च।४२।

प०वि०-प्रतिपथम् अव्ययपदम् (द्वितीयार्थे), एति क्रियापदम्, ठन् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-पन्थानं पन्थानं प्रति इति प्रतिपथम् (अव्ययीभावः)।

अनु०-तत्, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् प्रतिपथम् एति ठन् ठक् च।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थात् प्रतिपथशब्दात् प्रातिपदिकाद् एतीत्यस्मिन्नर्थे ठन् ठक् च प्रत्ययो भवति।

उदा०-प्रतिपथम् एति-प्रतिपथिकः (ठन्)। प्रातिपथिकः (ठक्)।

आर्यभाषाः अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (प्रतिपथम्) प्रतिपथ प्रातिपदिक से (एति) प्राप्त करता है अर्थ में (ठन्) ठन् (च) और (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है।

उदा०-जो प्रतिपथ=प्रत्येक मार्ग (जल, स्थल, आकाश) को प्राप्त करता है वह-प्रतिपथिक (ठन्)। प्रातिपथिक (ठक्)।

सिद्धि-(१) प्रतिपथिकः। प्रतिपथ+अम्+ठन्। प्रतिपथ्+इक। प्रतिपथिक+सु। प्रतिपथिकः।

*यहां द्वितीया-समर्थ 'प्रतिपथ' शब्द से एति अर्थ में इस सूत्र से 'ठन्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और अंग के अकार का लोप होता है। प्रत्यय के नित् होने से **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।१९४) से आद्युदात्त स्वर होता है-**प्रतिपथिकः।***

*(२) प्रातिपथिकः। यहां पूर्ववत् 'प्रतिपथ' शब्द से 'ठक्' प्रत्यय है। **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि होती है। प्रत्यय के 'कित्' होने से **'कितः'** (६।१।१६२) से अन्तोदात्त स्वर होता है-प्रातिपथिकः।*

समवैति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)–

(१) समवायान् समवैति।४३।

प०वि०-समवायान् २।३ (पञ्चम्यर्थे) समवैति क्रियापदम्।

अनु०-तत्, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् समवायेभ्यः समवैति ठक्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थेभ्यः समवायवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः समवैतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति।

'समवायान्' इति बहुवचननिर्देशात् तद्वाचिनः शब्दा गृह्यन्ते। समवायः=समूहः। समवैति=आगत्य समवायस्यैकदेशी भवतीत्यर्थः।

उदा०-समवायं समवैति-सामवायिकः। सामाजिकः। सामूहिकः। सान्निवेशिकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (समवायान्) समवाय=समूहवाची प्रातिपदिकों से (समवैति) आकर समवाय का एक अंग बनता है अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-जो समवाय का आकर एकदेश (एक भाग) बनता है वह-सामवायिक। जो समाज=मानव संघ का आकर एक देश बनता है वह-सामाजिक। जो समूह का आकर एक देश बनता है वह-सामूहिक। जो सन्निवेश=समुदाय का आकर एकदेश बनता है वह-सान्निवेशिक।

सिद्धि-सामवायिकः। *समवाय+अम्+ठक्। सामावाय्+इक। सामवायिक+सु। सामवायिकः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'समवाय' शब्द से समवैति अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता हैं। ऐसे ही-**सामाजिकः** आदि।*

ण्यः–

(२) परिषदो ण्यः ।४४।

प०वि०–परिषदः ५ ।१ ण्यः १ ।१ ।

अनु०–तत्, ठक्, समवायान्, समवैति इति चानुवर्तते ।

अन्वयः–तत् समवायात् परिषदः समवैति ण्यः ।

अर्थः–तद् इति द्वितीयासमर्थात् समवायवाचिनः परिषत्–शब्दात् प्रातिपदिकात् समवैतीत्यस्मिन्नर्थे ण्यः प्रत्ययो भवति ।

उदा०–परिषदं समवैति–पारिषद्यः ।

आर्यभाषाः अर्थ–*(तत्) द्वितीया-समर्थ (समवायान्) समवायवाची (परिषदः) परिषद् प्रातिपदिक से (समवैति) आकर उसका एकदेश (भाग) बनता है अर्थ में (ण्यः) ण्य प्रत्यय होता है।*

उदा०–जो परिषद्=विद्वत्-सभा का आकर एकदेश बनता है वह–पारिषद्यः ।

सिद्धि–पारिषद्यः । *परिषद्+अम्+ण्य । पारिषद+य । पारिषद्य+सु । पारिषद्यः ।*

*यहां द्वितीया-समर्थ, समवायवाची 'परिषत्' शब्द से समवैति अर्थ में इस सूत्र से 'ण्य' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७ ।२ ।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है।*

विशेषः परिषद्– *चरण (वैदिक विद्यापीठ) के अन्तर्गत एक प्रकार की विद्वत्सभा जो उच्चारण और व्याकरण सम्बन्धी नियमों का निश्चय करती थी और जिसमें शाखा के पाठ आदि के विषय में भी विचार होता था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २९१)।*

ण्य-विकल्पः–

(३) सेनाया वा ।४५।

प०वि०–सेनायाः ५ ।१ वा अव्ययपदम् ।

अनु०–तत्, समवायान्, समवैति, ण्य इति चानुवर्तते ।

अन्वयः–तत् सेनाया समवैति वा ण्यः ।

अर्थः–तद् इति द्वितीयासमर्थात् सेना-शब्दात् प्रातिपदिकात् समवैतीत्यस्मिन्नर्थे विकल्पेन ण्यः प्रत्ययो भवति, पक्षे च यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति ।

उदा०–सेनां समवैति–सैन्यः (ण्यः) । सैनिकः (ठक्) ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (सेनायाः) सेना प्रातिपदिक से (समवैति) आकर उसका एकदेश बनता है अर्थ में (वा) विकल्प से (ण्यः) प्रत्यय होता है और पक्ष में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-जो सेना में आकर उसका एकदेश बनता है वह-सैन्य (ण्य)। सैनिक (ठक्)।

सिद्धि-(१) सैन्यः। सेना+अम्+ण्य। सैन्+य। सैन्य+सु। सैन्यः।

यहां द्वितीया-समर्थ 'सेना' शब्द से समवैति अर्थ में इस सूत्र से 'ण्य' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के आकार का लोप होता है।

(२) सैनिकः। यहां पूर्वोक्त 'सेना' शब्द से विकल्प-पक्ष में 'ठक्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

पश्यति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)–

(१) संज्ञायां ललाटकुक्कुट्यौ पश्यति।४६।

प०वि०-संज्ञायाम् ७।१ ललाट-कुक्कुट्यौ २।२ (पञ्चम्यर्थे)। पश्यति क्रियापदम्।

स०-ललाटं च कुक्कुटी च ते ललाटकुक्कुट्यौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् ललाटकुक्कुटीभ्यां पश्यति ठक् संज्ञायाम्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थाभ्यां ललाटकुक्कुटीभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां पश्यतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्। अत्र संज्ञाग्रहणं सेवकविशेषे भिक्षुविशेषे चार्थे नियमार्थं क्रियते।

उदा०-**(ललाटम्)** ललाटं पश्यति-लालाटिकः सेवकः। **(कुक्कुटी)** कुक्कुटीं पश्यति-कौक्कुटिको भिक्षुः (संन्यासी)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (ललाटकुक्कुट्यौ) ललाट और कुक्कुटी प्रातिपदिकों से (पश्यति) देखता है अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो। यहां सेवक-विशेष और भिक्षु-विशेष (संन्यासी) अर्थ में संज्ञा-ग्रहण किया गया है, रूढ अर्थ में नहीं।*

उदा०-(ललाट) जो स्वामी के ललाट को देखता है वह-लालाटिक सेवक।

सब अंगों में से दूर से ललाट (माथा) दिखाई देता है। यहां ललाट-दर्शन से सेवक का स्वामी के कार्यों में उपस्थित न होना लक्षित किया गया है। जो सेवक स्वामी के कार्यों में उपस्थित नहीं होता है, दूर से स्वामी के ललाट को देखकर इधर-उधर हो जाता है वह 'लालाटिक' सेवक कहाता है।

*(**कुक्कुटी**) जो कक्कुटी (मुर्गी) को देखता है वह-कौक्कुटिक भिक्षु (संन्यासी)।*

यहां कुक्कुटी शब्द से कुक्कुटी का बैठना अभिप्रेत है, अर्थात् जितने स्थान में कुक्कुटी बैठती है उतने स्थान पर ही चलते समय जो अपनी दृष्टि को संयमित रखता है, इधर-उधर नहीं देखता है वह कौक्कुटिक संन्यासी कहाता है।

*सिद्धि-**लालाटिकः**। ललाट+अम्+ठक्। ललाट्+इक। ललाटिक+सु। लालाटिकः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'ललाट' शब्द से संज्ञाविशेष (सेवक) अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**कौक्कुटिकः**।*

धर्म्य-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)-

(१) तस्य धर्म्यम्।४७।

प०वि०-तस्य ६।१ धर्म्यम् १।१।

अनु०-ठक् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तस्य प्रातिपदिकाद् धर्म्यं ठक्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् धर्म्यमित्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति।

धर्मः=अनुवृत्त आचारः। धर्मादनपेतम्=धर्म्यम्। न्याय्यम्, आचार-युक्तमित्यर्थः। **'धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते'** (४।४।९२) इति यत् प्रत्ययः।

उदा०-शुल्कशालाया धर्म्यम्-शौल्कशालिकम्। आकरिकम्। आपणिकम्। गौल्मिकम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ प्रातिपदिक से (धर्म्यम्) न्याय्य अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है।*

*धर्म=अनुवृत्त आचार। धर्म से जो पृथक् न हो वह धर्म्य=न्याय्य, आचारयुक्त। 'धर्म्य' शब्द में **'धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते'** (४।४।९२) से अनपेत (अदूर) अर्थ में 'यत्' प्रत्यय है।*

उदा०-शुल्कशाला का जो धर्म्य है वह-शौल्कशालिक। आकर (खजाना) का जो धर्म्य है वह-आकरिक। आपण (दुकान) का जो धर्म्य है वह-आपणिक। गुल्म (जंगल) का जो धर्म्य वह-गौल्मिक।

*सिद्धि-**शौल्कशालिकम्।** शुल्कशाला+ङस्+ठक्। शौल्कशाल्+इक। शौल्कशालिक+सु। शौल्कशालिकम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'शुल्कशाला' शब्द से धर्म्य=न्याय्य (उचित देय) है अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**आकरिकम्** आदि।*

अण्–

(२) अण् महिष्यादिभ्यः।४८।

प०वि०-अण् १।१ महिषी-आदिभ्यः ५।३।

स०-महिषी आदिर्येषां ते महिष्यादयः, तेभ्यः-महिष्यादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तस्य, धर्म्यम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य महिष्यादिभ्यो धर्म्यम् अण्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो महिष्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो धर्म्यमित्यस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-महिष्या धर्म्यम्-माहिषम्। प्राजावतम् इत्यादिकम्।

महिषी। प्रजावती। प्रलेपिका। विलेपिका। अनुलेपिका। पुरोहित। मणिपाली। अनुचारक। होतृ। यजमान। इति महिष्यादयः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (महिष्यादिभ्यः) महिषी आदि प्रातिपदिकों से (धर्म्यम्) धर्मयुक्त आचार अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

उदा०-महिषी (रानी) का जो धर्म्य=धर्मयुक्त आचार है वह-माहिष। प्रजावती का जो धर्म्य है वह-प्राजावत इत्यादि।

*सिद्धि-**माहिषम्।** महिषी+ङस्+अण्। माहिष्+अ। माहिष+सु। माहिषम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'महिषी' शब्द से धर्म्य अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के ईकार का लोप होता है। ऐसे ही-**प्राजावतम्** आदि।*

अञ्–

(३) ऋतोऽञ् ।४६।

प०वि०–ऋतः ५ ।१ अञ् ।

अनु०–तस्य, धर्म्यम् इति चानुवर्तते ।

अन्वयः–तस्य ऋतो धर्म्यम् अञ् ।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् ऋकारान्तात् प्रातिपदिकाद् धर्म्यमित्यस्मिन्नर्थेऽञ् प्रत्ययो भवति ।

उदा०–पोतुर्धर्म्यम्–पौत्रम् । उद्गातुर्धर्म्यम्–औद्गात्रम् ।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(तस्य) षष्ठी–समर्थ (ऋतः) ऋकारान्त प्रातिपदिक से (धर्म्यम्) धर्मयुक्त आचार अर्थ में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०–पोता (ब्रह्मा) का जो धर्म्य=धर्मयुक्त आचार है वह–पौत्र। उद्गाता ऋत्विक् का जो धर्म्य है वह–औद्गात्र।

***सिद्धि–पौत्रम्।** पोतृ+ङस्+अञ्। पौतृ+अ। पौत्र+सु। पौत्रम्।*

*यहां षष्ठी–समर्थ, ऋकारान्त 'पोतृ' शब्द से धर्म्य अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और '**इको यणचि**' (६।१।७६) से अंग के ऋकार को यण्–आदेश (र्) होता है। ऐसे ही–**औद्गात्रम्।***

अवक्रय-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)–

(१) अवक्रयः ।५०।

प०वि०–अवक्रयः १ ।१ ।

अनु०–तस्य, ठक् इति चानुवर्तते ।

अन्वयः–तस्य प्रातिपदिकाद् अवक्रयष्ठक् ।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् अवक्रय इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति ।

"वाणिज्यार्थं तैलधान्यादिकं देशान्तरं नयताऽस्मिन् शुल्कस्थाने प्रतिभारमेतावद् देयमिति तद् देशाधिपतिना यत् कल्पितं सोऽवक्रयः पिण्डक

इत्युच्यते" (पदमञ्जरी)। ननु अवक्रयोऽपि धर्म्यमेव ? नैतदस्ति-लोकपीडया धर्मातिक्रमेणापि अवक्रयो भवति।

उदा०-शुल्कशालाया अवक्रयः-शौल्कशालिकः। आकरिकः। आपरिकः। गौल्मिकः।

__आर्यभाषा:__ अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ प्रातिपदिक से (अवक्रयः) कर-प्रदान अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है।

वाणिज्य के लिये तैल, धान्य आदि द्रव्य देशान्तर में ले जानेवाले व्यापारी को इस शुल्क-स्थान (चुंगी) में प्रति-मण इतना कर (टैक्स) देना है, जो कि उस देश के राजा द्वारा निश्चित किया गया है वह राशि अवक्रय (पिण्डक) कहाती है। यहां अपना द्रव्य देकर ही अपना द्रव्य स्वीकार्य होता है, इसलिये यह 'अवक्रय' कहाता है। अवक्रय भी धर्म्य ही है ? नहीं लोक-पीडा की भावना से एवं धर्म के अतिक्रमण से भी 'अवक्रय' होता है अतः अवक्रय और धर्म्य अर्थ पृथक्-पृथक् हैं।

उदा०-शुल्कशाला का जो अवक्रय है वह-शौल्कशालिक। आकर (खज़ाना) को जो अवक्रय है वह-आकरिक। आपण (दुकान) का जो अवक्रय है वह-आपणिक। गुल्म (जंगल) का जो अवक्रय है वह-गौल्मिक।

__सिद्धि-शौल्कशालिकः।__ यहां षष्ठी-समर्थ 'शुल्कशाला' शब्द से अवक्रय अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-__आकरिकः__ आदि।

अस्य (षष्ठी) अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)- {पण्यम्}

(१) तदस्य पण्यम्।५१।

प०वि०-तत् १।१ अस्य ६।१ पण्यम् १।१।

अनु०-ठक् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तत् प्रातिपदिकात् अस्य ठक् पण्यम्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं पण्यं चेत् तद् भवति। पणितुमर्हम्-पण्यम्।

उदा०-अपूपाः पण्यमस्य-आपूपिकः। शाष्कुलिकः। मौदकिकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्य) इसका अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है (पण्यम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि पण्य=कोई व्यवहार्य द्रव्य हो।*

उदा०-अपूप (मालपूये) हैं पण्य इसके यह-आपूपिक। शष्कुलि (पूरी) हैं पण्य इसकी यह-शाष्कुलिक। मोदक (लड्डू) हैं पण्य इसके यह मौदकिक।

सिद्धि-आपूपिकः। *अपूप+जस्+ठक्। आपूप्+इक। आपूपिक+सु। आपूपिकः।*

यहां प्रथमा-समर्थ (पण्यवाची) 'अपूप' शब्द से अस्य (इसका) अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

ठञ्- **{पण्यम्}**

(२) लवणाट्ठञ्।५२।

प०वि०-लवणात् ५।१ ठञ् १।१।

अनु०-तद्, अस्य, पण्यम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् लवणाद् अस्य ठञ् पण्यम्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाल्लवण-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं पण्यं चेत् तद् भवति।

उदा०-लवणं पण्यमस्य-लावणिकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (लवणात्) लवण प्रातिपदिक से (अस्य) इसका अर्थ में (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है (पण्यम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह पण्य हो।*

उदा०-लवण (नमक) है पण्य इसका यह-लावणिक (नमक का व्यापारी)।

सिद्धि-लावणिकः। *लवण+सु+ठञ्। लावण्+इक। लावणिक+सु। लावणिकः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, पण्यवाची 'लवण' शब्द से अस्य (इसका) अर्थ में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। प्रत्यय के ञित् होने से '**ञ्नित्यादिर्नित्यम्**' (६।१।१९४) से आद्युदात्त स्वर होता है-**लावणिकः।** यह 'ठक्' प्रत्यय का अपवाद है।*

ष्ठन्- **{पण्यम्}**

(३) किशरादिभ्यष्ठन्।५३।

प०वि०-किशर-आदिभ्यः ५।३ ष्ठन् १।१।

स०-किशर आदिर्येषां ते किशरादयः, तेभ्यः-किशरादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तत्, अस्य, पण्यम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् किशरादिभ्योऽस्य ष्ठन् पण्यम्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थेभ्यः किशरादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे ष्ठन् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं पण्यं चेत् तद् भवति। किशरादयः शब्दा गन्धविशेषवाचकाः सन्ति।

उदा०-किशरं पण्यमस्य-किशरिकः। स्त्री चेत्-किशरिकी। नरदं पण्यमस्य-नरदिकः। स्त्री चेत्-नरदिकी इत्यादिकम्।

किशर। नरद। नलद। सुमङ्गल। तगर। गुग्गुलु। उशीर। हरिद्रा। हरिद्रायणी। इति किशारादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (किशरादिभ्यः) किशर-आदि प्रातिपदिकों से (अस्य) इसका अर्थ में (ष्ठन्) ष्ठन् प्रत्यय होता है (पण्यम्) जो प्रथमासमर्थ है यदि वह पण्य हो। किशर आदि शब्द गन्धविशेष के वाचक हैं।*

उदा०-किशर (गन्धविशेष) है पण्य इसका यह-किशरिक। यदि स्त्री हो तो-किशरिकी। नरद (गन्धविशेष) है पण्य इसका यह-नरदिक। यदि स्त्री हो तो-नरदिकी।

***सिद्धि-किशरिकः।** किशर+सु+ष्ठन्। किशर्+इक। किशरिक+सु। किशरिकः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, पण्यवाची 'किशर' शब्द से अस्य (इसका) अर्थ में इस सूत्र से 'ष्ठन्' प्रत्यय है। **'ठस्येकः'** (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। प्रत्यय के षित् होने से **'षिद्गौरादिभ्यश्च'** (४।१।४१) से स्त्रीत्व-विवक्षा में 'ङीष्' प्रत्यय होता है-**किशरिकी।** प्रत्यय के नित् होने से **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।१९४) से आद्युदात्त स्वर होता है-**किशरिकः।** ऐसे ही-**नरदिकः, नरदिकी** आदि।*

***विशेषः** किशर आदि गन्धद्रव्यों के व्यापारी महाजनों को 'गान्धी' कहते हैं।*

ष्ठन्-विकल्पः— **{पण्यम्}**

(४) शलालुनोऽन्यतरस्याम्।५४।

प०वि०-शलालुनः ५।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०-तत्, अस्य, पण्यम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् शलालुनोऽस्यान्यतरस्यां ष्ठन् पण्यम्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् शलालु-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे विकल्पेन ष्ठन् प्रत्ययो भवति, पक्षे च ठक् प्रत्ययो भवति, पक्षे च ठक् प्रत्ययो भवति। यत् प्रथमासमर्थं पण्यं चेत् तद् भवति।

उदा०-शलालु पण्यमस्य-शलालुकः (ष्ठन्)। स्त्री चेत्-शलालुकी। शालालुकः (ठक्)। स्त्री चेत्-शलालुकी।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (शलालुनः) शलालु प्रातिपदिक से (अस्य) इसका अर्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (ष्ठन्) ष्ठन् प्रत्यय होता है और पक्ष में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है (पण्यम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह पण्य हो।*

उदा०-शलालु (देवदार का सुगन्धित पुष्प) है पण्य इसका यह-शलालुक (ष्ठन्)। यदि स्त्री हो तो शलालुकी। ठक्-पक्ष में-शलालुक। यदि स्त्री हो तो शलालुकी।

सिद्धि-(१) शलालुकः। शलालु+सु+ष्ठन्। शलालु+क। शलालुक+सु। शलालुकः।

यहां प्रथमा-समर्थ, पण्यवाची 'शलालु' शब्द से अस्य (इसका) अर्थ में इस सूत्र से 'ष्ठन्' प्रत्यय है। 'इसुसुक्तान्तात् कः' (७।३।५१) से 'ठ्' के स्थान 'क्' आदेश होता है। प्रत्यय के षित् होने से 'षिद्गौरादिभ्यश्च' (४।१।४१) से स्त्रीत्व-विवक्षा में 'ङीष्' प्रत्यय होता है-शलालुकी।

(२) शलालुकः। यहां 'शलालु' शब्द से विकल्प पक्ष में यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है-शलालुकी।

यथाविहितम् (ठक्)- {शिल्पम्=कौशलम्}

(५) शिल्पम्।५५।

वि०-शिल्पम् १।१।

अनु०-तत्, अस्य, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् प्रातिपदिकाद् अस्य ठक्, शिल्पम्।

अर्थः-तत् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं शिल्पं चेत् तद् भवति। शिल्पम्=कौशलमित्यर्थः।

उदा०-मृदङ्गवादनं शिल्पमस्य-मार्दङ्गिकः। पाणविकः। वैणिकः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्य) इसका अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है (शिल्पम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह शिल्प=कौशल हो।*

उदा०-मृदङ्ग (मुरज) बजाना शिल्प=कौशल है इसका यह-मार्दङ्गिक। पणव (छोटा ढोल) बजाना शिल्प है इसका यह-पाणविक। वीणा (बीन) बजाना शिल्प है इसका यह-वैणिक।

***सिद्धि-मार्दङ्गिकः।** मृदङ्ग+सु+ठक्। मार्दङ्ग्+इक। मार्दङ्गिक+सु। मार्दङ्गिकः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, शिल्पवाची 'मृदङ्ग' शब्द से अस्य (इसका) अर्थ में यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**पाणविकः, वैणिकः।***

अण्-विकल्पः- **{शिल्पम्=कौशलम्}**

(६) मड्डुकझर्झरादणन्यतरस्याम्।५६।

प०वि०-मड्डुक-झर्झरात् ५।१ अण् १।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-मड्डुकं च झर्झरं च एतयोः समाहारो मड्डुकझर्झरम्, तस्मात्-मड्डुकझर्झरात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत् अस्य, शिल्पम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् मड्डुकझर्झराभ्याम् अस्यान्तरस्याम् अण्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाभ्यां मड्डुकझर्झराभ्याम् अस्येति षष्ठ्यर्थे विकल्पेनाऽण् प्रत्ययो भवति, पक्षे च यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं शिल्पं चेत् तद् भवति।

उदा०-(मड्डुकम्) मड्डुकवादनं शिल्पमस्य-माड्डुकः (अण्)। माड्डुकिकः (ठक्)। **(झर्झरम्)** झर्झरवादनं शिल्पमस्य-झार्झरः (अण्)। झार्झरिकः (ठक्)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (मड्डुकझर्झराभ्याम्) मड्डुक, झर्झर प्रातिपदिकों से (अस्य) इसका अर्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (अण्) अण् प्रत्यय होता है और पक्ष में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है (शिल्पम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह शिल्प हो।*

***उदा०-(मड्डुक)** मड्डुक (डमरू) बजाना शिल्प है इसका यह-माड्डुक (अण्)। माड्डुकिक (ठक्)। **(झर्झर)** झर्झर (झांझ) बजाना शिल्प है इसका यह-झार्झर (अण्)। झार्झरिक (ठक्)।*

सिद्धि-(१) माड्डुकः । मड्डुक+सु+अण् । माड्डुक्+अ । माड्डुक+सु । माड्डुकः ।

यहां प्रथमा-समर्थ, शिल्पवाची 'मड्डुक' शब्द अस्य (इसका) अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है । पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है ।

(२) माड्डुकिकः । यहां पूर्वोक्त 'मड्डुक' शब्द से विकल्प पक्ष में यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है । शेष कार्य पूर्ववत् है । ऐसे ही-झार्झरः, झार्झरिकः ।

यथाविहितम् (ठक्)– {प्रहरणम्=शस्त्रम्}

(७) प्रहरणम् ।५७ ।

वि०-प्रहरणम् १ ।१ ।

अनु०-तत्, अस्य, ठक् इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-तत् प्रातिपदिकाद् अस्य ठक् प्रहरणम् ।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे यथविहितं ठक् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं प्रहरणं चेत् तद् भवति, प्रह्रियतेऽनेनेति प्रहरणम्=आयुधमुच्यते ।

उदा०-असिः प्रहरणमस्य-आसिकः । प्रासिकः । चाक्रिकः । धानुष्कः ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्य) इसका अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है (प्रहरणम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह प्रहरण=शस्त्र हो ।*

उदा०-असि (तलवार) है प्रहरण इसका यह-आसिक । प्रास (भाला) है प्रहरण इसका यह-प्रासिक । चक्र है प्रहरण इसका यह-चाक्रिक । धनुष् है प्रहरण इसका यह-धानुष्क ।

सिद्धि-(१) आसिकः । असि+सु+ठक् । आस्+इक । आसिक+सु । आसिकः ।

यहां प्रथमा-समर्थ, प्रहरणवाची 'असि' शब्द से अस्य (उसका) अर्थ में यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है । पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के इकार का लोप होता है । ऐसे ही-प्रासिकः, चाक्रिकः ।

(२) धानुष्कः । धनुर्+सु+ठक् । धानुः+क । धानुष्+क । धानुष्कः ।

यहां प्रथमा-समर्थ, प्रहरण विशेषवाची 'धनुः' शब्द से अस्य (इसका) अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है । 'इसुसुक्तान्तात् कः' (७ ।३ ।५१) से 'ठ' के स्थान में 'क्' आदेश होता है । 'इणः षः' (८ ।३ ।३९) से विसर्जनीय को षत्व होता है ।

ठञ्+ठक्– {प्रहरणम्=शस्त्रम्}

(८) परश्वधाट्ठञ् च।५८।

प०वि०-परश्वधात् ५।१ ठञ् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-तत्, अस्य, ठक्, प्रहरणम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् परश्वधाद् अस्य ठञ् ठक् च प्रहरणम्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् परश्वध-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे ठञ् ठक् च प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं प्रहरणं चेत् तद् भवति।

उदा०-परश्वधः प्रहरणमस्य-पारश्वधिकः (ठञ्)। पारश्वधिकः (ठक्)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (परश्वधात्) परश्वध प्रातिपदिक (अस्य) इसका अर्थ में (ठञ्) ठञ् (च) और (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-परश्वध (कुठार) है प्रहरण=हथियार इसका यह-पारश्वधिक (ठञ्)। पारश्वधिक (ठक्)।

***सिद्धि-पारश्वधिकः।** परश्वध+सु+ठञ्। पारश्वध्+इक। पारश्वधिक+सु। पारश्वधिकः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, प्रहरण-विशेषवाची 'परश्वध' शब्द से अस्य (इसका) अर्थ में 'ठञ्' प्रत्यय है। प्रत्यय के ञित् होने से **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।९४) से आद्युदात्त स्वर होता है-**पारवधिकः**। ठक्-प्रत्यय के पक्ष में 'कितः' (६।३।१६३) से अन्तोदात्त स्वर होता है-**पारश्वधिकः**। ठञ् और ठक् प्रत्ययान्त पद में केवल उपर्युक्त स्वर का अन्तर होता है।*

ईकक्– {प्रहरणम्=शस्त्रम्}

(९) शक्तियष्ट्योरीकक्।५९।

प०वि०-शक्ति-यष्ट्योः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) ईकक् १।१।

स०-शक्तिश्च यष्टिश्च ते शक्तियष्टी, तयोः-शक्तियष्ट्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, प्रहरणम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् शक्तियष्टिभ्याम् अस्य ईकक् प्रहरणम्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाभ्यां शक्तियष्टिभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अस्येति षष्ठ्यर्थे ईकक् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं प्रहरणं चेत् तद् भवति।

उदा०-**(शक्तिः)** शक्तिः प्रहरणमस्य शाक्तीकः। **(यष्टिः)** यष्टिः प्रहरणमस्य-याष्टीकः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (शक्तियष्ट्योः) शक्ति और यष्टि प्रातिपदिकों से (अस्य) इसका अर्थ में (ईकक्) ईकक् प्रत्यय होता है (प्रहरणम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह प्रहरण=हथियार हो।*

*उदा०-**(शक्ति)** शक्ति=भाला है प्रहरण इसका यह-शाक्तीक। **(यष्टि)** यष्टि=लाठी है प्रहरण इसका यह-याष्टीक।*

*सिद्धि-**शाक्तीकः**। शक्ति+सु+ईकक्। शाक्त्+ईक। शाक्तीक+सु। शाक्तीकः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, प्रहरणविशेषवाची 'शक्ति' शब्द से अस्य (इसका) अर्थ में इस सूत्र से 'ईकक्' प्रत्यय है। 'किति च' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-**याष्टीकः**।*

यथाविहितम् (ठक्)- {मतिः=बुद्धिः}

(१०) अस्तिनास्तिदिष्टम् मतिः।६०।

प०वि०-अस्ति-नास्ति-दिष्टम् १।१ (पञ्चम्यर्थे) मतिः १।१।

स०-अस्तिश्च नास्तिश्च दिष्टं च एतेषां समहारोऽस्तिनास्तिदिष्टम् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् अस्तिनास्तिदिष्टेभ्योऽस्य ठक् मतिः।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थेभ्योऽस्तिनास्तिदिष्टेभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं मतिश्चेत् तद् भवति।

उदा०-**(अस्ति)** परलोकोऽस्तीति मतिरस्य-आस्तिकः। **(नास्ति)** परलोको नास्तीति मतिरस्य-नास्तिकः। **(दिष्टम्)** दिष्टम्=दैवमस्तीति मतिरस्य-दैष्टिकः। अत्र अस्तिनास्तिशब्दौ निपातौ वर्तेते, न क्रियापदे।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (अस्तिनास्तिदिष्टम्) अस्ति, नास्ति, दिष्ट प्रातिपदिकों से (अस्य) इसकी अर्थ में (ठक्) यथा विहित ठक् प्रत्यय होता है (मतिः) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह मति-बुद्धि हो।*

*उदा०-**(अस्ति)** परलोक है, ऐसी मति है, इसकी यह-आस्तिक। **(नास्ति)** परलोक नहीं है, ऐसी गति है इसकी यह-नास्तिक। **(दिष्ट)** दैव=भाग्य है ऐसी मति है इसकी यह-दैष्टिक। यहां अस्ति, नास्ति निपात हैं, तिङन्त पद नहीं।*

सिद्धि-अस्ति+सु+ठक्। आस्त्+इक। आस्तिक+सु। आस्तिकः।

*यहां प्रथमा-समर्थ, 'अस्ति' शब्द से अस्य अर्थ में तथा मति अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-**नास्तिकः, दैष्टिकः।***

यथाविहितम् (ठक्)- {शीलम्=स्वभावः}

(११) शीलम्।६१।

वि०-शीलम् १।१।

अनु०-तत्, अस्य, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् प्रातिपदिकाद् अस्य ठक् शीलम्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं शीलं चेत् तद् भवति। शीलम्=स्वभावः।

उदा०-अपूपभक्षणं शीलमस्य-आपूपिकः। शाष्कुलिकः। मौदकिकः। भक्षणक्रिया तद्विशेषणं च शीलं तद्धितवृत्तावन्तर्भवति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्य) इसका अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है (शीलम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह शील=स्वभाव हो।*

उदा०-अपूपभक्षण (पूड़े खाना) शील है इसका यह-आपूपिक। शष्कुलि-भक्षण (पूरी खाना) शील है इसका यह-शाष्कुलिक। मोदक-भक्षण (लड्डू खाना) शील है इसका यह-मौदकिक। भक्षण-क्रिया और उसके विशेषण 'शील' का तद्धितवृत्ति में अन्तर्भाव हो जाता है।

*सिद्धि-**आपूपिकः।** अपूप+सु+ठक्। आपूप्+इक। आपूपिक+सु। आपूपिकः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'अपूप' शब्द से अस्य अर्थ में तथा शील अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**शाष्कुलिकः, मौदकिकः।***

णः–

{शीलम्=स्वभावः}

(१२) छत्रादिभ्यो णः।६२।

प०वि०–छत्रादिभ्यः ५।३ णः १।१।

स०–छत्रम् आदिर्येषां ते छत्रादयः, तेभ्यः–छत्रादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–तत्, अस्य, शीलम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत् छत्रादिभ्योऽस्य णः शीलम्।

अर्थः–तद् इति प्रथमासमर्थेभ्यश्छत्रादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे णः प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं शीलं चेत् तद् भवति।

उदा०–छत्रमिव शीलमस्य–छात्रः। बुभुक्षा शीलमस्य–बौभुक्षः, इत्यादिकम्।

छत्र। बुभुक्षा। शिक्षा। पुरोह। स्था। चुरा। उपस्थान। ऋषि। कर्मन्। विश्वधा। तपस्। सत्य। अनृत। शिबिका। इति छत्रादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ–(तत्) प्रथमा-समर्थ (छत्रादिभ्यः) छत्र-आदि प्रातिपदिकों से (अस्य) इसका अर्थ में (णः) ण प्रत्यय होता है (शीलम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह शील हो।*

उदा०–छत्र (गुरु) के समान शील है इसका यह–छात्र (शिष्य)। बुभुक्षा=खाने की इच्छा है स्वभाव इसका यह–बौभुक्ष।

सिद्धि–छात्रः। छत्र+सु+ण। छात्र्+अ। छात्र+सु। छात्रः।

*यहां प्रथमा-समर्थ 'छत्र' शब्द से अस्य अर्थ में तथा शील अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'ण' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही–**बौभुक्षः** आदि।*

विशेषः *(१) काशिकाकार पं० जयादित्य ने यहां 'छात्र' शब्द की व्याख्या में लिखा है- "**छादनादावरणाच्छत्रम् गुरुकार्येष्ववहितस्तच्छिद्रावरणप्रवृत्तश्छत्रशीलः शिष्यश्छात्रः।**" अर्थात् 'छत्र' छादना (आवरण) के कारण छत्र कहाता है। गुरुजन के कार्यों में लगा हुआ है एवं उसके छिद्रों (दोष) के आवरण में प्रवृत्त हुआ छत्रशील शिष्य 'छात्र' कहाता है।*

*(२) महाभाष्यकार पतञ्जलि यहां 'छात्र' शब्द की व्याख्या में लिखते हैं- "**किं यस्यच्छत्रधारणं शीलं स छात्रः ? किञ्चातः ? राजपुरुषे प्राप्नोति। एवं तर्ह्युत्तरपदलोपोऽत्र द्रष्टव्यः। छत्रमिव छत्रम्। गुरुश्छत्रम्। गुरुणा शिष्यश्छत्रवच्छाद्यः। शिष्येण च***

गुरुश्छत्रवत् परिपाल्यः।" अर्थात् क्या छत्र धारण करना जिसका शील (स्वभाव) है वह-छात्र कहाता है ? इससे क्या दोष आता है ? राजपुरुष अर्थ में यह प्रत्यय प्राप्त होता है। अच्छा तो यहां उत्तरपद का लोप समझना चाहिये। छत्र के समान जो है वह-छत्र। गुरु छत्र=छत्र के समान होता है। गुरु अपने शिष्य को छत्र के समान आच्छादित रखे और शिष्य गुरु का छत्र के समान परिपालन करे।

यहां महाभाष्यकार पतञ्जलि का उक्त अर्थ श्रेष्ठ होने से ग्राह्य है।

यथाविहितम् (ठक्)–

(१३) कर्माध्ययने वृत्तम्।६३।

प०वि०-कर्म १।१ अध्ययने ७।१ वृत्तम् १।१।

अनु०-तत्, अस्य, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् प्रातिपदिकाद् अस्य ठक्, अध्ययने वृत्तं कर्म।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थम् अध्ययने वृत्तम् अन्यत् कर्म चेत् तद् भवति।

उदा०-एकमन्यद् अध्ययने वृत्तं कर्मास्य-ऐकान्यिकः। द्वैयन्यिकः। त्रैयन्यिकः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्य) इसका अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है (अध्ययने वृत्तं कर्म) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह वेदादि के अध्ययन में वृत्त=उत्पन्न हुआ अन्य कर्म (क्रिया) हो।*

उदा०-जिस छात्र का परीक्षाकाल में पाठ करते समय एकान्य-अन्य=एक अपपाठ रूप स्खलन (गलती) हो गया है वह-ऐकान्यिक। यहां अन्य शब्द अनीप्सित अर्थ का द्योतक है। द्व्यन्य-दो अन्य=अपपाठ रूप स्खलन हो गये हैं इसके यह-द्वैयन्यिक। त्र्यन्य-अन्य=अपपाठ रूप स्खलन हो गये हैं इसके यह-त्रैयन्यिक।

*सिद्धि-(१) **ऐकान्यिकः।** एकान्य+सु+ठक्। ऐकान्य्+इक। ऐकान्यिक+सु। ऐकान्यिकः।*

यहां प्रथमा-समर्थ 'एकान्य' शब्द से अस्य अर्थ में अध्ययन में उत्पन्न अपपाठ रूप कर्म अभिधेय में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

*(२) **द्वैयन्यिकः।** यहां **'न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्'** (७।३।३) से 'ऐच्' आगम होता है, आदिवृद्धि नहीं होती है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**त्रैयन्यिकः।***

ठच्–

(२) बह्वच्पूर्वपदाट्ठच् ।६४।

प०वि०–बह्वच्-पूर्वपदात् ५ ।१ ठच् १ ।१।

स०–बहवोऽचो यस्मिँस्तद् बह्वच्, बह्वच् पूर्वपदं यस्य तद् बह्वच्पूर्वपदम्, तस्मात्-बह्वच्पूर्वपदात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०–तत्, अस्य, कर्म, अध्ययने, वृत्तम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तद् बह्वच्पूर्वपदाद् अस्य ठच् अध्ययने वृत्तं कर्म।

अर्थः–तद् इति प्रथमासमर्थाद् बह्वच्-पूर्वपदात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे ठच् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थम् अध्ययने वृत्तम् अन्यत् कर्म चेत् तद् भवति।

उदा०–द्वादशान्यानि कर्माण्यध्ययने वृत्तान्यस्य-द्वादशान्यिकः। त्रयोदशान्यिकः। चतुर्दशान्यिकः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (बह्वच्-पूर्वपदात्) बहुत अच् हैं जिसमें उस पूर्वपदवाले प्रातिपदिक से (अस्य) इसका अर्थ में (ठच्) ठच् प्रत्यय होता है (अध्ययने वृत्तं कर्म) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह वेदादि के अध्ययन में वृत्त=उत्पन्न हुआ अन्य कर्म (क्रिया) हो।*

उदा०–द्वादशान्य=बारह अन्य=अपपाठ रूप स्खलन हैं इसके यह–द्वादशान्यिक। त्रयोदशान्य=तेरह अन्य=अपपाठ रूप स्खलन हैं इसके यह-त्रयोदशान्यिक। चतुर्दशान्य=चौदह अन्य=अपपाठ रूप स्खलन हैं इसके यह–चतुर्दशान्यिक।

***सिद्धि-द्वादशान्यिकः।** द्वादशान्य+जस्+ठच्। द्वादशान्य्+इक्। द्वादशान्यिक+सु। द्वादशान्यिकः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, बह्वच् पूर्वपदवाले 'द्वादशान्य' शब्द से अस्य अर्थ में अध्ययन में उत्पन्न अपपाठ रूप कर्म अभिधेय में इस सूत्र से 'ठच्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**त्रयोदशान्यिकः, चतुर्दशान्यिकः।***

अस्मै (चतुर्थी) अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)– {हितं भक्षणम्}

(१) हितं भक्षाः ।६५।

प०वि०–हितम् १ ।१ भक्षाः १ ।३ ।

अनु०-ठक् इत्यनुवर्तते। तद् अस्मै इति चाग्रिमसूत्रादनुकृष्यते।

अन्वयः-तत् प्रातिपदिकाद् हितम् अस्मै ठक्, भक्षाः।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्मै इति चतुर्थ्यर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं हितं चेत्, यच्च हितं भक्षाश्चेत् तद् भवति।

उदा०-अपूपभक्षणं हितमस्मै-आपूपिकः। शाष्कुलिकिकः। मौदकिकः। हितार्थो भक्षणक्रिया च तद्धितवृत्तावन्तर्भवति।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तत्) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्मै) इसके लिये अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है (हितम्) जो प्रथमा-समर्थ है वह हित=हितकारी हो (भक्षाः) और जो हितकारी है भक्ष=खाना हो।*

उदा०-अपूपभक्षण (पूड़े खाना) इसके लिये हितकारी है यह-आपूपिक। शाष्कुलिभक्षण (पूरी खाना) इसके लिये हितकारी है यह-शाष्कुलिक। मोदकभक्षण (लड्डू खाना) इसके लिये हितकारी है यह-मौदकिकः। हित-अर्थ और भक्षणक्रिया का तद्धितवृत्ति में अन्तर्भाव हो जाता है।

सिद्धि-आपूपिकः। *अपूप+सु+ठक्। आपूप्+इक। आपूपिक+सु। आपूपिकः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, 'अपूप' शब्द से अस्मै अर्थ में तथा हित (भक्षण) अभिधेय में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्दीव्यतीय 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**शाष्कुलिकः, मौदकिकः।***

विशेषः *(१) यहां काशिकाकार पं० जयादित्य ने 'तद्, अस्य' पदों की पूर्ववत् अनुवृत्ति मानकर सूत्रार्थ किया है। वा०- **'हितयोगे चतुर्थी वक्तव्या'** (२।३।१३) से 'हित' शब्द के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है। अतः उन्होंने 'अस्य' इस षष्ठी-विभक्ति का 'अस्मै' इस चतुर्थी विभक्ति में विपरिणाम स्वीकार किया है।*

*(२) महाभाष्यकार पतञ्जलि ने यहां इस प्रकार से सूत्रपाठ स्वीकार किया है- **'हितं भक्षास्तदस्मै'** तत्पश्चात्- **'दीयते नियुक्तम्'** (४।४।६६)। ऐसा सूत्रपाठ करने पर उक्त विभक्ति-विपरिणाम की आवश्यकता नहीं रहती है। अतः यहां महाभाष्यकार को प्रमाण मानकर इस सूत्र का अर्थ किया गया है।*

यथाविहितम् (ठक्)- {नियुक्तं दीयते}

(१) तदस्मै दीयते नियुक्तम्।६६।

प०वि०-तत् १।१ अस्मै ४।१ दीयते क्रियापदम्, नियुक्तम् २।१ (क्रियाविशेषणम्)।

अनु०-ठक् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तद् अस्मै ठक्, नियुक्तं दीयते।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्मै इति चतुर्थ्यर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं नियुक्तं दीयते चेत् तद् भवति। नियोगेन=अव्यभिचारेण दीयते इत्यर्थः।

उदा०-अग्रे भोजनमस्मै नियुक्तं दीयते-आग्रभोजनिकः। आपूपिकः। शाष्कुलिकः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्मै) इसके लिये अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है (नियुक्तं दीयते) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह नियुक्त (अवश्य) दिया जाता है, हो।*

उदा०-अग्र भोजन (सर्वप्रथम भोजन) इसके लिये अवश्य दिया जाता है यह-आग्रभोजनिक। अपूप भोजन (पूड़ों का भोजन) इसके लिये अवश्य दिया जाता है यह-आपूपिक। शष्कुलि भोजन (पूरियों का भोजन) इसके लिये अवश्य दिया जाता है यह-शाष्कुलिक।

*जब-जब घर में उत्तम भोजन बनता है तब-तब जिस श्रेष्ठ विद्वान् को अग्रभोजन कराया जाता है वह आग्रभोजनिक कहाता है। ऐसे ही-**आपूपिक** आदि का भी अभिप्राय समझें।*

***सिद्धि-आग्रभोजनिकः।** आग्रभोजन+सु+ठक्। आग्भोज्+इक। आग्रभोजनिक+सु। आग्रभोजनिकः।*

यहां प्रथमा-समर्थ 'अग्रभोजन' शब्द से 'अस्मै' अर्थ में तथा 'नियुक्तं दीयते' 'अवश्य दिया जाता है' इस अभिधेय में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-आपूपिकः, शाष्कुलिकः।

टिठन्- **{नियुक्तं दीयते}**

(२) श्राणामांसौदनाट्टिठन्।६७।

प०वि०-श्राणा-मांसौदनात् ५।१ टिठन् १।१।

स०-मांसं च ओदनश्च एतयोः समाहारो मांसौदनम्। श्राणा च मांसौदनं च एतयोः समाहारः श्राणामांसौदनम्, तस्मात्-श्राणामांसौदनात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्मै, दीयते, नियुक्तम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् श्राणामांसौदनाभ्याम् अस्मै टिठन्, नियुक्तं दीयते।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाभ्यां श्राणामांसौदनाभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अस्मै इति चतुर्थ्यर्थे टिठन् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं नियुक्तं दीयते चेत् तद् भवति।

उदा०-(श्राणा) श्राणाऽस्मै नियुक्तं दीयते-श्राणिकः। स्त्री चेत्-श्राणिकी। **(मांसौदनम्)** मांसौदनमस्मै नियुक्तं दीयते-मांसौदनिकः।

केचिद् विगृहीतादपि प्रत्ययमिच्छन्ति-मांसिकः। ओदनिकः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (श्राणामांसौदनाभ्याम्) श्राणा, मांसौदन प्रातिपदिकों से (अस्मै) इसके लिये अर्थ में (टिठन्) टिठन् प्रत्यय होता है (नियुक्तं दीयते) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह नियुक्त (अवश्य) दिया जाता है, हो।*

*उदा०-**(श्राणा)** श्राणा (भाजी) इसके लिये अवश्य दी जाती है यह-श्राणिक। यदि स्त्री हो तो-श्राणिकी। **(मांसौदन)** मांस और ओदन (भात) इसे अवश्य दिया जाता है यह-मांसौदनिक। यदि स्त्री हो तो-मांसौदनिकी।*

कई वैयाकरण यहां विगृहीत से भी प्रत्यय चाहते हैं-मांस इसे अवश्य दिया जाता है यह-मांसिक। ओदन इसे अवश्य दिया जाता है यह-ओदनिक।

***सिद्धि-श्राणिकः।** श्राणा+सु+टिठन्। श्राण्+इक। श्राणिक+सु। श्राणिकः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'श्राणा' शब्द से अस्मै अर्थ में तथा 'नियुक्तं दीयते' अभिधेय में इस सूत्र से टिठन् प्रत्यय है। प्रत्यय में इकार उच्चारणार्थ है। प्रत्यय के 'टित्' होने से स्त्रीत्व-विवक्षा में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है-**श्राणिकी।** ऐसे ही-**मांसौदनिकः, मांसौदनिकी** आदि।*

अण्-विकल्पः-

(३) भक्तादणन्यतरस्याम्।६८।

प०वि०-भक्तात् ५।१ अण् १।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०-तत्, अस्मै, दीयते, नियुक्तम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् भक्ताद् अस्मै अन्यतरस्याम् अण् नियुक्तं दीयते।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाद् भक्त-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्मै इति चतुर्थ्यर्थे विकल्पेनाऽण् प्रत्ययो भवति, पक्षे च ठक् प्रत्ययो भवति। यत् प्रथमासमर्थं नियुक्तं दीयते चेत् तद् भवति।

उदा०-भक्तम् अस्मै नियुक्तं दीयते-भाक्तं गुरुकुलम् (अण्)। भाक्तिकं गुरुकुलम् (ठक्)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (भक्तात्) भक्त प्रातिपदिक से (अस्मै) इसके लिये अर्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (अण्) अण् प्रत्यय होता है और पक्ष में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है (नियुक्तं दीयते) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह नियुक्त (अवश्य) दिया जाता है, हो।*

उदा०-भक्त (अन्न) इसके लिये नियुक्त (अवश्य) दिया जाता है यह-भाक्त गुरुकुल (अण्)। भाक्तिक गुरुकुल (ठक्)। अभिप्राय यह है कि जब भक्त (अन्न) का दान किया जाता है तब गुरुकुल को अवश्य दिया जाता है।

*सिद्धि-(१) **भाक्तम्।** भक्त+सु+अण्। भाक्त्+अ। भाक्त+सु। भाक्तम्।*

यहां प्रथमा-समर्थ 'भक्त' शब्द से अस्मै अर्थ में तथा 'नियुक्तं दीयते' अभिधेय में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

*(२) **भाक्तिकम्।** यहां पूर्वोक्त 'भक्त' शब्द से विकल्प पक्ष में यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

नियुक्त-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)–

(१) तत्र नियुक्तः।६६।

प०वि०-तत्र अव्ययपदम्, नियुक्तः १।१।

अनु०-ठक् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तत्र प्रातिपदिकाद् नियुक्तष्ठक्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् नियुक्त इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति। नियुक्तः=अधिकृतः, व्यापारित इत्यर्थः।

उदा०-शुल्कशालायां नियुक्तः-शौल्कशालिकः। आकरिकः। आपणिकः। गौल्मिकः। दौवारिकः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ प्रातिपदिक से (नियुक्तः) **अधिकृत/** लगाया हुआ अर्थ में (ठक्) **यथाविहित** ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-शुल्कशाला (चुंगी) में लगाया हुआ-शौल्कशालिक। आकर (खजाना) में लगाया हुआ-आकरिक। आपण (दुकान) में लगाया हुआ-आपणिक। गुल्म (जंगल) में लगाया हुआ-गौल्मिक। द्वार पर लगाया हुआ-दौवारिक।

सिद्धि-(१) शौल्कशालिकः। *शुल्कशाला+ङि+ठक्। शौल्कशाल्+इक। शौल्कशालिक+सु। शौल्कशालिकः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'शुल्कशाला' शब्द से नियुक्त अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही-**आकरिकः** आदि।*

(२) दौवारिकः। *यहां 'द्वार' शब्द से पूर्ववत् 'ठक्' प्रत्यय और **'द्वारादीनां च'** (७।३।४) से अंग को आदिवृद्धि का प्रतिषेध तथा ऐच् आगम होता है।*

यथाविहितम् (ठक्)–

(२) अगारान्ताट्ठन्।७०।

प०वि०-अगारान्तात् ५।१ ठन् १।१।

स०-अगारम् अन्ते यस्य तद् अगारान्ताम्, तस्मात्-अगारान्तात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तत्र, नियुक्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र अगारान्ताद् नियुक्तष्ठन्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीसमर्थाद् अगारान्तात् प्रातिपदिकाद् नियुक्त इत्यस्मिन्नर्थे ठन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-देवागारे नियुक्तः-देवागारिकः। कोष्ठागारिकः। भाण्डागारिकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (अगारान्तात्) अगार जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (नियुक्तः) लगाया हुआ अर्थ में (ठन्) ठन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-देवागार=देवालय में नियुक्त किया हुआ-देवागारिक (पुरोहित)। कोष्ठागार (मालगोदाम) में नियुक्त किया हुआ-कोष्ठागारिक। भाण्डागार (मालगोदाम) में नियुक्त किया हुआ-भाण्डागारिक (भण्डारी)।

सिद्धि-देवागारिकः। *देवागार+ङि+ठन्। देवागार्+इक। देवागारिक+सु। देवागारिकः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ अगारान्त 'देवागार' शब्द से नियुक्त अर्थ में इस सूत्र से 'ठन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**कोष्ठागारिकः, भाण्डागारिकः।***

अध्यायि-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)–

अध्यायिन्यदेशकालात् ।७१।

प०वि०–अध्यायिनि ७।१ अदेशकालात् ५।१।

स०–देशश्च कालश्च एतयोः समाहारो देशकालम्, न देशकालमिति अदेशकालम्, तस्मात्-अदेशकालात् (समाहारद्वन्द्वगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–तत्र, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत्र अदेशकालाद् यथाविहितं ठक् अध्यायिनि।

अर्थः–तत्र इति सप्तमीसमर्थाद् अदेशवाचिनोऽकालवाचिनश्च प्रातिपदिकाद् ठक् प्रत्ययो भवति, अध्यायिनि अभिधेये।

अध्ययनस्य यौ देशकालौ शास्त्रेण प्रतिषिद्धौ तावत्रादेशकालावित्युच्येते, ताभ्यामिदं प्रत्ययविधानं क्रियते।

उदा०–**(अदेशः)** श्मशानेऽधीते-श्माशानिकः। चतुष्पथेऽधीते-चातुष्पथिकः। **(अकालः)** चतुर्दश्यामधीते–चातुर्दशिकः। अमावास्यायामधीते–आमावास्यिकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (अदेशकालात्) अदेशवाची और अकालवाची प्रातिपदिक से (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है (अध्यायिनि) यदि वहां अध्यायी (पाठक) अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-**(अदेश)** श्मशान में अध्ययन करनेवाला-श्माशानिक। चतुष्पथ (चौराहा) में अध्ययन करनेवाला–चातुष्पथिक। **(अकाल)** चतुर्दशी में अध्ययन करनेवाला–चातुर्दशिक। अमावस्या में अध्ययन करनेवाला–आमावास्यिक।*

अध्ययन के जो देश और काल शास्त्र के द्वारा प्रतिषिद्ध हैं, उन्हें यहां अदेश और अकाल नाम से कहा गया है, उनसे यह प्रत्ययविधि होती है।

सिद्धि-श्माशानिकः। *श्मशान+ङि+ठक्। श्माशान्+इक। श्माशानिक+सु। श्माशानिकः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ, अदेशवाची 'श्मशान' शब्द से अध्यायी (पाठक) अभिधेय में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**चातुष्पदिकः** आदि।*

व्यवहरति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)–

(१) कठिनान्तप्रस्तारसंस्थानेषु व्यवहरति।७२।

प०वि०-कठिनान्त-प्रस्तार-संस्थानेषु ७।३ (पञ्चम्यर्थे) व्यवहरति क्रियापदम्।

स०-कठिनम् अन्ते यस्य तत् कठिनान्तम्, कठिनान्तञ्च, प्रस्तारश्च, संस्थानं च तानि कठिनान्तप्रस्तारसंस्थानानि, तेषु-कठिनान्तप्रस्तारसंस्थानेषु (बहुव्रीहिगर्भितइतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्र, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र कठिनान्तप्रस्तारसंस्थानेभ्यो व्यवहरति ठक्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीसमर्थेभ्यः कठिनान्त-प्रस्तार-संस्थानेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो व्यवहरतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति।

व्यवहरतिरिति सम्भवति-पणिना समानार्थः, यथाऽऽह **'व्यवहृपणोः समर्थयोः'** (२।३।५७) इति। अस्ति विवादे-व्यवहारे पराजित इति। अस्ति विक्षेपे-शलाकां व्यवहरतीति। अस्ति क्रियातत्त्वे। अत्र क्रियातत्त्वात्मकस्य व्यवहारस्य ग्रहणं क्रियते।

उदा०-**(कठिनान्तम्)** वंशकठिने व्यवहरति-वांशकठिनिकश्चक्रचरः। वार्धकठिनिकः। **(प्रस्तारः)** प्रस्तारे व्यवहरति-प्रास्तारिकः। **(संस्थानम्)** संस्थाने व्यवहरति-सांस्थानिकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (कठिनान्तप्रस्तारसंस्थानेषु) कठिन शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से, प्रस्तार और संस्थान प्रातिपदिकों से (व्यवहरति) उचित व्यवहार करता है अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(कठिनान्त) वंशकठिन=कठिन वंश (बांस) वाले देश में जो यथोचित व्यवहार करता है, अपनी गाड़ी को ठीक-ठीक चलाता है वह-वांशकठिनिक चक्रचर (चक्रयुक्त गाड़ी से घूमनेवाला)। वर्धकठिन=कठिन वर्ध्री (तसमा, बाधी) वाले स्थान में जो यथोचित व्यवहार करता है वह-वार्धकठिनिकः। (प्रस्तार) फूल-पत्तों से संवारी सेज (शय्या) पर जो यथोचित व्यवहार करता है वह-प्रास्तारिक। (संस्थान) शिक्षण संस्थान में जो यथोचित व्यवहार करता है वह-सांस्थानिक।

सिद्धि-वांशकठिनिकः । वंशकठिन+ङि+ठक् । वांशकठिन्+इक । वांशकठिनिक+सु । वांशकठिनिकः ।

यहां सप्तमी-समर्थ, कठिनन्त 'वंशकठिन' शब्द से व्यवहरति' अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

विशेषः *'व्यवहरति' शब्द अनेकार्थ है जैसे-व्यापार करता है, विवाद करता है, जूआ खेलता है किन्तु यहां 'व्यवहरति' शब्द क्रियातत्त्व (यथोचित व्यवहार) अर्थ में ग्रहण किया गया है।*

वसति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)-

(१) निकटे वसति।७३।

प०वि०-निकटे ७।१ (पञ्चम्यर्थे) वसति क्रियापदम्।

अनु०-तत्र, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र निकटाद् वसति ठक्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीसमर्थाद् निकट-शब्दात् प्रातिपदिकाद् वसतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति।

यस्य शास्त्रेण निकटवासो विहितस्तत्रायं प्रत्ययविधिर्भवति यथा- **'आरण्यकेन भिक्षुणा ग्रामात् क्रोशे वस्तव्यम्'** इति शास्त्रम्।

उदा०-निकटे वसति नैकटिको भिक्षुः (संन्यासी)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (निकटे) निकट प्रातिपदिक से (वसति) बसता है अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है।*

*जिसका शास्त्र के द्वारा निकट-वास विधान किया गया है वहां यह प्रत्ययविधि होती है जैसे कि **"अरण्यवासी भिक्षुक को ग्राम से एक कोस दूर बसना चाहिये"** ऐसा शास्त्र का विधान है।*

उदा०-जो शास्त्रोक्त विधि से ग्राम के निकट बसता है वह-नैकटिक भिक्षु (संन्यासी)।

सिद्धि-नैकटिकः । यहां सप्तमी-समर्थ 'निकट' शब्द से वसति-अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

ष्ठल्–

(२) आवसथात् ष्ठल्।७४।

प०वि०–आवसथात् ५।१ ष्ठल् १।१।

अनु०–तत्र वसति इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत्र आवसथाद् वसति ष्ठल्।

अर्थः–तत्र इति सप्तमीसमर्थाद् आवसथ-शब्दात् प्रातिपदिकाद् वसतीत्यस्मिन्नर्थे ष्ठल् प्रत्यय भवति।

उदा०–आवसथे वसति–आवसथिकः। स्त्री चेत्–आवसथिकी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (आवसथात्) आवसथ प्रातिपदिक से (वसति) बसता है अर्थ में (ष्ठल्) ष्ठल् प्रत्यय होता है।*

उदा०–जो आवसथ (घर) में बसता है वह-आवसथिक (गृहस्थ)। यदि स्त्री हो तो-आवसथिकी।

*सिद्धि-**आवसथिकः**। आवसथ+ङि+ष्ठल्। आवसथ+इक। आवसथिक+सु। आवसथिकः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'आवसथ' शब्द से वसति-अर्थ में इस सूत्र से 'ष्ठल्' प्रत्यय है। '**ठस्येकः**' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और अंग के अकार का पूर्ववत् लोप होता है। प्रत्यय के षित् होने से स्त्रीत्व-विवक्षा में '**षिद्गौरादिभ्यश्च**' (४।१।४१) से 'ङीष्' प्रत्यय होता है-**आवसथिकी**। प्रत्यय के लित् होने से '**लिति**' (६।१।१९०) से प्रत्यय से पूर्ववर्ती अच् उदात्त होता है-**आवसथिकः**।*

।। इति प्राग्वहतीयप्रत्ययार्थप्रकरणं ठगधिकारश्च समाप्तः।।

प्राग्-हितीयप्रत्ययार्थप्रकरणम्

यत्-अधिकारः–

(१) प्राग्घिताद् यत्।७५।

प०वि०–प्राक् १।१ हितात् ५।१ यत् १।१।

अन्वयः–हितात् प्राग् यत्।

अर्थः–**'तस्मै हितम्'** (५।१।५) इति वक्ष्यति, तस्माद् हित-शब्दात् प्राग् यत् प्रत्ययो भवतीत्यधिकारोऽयम्। वक्ष्यति- **'तद् वहति**

रथयुगप्रासङ्गम्' (४ ।४ ।७६) इति। रथं वहति-रथ्यः। युगं वहति-युग्यः। प्रासङ्गं वहति-प्रासङ्ग्यः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(हितात्) 'तस्मै हितम्' (५ ।१ ।५) इस सूत्र में जो 'हित' शब्द पढ़ा है उससे (प्राक्) पहले-पहले (यत्) यत् प्रत्यय होता है। यह अधिकार सूत्र है। जैसे पाणिनि मुनि कहेंगे **'तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्'** (४ ।४ ।७६)। रथ को जो वहन करता है वह-रथ्य (बैल)। युग (जुआ) को जो वहन करता है वह-युग्य (बैल)। प्रासङ्ग (जुआ) को जो वहन करता है वह-प्रासङ्ग। इन पदों की सिद्धि आगे यथास्थान लिखी जायेगी।*

वहति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (यत्)–

(१) तद् वहति रथयुगप्रासङ्गम्।७६।

प०वि०-तद् २।१ वहति क्रियापदम्, रथ-युग-प्रासङ्गम् २।१ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-रथश्च युगं च प्रासङ्गं च एतेषां समाहारो रथयुगप्रासङ्गम्, तत्-रथयुगप्रासङ्गम् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-यत् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तद् रथयुगप्रासङ्गेभ्यो वहति यत्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थेभ्यो रथयुगप्रासङ्गेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो वहतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(रथम्)** रथं वहति-रथ्यो गौः। **(युगम्)** युगं वहति-युग्यो गौः। **(प्रासङ्गम्)** प्रासङ्गं वहति-प्रासङ्ग्यो गौः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (रथयुगप्रासङ्गम्) रथ, युग, प्रासङ्ग प्रातिपदिकों से (वहति) वहन करता है अर्थ में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(रथ)** रथ को जो वहन करता है (जुड़ता है) वह-रथ्य बैल। **(युग)** जुआ को जो वहन करता है वह-युग्य बैल। **(प्रासङ्ग)** जुआ को जो वहन करता है वह-प्रासङ्ग्य बैल।*

सिद्धि-*रथ्यः। रथ+अम्+यत्। रथ्+य। रथ्य+सु। रथ्यः।*

यहां द्वितीय-समर्थ 'रथ' शब्द से वहति अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-युग्यः, प्रासङ्ग्यः।

यत्+ढक्–

(२) धुरो यड्ढकौ।७७।

प०वि०–धुरः ५।१ यत्-ढकौ १।२।

स०–यच्च ढक् च तौ यड्ढकौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–तद्, वहति इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तद् धुरो वहति यड्ढकौ।

अर्थः–तद् इति द्वितीयासमर्थाद् धुर्-शब्दात् प्रातिपदिकाद् वहतीत्य-स्मिन्नर्थे यड्ढकौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०–**(यत्)** धुरं वहति-धुर्यः। **(ढक्)** धुरं वहति-धौरेयः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (धुरः) धुर् प्रातिपदिक से (वहति) वहन करता है अर्थ में (यड्ढकौ) यत् और ढक् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-**(यत्)** धुर् (जुआ) को जो वहन करता है (जुड़ता है) वह-धुर्य। **(ढक्)** धौरेय। बोझ ढोनेवाला बैल।*

सिद्धि-(१) धुर्यः। धुर्+अम्+यत्। धुर्+य। धुर्य+सु। धुर्यः।

यहां द्वितीया-समर्थ 'धुर्' शब्द से वहति अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है।

(२) धौरेयः। धुर्+ढक्। धुर्+एय। धौर्+एय। धौरेय+सु। धौरेयः।

*यहां पूर्वोक्त द्वितीया-समर्थ 'धुर' शब्द से इस सूत्र से 'ढक्' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश और **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि होती है।*

खः–

(३) खः सर्वधुरात्।७८।

प०वि०–खः ५।१ सर्वधुरात् ५।१।

स०–सर्वा चासौ धूरिति इति सर्वधुरम्, तस्मात्-सर्वधुरात् (कर्मधारयः)। अत्र धुर्-शब्दात् **'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे'** (५।४।७४) इति समासान्तोऽकारप्रत्ययः।

अनु०-तद्, वहति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् सर्वधुराद् वहति खः।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थात् सर्वधुरात् प्रातिपदिकाद् वहतीत्यस्मिन्नर्थे खः प्रत्ययो भवति।

उदा०-सर्वधुरां वहति-सर्वधुरीणो गौः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (सर्वधुरात्) सर्वधुर प्रातिपदिक से (वहति) वहन करता है अर्थ में (खः) ख प्रत्यय होता है।*

उदा०-सर्वधुर को जो वहन करता है (जुड़ता है) वह-सर्वधुरीण बैल। जो बैल जुए के दोनों ओर जुड़ सकता है वह-'सर्वधुरीण' कहाता है।

सिद्धि-सर्वधुरीणः। *सर्वधुर+अम्+ख। सर्वधुर्+ईन। सर्वधुरीण+सु। सर्वधुरीणः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'सर्वधुरा' शब्द से वहति अर्थ में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'इन्' आदेश और **'अट्कुप्वाङ्'** (८।४।२) से णत्व होता है।*

आर्यभाषाः *'धुर्' शब्द के स्त्रीलिङ्ग होने से 'सर्वधुरायाः' ऐसा सूत्रपाठ होना चाहिये किन्तु 'सर्वधुरात्' ऐसा पुंलिङ्ग निर्देश प्रातिपदिक मात्र की अपेक्षा से किया गया है।*

प्रत्ययस्य लुक्+खः-

(४) एकधुराल्लुक् च।७६।

प०वि०-एकधुरात् ५।१ लुक् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-एका चासौ धूरिति एकधुरम्, तस्मात्-एकधुरात् (कर्मधारयः)। अत्र पूर्ववत् समासान्तोऽकारप्रत्ययः नपुंसकनिर्देशश्च।

अनु०-तत्, वहति, ख इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् वहति खो लुक् च।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थाद् एकधुरात् प्रातिपदिकाद् वहतीत्यस्मिन्नर्थे खः प्रत्ययो भवति, तस्य च लुग् भवति।

उदा०-(खः) एकधुरां वहति-एकधुरीणो गौः। (लुक्) एधुरो गौः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (एकधुरात्) एकधुर प्रातिपदिक से (वहति) वहन करता है अर्थ में (खः) ख प्रत्यय होता है और उसका (लुक्) लोप (च) भी होता है।*

उदा०-(ख) एकधुरा को जो वहन करता है वह-एकधुरीण (बैल)। (लुक्) एकधुर बैल। जो जूए के एक ही ओर जुड़ सकता है वह बैल एकधुरीण/एकधुर कहाता है।

सिद्धि-(१) एकधुरीणः। एकधुर+अम्+ख। एकधुर्+ईन। एकधुरीण+सु। एकधुरीणः।

यहां प्रथम 'एकधुर' शब्द से पूर्ववत् समासान्त 'अ' प्रत्यय होता है, तत्पश्चात् द्वितीया-समर्थ 'एकधुर' शब्द से वहति-अर्थ में इस सूत्र से 'ख' प्रतयय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(२) एकधुरः। यहां 'ख' प्रत्यय का लुक् है।

अण्—

(५) शकटादण्।८०।

प०वि०-शकटात् ५।१ अण् १।१।

अनु०-तत्, वहति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् शकटाद् वहति अण्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थाच्छकटात् प्रातिपदिकाद् वहतीत्यस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-शकटं वहति-शाकटो गौः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (शकटात्) शकट प्रातिपदिक से (वहति) वहन करता है अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

उदा०-जो शकट (छकड़ा) को वहन करता है अर्थात् छकड़े में जुड़ता है वह-शाकट बैल।

सिद्धि-शाकटः। शकट+अम्+अण्। शाकट्+अ। शाकट+सु। शाकटः।

यहां द्वितीय-समर्थ 'शकट' शब्द से वहति अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

ठक्—

(६) हलसीराट्ठक्।८१।

प०वि०-हल-सीरात् ५।१ ठक् १।१।

स०-हलं च सीरश्च एतयोः समाहारो हलसीरम्, तस्मात्-हलसीरात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, वहति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् हलसीराद् वहति ठक्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थाभ्यां हलसीराभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां वहतीत्यस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**हलम्**) हलं वहति-हालिको गौः। (**सीरः**) सीरं वहति-सैरिको गौः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तत्) द्वितीया-समर्थ (हलसीरात्) हल और सीर प्रातिपदिकों से (वहति) वहन करता है अर्थ में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(हल)** जो हल को वहन करता है वह-हालिक बैल। **(सीर)** जो सीर=हलविशेष को वहन करता है वह-सैरिक बैल।*

सिद्धि-हालिकः। *हल+अम्+ठक्। हाल्+इक। हालिक+सु। हालिकः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'हल' शब्द से वहति अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और पूर्ववत् अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**सैरिकः।***

यथाविहितम् (यत्)-

(७) संज्ञायां जन्याः।८२।

प०वि०-संज्ञायाम् ७।१ जन्याः। ५।१।

अनु०-तत्, वहति, यत् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् जन्या वहति यत्, संज्ञायाम्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थाज्जनी-शब्दात् प्रातिपदिकाद् वहतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-जनीं वहति-जन्या जामातुर्वयस्या, सा हि जनीम् (वधूम्) विवाहादिषु जामातृसमीपं प्रापयति।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तत्) द्वितीया-समर्थ (जन्याः) जनी प्रातिपदिक से (वहति) प्राप्त कराती है अर्थ में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।*

उदा०-*जो जनी (वधू) को विवाह आदि के समय जामाता के पास प्राप्त कराती है वह-जन्या। जामाता की सखी।*

*सिद्धि-**जन्या**। जनी+अम्+यत्। जन्+य। जन्य+टाप्। जन्या+सु। जन्या।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'जनी' शब्द से वहति अर्थ में और संज्ञा अर्थ की प्रतीति में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है। '**यस्येति च**' (७।४।१४८) से अंग के ईकार का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में '**अजाद्यतष्टाप्**' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है।*

विध्यति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (यत्)–

(१) विध्यत्यधनुषा।८३।

प०वि०-विध्यति क्रियापदम्, अधनुषा ३।१।

स०-न धनुरिति अधनुः, तेन-अधनुषा (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-तत्, यत् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् प्रातिपदिकाद् विध्यति यत्, अधनुषा।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् विध्यतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति, यद् विध्यति तद् धनुष्करणं न भवति।

उदा०-पादौ विध्यन्ति-पाद्याः शर्कराः। ऊरू विध्यन्ति-ऊरव्याः कण्टकाः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ प्रातिपदिक से (विध्यति) बींधता है अर्थ में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है (अधनुषा) जो बींधता है वह यदि धनुष करण=साधन न हो।*

उदा०-पादों (पांव) को जो बींधती हैं वे-पाद्य शर्करा (कांकर)। ऊरु (जंघा) को जो बींधते हैं ते ऊरव्य कण्टक (कांटे)।

*सिद्धि-(१) **पाद्याः**। पाद+औ+यत्। पाद्+य। पाद्य+टाप्। पाद्या+जस्। पाद्याः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'पाद' शब्द से विध्यति-अर्थ में तथा धनुष करण को छोड़कर इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है। '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में '**अजाद्यतष्टाप्**' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है।*

*(२) **ऊरव्याः**। यहां 'ऊरू' शब्द से पूर्ववत् 'यत्' प्रत्यय और '**ओर्गुणः**' (६।४।१४६) से अंग को गुण और '**वान्तो यि प्रत्यये**' (६।१।७८) से वान्त (अव्) आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

लब्धृ-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (यत्)–

(१) धनगणं लब्धा।८४।

प०वि०–धन-गणम् २।१ (पञ्चम्यर्थे) लब्धा १।१।

स०–धनं च गणश्च एतयोः समाहारो धनगणम्, तत्-धनगणम् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–तत्, यत् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तद् धनगणाभ्यां लब्धा यत्।

अर्थः–तद् इति द्वितीयासमर्थाभ्यां धनगणाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां लब्धा इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०–(**धनम्**) धनं लब्धा-धन्यः। (**गणः**) गणं लब्धा-गण्यः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (धनगणम्) धन और गण प्रातिपदिकों से (लब्धा) प्राप्त करनेवाला अर्थ में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(धन)** धन को लब्धा=प्राप्त करनेवाला-धन्य। **(गण)** गण=समूह को लब्धा=गण्य।*

सिद्धि-धन्यः। धन+अम्+यत्। धन्+य। धन्य+सु। धन्यः।

*यहां द्वितीया-समर्थ 'धन' शब्द से लब्धा अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**गण्यः**।*

विशेषः *'लब्धा' यहां **'डुलभष् प्राप्तौ'** (भ्वा०अ०) धातु से 'तृन्' (३।२।१६५) से तच्छील आदि अर्थों में 'तृन्' प्रत्यय है; तृच् नहीं। अतः इसके प्रयोग में **'न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्'** (२।३।६९) से षष्ठी-विभक्ति का प्रतिषेध होने से **'कर्मणि द्वितीया'** (२।३।२) द्वितीया विभक्ति है-**धनगणं लब्धा**।*

णः–

(२) अन्नाण्णः।८५।

प०वि०–अन्नात् ५।१ णः १।१।

अनु०–तत्, लब्धा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् अन्नाल्लब्धा णः।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थाद् अन्न-शब्दात् प्रातिपदिकाल्लब्धा इत्यस्मिन्नर्थे णः प्रत्ययो भवति।

उदा०-अन्नं लब्धा-आन्नः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तत्) द्वितीया-समर्थ (अन्नात्) अन्न प्रातिपदिक से (लब्धा) प्राप्त करनेवाला अर्थ में (णः) ण प्रत्यय होता है।*

उदा०-अन्न को लब्धा=प्राप्त करनेवाला-आन्न।

सिद्धि-आन्नः। *अन्न+अम्+ण। आन्न्+अ। आन्न+सु। आन्नः।*

यहां द्वितीया-समर्थ 'अन्न' शब्द से लब्धा अर्थ में इस सूत्र से 'ण' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

गतार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (यत्)-

(१) वशं गतः।८६।

प०वि०-वशम् २।१ (पञ्चम्यर्थे) गतः १।१।

अनु०-तत्, यत् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् वशाद् गतो यत्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थाद् वश-शब्दात् प्रातिपदिकाद् गत इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-वशं गतः-वश्यः कामप्राप्तो विधेय इत्यर्थः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तत्) द्वितीया-समर्थ (वशम्) वश प्रातिपदिक से (गतः) प्राप्त हुआ अर्थ में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है।*

उदा०-वश (इच्छा) को प्राप्त हुआ-वश्य। दूसरे की इच्छा को प्राप्त हुआ पर-इच्छानुगामी (सेवक)।

सिद्धि-वश्यः। वश+अम्+यत्। *वश्+य। वश्य+सु। वश्यः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ **'वश'** शब्द से गत (प्राप्त) अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

अस्मिन् (सप्तमी) अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (यत्)– {दृश्यम्}

(१) पदमस्मिन् दृश्यम्।८७।

प०वि०–पदम् १।१ अस्मिन् १।१ दृश्यम् १।१।

अनु०–यत् इत्यनुवर्तते, 'पदम्' इति प्रथमानिर्देशादेव प्रथमासमर्थ विभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः–प्रथमासमर्थात् पदाद् यत् दृश्यम्।

अर्थः–प्रथमासमर्थात् पद-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्मिन्निति सप्तम्यर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं दृश्यं चेत् तद् भवति।

उदा०–पदं दृश्यम्=द्रष्टुं शक्यमस्मिन्–पद्यः कर्दमः। पद्याः पांसवः।

__आर्यभाषाः__ अर्थ–प्रथमा-समर्थ (पदम्) पद प्रातिपदिक से (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है (दृष्टम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह दृश्य हो।

उदा०–पद (पांव का चिह्न) है दृश्य (दिखा जा सकने योग्य) इसमें यह–पद्य कीचड़। पद्य धूल।

__सिद्धि__–पद्यः। पद+सु+यत्। पद्+य। पद्य+सु। पद्यः।

यहां प्रथमा-समर्थ 'पद' शब्द से अस्मिन् अर्थ में तथा दृश्य अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। __'यस्येति च'__ (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।

__विशेषः__ यहां 'पदम्' शब्द का प्रथमा-विभक्ति में निर्देश होने से प्रथमा-समर्थ विभक्ति का ग्रहण किया जाता है।

अस्य (षष्ठी) अर्थप्रत्ययविधिः

यथविहितम् (यत्)– {आवर्हि=उत्पाटि}

(१) मूलमस्यावर्हि।८८।

प०वि०–मूलम् १।१ अस्य ६।१ अवर्हि १।१।

अनु०–यत् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–प्रथमासमर्थाद् मूलाद् अस्य यत् **आवर्हि**।

अर्थः-प्रथमासमर्थाद् मूल-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थम् आवर्हि (उत्पाटि) चेत् तद् भवति।

उदा०-मूलमेषामावर्हि (उत्पाटि) ते-मूल्या माषाः। मूल्या मुद्गाः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-प्रथमा-समर्थ (मूलम्) मूल प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (यत्) यत् प्रत्यय होता है (आवर्हि) जो प्रथमा-समर्थ यदि वह आवर्ही (उत्पाटी) हो।*

उदा०-मूल इनका आवर्ही=फाड़ने योग्य है वे मूल्य माष (उड़द)। मूल्य मुद्ग (मूंग)।

बहुत पके हुये उड़द और मूंग आदि 'मूल्य' कहाते हैं क्योंकि इनके मूल (जड़) को उखाड़े बिना उन्हें ग्रहण नहीं किया जा सकता। काटने से इनकी फलियों की भूमि पर गिरने की सम्भावना होती है।

सिद्धि-मूल्यः। मूल+सु+यत्। मूल्+य। मूल्य+सु। मूल्यः।

यहां प्रथमा-समर्थ 'मूल' शब्द से अस्य अर्थ में तथा आवर्ही अभिधेय में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।

***विशेषः** आवर्ही-यहां आङ् उपसर्ग पूर्वक 'वृहू उद्यमने' (तु०प०) धातु से **'भावे'** (३।३।१८) से भाव अर्थ में घञ् प्रत्यय है। आ+वृह्+घञ्। आ+वर्ह्+अ। आवर्ह+सु। आवर्हः (उखाड़ना)। आवर्होऽस्यास्तीति-आवर्ही। यहां **'अत इनिठनौ'** (५।२।११५) से **'अस्यास्ति'** अर्थ में 'इनि' प्रत्यय है-**आवर्ही**। यह सूत्रपाठ में 'मूलम्' (नपुंसकलिङ्ग) का विशेष होने से **'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य'** (१।२।४७) से इसे ह्रस्व हो जाता है-**आवर्हि**।*

यप्रत्ययान्तं निपातनम्-

(१) संज्ञायां धेनुष्या।८६।

प०वि०-संज्ञायाम् ७।१ धेनुष्या १।१।

अर्थः-धेनुष्या इति य-प्रत्ययान्तं निपात्यते, संज्ञायां विषये।

उदा०-धेनुष्या गौः। धेनुष्यां भवते ददामि।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(धेनुष्या) धेनुष्या शब्द य-प्रत्ययान्त निपातित है (संज्ञायाम्) संज्ञा विषय में।*

*उदा०-धेनुष्या गौ। जो गाय उत्तमर्ण (साहूकार) को ऋण चुकाने के लिये दी जाती है वह-**धेनुष्या** कहाती है। यह पीतदुग्धा (बाखड़ी) गाय 'धेनुष्या' संज्ञा से प्रसिद्ध है।*

*सिद्धि-**धेनुष्या।** धेनु+सु+य। धेनु+षुक्+य। धेनु+ष्+य। धेनुष्य+टाप्। धेनुष्या+सु। धेनुष्या।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'धेनु' शब्द से संज्ञा अर्थ में इस सूत्र से 'य' प्रत्यय निपातित है, और षुक् आगम भी होता है। 'यत्' प्रत्यय के प्रकरण में 'य' प्रत्यय का निपातन इसलिये किया गया है कि 'तित् स्वरितम्' (६।१।१८२) से यहां स्वरित स्वर न हो। यहां अन्तोदान्त स्वर अभीष्ट है अतः 'य' प्रत्यय निपातित किया गया है-**धेनुष्या।** यदि प्रकरणवश 'यत्' प्रत्यय ही माना जाये तो निपातन से अन्तोदात्त स्वर मानना चाहिये।*

संयुक्तार्थप्रत्ययविधिः

ज्यः-

(१) गृहपतिना संयुक्ते ज्यः।६०।

प०वि०-गृहपतिना ३।१ संयुक्ते ७।१ ज्यः १।१।

अनु०-संज्ञायाम् इत्यनुवर्तते। अत्र 'गृहपतिना' इति तृतीयाविभक्ति-निर्देशात् तृतीयासमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-तृतीयासमर्थाद् गृहपतेः संयुक्ते ज्यः, संज्ञायाम्।

अर्थः-तृतीयासमर्थाद् गृहपतिशब्दात् प्रातिपदिकात् संयुक्त इत्यस्मिन्नर्थे ज्यः प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-गृहपतिना संयुक्तः-गार्हपत्योऽग्निः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-तृतीया-समर्थ (गृहपतिना) गृहपति प्रातिपदिक से (संयुक्ते) सम्बद्ध अर्थ में (ज्यः) ज्य प्रत्यय होता है (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।*

उदा०-गृहपति से संयुक्त-गार्हपत्य अग्नि।

*सिद्धि-**गार्हपत्यः।** गृहपति+टा+ज्यः। गार्हपत्+य। गर्हपत्य+सु। गार्हपत्यः।*

यहं तृतीया-समर्थ 'गृहपति' शब्द से संयुक्त अर्थ में तथा संज्ञा अर्थ की प्रतीति में इस सूत्र से 'ज्य' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

***विशेषः** श्रौत-यज्ञ की अग्नि, मन्थन से उत्पन्न की जाती है। उसे गृहपति (यजमान) गार्हपत्य नामक वेदी में 'गार्हपत्याग्नि' के रूप में सदा सुरक्षित रखता है। वहां*

आहवनीय और दक्षिणाग्नि नामक दो वेदियां और होती हैं। यजमान गार्हपत्य नामक वेदी में से अग्नि लेकर उन दोनों वेदियों में अग्नि का आधान करता है। आवहनीयाग्नि और दक्षिणाग्नि भी यजमान से संयुक्त हैं किन्तु उनकी गार्हपत्य अग्नि संज्ञा नहीं है।

तार्याद्यर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (यत्)–

(१) नौवयोधर्मविषमूलमूलसीतातुलाभ्यस्तार्यतुल्य-प्राप्यवध्यानाम्यसमसमितसम्मितेषु।६१।

प०वि०–नौ-वयः-धर्म-विष-मूल-मूल-सीता-तुलाभ्यः ५।३ तार्य-तुल्य-प्राप्य-वध्य-आनाम्य-सम-समित-सम्मितेषु ७।३।

स०–नौश्च वयश्च धर्मश्च विषं च मूलं च मूलं च सीता च तुला च ताः-नौ०तुलाः, ताभ्यः-नौ०तुल्याभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। तार्यं च तुल्यश्च प्राप्यं च वध्यश्च आनाम्यं च समश्च समितं च सम्मितं च तानि-तार्य०सम्मितानि, तेषु-तार्य०सम्मितेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–यत् इत्यनुवर्तते। अत्र प्रत्ययार्थद्वारेण तृतीयासमर्थविभक्ति-र्गृह्यते।

अन्वयः–तृतीयासमर्थेभ्यो नौवयोधर्मविषमूलमूलसीतातुलाभ्यो तार्यतुल्य-प्राप्यवध्यानाम्यसमसमितसम्मितेषु यत्।

अर्थः–तृतीयासमर्थेभ्यो नौवयोधर्मविषमूलमूलसीतातुलाभ्यः प्राति-पदिकेभ्यो यथासंख्यं तार्यतुल्यप्राप्यवध्यानाम्यसमसमितसम्मितेष्वर्थेषु यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति। **उदाहरणम्–**

	प्रातिपदिकम्	अर्थः	शब्दरूपम्
(१)	नौः	तार्यम्	नावा तार्यम्-नाव्यमुदकम्। नाव्या नदी।
(२)	वयः	तुल्यम्	वयसा तुल्यः-वयस्यः सखा।
(३)	धर्मः	प्राप्यम्	धर्मेण प्राप्यम्-धर्म्यं सुखम्।
(४)	विषम्	वध्यः	विषेण वध्यः-विष्यः शत्रुः।

	प्रातिपदिकम्	अर्थः	शब्दरूपम्
(५)	मूलम्	आनाम्यम्	मूलेनाऽऽनाम्यम् (अभिभवनीयम्) मूल्यम् (लभ्यम्)।
(६)	मूलम्	समम्	मूलेन समः-मूल्यः पटः।
(७)	सीता	समितम्	सीतया समितम्-सीत्यं क्षेत्रम्।
(८)	तुला	सम्मितम्	तुलया सम्मितम्-तुल्यं घृतम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-तृतीया-समर्थ (नौ०तुलाभ्यः) नौ, वयः, धर्म, विष, मूल, मूल, सीता, तुला इन आठ प्रातिपदिकों से यथासंख्य (तार्य०सम्मितेषु) तार्य, तुल्य, प्राप्य, वध्य, आनाम्य, सम, समित, सम्मित इन आठ अर्थों में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है। यहां प्रत्ययार्थ के द्वार से तृतीया-समर्थ विभक्ति का ग्रहण किया जाता है।*

उदा०-(नौ) नौ=नौका से जो तार्य=तरने योग्य है वह-नाव्य जल। नाव्या नदी। (वयः) वय=आयु से जो तुल्य है वह-वयस्य सखा (मित्र)। (धर्म) धर्म से जो प्राप्य है वह-धर्म्य सुख। (विष) विष=जहर से जो वध्य है वह-विष्य शत्रु। (मूल) मूल (सुवर्ण आदि) से जो आम्नाय (आलभ्य) है वह-मूल्य (लाभ)। पट आदि की उत्पत्ति का कारण सुवर्ण आदि मूल है। उससे पट आदि का उत्पादन करके जो लाभ प्राप्त किया जाता है वह-मूल्य कहाता है। (मूल) मूल के जो सम (समान फलवाला) है वह-मूल्य पट (वस्त्र)। (सीता) हल चलाने से सम=बराबर किया हुआ-सीत्य क्षेत्र (खेत)। (तुला) तखड़ी से सम्मित=तोला हुआ-तुल्य घी।

सिद्धि-नाव्यम्। नौ+टा+यत्। नाव्+य। नाव्य+सु। नाव्यम्।

*यहां तृतीया-समर्थ 'नौ' शब्द से तार्य-अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है। **'वान्तो यि प्रत्यये'** (६।१।७८) से वान्त (आव्) आदेश होता है। ऐसे ही-वयस्यः आदि।*

अनपेतार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (यत्)–

(१) धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते।९२।

प०वि०-धर्म-पथि-अर्थ-न्यायात् ५।१ अनपेते ७।१।

स०-धर्मश्च पन्थाश्च अर्थश्च न्यायश्च एतेषां समाहारो धर्मपथ्यर्थ-न्यायम्, तस्मात्-धर्मपथ्यर्थन्यायात् (समाहारद्वन्द्वः)। अपेतम्=दूरम्। न अपेतमिति अनपेतम्, तस्मिन्-अनपेते (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-यत्, संज्ञायाम् चानुवर्तते। अत्र **'धर्मपथ्यर्थन्यायात्'** इति पञ्चमीनिर्देशादेव पञ्चमीसमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-पञ्चमीसमर्थाद् धर्मपथ्यर्थन्यायाद् अनपेते यत्, संज्ञायाम्।

अर्थः-पञ्चमीसमर्थेभ्यो धर्मपथ्यर्थन्यायेभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽनपेत इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-**(धर्मः)** धर्मादनपेतम्-धर्म्यम्। **(पन्थाः)** पथोऽनपेतम्-पथ्यम्। **(अर्थः)** अर्थादनपेतम्-अर्थ्यम्। **(न्यायः)** न्यायादनपेतम्-न्याय्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-पञ्चमी-समर्थ (धर्मपथ्यर्थन्यायात्) धर्म, पथिन्, अर्थ, न्याय प्रातिपदिकों से (अनपेते) अदूर=समीप अर्थ में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।*

*उदा०-**(धर्म)** धर्म से अनपेत=अदूर (समीप) धर्म्य। **(पथिन्)** पन्था से अनपेत-पथ्य। **(अर्थ)** अर्थ से अनपेत-अर्थ्य। **(न्याय)** न्याय से अनपेत-न्याय्य।*

*सिद्धि-(१) **धर्म्यम्।** धर्म+ङसि+यत्। धर्म्+य। धर्म्य+सु। धर्म्यम्।*

यहां पञ्चमी-समर्थ 'धर्म' शब्द से अनपेत-अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।

*(२) **पथ्यम्।** यहां 'नस्तद्धिते' (६।४।१४४) से 'पथिन्' के टि-भाग (इन्) का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**अर्थ्यम्, न्याय्यम्।***

निर्मितार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (यत्)-

(१) छन्दसो निर्मिते।६३।

प०वि०-छन्दसः ५।१ निर्मिते ७।१।

अनु०-यत् इत्यनुवर्तते। अत्र प्रत्ययार्थसामर्थ्यात् तृतीयासमर्थ-विभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-तृतीयासमर्थाच्छन्दसो निर्मिते यत्।

अर्थः-तृतीयासमर्थाच्छन्दःशब्दात् प्रातिपदिकाद् निर्मित इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**छन्दसा (स्वेच्छया) निर्मितश्छन्दस्य पुत्रः।** स्वेच्छया कृत **इत्यर्थः। अत्र छन्दःशब्द इच्छापर्यायो गृह्यते।**

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसः) छन्दः प्रातिपदिक से (निमिति) बनाया हुआ अर्थ में (यत्) यथविहित यत् प्रत्यय होता है।*

उदा०-छन्द (स्वेच्छा) से बनाया हुआ-छन्दस्य पुत्र। अपनी इच्छा से जिसे पुत्र मान लिया है वह 'छन्दस्य' पुत्र कहाता है।

सिद्धि-छन्दस्यः। *छन्दस्+टा+यत्। छन्दस्+य। छन्दस्य+सु। छन्दस्यः।*

यहां तृतीया-समर्थ 'छन्दस्' शब्द से निर्मित-अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है।

यत्+अण्–

(२) उरसोऽण् च।६४।

प०वि०–उरसः ५।१ अण् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–यत्, संज्ञायाम् निर्मिते इति चानुवर्तते। पूर्ववत् तृतीयासमर्थ-विभक्तिर्वर्तते।

अन्वयः–तृतीयासमर्थाद् उरसो निर्मितेऽण् यच्च संज्ञायाम्।

अर्थः–तृतीयासमर्थाद् उरःशब्दात् प्रातिपदिकाद् निर्मित इत्यस्मिन्नर्थेऽण् यच्च प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०–उरसा निर्मितः–औरसः पुत्रः (अण्)। उरस्यः पुत्रः (यत्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-तृतीया-समर्थ (उरसः) उरस् प्रातिपदिक से (निमिते) बनाया हुआ अर्थ में (अण्) अण् (च) और (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-उरः=आत्मा से बनाया हुआ-औरस पुत्र खुद बेटा (अण्)। उरस्य पुत्र (यत्) अर्थ पूर्ववत् है।

सिद्धि-(१) औरसः। *उरस्+टा+अण्। औरस्+अ। औरस+सु। औरसः।*

यहां तृतीया-समर्थ 'उरस्' शब्द से निर्मित अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है।

(२) उरस्यः। *यहां 'उरस्' शब्द से पूर्ववत् 'यत्' प्रत्यय है।*

प्रियार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (यत्)–

(१) हृदयस्य प्रियः।६५।

प०वि०–हृदयस्य ६।१ प्रियः १।१।

अनु०-यत्, संज्ञायाम् इति चानुवर्तते। अत्र **'हृदयस्य'** इति निर्देशात् षष्ठीसमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-षष्ठीसमर्थाद् हृदयात् प्रियो यथाविहितं यत् संज्ञायाम्।

अर्थः-षष्ठीसमर्थाद् हृदय-शब्दात् प्रातिपदिकात् प्रिय इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-हृदयस्य प्रियः-हृद्यो देशः। हृद्यं वनम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-षष्ठी-समर्थ (हृदयस्य) हृदय प्रातिपदिक से (प्रियः) प्यारा अर्थ में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है।*

उदा०-हृदय (अन्तःकरण) को प्रिय लगनेवाला-हृद्य अपना देश। हृदय को प्रिय लगनेवाला-हृद्य वन (जंगल)।

सिद्धि-हृद्यः। हृदय+ङस्+यत्। हृद्+य। हृद्य+सु। हृद्यः।

यहां षष्ठी-समर्थ 'हृदय' शब्द से प्रिय अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है। 'हृदयस्य हृल्लेखयदण्लासेषु' (६।३।५०) से हृदय के स्थान में 'हृत्' आदेश होता है।

बन्धनार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (यत्)-

(१) बन्धने चर्षौ।६६।

प०वि०-बन्धने ७।१ च अव्ययपदम्, ऋषौ ७।१।

अनु०-यत्, हृदयस्य इति चानुवर्तते। अत्रापि पूर्ववत् षष्ठीसमर्थ-विभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-षष्ठीसमर्थाद् हृदयाद् बन्धने च यत् ऋषौ।

अर्थः-षष्ठीसमर्थाद् हृदय-शब्दात् प्रातिपदिकाद् बन्धने चार्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति, यद् बन्धनम् ऋषिः=वेदमन्त्रश्चेत् तद् भवति।

उदा०-हृदयस्य बन्धनः-हृद्यः ऋषिः (वेदमन्त्रः)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-षष्ठी-समर्थ (हृदयस्य) हृदय प्रातिपदिक से (बन्धने) बन्धन अर्थ में (च) भी (यत्) यत् प्रत्यय होता है (ऋषौ) जो बन्धन=बांधने का साधन है वह यदि वह ऋषि=वेदमन्त्र हो।*

उदा०-हृदय (अन्तःकरण) का बन्धन=एकाग्र करने का साधन-हृद्य ऋषि=वेदमन्त्र (प्रणव=ओ३म् का जप और उसके अर्थ का भावन) तथा गायत्री महामन्त्र आदि।

सिद्धि- 'हृद्यः' पद की सिद्धि पूर्ववत् (४।४।९५) है।

करणाद्यर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (यत्)–

(१) मतजनहलात् करणजल्पकर्षेषु।६७।

प०वि०-मत-जन-हलात् ५।१ करण-जल्प-कर्षेषु ७।३।

स०-मतं च जनश्च हलश्च एतेषां समाहारो मतजनहलम्, तस्मात्-मतजनहलात् (समाहारद्वन्द्वः)। करणं च जल्पश्च कर्षश्च ते करणजल्पकर्षाः, तेषु-करणजल्पकर्षेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-यत् इत्यनुवर्तते। अत्र प्रत्ययार्थसामर्थ्यात् षष्ठीसमर्थ-विभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-षष्ठीसमर्थाद् मतजनहलाद् यथासंख्यं करणजल्पकर्षेषु यत्।

अर्थः-षष्ठीसमर्थेभ्यो मतजनहलेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो यथासंख्यं करणजल्पकर्षेष्वर्थेषु यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**मतम्**) मतस्य (ज्ञानस्य) करणम्-मत्यं वेदचतुष्टयम्। (**जनः**) जनस्य जल्पः-जन्यः। (**हलः**) हलस्य कर्षः-हल्यः।

आर्यभाषाः अर्थ-*षष्ठी-समर्थ (मतजनहलात्) मत, जन, हल प्रातिपदिकों से यथासंख्य (करणजल्पकर्षेषु) करण, जल्प, कर्ष अर्थों में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है। यहां प्रत्ययार्थ के सामर्थ्य से षष्ठी-समर्थ विभक्ति का ग्रहण किया जाता है।*

*उदा०-**(मत)** मत (ज्ञान) का करण (साधन)-मत्य (चार वेद)। **(जन)** जन (व्यक्ति) का जल्प (प्रलाप-बकवाद)-जन्य। **(हल)** हल का कर्ष (चलाना)-हल्य।*

सिद्धि-मत्यम्। *मत+ङस्+यत्। मत्+य। मत्य+सु। मत्यम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'मत' शब्द से करण-अर्थ में इस सूत्र यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**जन्यः, हल्यः।***

विशेषः *यहां करण, जल्प, कर्ष ये कृदन्त पद हैं। 'कर्तृकर्मणोः कृति' (२।३।६५) से इनके योग में षष्ठी-विभक्ति होती है। अतः प्रत्ययार्थ के सामर्थ्य से यहां षष्ठी-विभक्ति का ग्रहण किया जाता है। '**मतस्य करणम्**' और '**हलस्य कर्षः**' यहां कर्म में षष्ठी-विभक्ति है। '**जनस्य जल्पः**' यहां कर्ता में षष्ठी-विभक्ति है।*

साधु-अर्थप्रत्ययप्रकरणम्

यथाविहितम् (यत्)–

(१) तत्र साधुः।९८।

प०वि०-तत्र अव्ययपदम्, साधुः १।१।

अनु०-यत् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तत्र प्रातिपदिकात् साधुर्यत्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीसमर्थात् प्रातिपदिकात् साधुरित्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति। साधुः प्रवीणो योग्यो वेत्यर्थः।

उदा०-सामसु साधुः-सामन्यः। वेमनि साधुः-वेमन्यः। कर्मणि साधुः-कर्मण्यः। शरणे साधुः-शरण्यः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ प्रातिपदिक से (साधुः) निपुण/योग्य अर्थ में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है।*

उदा०-सामगान में जो साधु=योग्य है वह-सामन्य। वेम (करघा) चलाने में जो निपुण है वह-वेमन्य। कर्म (कार्य) करने में जो साधु=निपुण है वह-कर्मण्य। शरण प्रदान करने में जो साधु=योग्य वह-शरण्य (ईश्वर)।

*सिद्धि-**सामन्यः**। सामन्+ङि+यत्। सामन्+य। सामन्य+सु। सामन्यः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'सामन्' शब्द से साधु-अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है। 'ये चाभावकर्मणोः' (६।४।१६८) से प्रकृतिभाव होता है। ऐसे ही-**वेमन्यः, कर्मण्यः, शरण्यः**।*

खञ्–

(२) प्रतिजनादिभ्यः खञ्।९९।

प०वि०-प्रतिजन-आदिभ्यः ५।३ खञ् १।१।

स०-प्रतिजन आदिर्येषां ते प्रतिजनादयः, तेभ्यः-प्रतिजनादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तत्र, साधुरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र प्रतिजनादिभ्यः साधुः खञ्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीसमर्थेभ्यः प्रतिजनादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः साधुरित्यस्मिन्नर्थे खञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-प्रतिजने साधुः-प्रातिजनीनः। जने जने साधुरित्यर्थः। इदंयुगे साधुः-ऐदंयुगीनः। संयुगे साधुः-सांयुगीनः, इत्यादिकम्।

प्रतिजन। इदंयुग। संयुग। समयुग। परयुग। परकूल। परस्यकुल। अमुष्यकुल। सर्वजन। विश्वजन। पञ्चजन। महाजन। इति प्रतिजनादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (प्रतिजनादिभ्यः) प्रतिजन आदि प्रातिपदिकों से (साधुः) निपुण/योग्य अर्थ में (खञ्) खञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-प्रतिजन=प्रत्येक जन में जो साधु=निपुण/योग्य है वह-प्रातिजनीन। इदं युग=इस जमाने में जो साधु है वह-ऐदंयुगीन। संयुग=युद्ध में जो साधु है वह-सांयुगीन।

सिद्धि-प्रातिजनीनः। प्रतिजन+ङि+खञ्। प्रातिजन्+ईन। प्रातिजनीन+सु। प्रातिजनीनः।

*यहां सप्तमी-समर्थ 'प्रतिजन' शब्द से साधु अर्थ में इस सूत्र से 'खञ्' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। 'प्रतिजन' शब्द से **'अव्ययं विभक्ति०'** (२।१।५) से यथा-अर्थ (वीप्सा) अर्थ में अव्ययीभाव समास है। **'तृतीयासप्तम्योर्बहुलम्'** (२।२।८४) से सप्तमी-विभक्ति का लुक् नहीं होता है। ऐसे ही-**ऐदंयुगीनः, सांयुगीनः** आदि।*

णः-

(३) भक्ताण्णः।१००।

प०वि०-भक्तात् ५।१ णः १।१।

अनु०-तत्र, साधुरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र भक्तात् साधुर्णः।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीसमर्थाद् भक्त-शब्दात् प्रातिपदिकात् साधुरित्यस्मिन्नर्थे णः प्रत्ययो भवति।

उदा०-भक्ते साधुः-भाक्तः शालिः। भाक्तास्तण्डुलाः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (भक्तात्) भक्त प्रातिपदिक से (साधुः) योग्य अर्थ में (णः) ण प्रत्यय होता है।*

उदा०-भक्त=भात में जो साधु=योग्य है वह-भाक्त शालि (तुष सहित चावल)। भक्त=भात के जो योग्य हैं वे-भाक्त तण्डुल (तुष रहित चावल)।

सिद्धि-भाक्तः। *भक्त+ङि+ण। भाक्त्+अ। भाक्त+सु। भक्तः।*

यहां सप्तमी-समर्थ 'भक्त' शब्द से साधु अर्थ में इस सूत्र से 'ण' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

ण्यः-

(४) परिषदो ण्यः।१०१।

प०वि०-परिषदः ५।१ ण्यः १।१।

अनु०-तत्र, साधुरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र परिषदः साधुर्ण्यः।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीसमर्थात् परिषद्-शब्दात् प्रातिपदिकात् साधुरित्यस्मिन्नर्थे ण्यः प्रत्ययो भवति।

उदा०-परिषदि साधुः-पारिषद्यः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (परिषदः) परिषद् प्रातिपदिक से (साधुः) निपुण/योग्य अर्थ में (ण्यः) ण्य प्रत्यय होता है।*

उदा०-परिषद्=विद्वत्सभा में जो साधु=निपुण/योग्य है वह-पारिषद्य।

सिद्धि-पारिषद्यः। *परिषद्+ङि+ण्य। पारिषद्+य। पारिषद्य+सु। पारिषद्यः।*

यहां सप्तमी-समर्थ 'परिषद्' शब्द से साधु अर्थ में इस सूत्र से 'ण्य' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है।

विशेषः *प्राचीन चरण (वैदिक विद्यापीठ) के अन्तर्गत एक प्रकार की विद्वत्सभा का नाम 'परिषद्' है, जो उच्चारण और व्याकरण-सम्बन्धी नियमों का विचार करती थी। परिषद् शब्द गोष्ठी (समाज) और राजा की मन्त्रि-परिषद् का भी वाचक है।*

ठक्-

(५) कथादिभ्यष्ठक्।१०२।

प०वि०-कथा-आदिभ्यः ५।३ ठक् १।१।

स०-कथा आदिर्येषां ते कथादयः, तेभ्यः-कथादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तत्र, साधुरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र कथादिभ्यः साधुष्ठक्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीसमर्थेभ्यः कथादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः साधुरित्यस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-कथायां साधुः-काथिकः। विकथायां साधुः-वैकथिकः। वितण्डायां साधुः-वैतण्डिकः।

कथा। विकथा। वितण्डा। कष्टचित्। जनवाद। जनेवाद। वृत्ति। सद्गृह। गुण। गण। आयुर्वेद। इति कथादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (कथादिभ्यः) कथा आदि प्रातिपदिकों से (साधुः) निपुण/योग्य अर्थ में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-कथा (वृत्तान्त-वर्णन) में जो साधु=निपुण है वह-काथिक। विकथा (विविध वृत्तान्त वर्णन) में जो साधु है वह-वैकथिक। वितण्डा में जो साधु है वह-वैतण्डिक।

सिद्धि-काथिकः। *कथा+ङि+ठक्। काथ्+इक। काथिक+सु। काथिकः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'कथा' शब्द से साधु अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। 'किति च' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही-**वैकथिकः, वैतण्डिकः** आदि।*

ठञ्-

(६) गुडादिभ्यष्ठञ्।१०३।

प०वि०-गुड-आदिभ्यः ५।३ ठञ् १।१।

स०-गुडम् आदिर्येषां ते गुडादयः, तेभ्यः-गुडादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तत्र, साधुरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र गुडादिभ्यः साधुष्ठञ्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीसमर्थेभ्यो गुडादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः साधुरित्यस्मिन्नर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-गुडे साधुः-गौडिक इक्षुः। कुल्माषे साधुः-कौल्माषिको मुद्गः। सक्तौ साधुः-साक्तुको यवः, इत्यादिकम्।

गुड। कुल्माष। सक्तु। अपूप। मांसौदन। इक्षु। वेणु। संग्राम। संघात। प्रवास। निवास। इति गुडादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (गुडादिभ्यः) गुड आदि प्रातिपदिकों से (साधु) योग्य अर्थ में (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-गुड में जो साधु=योग्य है वह-गौडिक इक्षु (ईख)। वह ईख जिसका गुड़ बढ़िया बनता है। कुल्माष (दाल) में जो साधु है वह-कौल्माषिक मुद्ग (मूंग)। जिसकी दाल अच्छी बनती है। सक्तु (सत्तू) में जो साधु है वह-साक्तुक यव (जौ)। जिसका सत्तू बढ़िया बनता है, इत्यादि।

*सिद्धि-(१) **गौडिकः।** गुड+ङि+ठञ्। गौड्+इक। गौडिक+सु। गौडिकः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'गुड' शब्द से साधु अर्थ में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**कौल्माषिकः।***

*(२) **साक्तुकः।** यहां '**इसुसुक्तान्तात् कः**' (७।३।५१) से 'ठ्' के स्थान में 'क्' आदेश होता है, इक् नहीं।*

ढञ्-

(७) पथ्यतिथिवसतिस्वपतेर्ढञ्।१०४।

प०वि०-पथि-अतिथि-वसति-स्वपतेः ५।१। ढञ् १।१।

स०-पन्थाश्च अतिथिश्च वसतिश्च स्वपतिश्च एतेषां समाहारः पथ्यतिथिवसतिस्वपति, तस्मात्-पथ्यतिथिवसतिस्वपतेः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्र, साधुरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र पथ्यतिथिवसतिस्वपतेः साधुर्ढञ्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीसमर्थेभ्यः पथ्यतिथिवसतिस्वपतिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः साधुरित्यस्मिन्नर्थे ढञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(पन्थाः) पथि साधुः-पाथेयम्। **(अतिथिः)** अतिथौ साधुः-आतिथेयम्। **(वसतिः)** वसतौ साधुः-वासतेयम्। **(स्वपतिः)** स्वपतौ साधुः-स्वापतेयम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (पथ्यतिथिवसतिस्वपतेः) पथिन्, अतिथि, वसति, स्वपति प्रातिपदिकों से (साधुः) साधु=योग्य अर्थ में (ढञ्) ढञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(पन्था) पन्था=मार्ग में जो साधु=योग्य है वह-पाथेय (चूर्मा आदि)। **(अतिथि)** अतिथि-सत्कार में जो साधु=योग्य है वह-आतिथेय (दुग्धपान आदि)। **(वसति)** वसति=निवास (घर) में जो साधु=योग्य है वह-वासतेय (घर का सामान)। **(स्वपति)** स्वपति (सोना) में जो साधु=योग्य है वह-स्वापतेय (खाट-बिस्तरा आदि)।*

*सिद्धि-**पाथेयम्।** पथिन्+ङि+ढञ्। पाथ्+एय। पाथेय+सु। पाथेयम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'पथिन्' शब्द से साधु अर्थ में इस सूत्र से 'ढञ्' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश और **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से 'पथिन्' के टि-भाग (इन्) का लोप होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**आतिथेयम्** आदि।*

यः-

(८) सभाया यः।१०५।

प०वि०-सभायाः ५।१ यः १।१।

अनु०-तत्र, साधुरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र सभायाः साधुर्यः।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीसमर्थात् सभा-शब्दात् प्रातिपदिकात् साधुरित्यस्मिन्नर्थे यः प्रत्ययो भवति।

उदा०-सभायां साधुः-सभ्यः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (सभायाः) सभा प्रातिपदिक से (साधुः) निपुण/योग्य अर्थ में (यः) य प्रत्यय होता है।*

उदा०-सभा (समुदाय) में जो साधु=निपुण/योग्य है वह-सभ्य।

*सिद्धि-**सभ्यः।** सभा+ङि+य। सभ्+य। सभ्य+सु। सभ्यः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'सभा' शब्द से साधु अर्थ में इस सूत्र से 'य' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है। 'य' और 'यत्' प्रत्यय में यह भेद है कि 'य' प्रत्यय **'आद्युदात्तश्च'** (३।१।३) से आद्युदात्त और 'यत्' प्रत्यय **'तित् स्वरितम्'** (६।१।१८२) से स्वरित होता है।*

ढः (छान्दसः)-

(९) ढश्छन्दसि।१०६।

प०वि०-ढः १।१ छन्दसि ७।१।

अनु०-तत्र, साधुः, सभाया इति चानुवर्तते।

अन्वय:-छन्दसि तत्र सभाया: साधुर्ढ:।

अर्थ:-छन्दसि विषये तत्र इति सप्तमीसमर्थात् सभा-शब्दात् प्रातिपदिकात् साधुरित्यस्मिन्नर्थे ढ: प्रत्ययो भवति।

उदा०-सभायां साधु:-सभेय:। **'सभेयो युवाऽस्य यजमानस्य वीरो जायताम्'** (यजु० २२।२२)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तत्र) सप्तमी-समर्थ (सभाया:) सभा प्रातिपदिक से (साधु) निपुण/योग्य अर्थ में (ढ:) ढ प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**सभायां साधु:-सभेय:।** सभा में जो निपुण/योग्य है वह-सभेय। **'सभेयो युवाऽस्य यजमानस्य वीरो जायताम्'** (यजु० २२।२२)। इस यजमान का वीर युवा सभेय (सभा में निपुण/योग्य) हो।*

वासि-अर्थप्रत्ययविधि:

यथाविहितम् (यत्)-

(१) समानतीर्थे वासी।१०७।

प०वि०-समान-तीर्थे ७।१ वासी १।१।

स०-समानं च तत् तीर्थम्-समानतीर्थम्, तस्मिन्-समानतीर्थे (कर्मधारय:)।

अनु०-तत्र इत्यनुवर्तते।

अन्वय:-तत्र समानतीर्थाद् वासी यत्।

अर्थ:-तत्र इति सप्तमीसमर्थात् समानतीर्थ-शब्दात् प्रातिपदिकाद् वासीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-समानतीर्थे वासीति-सतीर्थ्य:। समानोपाध्याय इत्यर्थ:। तीर्थ-शब्दोऽत्र गुरुवचनो गृह्यते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (समानतीर्थे) समानतीर्थ प्रातिपदिक से (वासी) रहनेवाला अर्थ में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-समान (एक) तीर्थ पर रहनेवाला-सतीर्थ्य। समान-उपाध्यायवाला (**सहपाठी**)। यहां 'तीर्थ' शब्द **गुरु-वाचक है।***

सिद्धि-सतीर्थ्यः। समानतीर्थ+ङि+यत्। स-तीर्थ्+य। सतीर्थ्य+सु। सतीर्थ्यः।

यहां सप्तमी-समर्थ 'समान-तीर्थ' शब्द से वासी अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय यत् प्रत्यय है। 'तीर्थे ये' (६।३।८७) से 'समान' के स्थान में 'स' आदेश होता है।

शयितार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (यत्)–

(१) समानोदरे शयित ओ चोदात्तः।१०८।

प०वि०–समान-उदरे ७।१ शयितः १।१ ओ १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्, उदात्तः १।१।

स०–समानं च तद् उदरम्-समानोदरम्, तस्मिन्-समानोदरे (कर्मधारयः)।

अनु०–तत्र, यत् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत्र समानोदराच्छयितो यद् ओश्चोदात्तः।

अर्थः–तत्र इति सप्तमीसमर्थात् समानोदर-शब्दात् प्रातिपदिकाच्छयित इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति, ओकारश्चोदात्तो भवति।

उदा०–समानोदरे शयितः–समानोदर्यो भ्राता। शयितः स्थित इत्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (समानोदरे) समानोदर प्रातिपदिक से (शयित) स्थित अर्थ में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है (च) और उसका (ओ) ओकार (उदात्तः) उदात्त होता है।*

उदा०-समान (एक) उदर में जो शयित=स्थित रहा है वह-समानोदर्य भ्राता (सगा भाई)।

*सिद्धि-**समानोदर्यः**। समानोदर+ङि+यत्। समानोदर्+य। समानोदर्य+सु। समानोदर्यः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'समानोदर' शब्द से शयित (स्थित) अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है और 'समानोदर' शब्द का ओकार उदात्त है। 'यत्' प्रत्यय के तित् होने से **'तित् स्वरितम्'** (६।१।१८५) से स्वरित स्वर प्राप्त था, अतः ओकार का उदात्त स्वर **विधान किया गया है-समानोदर्यः।***

यः–

(२) सोदराद् यः ।१०९।

प०वि०–सोदरात् ५ ।१ यः १ ।१ ।

अनु०–तत्र, शयित इति चानुवर्त्तते ।

अन्वयः–तत्र सोदराच्छयितो यः ।

अर्थः–तत्र इति सप्तमीसमर्थात् सोदर-शब्दात् प्रातिपदिकाच्छयित इत्यस्मिन्नर्थे यः प्रत्ययो भवति ।

उदा०–समानोदरे शयितः-सोदर्यो भ्राता ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (सोदरात्) सोदर प्रातिपदिक से (शयितः) स्थित अर्थ में (यः) य प्रत्यय होता है।*

उदा०-समान (एक) उदर जो शयित=स्थित रहा है वह-सोदर्य भ्राता (सगा भाई)।

सिद्धि-सोदर्यः । समान-उदर+ङि+य । स-उदर्+य । सोदर्य+सु । सोदर्यः ।

*यहां 'समानोदर' शब्द से शयित अर्थ में इस सूत्र से 'य' प्रत्यय है। **'विभाषोदरे'** (६ ।३ ।८८) से समान के स्थान में 'स' आदेश होता है। यहां यकारादि प्रत्यय के विवक्षित होने पर प्रथम ही उक्त सूत्र से समान के स्थान में 'स' आदेश हो जाता है अतः सूत्रपाठ में 'सोदरात्' कहा गया है।*

आपादान्तं छन्दोऽधिकारः

भवार्थप्रत्ययप्रकरणम्

यथाविहितम् (यत्)–

(१) भवे छन्दसि ।११०।

प०वि०–भवे ७ ।१ छन्दसि ७ ।१ ।

अन्वयः–छन्दसि तत्र प्रातिपदिकाद् भवे यत् ।

अर्थः–छन्दसि विषये तत्र इति सप्तमीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् भव इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति ।

उदा०–मेधायां भवो मेध्यः । विद्युति भवो विद्युत्यः । **'नमो मेध्याय विद्युत्याय च नमः'** (तै०सं० ४ ।५ ।७ ।२) ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तत्र) सप्तमी-समर्थ प्रातिपदिक से (भवे) होनेवाला अर्थ में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-मेधा में होनेवाला-मेध्य। विद्युत् में होनेवाला-विद्युत्य। **'नमो मेध्याय च विद्युत्याय च नमः'** (तै०सं० ४।५।७।२)।*

सिद्धि-मेध्यः। *मेधा+ङि+यत्। मेध्+य। मेध्य+सु। मेध्यः।*

*यहां वेदविषय में सप्तमी-समर्थ 'मेधा' शब्द से भव-अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही-**विद्युत्यः।***

विशेषः *'छन्दसि' पद का अधिकार पाद-समाप्ति पर्यन्त है और 'भवे' पद का अधिकार 'समुद्राभ्राद् घः' (४।४।११८) तक है।*

ड्यण्-

(२) पाथोनदीभ्यां ड्यण्।१११।

प०वि०-पाथः-नदीभ्याम् ५।२ ड्यण् १।१।

स०-पाथश्च नदी च ते पाथोनद्यौ, ताभ्याम्-पाथोनदीभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्र, भवे, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीसमर्थाभ्यां पाथोनदीभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां भव इत्यस्मिन्नर्थे ड्यण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(पाथः) पाथसि भवः-पाथ्यः। **पाथ्यो वृषा** (ऋ० ६।१६।१५)। **(नदी)** नद्यां भवो नाद्यः। **'चनो दधीत नाद्यो गिरो मे'** (ऋ० २।३५।१)। पाथः=अन्तरिक्षम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (पाथोनदीभ्याम्) पाथस्, नदी प्रातिपदिकों से (भवे) होनेवाला अर्थ में (ड्यण्) ड्यण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-पाथ (अन्तरिक्ष) में होनेवाला पाथ्य। **'पाथ्यो वृषा'** (ऋ० ६।१६।१५)। **(नदी)** नदी=दरिया में होनेवाला-नाद्य। **'च नो दधीत नाद्यो गिरो मे'** (२।३५।१)।*

सिद्धि-पाथ्यः। *पाथस्+ङि+ड्यण्। पाथ्+य। पाथ्य+सु। पाथ्यः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'पाथस्' प्रातिपदिक से भव अर्थ में इस सूत्र से 'ड्यण्' प्रत्यय है। प्रत्यय के 'डित्' होने से वा०-**'डित्यभस्यापि टेर्लोपः'** (६।४।१४३) से पाथस् के टि-भाग (अस्) का लोप होता है। ऐसे ही-**नाद्यः।***

अण्–

(३) वेशन्तहिमवद्भ्यामण्।११२।

प०वि०–वेशन्त-हिमवद्भ्याम् ५।२ अण् १।१।

स०–वेशन्तश्च हिमवाँश्च तौ वेशन्तहिमवन्तौ, ताभ्याम्-वेशन्तहिमवद्भ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–तत्र, भवे, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि तत्र वेशन्तहिमवद्भ्यां भवेऽण्।

अर्थः–छन्दसि विषये तत्र इति सप्तमीसमर्थाभ्यां वेशन्तहिमवद्भ्यां प्रातिपदिकाभ्यां भव इत्यस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०–(**विशन्तः**) वेशन्ते भवा वैशन्त्य आपः। वैशन्तीभ्यः स्वाहा (**तै०सं०** ७।४।१३।९)। (**हिमवान्**) हिमवति भवा हैमवत्य आपः। **हैमवतीभ्यः** स्वाहा (तु०शौ०सं० १९।२।१)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तत्र) सप्तमी-समर्थ (विशवन्त-हिमवद्भ्याम्) वेशन्त और हिमवान् प्रातिपदिकों से (भवे) होनेवाला अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(विशन्त)** पल्वल=तालाब में होनेवाले-वैशन्ती आप (जल)। वैशन्तीभ्यः स्वाहा। **(हिमवान्)** हिमालय में होनेवाले-हैमवती आप (जल)। हिमवतीभ्य स्वाहा।*

सिद्धि-वैशन्ती। *विशन्त+ङि+अण्। वैशन्त्+अ। वैशन्त+ङीप्। वैशन्ती+सु। वैशन्ती।*

*यहां सप्तमी-समर्थ वैशन्त' शब्द से भव-अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**हैमवती।***

ड्यत्-ड्य-विकल्पः–

(४) स्रोतसो विभाषा ड्यड्ड्यौ।११३।

प०वि०–स्रोतसः ५।१ विभाषा १।१ ड्यत्-ड्यौ १।२।

स०–ड्यच्च ड्यश्च तौ ड्यड्ड्यौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–तत्र, भवे, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि तत्र स्रोतसो भवे विभाषा ड्यड्ड्यौ।

अर्थः-छन्दसि विषये तत्र इति सप्तमीसमर्थात् स्रोतःशब्दात् प्रातिपदिकाद् भव इत्यस्मिन्नर्थे विकल्पेन ड्यत्-ड्यौ प्रत्ययौ भवतः, यतोऽपवादः, पक्षे च सोऽपि भवति।

उदा०-(**ड्यत्**) स्रोतसि भवः-स्रोत्यः। (**ड्यः**) स्रोत्यः (ऋ० १०।१०४।८)। (**यत्**) स्रोतस्यः (शौ०सं० १९।२।४)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तत्र) सप्तमी-समर्थ (स्रोतसः) स्रोतस् प्रातिपदिक से (भवे) होनेवाला अर्थ में (विभाषा) विकल्प से (ड्यत्-ड्यौ) ड्यत् और ड्य प्रत्यय होते हैं, पक्ष में 'यत्' प्रत्यय होता है।*

उदा०-(ड्यत्) स्रोत (उदक) में होनेवाला-स्रोत्य। (ड्य) स्रोत में होनेवाला-स्रोत्य (ऋ० १०।१०४।८)। (यत्) स्रोत में होनेवाला-स्रोतस्य (शौ०सं० १९।२।४)।

सिद्धि-(१) स्रोत्यः। स्रोतस्+ड्यत्। स्रोत्+य। स्रोत्य+सु। स्रोत्यः।

*यहां सप्तमी-समर्थ 'स्रोतस्' शब्द से भव अर्थ में इस सूत्र से 'ड्यत्' प्रत्यय है। प्रत्यय के डित् होने से वा०-'डित्यभस्यापि टेर्लोपः' (६।४।१४३) से स्रोतस् के टि-भाग (अस्) का लोप होता है। प्रत्यय के तित् होने से **'तित् स्वरितम्'** (६।१।१८२) से स्वरित स्वर होता है-स्रोत्यः।*

*(२) स्रोत्यः। यहां 'स्रोतस्' शब्द से पूर्ववत् 'ड्य' प्रत्यय है। **'आद्युदात्तश्च'** (३।१।३) से प्रत्यय का उदात्त स्वर होता है-स्रोत्यः।*

(३) स्रोतस्यः। यहां 'स्रोतस्' शब्द से विकल्प पक्ष में यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है। प्रत्यय के तित् होने से पूर्ववत् स्वरित स्वर होता है-स्रोतस्यः।

***विशेषः** 'स्रोतः' शब्द यास्कीय निघण्टु (वैदिक-कोष) में उदक-नामों (१।१२) में पठित है।*

यन्-

(५) सगर्भसयूथसनुताद् यन्।११४।

प०वि०-सगर्भ-सयूथ-सनुतात् ५।१ यन् १।१।

स०-सगर्भं च सयूथं च सनुतं एतेषां समाहारः सगर्भसयूथसनुतम्, तस्मात्-सगर्भसयूथसनुतात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्र, भवे छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि तत्र सगर्भसयूथसनुताद् भवे यन्।

अर्थः-छन्दसि विषये तत्र इति सप्तमीसमर्थेभ्यः सगर्भसयूथसनुतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो भव इत्यस्मिन्नर्थे यन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(सगर्भम्) समानगर्भे भवः-सगर्भ्यः। **'अनु भ्राता सगर्भ्यः'** (यजु० ४।२०)। **(सयूथम्)** समानयूथे भवः-सयूथ्यः। **'अनु सखा सयूथ्यः'** (तै०सं० १।२।४।२)। **(सनुतम्)** समाननुते भवः-सनुत्यः। **'यो नः सनुत्यः'** (ऋ० २।३०।९)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तत्र) सप्तमी-समर्थ (सगर्भसयूथसनुतात्) सगर्भ, सयूथ, सनुत प्रातिपदिकों से (भवे) होनेवाला अर्थ में (यन्) यन् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(सगर्भ)** समान (एक) गर्भ में होनेवाला-सगर्भ्य। **'अनु भ्राता सगर्भ्यः'** (यजु० ४।२०)। **(सयूथ)** समान यूथ (संघ) में होनेवाला-सयूथ्य। **'अनु सखा सयूथ्यः'** (तै०सं० १।२।४।२)। **(सनुत)** समान नुत (निर्णीत/अन्तर्हित) में होनेवाला-सनुत्य। **'यो नः सनुत्यः'** (ऋ० २।३०।९)।*

*सिद्धि-**सगर्भ्यः**। समान-गर्भ+ङि+यन्। स-गर्भ्+य। सगर्भ्य+सु। सगर्भ्यः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'समानगर्भ' शब्द से भव-अर्थ में इस सूत्र से 'यन्' प्रत्यय है। **'समानस्य छन्दस्यमूर्धप्रभृत्युदर्केषु'** (६।३।८४) से 'समान' के स्थान में 'स' आदेश होता है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**सयूथ्यः, सनुत्यः**।*

विशेषः *'सनुत' शब्द यास्कीय निघण्टु वैदिक कोष में निर्णीत-अन्तर्हित नामों (३।२५) में पठित है।*

घन्-

(६) तुग्राद् घन्।११५।

प०वि०-तुग्रात् ५।१ घन् १।१।

अनु०-तत्र, भवे, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि तत्र तुग्राद् भवे घन्।

अर्थः-छन्दसि विषये तत्र इति सप्तमीसमर्थात् तुग्र-शब्दात् प्रातिपदिकाद् भव इत्यस्मिन्नर्थे घन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-तुग्रे भवः-तुग्रियः। त्वमग्ने वृषभस्तुग्रियाणाम्। अन्न-आकाश-यज्ञ-वरिष्ठेषु तुग्रशब्दो वर्तते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तत्र) सप्तमी-समर्थ (तुग्रात्) तुग्र प्रातिपदिक से (भवे) होनेवाला अर्थ में (घन्) घन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-तुग्रे भवः-तुग्रियः। तुग्र=अन्न, आकाश, यज्ञ, वरिष्ठ में होनेवाला-तुग्रिय। त्वमग्ने वृषभस्तुग्रियाणाम्।

सिद्धि-तुग्रियः। तुग्र+ङि+घन्। तुग्र्+इय। तुग्रिय+सु। तुग्रियः।

यहां सप्तमी-समर्थ 'तुग्र' शब्द से भव-अर्थ में इस सूत्र से 'घन्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश होता है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।

यथाविहितम् (यत्)-

(७) अग्राद् यत्।११६।

प०वि०-अग्रात् ५।१ यत् १।१।

अनु०-तत्र, भवे, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि तत्र अग्राद् भवे यत्।

अर्थः-छन्दसि विषये तत्र इति सप्तमीसमर्थाद् अग्र-शब्दात् प्रातिपदिकाद् भव इत्यस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-अग्रे भवम्-अग्र्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तत्र) सप्तमी-समर्थ (अग्रात्) अग्र प्रातिपदिक से (भवे) होनेवाला=विद्यमान अर्थ में (यत्) यत् प्रत्यय होता है।*

उदा०-अग्रे=अग्रभाग में होनेवाला (विद्यमान)-अग्र्य।

सिद्धि-अग्र्यम्। अग्र+ङि+यत्। अग्र्+य। अग्र्य+सु। अग्र्यम्।

यहां सप्तमी-समर्थ 'अग्रे' शब्द से भव-अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।

विशेषः *'अग्र' शब्द से 'प्राग्घिताद् यत्' (४।४।७५) से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय सिद्ध था पुनः यहां 'यत्' प्रत्यय का विधान इसलिये किया गया है कि 'घच्छौ च' (४।४।११७) से विधीयमान 'घ' और 'छ' प्रत्यय 'यत्' प्रत्यय में बाधक न हों।*

घः+छः–

(८) घच्छौ च।११७।

प०वि०–घ-छौ १।१ च अव्ययपदम्।

स०–घश्च छश्च तौ घच्छौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–तत्र, भवे, छन्दसि, अग्राद्, घन् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि तत्र अग्राद् भवे घच्छौ घन् च।

अर्थः–छन्दसि विषये तत्र इति सप्तमीसमर्थाद् अग्र-शब्दात् प्रातिपदिकाद् भव इत्यस्मिन्नर्थे घच्छौ घन् च प्रत्यया भवन्ति। चकारो घन्-प्रत्ययस्यानुकर्षणार्थः।

उदा०–(**घः**) अग्रे भवम्-अग्रियम्। (**छः**) अग्रे भवम्-अग्रीयम्। (**घन्**) अग्रे भवम्-अग्रियम्, स्वरे विशेषः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तत्र) सप्तमी-समर्थ (अग्रात्) अग्र प्रातिपदिक से (भवे) होनेवाला=विद्यमान अर्थ में (घच्छौ) घ, छ (च) और (घन्) घन् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-(**घ**) अग्र-भाग में होनेवाला (विद्यमान)-अग्रिय। (**छ**) अग्रीय। (**घन्**) अग्रिय। स्वर में भेद है।*

***सिद्धि**-(१) **अग्रियः**। अग्र+ङि+घ। अग्र्+इय। अग्रिय+सु। अग्रियः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'अग्र' शब्द से भव अर्थ में इस सूत्र से 'घ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश होता है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। **'आद्युदात्तश्च'** (३।१।३) से प्रत्यय के आद्युदात्त होने से पद का अन्तोदात्त स्वर होता है-**अग्रियम्**।*

*(२) **अग्रीयः**। यहां 'अग्र' शब्द से 'छ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है।*

*(३) **अग्रियः**। यहां 'अग्र' शब्द से 'घन्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश होता है और **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।९४) से आद्युदात्त स्वर होता है-**अग्रियः**।*

घः–

(९) समुद्राभ्राद् घः।११८।

प०वि०–समुद्र-अभ्रात् ५।१ घः १।१।

स०-समुद्रश्च अभ्रं च एतयोः समाहारः समुद्राभ्रम्, तस्मात्-समुद्राभ्रात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्र, भवे, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि तत्र समुद्राभ्राद् भवे घः।

अर्थः-छन्दसि विषये तत्र इति सप्तमी-समर्थाभ्यां समुद्राभ्राभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां भव इत्यस्मिन्नर्थे घः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(समुद्रः) समुद्रे भवः-समुद्रियः। **'समुद्रिया नदीनाम्'** (ऋ० ७।८७।१)। अभ्रे भवः-अभ्रियः। **'अभ्रियस्येव घोषाः'** (ऋ० १०।६८।१)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तत्र) सप्तमी-समर्थ (समुद्राभ्रात्) समुद्र और अभ्र प्रातिपदिकों (भवे) होनेवाला-समुद्रिय। **'समुद्रिया नदीनाम्'** (**ऋ०** ७।८७।१)। **(अभ्र)** अभ्र=मेघ (बादल) में होनेवाला-अभ्रिय। **'अभ्रियस्येव घोषाः'** (१०।६८।१)।*

सिद्धि-समुद्रियः। समुद्र+ङि+घ। समुद्र्+इय। समुद्रिय+सु। समुद्रियः।

*यहां सप्तमी-समर्थ 'समुद्र' शब्द से भव-अर्थ में इस सूत्र से 'घ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश होता है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**अभ्रियः**।*

विशेषः *'समुद्र' शब्द यास्कीय निघण्टु (वैदिक कोष) में अन्तरिक्ष-नामों (१।३) में पठित है। 'अभ्र' शब्द निघण्टु में मेघ-नामों (१।१०) में पठित है।*

दत्तार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (यत्)-

(१) बर्हिषि दत्तम्।११६।

प०वि०-बर्हिषि ७।१ दत्तम् १।१।

अनु०-तत्र, छन्दसि, यत्, इतिं चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि तत्र बर्हिः-शब्दाद् दत्तं यत्।

अर्थः-छन्दसि विषये तत्र इति सप्तमीसमर्थाद् बर्हिः-शब्दात् प्रातिपदिकाद् दत्तमित्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-बर्हिषि दत्तम्-बर्हिष्यम्। **'बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु'** (ऋ० १०।१५।५)।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तत्र) सप्तमी-समर्थ (बर्हिषि) बर्हिष् प्रातिपदिक से (दत्तम्) दिया हुआ अर्थ में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है।

उदा०-बर्हि=अन्तरिक्ष/जल में दिया हुआ-बर्हिष्य। __'बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु'__ (ऋ० १०।१५।५)।

सिद्धि-__बर्हिष्यम्।__ बर्हिष्+ङि+यत्। बर्हिष्+य। बर्हिष्य+सु। बर्हिष्यम्।

यहां सप्तमी-समर्थ 'बर्हिष्' प्रातिपदिक से दत्त-अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है।

__विशेषः__ 'बर्हिः' शब्द यास्की निघण्टु (वैदिक कोष) में अन्तरिक्ष-नामों (१।३) में तथा उदक नामों (१।१२) में भी पठित है।

भाग-कर्मार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (यत्)-

(१) दूतस्य भागकर्मणी।१२०।

प०वि०-दूतस्य ६।१ भाग-कर्मणी १।२।

स०-भागश्च कर्म च ते भागकर्मणी (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-यत्, छन्दसि इति चानुवर्तते। अत्र 'दूतस्य' इति षष्ठीनिर्देशात् षष्ठीसमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-छन्दसि षष्ठीसमर्थाद् दूताद् भागकर्मणी यत्।

अर्थः-छन्दसि विषये षष्ठीसमर्थाद् दूत-शब्दात् प्रातिपदिकाद् भागे कर्मणि चार्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति। भागः=अंशः। कर्म=क्रिया।

उदा०-दूतस्य भागः कर्म वा-दूत्यम्। **'यदग्ने यासि दूत्यम्'** (ऋ० १।१२।४)।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में षष्ठी-समर्थ (दूतस्य) दूत प्रातिपदिक से (भाग-कर्मणी) भाग और कर्म अर्थ में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है। भाग=अंश। कर्म=क्रिया।

उदा०-दूत का भाग वा कर्म-दूत्य। 'यदग्ने यासि दूत्यम्' (ऋ० १।१२।४)। हे अग्ने! तू दूत-कर्म को प्राप्त होता है।

सिद्धि-दूत्यम्। दूत+ङस्+यत्। दूत्+य। दूत्य+सु। दूत्यम्।

यहां षष्ठी-समर्थ 'दूत' शब्द से भाग और कर्म अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।

विशेषः *'दूत' शब्द यास्कीय निघण्टु (वैदिक कोष) में पद-नामों (४।२/४।३) में पठित है। पद=गतिशील।*

हननी-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (यत्)–

(१) रक्षोयातूनां हननी।१२१।

प०वि०–रक्षः-यातूनाम् ६।३ हननी १।१।

स०–रक्षसश्च यातवश्च ते-रक्षोयातवः, तेषाम्-रक्षोयातूनाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। हन्यतेऽनया इति हननी **'करणाधिकरणयोश्च'** (३।३।११७) इति करणे कारके ल्युट् प्रत्ययः।

अनु०–यत्, छन्दसि इति चानुवर्तते। **'रक्षोयातूनाम्'** इति षष्ठीनिर्देशात् षष्ठीसमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः–छन्दसि रक्षोयातुभ्यां हननी यत्।

अर्थः–छन्दसि विषये षष्ठीसमर्थाभ्यां रक्षोयातुभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां हननीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(रक्षसः)** रक्षसां हननी-रक्षस्या। **'या वां मित्रावरुणौ रक्षस्या तनूः'** (मै०सं० २।३।१)। **(यातवः)** यातूनां हननी-यातव्या। **'यातव्या'** (मै०सं० २।३।१)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में, षष्ठी-समर्थ (रक्षोयातूनाम्) रक्षस् और यातु प्रातिपदिकों से (हननी) हनन करनेवाला अर्थ में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(रक्ष:) रक्ष:=राक्षसों की हननी-रक्षस्या। **'या वां मित्रावरुणौ रक्षस्या तनू:'** (मै०सं० २।३।१) हे मित्र और वरुण ! जो तुम्हारी तनू (काया) राक्षसों का हनन करनेवाली है। (यातु) यातु=राक्षसों की हननी-यातव्या। **'यातव्या'** (मै०सं० २।३।१)।*

सिद्धि-(१) रक्षस्या। रक्षस्+आम्+यत्। रक्षस्+य। रक्षस्य+टाप्। रक्षस्या+सु। रक्षस्या।

*यहां षष्ठी-समर्थ 'रक्षस्' शब्द से हननी-अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है।*

*(२) **यातव्या।** यहां 'यातु' शब्द से पूर्ववत् 'यत्' प्रत्यय है। **ओर्गुण:'** (६।४।१४६) से अंग को गुण तथा **'वान्तो यि प्रत्यये'** (६।१।७८) से वान्त (अव्) आदेश होता है।*

प्रशस्यार्थप्रत्ययविधि:

यथाविहितम् (यत्)–

(१) रेवतीजगतीहविष्याभ्य: प्रशस्ये।१२२।

प०वि०–रेवती-जगती-हविष्याभ्य: ५।३ प्रशस्ये ७।१।

स०–रेवती च जगती च हविष्या च ता:-रेवतीजगतीहविष्या:, ताभ्य:-रेवतीजगतीहविष्याभ्य: (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)। प्रशंसनम्=प्रशस्यम्। अत्र **'कृत्यल्युटो बहुलम्'** (३।३।११३) इति भावेऽर्थे क्यप् प्रत्यय:।

अनु०–यत्, छन्दसि इति चानुवर्तते। अत्र प्रत्ययार्थसामर्थ्यात् षष्ठीसमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वय:–छन्दसि षष्ठीसमर्थाभ्यो रेवतीजगतीहविष्याभ्य: प्रशस्ये यत्।

अर्थ:–छन्दसि विषये षष्ठीसमर्थेभ्य: रेवतीजगतीहविष्याशब्देभ्य: प्रातिपदिकेभ्य: प्रशस्य इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(रेवती)** रेवत्या: प्रशस्यम्-रेवत्यम्। **'यद् वो रेवती रेवत्यम्'** (का०सं० १।८)। **(जगती)** जगत्या: प्रशस्यम्-जगत्यम्। **'यद् वो जगती जगत्यम्'** (का०सं० १।८)। **(हविष्या)** हविष्याया: प्रशस्यम्-हविष्यम्। **'यद् वो हविष्या हविष्यम्'** (का०सं० १।८)।

आर्यभाषा: *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में, षष्ठी-समर्थ (रेवतीजगतीहविष्याभ्य:) रेवती, जगती, हविष्या प्रातिपदिकों से (प्रशस्ये) प्रशंसा करने अर्थ में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(रेवती) रेवती (नदी) की प्रशंसा करना-रेवत्य। 'यद् वो रेवती रेवत्यम्' (का०सं० १।८)। (जगती) जगती (गौ) की प्रशंसा करना-जगत्य। 'यद् वो जगती जगत्यम्' (का०सं० १।८)। (हविष्या) हविष्या=हवि (जल) के लिये हितकारिणी की प्रशंसा करना-हविष्या। 'यद् वो हविष्या हविष्यम्' (का०सं० १।८)।

सिद्धि-(१) रेवत्यम्। रेवती+ङस्+यत्। रेवत्+य। रेवत्यम+सु। रेवत्यम्।

यहां षष्ठी-समर्थ 'रेवती' शब्द से प्रशस्य (प्रशंसा करना) अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के ईकार कालोप होता है। ऐसे ही-जगत्यम्।

(२) हविष्यम्। हविष्+ङे+यत्। हविष्+य। हविष्य+टाप्। हविष्या।। हविष्या+ङस्+यत्। हविष्य्+य। हविष्+य। हविष्य+सु। हविष्यम्।।

यहां प्रथम 'हविष्' शब्द से 'तस्मै हितम्' (५।१।५) से हित अर्थ में 'यत्' प्रत्यय और स्त्रीत्व-विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय करने पर 'हविष्या' शब्द सिद्ध होता है। तत्पश्चात् षष्ठी-समर्थ 'हविष्या' शब्द से प्रशस्य अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होने पर 'हलो यमां यमि लोपः' (८।४।६४) से यकार का भी लोप हो जाता है।

विशेषः *'रेवती' शब्द यास्कीय निघण्टु (वैदिक-कोष) में नदी नामों (१।१३) में 'जगती' शब्द गो-नामों (२।११) में और 'हविः' शब्द उदक-नामों (१।१२) में पठित है।*

स्वम्-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहित (यत्)-

(१) असुरस्य स्वम्।१२३।

प०वि०-असुरस्य ६।१ स्वम् १।१।

अनु०-यत्, छन्दसि इति चानुवर्तते। **'असुरस्य'** इति षष्ठी-निर्देशात् षष्ठीसमर्थविभक्तिगृह्यते।

अन्वयः-छन्दसि षष्ठीसमर्थाद् असुरात् स्वं यत्।

अर्थः-छन्दसि विषये षष्ठीसमर्थाद् असुर-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वमित्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-असुरस्य स्वम्-असुर्यम्। **'असुर्यं वा एतत् पात्रं यत् कुलालकृतं चक्रवृत्तम्'** (मै०सं० १।८।३)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में, षष्ठी-समर्थ (असुरस्य) असुर प्रातिपदिक से (स्वम्) अपना अर्थ में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-असुर का स्व (अपना)-असुर्य। **'असुर्यं वा एतत् पात्रं यत् कुलालकृतं चक्रवृत्तम्'** (मै०सं० १।८।३)।*

*सिद्धि-**असुर्यम्।** असुर+ङस्+यत्। असुर्+य। असुर्य+सु। असुर्यम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'असुर' शब्द से स्व-अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

विशेषः *'असुर' शब्द यास्कीय निघण्टु (वैदिक-कोष) में मेघ-नामों (१।१०) में पठित है।*

अण्-

(२) मायायामण्।१२४।

प०वि०-मायायाम् ७।१ अण् १।१।

अनु०-छन्दसि, असुरस्य इति चानुवर्तते। अत्र पूर्ववत् षष्ठीसमर्थ-विभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-छन्दसि षष्ठीसमर्थाद् असुरात् स्वम् अण्, मायायाम्।

अर्थः-छन्दसि विषये षष्ठीसमर्थाद् असुर-शब्दात् प्रातिपदिकाद् स्वमित्यस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति, यत् स्वं माया चेत् तद् भवति।

उदा०-असुरस्य स्वम् (माया)-आसुरी। **'आसुरी माया स्वधया कृतासि'** (यजु० ११।६९)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में, षष्ठी-समर्थ (असुरस्य) असुर प्रातिपदिक से (स्वम्) अपना अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है (मायायाम्) जो स्व है यदि वह माया (शक्तिविशेष) हो।*

*उदा०-असुर का स्व (अपनी माया)-आसुरी। **'आसुरी माया स्वधया कृतासि'** (यजु० ११।६९)।*

*सिद्धि-**आसुरी।** असुर+ङस्+अण्। आसुर्+अ। आसुर+ङीप्। आसुरी+सु। आसुरी।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'असुर' शब्द से स्व (माया) अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है।

विशेषः *'माया' शब्द यास्कीय निघण्टु (वैदिक-कोष) में प्रज्ञा-नामों में (३।९) में पठित है। आसुरी माया-असुर की अपनी प्रज्ञा (बुद्धि)।*

आसाम् (षष्ठी) अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (यत्) मतोश्च लुक्- {इष्टकाः}

(१) तद्वानासामुपधानो मन्त्र इतीष्टकासु लुक् च मतोः।१२५।

प०वि०-तद्वान् १।१ आसाम् ६।३ उपधानः १।१ मन्त्रः १।१ इति अव्ययपदम्, इष्टकासु ७।३ लुक् १।१ च अव्ययपदम्, मतोः ६।१।

तद् अस्मिन्नस्तीति तद्वान् **'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्'** (५।२।९४) इति मतुप्-प्रत्ययः। उपधीयन्ते=स्थाप्यन्ते इष्टका येन सः-उपधानः, **'करणाधिकरणयोश्च'** (३।३।११७) इति करणे कारके ल्युट् प्रत्ययः। **'तद्वान्'** इति प्रथमा-निर्देशात् प्रथमासमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अनु०-यत्, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि प्रथमासमर्थाद् तद्वतः (मतुपः) आसां यत्, उपधानो मन्त्रः, इष्टकासु, मतोश्च लुक्।

अर्थः-छन्दसि विषये प्रथमासमर्थाद् मतुबन्तात् प्रातिपदिकाद् आसामिति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमुपधानो मन्त्रश्चेत्, यद् आसामिति षष्ठीनिर्दिष्टम् इष्टकाश्चेत् ता भवन्ति, मतोश्च लुग् भवति।

उदा०-वर्चःशब्दोऽस्मिन्नस्तीति-वर्चस्वान् मन्त्रः। वर्चस्वान् उपधानो मन्त्र आसामिष्टकानामिति-वर्चस्या इष्टकाः। **'वर्चस्या उपदधाति'** (तै०ब्रा० १।८।९।१)। **'तेजस्या उपदधाति'** (तै०ब्रा० १।८।९।१)। **'पयस्या उपदधाति'** (तै०सं० २।३।१३।२)। **'रेतस्या उपदधाति'** (ष०वि० २।१)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में, प्रथमा-समर्थ (तद्वान्) मतुप्-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से (आसाम्) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है (उपधानो मन्त्रः) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह उपधान (स्थापन) मन्त्र हो (इष्टकासु) जो 'आसाम्' यह षष्ठी-अर्थ है यदि वे इष्टका (ईंट) हों (च) और (मतोः) मतुप् प्रत्यय का (लुक्) लोप होता है।*

*उदा०- 'वर्चः' शब्द इसमें है यह-वर्चस्वान् मन्त्र। वर्चस्वान् उपधान-मन्त्र है इनका ये-वर्चस्या इष्टका (ईंट)। **'वर्चस्या उपदधाति'** (तै०ब्रा० १।८।९।१) इत्यादि उदाहरण संस्कृत-भाग में देख लेवें।*

*सिद्धि-**वर्चस्याः**। वर्चस्वान्+आम्+यत्। वर्चस्०+य। वर्चस्य+टाप्। वर्चस्या+जस्। **वर्चस्याः**।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, मतुबन्त उपधान-मन्त्रवाचक 'वर्चस्वान्' शब्द से 'इन ईंटों का' अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है। 'यत्' प्रत्यय करने पर 'मतुप्' प्रत्यय का लुक् हो जाता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**तेजस्या** आदि।*

विशेषः *यज्ञवेदी की भूमि पर श्येनचित् (बाज-आकार) तथा कंकचित् (चिमटा- आकार) आदि भेद से अनेक प्रकार के यज्ञकुण्ड बनाये जाते हैं। उनके निर्माण में विशेष प्रकार की इष्टकाओं (ईंटों) का मन्त्रों से उपधान किया जाता है। 'वर्चः' शब्द जिस उपधान-मन्त्र में है वह 'वर्चस्वान्' उपधान-मन्त्र कहाता है। उस मन्त्र से जिन इष्टकाओं का उपधान (स्थापन) किया जाता है वे 'वर्चस्या' नामक इष्टका कहाती है। ऐसे ही-**तेजस्या** और **पयस्या** आदि समझें।*

सूत्र में 'इति' शब्द नियमार्थ है। मन्त्र में अनेक पदों के सम्भव होने पर किसी एक पद-विशेष से ही वह मन्त्र तद्वान् (वर्चस्वान् आदि) कहाता है; सब पदों से नहीं।

अण्--

(२) अश्विमानण्।१२६।

प०वि०-अश्विमान् १।१ अण् १।१।

अनु०-छन्दसि, तद्वान्, आसाम्, उपधानः, मन्त्रः, इष्टकासु, लुक्, च, मतोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि प्रथमासमर्थाद् अश्विमान् इति तद्वत आसामण्, **उपधानो** मन्त्रः, इष्टकासु, **मतोश्च लुक्**।

अर्थः-छन्दसि विषये प्रथमासमर्थाद् अश्विमानिति मतुबन्तात् प्रातिपदिकाद् आसामिति षष्ठ्यर्थेऽण् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थम् उपधानो मन्त्रश्चेत्, यद् आसामिति षष्ठीनिर्दिष्टम् इष्टकाश्चेत् ता भवन्ति, मतोश्च लुग् भवति।

उदा०-अश्विशब्दोऽस्मिन्नस्तीति-अश्विमान्। अश्विमान् उपधानो मन्त्र आसाम् इष्टकानामिति-आश्विन्य इष्टकाः। **'आश्विनीरुपदधाति'** (श०ब्रा० ८।२।१।१)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में, प्रथमा-समर्थ (अश्विमान्) अश्विमान् इस (तद्वान्) मतुबन्त प्रातिपदिक से (आसाम्) इनका अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है (उपधानो मन्त्रः) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह उपधान (स्थापन) मन्त्र हो (इष्टकासु) जो 'आसाम्' यह षष्ठ्यर्थ है यदि वे इष्टका (ईंट) हों (च) और (मतोः) मतुप् प्रत्यय का (लुक्) लोप होता है।*

उदा०-अश्वी शब्द इसमें है यह-अश्विमान् मन्त्र। अश्विमान् उपधान-मन्त्र है इनका ये-आश्विनी इष्टका (ईंट)। 'आश्विनीरुपदधाति' (श०ब्रा० ८।२।१।१)।

सिद्धि-आश्विनी। *अश्विन्+मतुप्+अण्। आश्विन्+0+अ। आश्विन+सु। आश्विन+ङीप्। आश्विनी+सु। आश्विनी।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, मतुबन्त 'अश्विमान्' शब्द से 'इन ईंटों का' अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। 'अण्' प्रत्यय करने पर 'मतुप्' प्रत्यय का लुक् हो जाता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है। **'इनण्यनपत्ये'** (६।४।१६४) से प्रकृतिभाव होता है अर्थात् **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से टि-भाग का लोप नहीं होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'टिड्ढाणञ्०'** (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है।*

विशेषः *'अश्विमान्' शब्दवाले मन्त्र से यज्ञकुण्ड निर्माण में जिन इष्टकाओं का उपधान (स्थापन) किया जाता है उन इष्टकाओं को 'आश्विनी' इष्टका कहते हैं। यज्ञ-कुण्ड निर्माण का विशेष विधान शुल्व-सूत्रों में किया गया है, वहां देख लेवें।*

मतुप्-

(३) वयस्यासु मूर्ध्नो मतुप्।१२७।

प०वि०-वयस्यासु ७।३ मूर्ध्नः ५।१ मतुप् १।१।

अनु०-छन्दसि, तद्वान्, उपधानः, मन्त्रः, इष्टकासु, लुक्, च, मतोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि विषये तद्वतो मूर्ध्न आसां मतुप्, उपधानो मन्त्रः, वयस्यासु इष्टकासु, मतोश्च लुक्।

अर्थः-छन्दसि विषये मतुबन्ताद् मूर्धन्-शब्दात् प्रातिपदिकाद् आसामिति षष्ठ्यर्थे मतुप् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थम् उपधानो मन्त्रश्चेत्, यद् आसामिति निर्दिष्टं वयस्या इष्टकाश्चेत् ता भवन्ति, मतोश्च लुग् भवति।

उदा०-मूर्धन्वान् उपधानो मन्त्र आसाम् इष्टकानाम् (वयस्यानाम्) इति-मूर्धन्वत्यः। **'मूर्धन्वतीर्भवन्ति'** (तै०सं० ५।३।८।२)। वयस्या एव मूर्धन्वत्य इष्टका भवन्ति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तद्वान्) मतुब्-प्रत्ययान्त (मूर्ध्नः) मूर्धन् प्रातिपदिक से (आसाम्) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (मतुप्) मतुप् प्रत्यय होता है (उपधानो मन्त्रः) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह उपधान (स्थापन) मन्त्र हो (वयस्यासु इष्टकासु) जो 'आसाम्' षष्ठी-अर्थ है यदि वे 'वयस्य' शब्दवाली इष्टका (ईंट) हो अर्थात् जिन्हें 'वयस्वान्' उपधान-मन्त्र से स्थापित किया गया हो (च) और (मतोः) मतुप् का (लुक्) लोप होता है।*

उदा०-मूर्धा शब्द इसमें है यह-मूर्धन्वान्। मूर्धन्वान् उपधान-मन्त्र है इनका ये-मूर्धन्वती इष्टका (ईंट)।

सिद्धि-मूर्धन्वत्यः। *मूर्धन्वान्+सु+मतुप्। मूर्धन्०+मत्। मूर्धन्वत्+ङीप्। मूर्धन्वती+जस्। मूर्धन्वत्यः।*

यहां प्रथमा-समर्थ 'मूर्धन्वान्' शब्द से 'आसाम्' (इन वयस्य ईंटों का) अर्थ में इस सूत्र से मतुप् प्रत्यय है। प्रातिपदिक में विद्यमान 'मतुप्' प्रत्यय का लुक् हो जाता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में 'उगितश्च' (४।१।६) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है।

विशेषः *(१) यहां 'वयस्यासु' पद का यह अभिप्राय है कि जिस उपधान-मन्त्र में 'वयस्' और 'मूर्धन्' दोनों शब्द विद्यमान हैं उसी मन्त्र से इष्टका-उपधान में 'मूर्धन्' शब्द से मतुप् प्रत्यय होता है, जिस मन्त्र में केवल 'मूर्धन्' शब्द है वहां यह 'मतुप्' प्रत्यय नहीं होता है। जैसे-* ***'मूर्धा वयः प्रजापतिश्छन्दः'*** *(यजु० १४।९)।*

(२) यहां 'मूर्धन्वतः' ऐसा पाठ न करके 'मूर्ध्नः' ऐसा पाठ भावी मतुप्-लुक् को ***चित्त में रखकर किया गया है।***

मतुबर्थप्रत्ययप्रकरणम्

यथाविहितम् (यत्)– {मासः, तनूः}

(१) मत्वर्थे मासतन्वोः।१२८।

प०वि०-मतु-अर्थे ७।१ मास-तन्वोः ७।२।

स०-मतोरर्थ इति मत्वर्थः, तस्मिन्-मत्वर्थे (षष्ठीतत्पुरुषः)। मासश्च तनूश्च ते मासतन्वौ, तयोः-मासतन्वोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-यत्, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि प्रथमासमर्थाद् मत्वर्थे यत्, मासतन्वोः।

अर्थः-छन्दसि विषये प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् मत्वर्थे यत् प्रत्ययो भवति, मासतन्वोरभिधेययोः।

उदा०-**(मासः)** नभांसि सन्त्यस्मिन्-नभस्यो मासः। सहस्यो मासः। तपस्यो मासः। **(तनूः)** ओजोऽस्यामस्ति-ओजस्या तनूः। रक्षस्या तनूः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से **(मत्वर्थे)** मतुप्-प्रत्यय के अर्थ में (यत्) यत् प्रत्यय होता है (मासतन्वोः) यदि वहां मास और तनू (शरीर) अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-(मास) नभ=अभ्र (बादल) हैं इसमें यह-नभस्य मास (वर्षा ऋतु)। **'नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू'** (यजु० १४।१५)। सह इसमें है यह-सहस्य मास। (हेमन्त ऋतु)। **'सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू'** (यजु० १४।२७)। तप इसमें है यह-तपस्य मास (शिशिर ऋतु) **'तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू'** (यजु० १५।५७)। (तनू) ओज इसमें है यह-ओजस्या तनू (काया)। रक्ष=राक्षसवृत्ति इसमें है यह-रक्षस्या तनू (काया)।*

*सिद्धि-(१) **नभस्यः।** नभस्+जस्+यत्। नभस्+य। नभस्य+सु। नभस्यः।*

यहां प्रथमा-समर्थ 'नभस्' शब्द से मतुप्-अर्थ में तथा मास अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से यत् प्रत्यय है। ऐसे ही-सहस्यः, तपस्यः, मधव्यः, रक्षस्या।

ञः+यत्–

(२) मधोर्ञ च।१२९।

प०वि०-मधोः ५।१ ञ १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्।

अनु०-यत्, छन्दसि, मत्वर्थे, मासतन्वोरिति चानुवर्तते।

अन्वय:-छन्दसि प्रथमासमर्थाद् मधोर्ञो यच्च मासतन्वो:।

अर्थ:-छन्दसि विषये प्रथमासमर्थाद् मधु-शब्दात् प्रातिपदिकाद् मत्वर्थे ञो यच्च प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(मास:)** मधु अस्मिन्नस्तीति-माधवो मास: (ञ:)। मधव्य: मास: (यत्)।

आर्यभाषा: *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में, प्रथमा-समर्थ (मधो:) मधु प्रातिपदिक से (मत्वर्थे) मतुप्-प्रत्यय के अर्थ में (ञ:) ञ (च) और (यत्) यत् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-(मास) मधु इसमें है यह-माधव मास (वसन्त ऋतु) **'मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू'** (यजु० १३।२५)। (यत्) मधु इसमें है यह-मधव्य मास (वसन्त ऋतु)। (तनू) मधु इसमें है यह-माधवा तनू (काया)। माधव्या तनू (काया) प्रिय शरीर।*

*सिद्धि-(१) **माधव:।** मधु+सु+ञ। माधो+अ। माधव+सु। माधव:।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'मधु' शब्द से मतुप्-प्रत्यय के अर्थ में इस सूत्र से 'ञ' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि तथा **'ओर्गुण:'** (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है।*

*(२) **मधव्य:।** यहां 'मधु' शब्द से 'यत्' प्रत्यय पूर्ववत् अंग को गुण और **'वान्तो यि प्रत्यये'** (६।१।७८) से वान्त (अव्) आदेश होता है।*

*तनू (काया) अर्थ अभिधेय में स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है-**माधवा, मधव्या** (तनू:)।*

यत्+खः-

(३) ओजसोऽहनि यत्खौ।१३०।

प०वि०-ओजस: ५।१ अहनि ७।१ यत्-खौ १।२।

स०-यच्च खश्च तौ यत्खौ (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०-छन्दसि, मत्वर्थे इति चानुवर्तते।

अन्वय:-छन्दसि प्रथमासमर्थाद् ओजसो मत्वर्थे यत्खावहनि।

अर्थ:-छन्दसि विषये प्रथमासमर्थाद् ओज:शब्दात् प्रातिपदिकाद् मत्वर्थे यत्खौ प्रत्ययौ भवतोऽहन्यभिधेये।

उदा०-(यत्) ओजोऽस्मिन्नस्तीति-ओजस्यमह:। **(ख:)** ओजसीनमह:।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में प्रथमा-समर्थ (ओजसः) ओजस् प्रातिपदिक से (मत्वर्थे) मतुप्-प्रत्यय के अर्थ में (यत्खौ) यत् और ख प्रत्यय होते हैं (अहनि) यदि वहां अहः (दिन) अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-**(यत्)** ओज इसमें है यह-ओजस्य अहः (दिन)। **(ख)** ओज इसमें है यह-ओजसीन अहः (दिन)।*

*सिद्धि-(१) **ओजस्यम्।** ओजस्+सु+यत्। ओजस्+य। ओजस्य+सु। ओजस्यम्।*

यहां प्रथमा-समर्थ 'ओजस्' प्रातिपदिक से मतुप्-प्रत्यय के अर्थ में तथा अहः=दिन अभिधेय में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है।

*(२) **ओजसीनम्।** यहां 'ओजस्' शब्द से पूर्ववत् 'ख' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश होता है।*

यल्–

(४) वेशोयशादेर्भगाद् यल्।१३१।

प०वि०-वेशः-यशः-आदेः ५।१ भगात् ५।१ यल् १।१।

स०-वेशश्च यशश्च ते वेशोयशसी, वेशोयशसी आदौ यस्य स वेशोयश आदिः, तस्मात्-वेशोयशआदेः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितो बहुव्रीहिः)।

अनु०-छन्दसि, मत्वर्थे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि वेशोयशआदेर्भगाद् मत्वर्थे यल्।

अर्थः-छन्दसि विषये प्रथमासमर्थाद् वेशोआदेर्यशआदेश्च भगात् प्रातिपदिकाद् मत्वर्थे यल् प्रत्ययो भवति। वेश इति बलमुच्यते। भगशब्दः श्री-काम-प्रयत्न-माहात्म्य-वीर्य-यशस्वर्थेषु वर्तते।

उदा०-(विशोभगः) वेशश्चासौ भग इति वेशोभगः, वेशोभगोऽस्यास्तीति-वेशोभग्यः। **(यशोभगः)** यशश्चासौ भग इति यशोभगः, यशोभगोऽस्यास्तीति-यशोभग्यः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में, प्रथमा-समर्थ (विशोयशआदेः) वेशादि और यशादि (भगात्) भग प्रातिपदिक से (मत्वर्थे) मतुप्-प्रत्यय के अर्थ में (यल्) यल् प्रत्यय होता है। वेश=बल। भग=श्री, काम, प्रयत्न, माहात्म्य, वीर्य, यश।*

*उदा०-**(विशोभग)** वेश=बलरूप भग=श्री आदि हैं इसके यह-वेशोभग्य। **(यशोभग)** यशरूप भग=श्री आदि हैं इसके यह-यशोभग्य।*

*सिद्धि-**वेशोभग्यः।** वेशोभग+सु+यत्। वेशोभग्+य। वेशोभग्य+सु। वेशोभग्यः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'वेशोभग' शब्द से मतुप्-प्रत्यय के अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय होता है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। प्रत्यय के लित् होने से **'लिति'** (६।४।१९०) से प्रत्यय से पूर्ववर्ती अच् उदात्त होता है-**वेशोभग्यः।** ऐसे ही-**यशोभग्यः।***

खः-

(५) ख च।१३२।

प०वि०-ख १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्।

अनु०-छन्दसि, मत्वर्थे, वेशोयशआदेः, भगाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि प्रथमासमर्थाद् वेशोयशआदेर्भगाद् मत्वर्थे खो यच्च।

अर्थः-छन्दसि विषये प्रथमासमर्थाद् वेशआदेर्यशआदेश्च भगात् प्रातिपदिकाद् मत्वर्थे खो यच्च प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**वेशोभगः**) वेशोभगोऽस्यास्तीति-वेशोभगीनः (खः)। वेशोभग्यः (यत्)। (**यशोभगः**) यशोभगोऽस्यास्तीति-यशोभगीनः (ख)। यशोभग्यः (यत्)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में, प्रथमा-समर्थ (वेशोयशआदेः) वेशादि और यशादि (भगात्) भग प्रातिपदिक से (मत्वर्थे) मतुप्-प्रत्यय के अर्थ में (खः) ख (च) और (यत्) यत् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-**(वेशोभग)** वेश=बलरूप भग=श्री आदि हैं इसके यह-वेशोभगीन (ख)। वेशोभग्य (यत्)। **(यशोभग)** यशरूप है भग=श्री आदि इसके यह-यशोभगीन (ख)। यशोभग्य (यत्)।*

*सिद्धि-(१) **वेशोभगीनः।** वेशोभग+सु+ख। वेशोभग्+ईन। वेशोभगीन+सु। वेशोभगीनः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'वेशोभग' शब्द से मतुप्-प्रत्यय के अर्थ में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन' आदेश और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**यशोभगीनः।***

*(२) **वेशोभग्यः।** यहां 'वेशोभग' शब्द से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। प्रत्यय के तित् होने से **'तित् स्वरितम्'** (६।१।१८२) से स्वरित स्वर होता है-**वेशोभग्यः।** ऐसे ही-**यशोभग्यः।***

कृतार्थप्रत्ययविधिः

इनः+यः+खः–

(१) पूर्वैः कृतमिनयौ च।१३३।

प०वि०–पूर्वैः ३।३ कृतम् १।१ इन–यौ १।२ च अव्ययपदम्।

स०–इनश्च यश्च तौ–इनयौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–छन्दसि, ख इति चानुवर्तते। अत्र 'पूर्वैः' इति तृतीयानिर्देशात् तृतीयासमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः–छन्दसि तृतीयासमर्थात् पूर्व–शब्दात् कृतम् इनयौ खश्च।

अर्थः–छन्दसि विषये तृतीयासमर्थात् पूर्वशब्दात् प्रातिपदिकात् कृतमित्यस्मिन्नर्थे इनयौ खश्च प्रत्यया भवन्ति।

उदा०–(इनः) पूर्वैः कृतः–पूर्विणः। (**यः**) पूर्व्यः। (**खः**) पूर्वीणः। **'गम्भीरेभिः पथिभिः पूर्विणेभिः'** (का०सं० ९।६।१९)। **'पूर्व्यैः'** (तै०सं० १।८।५।२)।

अत्र 'पूर्वैः' इति बहुवचनान्तनिर्देशेन पूर्वपुरुषा उच्यन्ते। तैः कृताः पन्थानः प्रशस्ताः सन्तीति तेषां पथां प्रशंसा क्रियते।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(छन्दसि) वेदविषय में, तृतीया-समर्थ, (पूर्वैः) पूर्व प्रातिपदिक से (कृतम्) बनाया हुआ अर्थ में (इन–यौ) इन, य (च) और (खः) ख प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०–(इन) पूर्व=पूर्वजों के द्वारा कृत=बनाया हुआ पन्था (मार्ग)–पूर्विण। **(य)** पूर्व्य। (ख) पूर्वीण। **'गम्भीरेभिः पथिभिः पूर्विणेभिः'** (का०सं ९।६।१९)। **'पूर्व्यैः'** (तै०सं० १।८।५।२)।*

यहां 'पूर्वैः' इस बहुवचनान्त निर्देश से पूर्वजों का कथन किया गया है। उनके द्वारा कृत=बनाये हुये पथ (मार्ग) प्रशंसनीय हैं, इस प्रकार उनके पथों की प्रशंसा की जाती है।

सिद्धि–(१) पूर्विणः। पूर्व+भिस्+इन। पूर्व्+इण। पूर्विण+सु। पूर्विणः।

*यहां तृतीया-समर्थ 'पूर्व' शब्द से कृत-अर्थ में इस सूत्र से 'इन' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। **'अट्कुप्वाङ्०'** (८।४।२) से णत्व होता है।*

(२) पूर्व्यः। यहां 'पूर्व' शब्द से पूर्ववत् 'य' प्रत्यय है।

*(३) पूर्वीणः। यहां 'पूर्व' शब्द से 'ख' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश और पूर्ववत् णत्व होता है।*

संस्कृतार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (यत्)–

(१) अद्भिः संस्कृतम्।१३४।

प०वि०–अद्भिः ३।३ संस्कृतम् १।१।

अनु०–यत्, छन्दसि इति चानुवर्तते। अत्र 'अद्भिः' इति तृतीयानिर्देशात् तृतीयासमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः–छन्दसि तृतीयासमर्थाभ्योऽद्भ्यः संस्कृतं यत्।

अर्थः–छन्दसि विषये तृतीयासमर्थाभ्योऽद्भ्यः प्रातिपदिकेभ्यः संस्कृतमित्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०–अद्भिः संस्कृतम्-अप्यम्। **'यस्येदमप्यं हविः'** (ऋ० १०।८६।१२)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में, तृतीया-समर्थ (अद्भिः) 'अप्' प्रातिपदिक से (संस्कृतम्) शुद्ध किया हुआ अर्थ में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है।*

*उदा०–अप्=जल से शुद्ध की हुई-अप्य हवि। **'यस्येदमप्यं हविः'** (ऋ० १०।८६।१२)।*

सिद्धि-अप्यम्। *अप्+भिस्+यत्। अप्+य। अप्य+सु। अप्यम्।*

यहां तृतीया-समर्थ 'अप्' शब्द से संस्कृत अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है।

विशेषः *(१) 'अप्' शब्द **'अप्सुमनस्समासिकतावर्षाणां बहुत्वं च'** (लिङ्गा० १।२९) से नित्य-बहुवचनान्त और स्त्रीलिङ्ग है। अतः सूत्रपाठ में 'अद्भिः' ऐसा बहुवचनान्त प्रयोग किया गया है।*

(२) 'अपः' शब्द यास्कीय निघण्टु (वैदिक कोष) में उदक-नामों (१।१२) तथा कर्म-नामों (२।१) में पठित है।

सम्मित्यर्थप्रत्ययविधिः

घः–

(१) सहस्रेण सम्मितौ घः।१३५।

प०वि०–सहस्रेण ३।१ सम्मितौ ७।१ घः १।१।

अनु०-छन्दसि इत्यनुवर्तते। अत्र 'सहस्रेण' इति तृतीयानिर्देशात् तृतीयासमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-छन्दसि तृतीयासमर्थात् सहस्रात् सम्मितौ घः।

अर्थः-छन्दसि विषये तृतीयासमर्थात् सहस्र-शब्दात् प्रातिपदिकात् सम्मितावित्यस्मिन्नर्थे घः प्रत्ययो भवति।

उदा०-सहस्रेण सम्मितिः-सहस्रियः। सम्मितिः=सम्मितः, तुल्यः, सदृश इत्यर्थः। सहस्रियः=सहस्रतुल्य इत्यर्थः। **'अयमग्निः सहस्रियः'** (तै०सं० ४।७।१३।४)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में, तृतीया-समर्थ (सहस्रेण) सहस्र प्रातिपदिक से (सम्मितौ) तुल्यता अर्थ में (घः) घ प्रत्यय होता है।*

*उदा०-सहस्र=बहुतों के सम्मिति=तुल्य-सहस्रियः। **'अयमग्निः सहस्रियः'** (तै०सं० ४।७।१३।४)।*

***सिद्धि-सहस्रियः।** सहस्र+टा+घ। सहस्र्+इय। सहस्रिय+सु। सहस्रियः।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'सहस्र' शब्द से सम्मिति=तुल्य अर्थ में इस सूत्र से **'घ' प्रत्यय** है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश होता है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

***विशेषः** 'सहस्र' शब्द यास्कीय निघण्टु (वैदिक-कोष) में बहु-नामों (३।१) में पठित है।*

मत्वर्थप्रत्ययविधिः

घः-

(१) मतौ च।१३६।

प०वि०-मतौ ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-छन्दसि, सहस्रेण, घ इति चानुवर्तते। अत्र प्रत्ययार्थसामर्थ्येन प्रथमासमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-छन्दसि प्रथमासमर्थात् सहस्राद् मतौ च घः।

अर्थः-छन्दसि विषये प्रथमासमर्थात् सहस्र-शब्दात् प्रातिपदिकाद् मतु-अर्थे च घः प्रत्ययो भवति।

उदा०-सहस्रमस्यास्तीति-सहस्रियः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में, प्रथमा-समर्थ (सहस्रेण) सहस्र प्रातिपदिक से (मतौ) मतुप्-प्रत्यय के अर्थ में (घः) घ प्रत्यय होता है।*

उदा०-*सहस्र (बहुत) इसके हैं यह-सहस्रिय।*

सिद्धि-सहस्रियः। *सहस्र+सु+घ। सहस्र्+इय। सहस्रिय+सु। सहस्रियः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'सहस्र' शब्द से मतुप्-प्रत्यय के अर्थ में इस सूत्र से 'घ' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। 'सहस्र' शब्द से मत्वर्थ में **'तपःसहस्राभ्यां विनीनी'** (५।२।१०२) से विनि और इनि प्रत्यय तथा 'अण् च' (५।२।१०३) से 'अण्' प्रत्यय का विधान किया जायेगा। यह उसका छन्दोभाषा में अपवाद है।*

अर्हति-अर्थप्रत्ययविधिः

यः-

(१) सोममर्हति यः।१३७।

प०वि०-सोमम् २।१ अर्हति क्रियापदम्, यः १।१।

अनु०-छन्दसि इत्यनुवर्तते। अत्र 'सोमम्' इति द्वितीयानिर्देशाद् द्वितीयासमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-छन्दसि द्वितीयासमर्थात् सोमाद् अर्हति यः।

अर्थः-छन्दसि विषये सोम-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अर्हतीत्यस्मिन्नर्थे यः प्रत्ययो भवति।

उदा०-सोममर्हति-सोम्यः। **'सोम्या ब्राह्मणाः'** (का०सं० ५।२)। सोम्याः=यज्ञार्हा इत्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में, द्वितीया-समर्थ (सोमम्) सोम प्रातिपदिक से (अर्हति) सकता है अर्थ में (यः) य प्रत्यय होता है।*

उदा०-*जो सोमपान कर सकता है वह-सोम्य। **'सोम्या ब्राह्मणाः'** (का०सं० ५।२) सोम्य=यज्ञ में सोमपान करने योग्य ब्राह्मण (वेदज्ञ विद्वान्)।*

सिद्धि-सोम्यः। *सोम+अम्+य। सोम्+य। सोम्य+सु। सोम्यः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'सोम' शब्द से अर्हति-अर्थ में इस सूत्र से 'य' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (७।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। यहां प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय के प्रकरण में 'य' प्रत्यय का विधान स्वर-भेद के लिये किया गया है। 'य' प्रत्यय **'आद्युदात्तश्च'** (३।१।३) से आद्युदात्त है-**सोम्यः।***

विशेषः *'सोम' शब्द यास्कीय निघण्टु (वैदिक-कोष) में पद-नामों (५।५) में पठित है। पद=ज्ञान, गमन, प्राप्ति का हेतु।*

मयट्-समूहार्थप्रत्ययविधिः

यः (मयट्र्थे)–

(१) मये च।१३८।

प०वि०-मये ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-छन्दसि, सोमम्, य इति चानुवर्तते। अत्र प्रत्ययार्थबलेन यथायोगं समर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-छन्दसि यथायोगं विभक्तिसमर्थात् सोमाद् मये च यः।

अर्थः-छन्दसि विषये यथायोगं विभक्तिसमर्थात् सोम-शब्दात् प्रातिपदिकाद् मयट्-अर्थे च यः प्रत्ययो भवति।

उदा०-सोमस्य विकारः-सोम्यः। **'पिबाति सोम्यं मधु'** (ऋ० ८।२४।१३)। सोम्यम्=सोममयमित्यर्थः।

आगत-विकार-अवयव-प्रकृता मयडर्था वर्तन्ते। **'हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः'** (४।३।८१) **'मयट् च'** (४।३।८२)। **'मयड् वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः'** (४।३।१४३) **'तत्प्रकृतवचने मयट्'** (५।४।२१) इति। तत्र यथायोगं समर्थविभक्तिर्भवति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में यथायोग विभक्ति-समर्थ (सोमम्) सोम प्रातिपदिक से (मये) मयट्-प्रत्यय के अर्थ में (च) भी (यः) य प्रत्यय होता है।*

उदा०-सोम का विकार-सोम्य। 'पिबाति सोम्यं मधु' (८।२४।१३)। सोम्य (सोममय) मधु का पान करता है।

*सिद्धि-**सोम्यम्।** सोम+ङस्+य। सोम्+य। सोम्य+सु। सोम्यम्।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'सोम' शब्द से मयट्-प्रत्यय के अर्थ में इस सूत्र से 'य' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग के अकार का लोप होता है।

विशेषः *आगत, विकार, अवयव और प्रकृत अर्थ में मयट्-प्रत्यय का विधान किया गया है। अतः यहां तदनुसार समर्थ-विभक्ति ग्रहण की जाती है। आगत अर्थ में पंचमी, विकार-अवयव अर्थ में षष्ठी और प्रकृत अर्थ में प्रथमाविभक्ति होती है।*

यथाविहितम् (यत्) मयडर्थे–

(२) मधोः ।१३६ ।

वि०–मधोः ५ ।१ ।

अनु०–यत्, छन्दसि, मये इति चानुवर्तते । अत्र पूर्ववद् यथायोगं समर्थविभक्तिर्गृह्यते ।

अन्वयः–छन्दसि यथायोगं विभक्तिसमर्थाद् मधोर्मये यत् ।

अर्थः–छन्दसि विषये यथायोगं विभक्तिसमर्थाद् मधु-शब्दात् प्रातिपदिकाद् मयडर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति ।

उदा०–मधुनो विकारोऽवयवो वा-मधव्यः । **'मधव्यान् स्तोकान्'** (पै०सं० १ ।८८ ।२) मधुमयानित्यर्थः ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में यथायोग विभक्ति-समर्थ (मधोः) मधु प्रातिपदिक से (मये) मयट्-प्रत्यय के अर्थ में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है।*

*उदा०–मधु का विकार वा अवयव-मधव्य। **'मधव्यान् स्तोकान्'** (पै०सं० १ ।८८ ।२)।*

*सिद्धि-**मधव्यम्।** मधु+सु+यत्। मतो+य। मधव्य+सु। मधव्यः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'मधु' शब्द से मयट्-प्रत्यय के अर्थ (प्रकृत) में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। 'ओर्गुणः' (६ ।४ ।१४६) से अंग को गुण और **'वान्तो यि प्रत्यये'** (७ ।१ ।७८) से वान्त (अव्) आदेश होता है।*

*'मधु' शब्द से **'द्व्यचश्छन्दसि'** (४ ।३ ।१५०) से विकार-अवयव अर्थ में 'मयट्' प्रत्यय प्राप्त था उसका **'नोत्वद्वर्ध्रबिल्वाद्'** (४ ।३ ।१५१) से प्रतिषेध होने पर **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४ ।१ ।८३) से 'अण्' प्रत्यय होता है किन्तु यहां छन्दोभाषा में उसका अपवाद 'यत्' प्रत्यय विधान किया गया है।*

विशेषः *'मधु' शब्द यास्कीय निघण्टु (वैदिक-कोष) में उदक-नामों (१ ।१२) में पठित है। अतः छन्दोभाषा में मधु शब्द का यथायोग अर्थ होता है।*

यथाविहितम् (यत्) मयडर्थे समूहे च–

(३) वसोः समूहे च ।१४० ।

प०वि०–वसोः ५ ।१ समूहे ७ ।१ च अव्ययपदम् ।

अनु०–यत्, छन्दसि, मये इति चानुवर्तते । अत्र प्रत्ययार्थबलेन यथायोगं समर्थविभक्तिर्गृह्यते ।

अन्वयः-छन्दसि यथायोगं विभक्तिसमर्थाद् वसोः समूहे मये च यत्।

अर्थः-छन्दसि विषये यथायोगं विभक्तिसमर्थाद् वसु-शब्दात् प्रातिपदिकात् समूहे मयट्-अर्थे च यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(समूहः) वसूनां समूहः-वसव्यः। (मयडर्थः) वसुभ्यः आगतः-वसव्यः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में, यथायोग विभक्ति-समर्थ (वसोः) वसु प्रातिपदिक से (समूहे) समूह (च) और (मये) मयट्-प्रत्यय के अर्थ में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(समूहः)** वसु=देवता/धनों का समूह-वसव्य। **(मयट्-अर्थ)** वसु=देवता/धन से आगत (प्राप्त)-वसव्य।*

सिद्धि-वसव्यः। वसु+आम्+यत्। वसो+य। वसव्य+सु। वसव्यः।

*यहां षष्ठी-समर्थ 'वसु' शब्द से समूह अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय यत् प्रत्यय है। **'ओर्गुणः'** (६।४।१४६) से अंग को गुण और **'वान्तो यि प्रत्यये'** (६।१।७८) से वान्त (अव्) आदेश होता है।*

*'वसु' शब्द देवतावाचक और धनवाचक है। देवतावाची 'वसु' शब्द से समूह अर्थ में **'तस्य समूहः'** (४।२।३७) से प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय प्राप्त है और धनवाची 'वसु' शब्द से **'अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्'** (४।२।४७) से 'ठक्' प्रत्यय प्राप्त है किन्तु यहां छन्दोभाषा में 'यत्' प्रत्यय का विधान किया गया है।*

*'वसु' शब्द से **'हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः'** (४।३।८१) से रूप्य और **'मयट् च'** (४।३।८२) से मयट् प्रत्यय प्राप्त है किन्तु यहां छन्दोभाषा में यत् प्रत्यय का विधान किया गया है।*

विशेषः *'वसु' शब्द यास्कीय निघण्टु (वैदिक-कोष) में रात्रि-नाम (१।७) तथा धन-नामों (२।१०) में पठित है।*

स्वार्थप्रत्ययविधिः

घः-

(१) नक्षत्राद् घः।१४१।

प०वि०-नक्षत्रात् ५।१ घः १।१।

अनु०-छन्दसि इत्यनुवर्तते। 'समूहे' इति च नानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि नक्षत्रात् स्वार्थे घः।

अर्थः-छन्दसि विषये नक्षत्र-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे घः प्रत्ययो भवति। अर्थविशेषस्याविधानात्स्वार्थे प्रत्ययो विधीयते।

उदा०-नक्षत्रमेव-नक्षत्रियम्। **'नक्षत्रियेभ्यः स्वाहा'** (यजु० २२।२८)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (नक्षत्रात्) नक्षत्र प्रातिपदिक से स्वार्थ में (घः) घ प्रत्यय होता है। अर्थ-विशेष का विधान न करने से यहां स्वार्थ में प्रत्यय होता है।*

*उदा०-नक्षत्र ही-नक्षत्रिय। **'नक्षत्रियेभ्यः स्वाहा'** (यजु० २२।२८)। छन्दोभाषा में 'नक्षत्र' को ही 'नक्षत्रिय' कहा जाता है। नक्षत्र=तारा, ग्रह।*

सिद्धि-नक्षत्रियम्। *नक्षत्र+सु+घ। नक्षत्र्+इय। नक्षत्रिय+सु। नक्षत्रियम्।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'नक्षत्र' शब्द से स्वार्थ में एवं वैदिक भाषा में 'घ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

तातिल्-

(२) सर्वदेवात् तातिल्।१४२।

प०वि०-सर्व-देवात् ५।१ तातिल् १।१।

स०-सर्वश्च देवश्च एतयोः समाहारः सर्वदेवम्, तस्मात्-सर्वदेवात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-छन्दसि इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि सर्वदेवाभ्यां स्वार्थे तातिल्।

अर्थः-छन्दसि विषये सर्वदेवाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां स्वार्थे तातिल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(सर्वः)** सर्व एव-सर्वतातिः। **'सर्वतातिम्'** (ऋ० १०।३६।१४)। **(देवः)** देव एव-देवतातिः। **'देवतातिम्'** (ऋ० ३।१९।२)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (सर्वदेवात्) सर्व और देव प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (तातिल्) तातिल् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(सर्व) सर्व ही-सर्वताति। **'सर्वतातिम्'** (ऋ० १०।३६।१४)। **(देव) देव** ही-देवताति। 'देवतातिम्' (ऋ० ३।१९।२)।*

*सिद्धि-**देवतातिः।** देव+सु+तातिल्। देव+ताति। देवताति+सु। देवतातिः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'देव' शब्द से स्वार्थ में 'तातिल्' प्रत्यय है। प्रत्यय के लित् होने से 'लिति' (६।१।१९०) से प्रत्यय से पूर्ववर्ती अच् उदात्त होता है-**देवतातिः।** ऐसे ही-**सर्वतातिः।***

विशेषः *'सर्व' शब्द यास्कीय निघण्टु (वैदिक-कोष) में उदक-नामों (१।१२) में पठित है। 'देव' शब्द यास्कीय निघण्टु में पद-नामों (५।६) में पठित है। पद=ज्ञान, गम, प्राप्ति करनेवाला (विद्वान्)।*

करार्थप्रत्ययविधिः

तातिल्-

(१) शिवशमरिष्टस्य करे।१४३।

प०वि०-शिव-शम्-अरिष्टस्य ६।१ करे ७।१।

स०-शिवश्च शम् च अरिष्टं च एतेषां समाहारः शिवशमरिष्टम्, तस्य-शिवशमरिष्टस्य। करोतीति करः, अत्र **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) इत्यस्माद् धातोः **'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः'** (३।१।१३४) इति कर्तरि अच् प्रत्ययः।

अनु०-छन्दसि, तातिल् इति चानुवर्तते। अत्र प्रत्ययार्थबलेन षष्ठीसमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-छन्दसि षष्ठीसमर्थेभ्यः शिवशमरिष्टेभ्यः करे तातिल्।

अर्थः-छन्दसि विषये षष्ठीसमर्थेभ्यः शिवशमरिष्टेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः करे इत्यस्मिन्नर्थे तातिल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(शिवः) शिवस्य करः-शिवतातिः (पै०सं० ५।३६)। **(शम्)** शंकरः-शंन्तातिः (ऋ० ८।१८।७)। **(अरिष्टम्)** अरिष्टस्य करः-अरिष्टतातिः (ऋ० १०।६०।८)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में षष्ठी-समर्थ (शिवशमरिष्टस्य) शिव, शम्, अरिष्ट प्रातिपदिकों से (करः) करनेवाला अर्थ में (तातिल्) तातिल् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(शिव) शिव (सुख) को कर=करनेवाला-शिवताति। (शम्) शम्=सुख को कर=करनेवाला-शन्ताति। (अरिष्ट) अरिष्ट=अशुभ को कर=करनेवाला-अरिष्टताति।

सिद्धि-शिवतातिः। शिव+ङस्+तातिल्। शिव+ताति। शिवतातिः।

यहां षष्ठी-समर्थ 'शिव' शब्द से कर-अर्थ में इस सूत्र से 'तातिल्' प्रत्यय है। ऐसे ही-शन्तातिः, अरिष्टतातिः।

विशेषः *'शिव' और 'शम्' शब्द यास्कीय-निघण्टु (वैदिक-कोष) में सुख-नामों (३।६) में पठित हैं।*

भावार्थप्रत्ययविधिः

तातिल्–

(१) भावे च।१४४।

प०वि०-भावे ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-छन्दसि, तातिल्, शिवशमरिष्टस्य इति चानुवर्तते। अत्रापि पूर्ववत् षष्ठीसमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-छन्दसि षष्ठीसमर्थेभ्यः शिवशमरिष्टेभ्यो भावे च तातिल्।

अर्थः-छन्दसि विषये षष्ठीसमर्थेभ्यः शिवशमरिष्टेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो भावे इत्यस्मिन्नर्थे तातिल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(शिवः) शिवस्य भावः-**शिवतातिः** (पै०सं० ५।३६।१)। **(शम्)** शं भावः-**शन्तातिः** (ऋ० ८।१८।७)। **(अरिष्टम्)** अरिष्टस्य भावः-**अरिष्टतातिः** (ऋ० १०।६०।८)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में षष्ठी-समर्थ (शिवशमरिष्टेभ्यः) शिव, शम्, अरिष्ट प्रातिपदिकों से (भावे) भाव=होना अर्थ में (तातिल्) तातिल् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(शिव) शिव=सुख का भाव (होना)-शिवताति। (शम्) शम्=सुख का भाव (होना)-शन्ताति। (अरिष्ट) अरिष्ट=अशुभ का (होना)-अरिष्टताति।

सिद्धि- 'शिवताति' आदि पदों की सिद्धि पूर्ववत् है।

।। इति प्राग्-हितीयप्रत्ययार्थप्रकरणं छन्दोऽधिकारश्च सम्पूर्णः।।

इति श्रीयुतपरिव्राजकाचार्याणाम् ओमानन्दसरस्वतीस्वामिनां महाविदुषां पण्डित विश्वप्रियशास्त्रिणां च शिष्येण पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थः पादः। समाप्तश्चायं चतुर्थोऽध्यायः। इति तृतीयो भागः।।

पाणिनीय-अष्टाध्यायी-प्रवचनम्

तृतीयभागस्य सूत्रवर्णानुक्रमणिका

इति तृतीयभागस्य सूत्रवर्णानुक्रमणिका।

संक्षेप-विवरणम्

१.	उणा०	-	उणादिकोष: ।
२.	ऋ०	-	ऋग्वेद: ।
३.	का०सं०	-	काठकसंहिता ।
४.	तै०सं०	-	तैत्तिरीयसंहिता ।
५.	पै०सं०	-	पैप्पलादसंहिता ।
६.	फिट्०	-	फिट्सूत्रम् ।
७.	मै०सं०	-	मैत्रायणीसंहिता ।
८.	यजु०	-	यजुर्वेद: ।
९.	लिङ्गा०	-	लिङ्गानुशासनम् ।
१०.	श०कौ०	-	शब्दार्थकौस्तुभ (कोष:)
११.	श०ब्रा०	-	शतपथब्राह्मणम् ।
१२.	शौ०सं०	-	शौनकसंहिता ।
१३.	साम०	-	सामवेद: ।